आवाहन

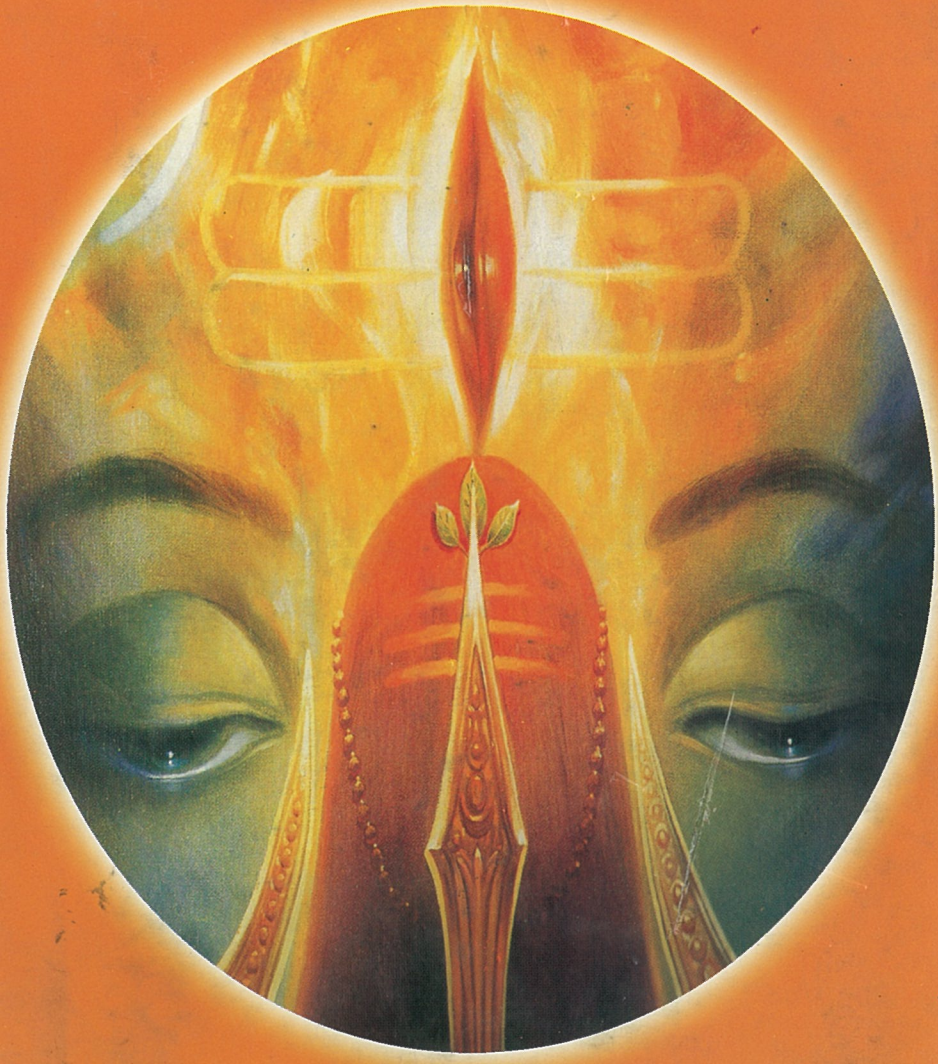

अरुण कुमार शर्मा

आवाहन

परामनोविज्ञान, मनोविज्ञान और योगविज्ञान
पर आधारित एक मौलिक आध्यात्मिक कृति

अरुण कुमार शर्मा

संकलन

मनोज कुमार शर्मा

आस्था प्रकाशन

वाराणसी

• **पुस्तक**
आवाहन

• **प्रकाशक**
आस्था प्रकाशन
आगम निगम संस्थान के साहित्य
के प्रकाशक एवं वितरक

• **प्रथम संस्करण**
सन् 2010 ई.
सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन

• **मूल्य**– 300/–
ISBN 978-81-906796-4-0

• **कार्यालय**
आस्था प्रकाशन
बी. 5/23, अवधगर्वी, हरिश्चन्द्र रोड
वाराणसी–221001 (उ.प्र.)
दूरभाष : 0542–2277093, 2277228

लेखक की पूर्व अनुमति बिना पुस्तक के किसी भी रूप में प्रकाशन तथा अन्य किसी भाषा में अनुवाद और फिल्मीकरण अथवा अन्य प्रकार का उपयोग पूर्णरूप से प्रतिबन्धित है– **प्रकाशक**

विषय सूची

- दो शब्द
- प्रारम्भ में 1

प्रथम आवाहन

1. रहस्यमय दर्पण 1
2. क्या वह आत्मा का आवाहन था 3
3. एक रहस्यमय अंग्रेज आत्मा से परिचय 11
4. मन के दो स्वरूप 13
5. एक असाधारण महिला 17
6. जागृत मृतात्माएँ 21
7. परामनोविज्ञान के अध्ययन के तीन प्रकार 22
8. दूरबोध : एक प्रत्यक्ष अनुभव 23
9. साधक युक्तेश्वर चैतन्य 24
10. कितना अद्‌भुत है मानव मन 26
11. रहस्यमय साधक गोपाल ब्रह्मचारी 27
12. रहस्यमय महात्मा प्रज्ञानन्द 28
13. गोपाल ब्रह्मचारी का दूसरा जन्म और साधना 30
14. गुरुदेव से आन्तरिक संबंध और मस्तिष्क की विद्युत..... 32
15. गुरु शिष्य के आन्तरिक संबंध का माध्यम एक..... 35
16. सद्‌गुरु प्रज्ञानन्द से मानसिक तरंगों द्वारा संबंध 36
17. मन एक प्रसारण केन्द्र 37
18. एक अविश्वसनीय अनुभव 37
19. मस्तिष्क की विचारणा शक्ति भौतिक पदार्थों को गति..... 38
20. सुख–दुख और आनन्द 39
21. लोभ–लालच और अहंकार 44
22. सत्य और अस्तित्व वर्तमान में 45

द्वितीय आवाहन

1. एक दिव्यलोक की आत्मा से सम्पर्क 47
2. तीन शरीर और तीन प्रकार की तरंगे 48
3. मनस तरंग 49
4. स्पर्श दीक्षा 50
5. पिछले जन्म का एक महत्वपूर्ण दृश्य 51
6. गोपाल ब्रह्मचारी का महाप्रयाण 53
7. शिवलिंग का यौगिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप 54
8. एक साधक से सम्पर्क 56
9. एक श्मशान भैरवी से सम्पर्क 60
10. जब स्थूल शरीर में प्रकट हुई श्मशान भैरवी 61
11. अज्ञात और अव्यक्त के रहस्य में प्रवेश 66
12. भावराज्य में प्रवेश 67
13. भाव जगत और सूक्ष्म जगत की सीमा की ओर 68
14. एक सिद्ध तंत्र साधक से साक्षात्कार 69

तृतीय आवाहन

1. श्मशान भैरवी की कथा 71
2. दीपावली की वह रहस्यमयी काली रात 73
3. वह रहस्यमयी संन्यासिनी 78
4. संन्यासिनी की आत्मकथा 80
5. सोनालिका को भैरवी दीक्षा 94
6. महात्मा रत्नकीर्ति 95
7. योगी का कायाकल्प 96
8. सोनालिका की मृत्यु और पुनर्जन्म 97
9. मातृअंक 98

चतुर्थ आवाहन

1. कालञ्जयी महातंत्र साधक ताराचरण शाक्त 102
2. अतीत में प्रवेश 104

3. संन्यासी परमेश्वरानन्द 106
4. तंत्र–योग का अद्‌भुत चमत्कार 107
5. नाशहीन योगसृष्टि 108
6. पूर्वजन्म की कथा 111
7. मातृअंक की उपलब्धि 121
8. आवाहन की यौगिक क्रिया 122
9. कपिला आनन्द का आवाहन 126

पञ्चम आवाहन

1. महापुरुष की परिभाषा 131
2. भारत और दरिद्रता 134
3. सम्पत्ति 137
4. भौतिकवाद 140
5. आपको आध्यात्मिक जीवन में इतनी शीघ्र सफलता.... 143
6. वह कौन थी? 147
7. स्वामी सत्यानन्द शाक्त 148
8. वक्रेश्वर की ओर 149
9. स्वामी सत्यानन्द कापालिक से भेंट 151
10. भैरवी का प्रयोजन 152
11. भैरवी मणिमाला 153
12. क्या वह माँ थी? 158
13. जीवन के दो भाग हैं 159
14. शरीर और आत्मा 161
15. क्या वह मेरा पिछला जन्म था? 163
16. कौन था पूर्णानन्द? 168
17. संन्यासिनी विमल कीर्ति 171

षष्टम् आवाहन

1. हम क्या–क्या हैं और क्या–क्या नहीं हैं 184
2. यथार्थ कौन है? 187
3. जीवन और स्वरूप 187

4. अनुभव और अनुभोक्ता 190
5. सांख्य और योग 192
6. स्मृति और ज्ञान 193
7. कर्म के प्रति मूर्च्छित हैं हम 194
8. प्राणायाम और काम ऊर्जा 198
9. केवल ब्रह्मचर्य और घातक 202
10. हर क्षण प्राण ऊर्जा का क्षय 202
11. योग–तंत्र और कल्पना 205
12. प्राण ऊर्जा के क्षय का माध्यम इन्द्रियाँ भी हैं 207
13. प्रत्याहार के दो नियम 210
14. ध्यान के सोपान 211
15. ध्यान का दूसरा सोपान 215
16. ध्यान का तीसरा सोपान 217

सप्तम आवाहन

1. सद्गुरु–साक्षात्कार और इष्ट दर्शन 221
2. चित्त के तीन तल 224
3. ध्यान की पांच भूमियाँ 225
4. साधिका देवयानी 227
5. इष्ट दीक्षा 228
6. एक दिव्य महात्मा का दर्शन 231
7. सद्गुरु और इष्ट 242
8. तंत्र साधक चैतन्य देव ब्रह्मचारी 244
9. समस्त साधनों के मूल में संकल्प शक्ति 246
10. समाधि : सूक्ष्म शरीर : मृत्यु के पार 260
11. महाभैरवी कंकाली माँ 265
12. रहस्यमय रासायनिक द्रव्य 270
13. सूक्ष्म शरीर क्या है? 273
14. शरीर में सम्पर्क केन्द्र 276
15. सूक्ष्म शरीर का अनुभव 276
16. आयोजित मृत्यु क्या है? 278
17. संकल्प साधना 282

18. संकल्प का प्रयोग धर्म और आध्यात्म में 285
19. मनोबल और संकल्प बल 286
20. बड़े संकल्पों का प्रारम्भ 287

अष्टम् आवाहन

1. एक मुगलकालीन दिव्यात्मा से साक्षात्कार 291
2. सूक्ष्म शरीर की विशेषताएँ 295
3. एक योगात्मा से साक्षात्कार 296
4. सूक्ष्म जगत में कार्य सिद्धि 299
5. एक प्रकाण्ड विद्वान की मृतात्मा की दारूण कथा 302
6. वह कौन था? 303
7. आत्मा का स्वरूप 308
8. सद्गुरु की आत्मा से सम्पर्क 309
9. सद्गुरु का आवाहन और पुस्तक लेखन 310
10. दो महापाप 312
11. क्या काशी में पाप–क्षय और मुक्ति सम्भव है? 313
12. चेतनतत्व और आत्मतत्व की यात्रा 314
13. मध्य योनि 314
14. मुक्ति और मोक्ष 315
15. दो प्रकार के तीर्थ 316
16. ज्ञान तीर्थ काशी 317
17. काशी में जन्म एक दुर्लभ उपलब्धि 318
18. ज्ञानान्मुक्ति 319
19. आत्म खण्ड 320
20. कापालिक महाभैरवी रोहिणी से सम्पर्क 322
21. शिवेन्द्र सरस्वती का नरकोद्धार 330
22. योग तंत्र साधना के तीन क्रम 334
23. प्रच्छन्न योगी पं. सुब्रमण्यम् शास्त्री 338
24. गुरु का अर्थ 342
25. आचार शुद्धि 344
26. स्वधर्म और अधर्म 346

27. समस्त बीमारियों का कारण अधर्म 348
28. योगी का चमत्कार 350
29. स्थूल, तुरीया अवस्था और विज्ञानमय जगत 352
30. एकाग्र साधना 353
31. मूलाधार चक्र की साधना 354
32. सूक्ष्मतम् प्राण 356
33. साधना और अनुभव 356
34. चमेली के शरीर में कौन थी? 357
35. विचारों का कुचक्र 361
36. चमेली के शरीर में डाकिनी का प्रवेश 364
37. साधना मार्ग में भैरवी 366
38. स्त्री और पुरुष भाव का विसर्जन एक नैसर्गिक उपलब्धि 368
39. साधिका दिव्यागिरि 371
40. देह विद्युत संरक्षण 372
41. और जब चमेली मिली 373
42. आत्म चर्चा 374
43. और अब अन्त में 378
44. कवीन्द्राचार्य सरस्वती 380
45. वह विलक्षण काल पटल 390

प्रकीर्ण

1. अन्तःप्रज्ञा 394
2. आन्तरिक शक्ति को विकसित करने के उपाय 417
3. आध्यात्मिक इच्छाशक्ति और आवाहन 421
4. शिव की कालस्वरूपता 427
5. माँ दुर्गा रहस्य 437
6. माँ दुर्गा के आध्यात्मिक स्वरूप 441
7. शक्ति जागृत करे दुर्गासप्तशती 453
8. हवन और मुहूर्त 456
9. कहाँ पर हो घर में पूजा स्थल? 458

•

शरीर मेरा है उंगलियाँ मेरी है

कलम मेरी है कागज

मेरा है लेकिन

ज्ञान सद्गुरु

का है।

-अरुण कुमार शर्मा

बसन्त पंचमी
(सरस्वती पूजा)
सन् 2010 ई.
काशी

दो शब्द

सिद्ध गोलोकवासी म0म0 डॉ. गोपीनाथ जी कविराज के साधना मार्ग के अनुयायी और उनकी पाण्डित्य परम्परा के उज्ज्वल नक्षत्र पं. अरुण कुमार शर्मा अपने आप में एक प्रच्छन्न साधक हैं इसमें सन्देह नहीं। इनकी सत्यान्वेषणात्मक प्रवृत्ति ने अध्यात्म के अनेक तिमिराच्छन्न और रहस्यमय तथ्यों को विज्ञान, परामनोविज्ञान का प्रसंगवश आश्रय लेकर उद्घाटित किया है अबतक। जिनका स्पष्ट प्रतिबिम्ब उनकी मूल्यवान पुस्तकें हैं और उन्हीं पुस्तकों में एक है "आवाहन"। किंसी एक विषय को लेकर कभी भी एक पुस्तक नहीं लिखी शर्माजी ने। प्रसंगवश जो भी आध्यात्मिक विषय स्मृति पटल पर आते गये, उसे लिखते गये महाशय। उनके स्मृतिकोष में कितनी कुछ आध्यात्मिक सम्पत्ति भरी हुई है, इसकी कल्पना मुझ जैसा साधारण व्यक्ति कदापि नहीं कर सकता।

विभिन्न प्रकार के शारीरिक विकार के प्रहारों के अतिरिक्त आयु का भी प्रहार सहन करते हुए भी इस महान पुरुष की लेखनी थमी नहीं, बराबर चलती ही जा रही है अभीतक। आशा और विश्वास है कि आवाहन भी आपके लिए उपादेय और ज्ञानवर्धक सिद्ध होगी।

विनीत
मनोज कुमार शर्मा

आस्था प्रकाशन
बी. 5/23 अवधगर्वी
हरिश्चन्द्र रोड, वाराणसी–1
दूरभाष : 2277228

प्रारम्भ में

सन् 1950 ई. से अबतक पांचों उंगलियों के बीच द्रौपदी की तरह मेरी लेखनी चलती आ रही है। बहुत सी बाधाएँ आयी, विघ्न उपस्थित हुए, तरह–तरह की मानसिक और शारीरिक कष्ट आये लेकिन उसकी गति कहीं रूकी नहीं और उसका प्रवाह कहीं थमा नहीं। अनवरत चलती रही, चलती रही और चलती ही रहेगी मृत्युपर्यन्त तक।

इस दीर्घकालावधि में जीवन में अद्‌भुत विचित्र और अविश्वसनीय रूप से घटी घटनाओं और उनके अनुभवों पर आधारित न जाने कितनी कथा कहानियाँ लिखी। कितने विभिन्न आध्यात्मिक विषयों पर निबन्ध लिखे और न जाने कितने साहित्यिक लेख लिखे उनका लेखा–जोखा नहीं है हमारे पास। पुस्तके भी लिखीं एक दो नहीं, पूरे एक दर्जन। पुस्तकों की भी बढ़ती जा रही है संख्या धीरे–धीरे। यह तो सर्वविदित है कि वर्तमान समय में सर्व शक्तिमान और ऐश्वर्यवान धर्माचार्यों और साथ ही आधुनिक सुख सुविधा सम्पन्न धर्म गुरुओं की संख्या जहां एक ओर बढ़ती जा रही है, वहीं दूसरी ओर आधुनिक साज–सज्जा और आधुनिक परिवेश में साध्वी महिलाओं और संन्यासिनियों की भी बढ़ती जा रही संख्या। इन सभी लोगों के बीच सिद्ध साधकों और योगियों का अपना–अपना जगत है। इन समस्त आधुनिक महापुरुषों के आडम्बर और पाखण्ड से भरा पूरा विशाल आश्रम है और है रहस्यमय मठ भी। जिनमें गैरिक वस्त्रधारिणी युवा शिष्याओं की संख्या अधिक मिलेगी आपको जिन्हें देखकर देव कन्याएं भी शरमा जायें।

धर्माचार्यों के आध्यात्मिक प्रवचन, धर्म गुरुओं का पारलौकिक उपदेश और सिद्ध साधकों और योगियों की ब्रह्मज्ञान से संबंधित चर्चाओं को सुनकर लोग प्रसन्न होते हैं मुग्ध होते हैं और हो उठते हैं गद्‌गद् और समझते हैं अपने आपको धन्य। वे भला बेचारे क्या जाने कि प्रवचन के रूप में जो सुन रहे है वह उधार का ज्ञान है अपना नहीं। अनुभवहीन है प्रवचन। उससे किसी भी प्रकार का कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं। जो उपदेश उन्हें प्राप्त हो रहा है, वह पूर्णरूप से तथ्यहीन है। आध्यात्म से

उसका दूर तक कोई संबंध नहीं। इसी प्रकार उन्हें जो ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हो रहा है, उसका वेद, उपनिषद आदि से कोई नाता रिश्ता नहीं। जो दीक्षा उन्हें प्राप्त हो रही है, उससे किसी भी प्रकार का आत्मकल्याण सम्भव नहीं।

यह कहना अनुचित न होगा कि ऐसे कलियुगी महात्माओं और महापुरुषों का अपना न कोई ज्ञान होता है और न तो होता है अपना अनुभव ही। उनकी अपनी कोई आध्यात्मिक सम्पत्ति नहीं होती। यदि उनकी कोई सम्पत्ति होती भी है तो उनका आडम्बर और पाखण्ड। मेरे जैसे लेखकों की पुस्तकें ऐसे लोगों के लिए अति सहायक सिद्ध होती है प्रवचन उपदेश आदि की दिशा में। कुछ ऐसे भी महापुरुष हैं जो इस लोक की बाते कम और परलोक की बाते अधिक करते हैं। इस लोक को सुधारने के बजाय परलोक को सुधारने की बात अधिक करते हैं। जिसे किसी ने देखा तक नहीं है। एक महात्मा ऐसे हैं जो प्रायः मेरी पुस्तकें पढ़ते हैं किसी पुस्तक में मैंने सूक्ष्म जगत और सूक्ष्म शरीर की विस्तृत और सप्रमाणित चर्चा की है। बस, फिर क्या था? मसाला मिल गया महात्मा को। अपने प्रवचन का मुख्य विषय बना लिया उन्होंने और न जाने कितने प्रवचन दे डाले सूक्ष्म जगत और सूक्ष्म शरीर पर। आज भी उनके प्रवचन का मुख्य विषय एकमात्र यही है।

भारतीय अध्यात्म में मनोनिग्रह का भारी महत्व है। जिसका आधार कल्पना शक्ति है। कल्पनाओं में सबसे बड़ी कल्पना पवित्र, ईश्वर का विचार है। हम जितना ही ईश्वर के विचारों को आत्म सात् करते जायेंगे। उतना ही मन के साथ हमारे संघर्ष कम होते जायेंगे और अन्त में पूर्ण मनोनिग्रह को हो जायेंगे उपलब्ध योग में। मनोविग्रह सबसे ऊँची चीज है। मनोनिग्रह आवश्यक है। योग–तंत्र की समस्त साधनाओं की सफलता एकमात्र मनोनिग्रह पर आधारित है। (इसी पुस्तक से) यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि भौतिक विज्ञान और आध्यात्म विज्ञान दोनों कल्पना शक्ति पर आधारित है।

इधर पांच दशक से योग तंत्र में भी प्रवेश कर गयी है कल्पना। केवल मात्र कल्पना से कल्पना शक्ति नहीं। प्रवेश में सहयोग देने वाले हैं आपको ऐश्वर्यवान सुख समृद्धि सम्पन्न धर्माचार्य और योगी गुरु। उनकी कृपा से और उनकी प्रबल आध्यात्मिक शक्ति से कल्पना में ही

कुण्डलिनी जागृत होने लगी है। अत्यन्त दुर्लभ शक्तिपात होने लगा है। षट्चक्र भेदन होने लगा है। आत्मोद्धार होने लगा है। सारे पाप नष्ट होने लगे हैं। हृदय–चक्र में गुरु की स्थापना भी होने लगी है। कल्पना में ही नाना प्रकार की दीक्षाओं का प्रभाव भी दिखने लगा है। नाना प्रकार के चमत्कार भी होने लगे हैं। इष्ट दर्शन, आत्म साक्षात्कार आत्मानुभूति आदि तो अति सहज और अति सरल हो गया है, कल्पना के आकर्षक और लुभावने राज्य में इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। (इसी पुस्तक से)

आपको ज्ञात होना चाहिए कि जब से पश्चिम के भौतिकवाद से घबड़ाये, परेशान, तनावग्रस्त और ऊबे हुए महापुरुषों का वास्तविक सुख शान्ति की खोज में भारत आना अधिक हो गया है और तभी से भारत में साधु संन्यासी, योगियों और सिद्ध साधकों की जमात भी द्रुत गति से बढ़ने लगी है। जिनकी अपनी–अपनी ऐश्वर्यमयी और सुख–सुविधा सम्पन्न प्रभावशाली मण्डलियां भी हैं। जिनके सदस्य अधिकांश पश्चिमी देशों के पलायनवादी लोग हैं। जो वास्तविक सुख शान्ति की खोज में भटकते हुए भारत आते हैं। अब प्रश्न यह है कि देश के हों या हों विदेश के लोग, क्या उनको उपलब्ध होता है सच्चे अर्थों में सुख और शान्ति। विचारणीय है यह प्रश्न प्रायः मेरा सामना ऐसे लोगों से बराबर पड़ता रहता है जो मण्डलियों से भटक कर या किसी महापुरुष के चंगुल से किसी प्रकार मुक्त होकर आ जाते हैं मेरे पास। कुछ जिज्ञासाएं लेकर या कुछ आध्यात्मिक प्रश्न ले कर। अभी कुछ समय पहले ऋषिकेश से एक साध्वी महिला आयी थी। नाम था शाम्भवी प्रिया। वह तो उनका गुरु प्रदत्त नाम था। वैसे उनका नाम था शान्ति तनेजा। शरीर से स्वस्थ सुन्दर और आकर्षक महिला थी शाम्भवी प्रिया। आयु भी यही रही होगी 36 के लगभग। मेरे पास परामर्श के लिए आयी थी शाम्भवी प्रिया। पहले तो उन्होंने अपने आपको संयत किया और फिर गम्भीर स्वर में कहना शुरू किया– मेरी कुण्डलिनी जागृत हो चुकी है। सारा शरीर बराबर तपता रहता है कुण्डलिनी शक्ति के उत्ताप से। अट्ठारह वर्ष की अवस्था में मुझे शक्तिपात दीक्षा दी थी गुरुदेव ने। रोमाञ्चित हो उठा मेरा सारा शरीर और प्रफुल्लित हो उठा मेरा मन, आनन्द के सागर में डूब गयी मेरी आत्मा। उस परम दीक्षा के मूल्यवान क्षणों में उपलब्ध आनन्द और सुख का मैं वर्णन ही नहीं कर सकती। इतना कह कर क्षण भर के लिए

आँखें बन्द कर ली साध्वी ने। लगा जैसे उस आनन्द की स्मृति संजीव हो उठी हो उनके मानस पटल पर। उसी अवस्था में आगे बोली– पूरे दस वर्षों के अन्दर न जाने कितनी बार शक्तिपात दीक्षा दी गुरुदेव ने। उनका कहना था कि जबतक कुण्डलिनी का जागरण न हो जाय तबतक दीक्षा का चलता रहेगा इसी प्रकार क्रम। मेरी आयु तीस को पार कर रही थी। गुरुदेव भी अस्वस्थ रहने लगे थे। दिन भर खांसते ही रहते। अधिक से अधिक सोने भी लगे थे। अवस्था भी तो हो गयी थी साठ के लगभग। जब मैं कभी अध्यात्म की चर्चा भी करती तो झिडक देते थे। एक दिन मुझे बुलाकर मेरे सिर पर हाथ रखते हुए गुरुदेव खांसते हुए बोले–तेरी कुण्डलिनी अब जागृत हो गयी है। शक्तिपात दीक्षा की अब आवश्यकता नहीं। अब तू एक सिद्ध साधिका है विवाह कदापि न करना। अब केवल गुरु का चिन्तन करते हुए जीवन व्यतीत करना है तुझे।

यह सब सुनकर एकबारगी स्तब्ध रह जाना पड़ा मुझे। मुंह बाये अपलक देखता रह गया मैं उस सरल चित्त महिला की ओर। शक्तिपात और उसकी दीक्षा के नाम पर आध्यात्मिक समाज में कितना उपद्रव हो रहा है? कितना शोषण हो रहा है और कितना चारित्रिक हनन हो रहा है? हे भगवान्!

इस प्रसंग में यह बतला देना और स्पष्ट कर देना अति आवश्यक है कि शक्तिपात दीक्षा योग और तंत्र की अति महत्वपूर्ण दीक्षा है। वह अत्यन्त रहस्यमयी गहन गम्भीर और सर्वोच्च समझी जाती है। यह गुह्य और गोपनीय दीक्षा उस विशेष व्यक्ति को दी जाती है। जो योग तंत्र परक साधना की एक विशेष अवस्था को उपलब्ध हो गया होता है। शक्तिपात दीक्षा के पूर्व चार प्रकार की क्रम दीक्षा है– स्पर्श दीक्षा मनोनिग्रह दीक्षा, यवजनिका जिनका दीक्षा और बैन्दव दीक्षा। इन दीक्षाओं के सम्पन्न होने पर ही सद्गुरु शिष्य को अन्तिम शक्तिपात दीक्षा प्रदान करता है। जिसके प्रभाव से साधक के व्यक्तित्व में तत्काल अमूलचूल परिवर्तन हो जाता हैं। मन, मन नहीं रह जाता। प्राण–प्राण नहीं रह जाता और आत्मा, आत्मा नहीं रह जाती। तीनों अपने–अपने स्थान पर नैसर्गिक अवस्था को हो जाते हैं उपलब्ध। सारे कर्म विपाक नष्ट हो जाते हैं जिससे नष्ट हो जाते हैं आणव मल भी। वह शक्तिपात दीक्षा इतनी सरल और इतनी सहज नहीं है जिसको देने और लेने वाले दोनों होते हैं दुर्लभ। गुरु भी

और शिष्य भी। हे भगवान और वह भी एक बार नहीं, न जाने कितनी बार। सब कुछ समझते देर न लगी मुझे। पूर्णरूप से शक्तिपात और कुण्डलिनी के नाम पर प्रत्यक्ष रूप में उस सरल चित्ता महिला का मानसिक, शारीरिक और आर्थिक शोषण किया गया था, इसमें सन्देह नहीं।

.....अब बतलाइये आप। मुझसे क्या चाहती हैं? सहज भाव से पूछा मैंने। बड़ी ही विकट समस्या है मेरी। उसी का हल और समाधान चाहती हूँ मैं आपसे। स्पष्ट करिए, सम्भव होगा तो हो जायेगा समाधान। मैंने कोमल और अपनत्व भरे स्वर में दिया उत्तर।

.....गुरुदेव तो अब नहीं रहे। अपने गुरु के शरण में चले गये हमेशा–हमेशा के लिए। लेकिन कबतक उनका चिन्तन करती रहूँगी मैं आप ही बतलाइये। मेरी उम्र भी तो अब अधिक हो गयी है। परिवार में माता–पिता है नहीं। बड़ा भाई है वह सपरिवार दुबई में रहता है। माँ ने जो मेरी शादी के लिए रुपये और जेवर रखे थे। उन सबको मैंने अर्पित कर दिया था गुरुदेव के चरणों में। एक प्रकार से निराश्रित और अकेली ही समझिए आप मुझे। थोड़ा रूककर साध्वी आगे बोली– एक युवक से प्रेम करने लगी हूँ मैं! उससे शादी करना चाहती हूँ। वह भी इसके लिए तैयार है। क्या मैं शादी कर सकती हूँ? गुरु की आत्मा रूष्ट तो नहीं होगी? यह सुनकर तरस आ गया मुझे उस सीधी सादी सरल चित्त युवती पर। मन ही मन सोचने लगा कितनी निश्छल है यह। अध्यात्म के नाम पर किस प्रकार छली गयी है, स्वयं उसे ज्ञात नहीं। यदि स्पष्ट रूप से सब कुछ बतला देता तो सम्भवतः उसका अर्थ कुछ और ही लेती हैं वह। इसलिए मैंने हँसकर कहा– आप सहर्ष विवाह करिए। रही गुरु की बात, उनकी पवित्र आत्मा महानिर्वाण को हो गयी हैं उपलब्ध इसलिए उनके रूष्ट होने का प्रश्न ही नहीं है। कुण्डलिनी का क्या होगा? थोड़ा व्यग्र भाव से बोली साध्वी।

हँसे बिना रहा न गया मुझसे। मैंने कहा– यह आपका भ्रम है। कुण्डलिनी स्त्रियों में होती ही कहां है कि जागृत होगी आपकी। ऐं! क्या कहा आपने कुण्डलिनी होती ही नहीं। आश्चर्यचकित होकर बोली वह साध्वी।

हाँ! ठीक ही कह रहा हूँ मैं। स्त्री का गर्भाशय ही कुण्डलिनी का प्रतिनिधित्व करता है। चलिए! आपके गुरु का ही कहना मान लेता हूँ

मैं। यदि आपकी कुण्डलिनी जागृत हो गयी होती तो आप मेरे पास आती ही क्यों? कहीं एकान्त स्थान में आप बैठी होती समाधिस्थ और अपने आपमें मग्न। मेरी बात सुनकर सिर झुकाएँ विचार मग्न बैठी रही कुछ देर तक साध्वी। फिर सिर उठा कर मेरी ओर देखा एक निरीह नारी की तरह। उसकी आँखों से झर–झर कर गिर रहे थे आँसू गालों पर उस समय निश्चय ही वे आँसू पश्चाताप के थे इसमें सन्देह नहीं। कहने की आवश्यकता नहीं उसी महीने शादी कर ली अपने प्रेमी के साथ शाम्भवी प्रिया ने। गुरु का दिया हुआ नाम और माता–पिता का दिया हुआ नाम टांग दिया खूंटी पर, उन्होंने और उनके स्थान पर पति का दिया हुआ नाम रखा पुष्पा सिहोरिया। कहने की आवश्यकता नहीं, ऐसे और ऐसे कई मर्मस्पर्शी उदाहरण हैं मेरे पास। यदि उन सभी को लिपिबद्ध करना चाहूँ तो एक बहुत मोटी पुस्तक तैयार हो जायेगी।

मेरी पुस्तकों को पढ़ कर तार्किकों के मन में तर्क उत्पन्न होता है। जो बेचारे अल्पज्ञ हैं उनके मन में उत्पन्न होता है अविश्वास और कौतूहल। जो पूर्णरूप से भौतिकवादी हैं, उनके मन में उत्पन्न होती है, कल्पना, ऊँची कल्पना और जो अध्यात्म प्राण जिज्ञासु हैं वे अपनी आत्म तुष्टि के लिए अपनी जिज्ञासाओं को करते हैं प्रकट। बहुत से ऐसे प्रबुद्ध पाठक हैं जो यह जानने के लिए इच्छुक हैं कि मैंने अपने आध्यात्मिक जीवन में इतनी शीघ्र सफलता कैसे प्राप्त कर ली? बहुत से ऐसे कार्य हैं जिनको पूर्ण करने में कई जन्म लेने पड़ सकते हैं लेकिन आपने उन्हें अपने एक ही जन्म में कैसे कर लिया पूर्ण। असम्भव सा लगता है। इस संबंध में मेरा एकमात्र उत्तर है–इस संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है। सब कुछ सम्भव है बन्धु! सब सम्भव है। इस संसार में यदि कोई अति मूल्यवान और अति महत्वपूर्ण वस्तु है तो वह है 'समय'। समय के संबंध में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है– 'काल' यानी समय में मैं क्षण हूँ। आपको जीने के लिए केवल एक क्षण प्राप्त होता है और जब आप एक क्षण जी लेते हैं तो आपको जीने के लिये प्राप्त होता है दूसरा क्षण। अपने जीवन में प्रत्येक क्षण का मूल्य और महत्व समझा है मैंने और उस क्षण में पूर्ण रूप से जीया भी है मैंने। आध्यात्म ही नहीं, जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी मेरी सफलता का एकमात्र यही रहस्य है। अब रही साधना उपासना की बात। उपासनाएँ, तो जितने देवी–देवता उतनी ही उपासनाएँ। लेकिन

जहां तक प्रश्न साधना का है वह दो ही है– योग साधना और तंत्र साधना इन दोनों का आविर्भाव वेदों से हुआ है। दोनों साधनाएँ योग्यता और संस्कार पर निर्भर है। यदि ये दोनों हैं तो अवश्य आपमें साधना के प्रति उत्पन्न होगी रूचि और तभी साधना मार्ग पर उठेंगे आपके पैर और तभी प्राप्त होगी सफलता भी। बस, आध्यात्मिक प्यास होनी चाहिए। यदि है तो आप एक न एक दिन उस स्थान पर पहुँच जायेंगे जहाँ पहुँच कर आपके मुख से स्वयं निकल पड़ेगा ॐ शान्ति.....। जिसका अर्थ है–सर्वत्र परम शान्ति और सर्वत्र परम आनन्द।

.....जहां तक मेरा अपना प्रश्न है। साधना की दृष्टि से न योग को स्वीकार किया और न तो तंत्र को ही मैंने। दोनों के मार्ग पर चला अवश्य लेकिन सत्य की खोज में वास्तविकता की खोज में तथ्य की खोज में और परिणाम की खोज में। मेरे लिए किसी भी देवी देवता का न मूल्य है और न तो है महत्व। मेरे लिए कोई मूल्यवान और महत्वपूर्ण है तो वह है मेरा इष्ट और मेरे सद्गुरु। खोज मार्ग में इष्ट ने मेरी रक्षा की और सद्गुरु ने किया मार्ग दर्शन। खोजी जीवन में अनेक प्रकार की विघ्न बाधाएं आयी। कई झंझावातों का सामना करना पड़ा। पारिवारिक आघात सहने पड़े। अपने ही लोगों ने कई प्रकार की चोट भी पहुँचायी। सामाजिक प्रताड़ना भी साहनी पड़ी। लेकिन बन्धु मैं आगे बढ़ता रहा, बढ़ता रहा और बढ़ता ही रहा और आज भी बढ़ ही रहा हूँ मृत्यु के द्वार पर खड़ा होकर भी। जहां खोज की वृत्ति है। वहां अनुभव का प्राप्त होना निश्चित है। जो अनुभव कई जन्मों में भी प्राप्त होने वाला नहीं है, वह अनुभव प्राप्त हुआ मुझे अपनी खोज वृत्ति से। जिसकी सफलता की पृष्ठभूमि में रही है पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण विश्वास, पूर्ण समर्पण और दृढ़ संकल्प। (इसी पुस्तक से)

प्रायः लोग उत्सुकता वश पूछते हैं– आपकी पुस्तकों को पढ़ने से ऐसा लगता है कि आपकी आयु बहुत अधिक होगी। सिद्धियाँ भी होगी आपके पास? आपकी लेखन शैली मन को मोह लेती है। प्रस्तुतिकरण आत्मा को छू लेता है जैसे।

काल का प्रवाह अनन्त है। मैं हर युग में रहा हूँ। मेरा अस्तित्व किसी न किसी रूप में हर समय में और हर अवस्था में रहा है इसलिए आयु का लेखा–जोखा मेरे लिए नगण्य है। कोई महत्व नहीं रखता। मृत्यु मेरे

लिए एक प्राकृतिक घटना है। वह मेरे शरीर को बदल देगी लेकिन मुझे और मेरे अस्तित्व को नहीं। लेखन शैली और प्रस्तुतिकरण के संबंध में बस, इतना ही कहना पर्याप्त है कि मैं शब्द नहीं लिखता हूँ। अपना स्वयं का अनुभव लिखता हूँ। मेरे जीवन कर हर क्षण अनुभव से गुजरता है। मेरे जीवन का हर क्षण अनुभव है। हर क्षण मूल्यवान है। हर क्षण को कर्म में नियोजित करता हूँ। मेरी खोज अस्तित्ववादी खोज है और मेरी खोज दृष्टि में मृत्यु क्या है? जीवन क्या है? आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? मोक्ष क्या है? मुक्ति क्या है? पाप पुण्य क्या है? ये सब दार्शनिक चिन्तन का विषय नहीं हैं, मनन का विषय नहीं है अनुभव का विषय है। जो लोग इन विषयों पर विचार करते हैं। चिन्तन मनन करते हैं। पुस्तकें लिखते हैं और देते हैं प्रवचन– वे सब व्यर्थ है। उनका कोई मूल्य और महत्व नहीं उनका फल भी कोई नहीं और परिणाम भी कुछ नहीं और न तो कोई लाभ भी। जो लोग इन विषयों पर विचार करते हैं तो करते रहें। जन्म–जन्मान्तर तक करते रहें। कोई भी और कुछ भी ज्ञान प्राप्त होने वाला नहीं। जन्म–मृत्यु पुनर्जन्म मुक्ति–मोक्ष, आदि सब सदैव के लिए शब्द ही बने रहेंगे। कभी नहीं बन सकेंगे अनुभव। फिर विचार करके करेंगे भला क्या? विचार तो उनके संबंध में किया जाता है, जिसे हम जानते हों। लेकिन जो अज्ञात है, उसके संबंध में कोई विचार नहीं हो सकता। हम उसी विषय पर सोच–विचार कर सकते हैं। जिसे हम जानते हैं और समझते भी हैं। क्या हम कभी यह सोच सकते हैं, जिसे हम जानते तक नहीं। सोचेंगे भला कैसे? उसकी कल्पना भी कैसे करेंगे हम? विचार को छोड़िए, कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसकी धारणा भी कैसे हो सकती है? जिसे जानते तक नहीं हैं हम। इसलिए शुरू से लेकर अबतक धार्मिकों ने और दार्शनिकों ने इन सब विषयों के संबंध में जो कुछ भी लिखा है और कहा है। उनका न कोई मूल्य है और न तो महत्व ही है क्योंकि उन लोगों ने जो कुछ लिखा है और कहा है– वह सब सोच–सोच कर और अनुमान लगा कर लिखा और बोला है। सब कुछ सोच और अनुमान पर निर्भर है उनका दार्शनिक और आध्यात्मिक ज्ञान। सोच और अनुमान पर तो लिखने और बोलने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। इन समस्त विषयों पर योग ने जो कुछ भी लिखा है, वह सब अनुभवों पर आधारित है। उसके अतिरिक्त जो कुछ भी है, वह सब

शब्दों का मायाजाल है। विचारों का हेर फेर है और है कोरा काल्पनिक क्योंकि जो योग कहता है, वह जीवन का अनुभव है। हम सब लोग विचारों में जीवित हैं अनुभव में नहीं। अनुभव में जीता है केवल योगी।

'योग' में जीना एक कला है और वह कला यह है कि संसार समाज और परिवार से अपने आपको भौतिक दृष्टि से पूर्णरूप से अलग कर लीजिए और अपने आपसे जुड़ जाइये। यह भी मेरी सफलता का एक महत्वपूर्ण रहस्य है। जीवन के प्रारम्भ काल में ही अपने आपको अलग कर लिया। न भीतर से कोई नाता रिश्ता और न तो बाहर से ही और जुड़ गया अपने आपसे और अपनी आत्मा से। न मैं संसार का हूँ और न तो संसार ही मेरा है। वैसे यदि देखा जाय तो मानव जीवन है ही क्या? जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त की सारी कथा, चिन्ता की, दुख की, कष्ट की, पीड़ा की और रोने कलपने की कथा है। जीवन की लम्बी यात्रा में एक पल के लिए भी न आनन्द उपलब्ध होता है और न तो सुख ही। उसकी एक झलक भी नहीं मिलती जीवन में। हमारा सारा का सारा जीवन दुंख कष्ट पीड़ा व्यथा और तमाम चिन्ताओं की कथा बनकर रह जाता है। इसके अलावा और कुछ नहीं, अन्त में मृत्यु सामने आ जाता है और उसका समापन हो जाता है उसकी गोद में। मेरी भी जीवन कथा ऐसी ही हो– यह मैं नहीं चाहता था। मैं स्वयं लिखना चाहता था अपनी कथा और बन्धु लिखी भी। जो व्यक्ति संसार के संघर्ष के बीच तटस्थ हो और हो शान्त। जो व्यक्ति जीवन के सारे उपद्रव के बीच तटस्थ हो निर्विकार हो अनाशक्त हो और हो निर्लिप्त। वह व्यक्ति क्या साधारण हो सकता है? कदापि नहीं। ऐसा जलकमलवत् व्यक्ति एक परमयोगी के अतिरिक्त भला और कौन हो सकता है। ऐसी ही है मेरी जीवन कथा। राग द्वेष, घृणा, प्रेम, क्रोध, कामना–वासना, भोग–विलास दुःख, कष्ट, पीड़ा, व्यथा, आघात, व्याघात, योग, ध्यान, जप, तप, पूजा अर्चना आदि सभी को समग्रता से स्वीकार किया है मैंने और समग्र भाव, मेरा जीवन है और है मेरी जीवन कथा। इस प्रकार जो समग्र भाव से संसार में रहता है उसी की आत्मा पवित्र समझी जाती है और जिसकी आत्मा पवित्र है, वही परमात्मा के निकट समझा जाता है।

अनेक प्रबुद्ध पाठकों ने योग के संबंध में अपनी जिज्ञासा प्रकट की है। सम्भवतः योग संबंधी पुस्तकों को पढ़कर और सन्त महात्माओं के

प्रवचन सुन कर उनके मन में योग के प्रति कौतूहल जागृत हुआ है और उत्पन्न हुई है जिज्ञासा। जहां तक अपना विचार है और है अपनी धारणा। उसके अनुसार योग दो प्रकार का है– बहिर चेतना योग और आन्तर चेतना योग। पहले योग का संबंध चेतन मन से और दूसरे योग का संबंध अवचेतन मन से है। योग जन्य जितनी दुर्लभ आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय चमत्कारपूर्ण सिद्धियाँ हैं वे सब आन्तर चेतना योग की सम्पत्ति है। शुरू से लेकर अबतक मैं जितने योगी साधकों और संत महात्माओं से मिला और सत्संग लाभ किया– वे सभी आन्तर चेतना योग को उपलब्ध दिव्य महापुरुष थे। उनमें कुछ ऐसे भी थे जो विदेही थे और उनसे मेरा विचार सम्प्रेषण द्वारा बराबर सम्पर्क बना रहता था और आज भी है।

आन्तर चेतना योग की एक विशिष्ट उपलब्धि है विचार सम्प्रेषण। इसके द्वारा शरीरी और अशरीरी दोनों प्रकार के व्यक्तित्व में वैचारिक सम्पर्क स्थापित करना सम्भव है। अपनी खोज की दिशा में और प्रायः पुस्तक लेखन के क्षेत्र में विचार सम्प्रेषण सहयोगी सिद्ध हुआ मेरे लिए। भौतिक स्तर पर भी इस योग पद्धति द्वारा सुदूर बैठे किसी भी व्यक्ति के मस्तिष्क के अपने विचारों को सम्प्रेषित कर उसके अनुसार कार्य लिखा जा सकता है।

आन्तर चेतना योग की यह आश्चर्यजनक क्रिया को अब वैज्ञानिक मान्यता भी प्राप्त हो चुकी है जिसे वह परामनोविज्ञान कहता है।

अपोलो–14 की चन्द्र यात्रा के सिलसिले में एक अन्तरिक्ष यात्री एडगर मिशेल ने एक प्रयोग किया था। एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार उन्होंने पूर्व निश्चित समय पर अपने सामने 25 चिन्हांकित कार्ड रखे और उन्हें एक–एक कर उठाना शुरू किया। ठीक उसी समय पृथ्वी पर उनके चार साथियों ने यह अनुमान लगाना आरम्भ किया कि मिशेल के कार्डों का क्रम क्या है और उन पर कौन–कौन से प्रतीक चिन्ह अंकित हैं ? सब अलग–अलग अनुमान लगा रहे थे। बाद में ज्ञात हुआ कि चार में दो के अनुमान सौ फीसदी सही मिले। गणितीय सम्भावना के अनुसार ये परिणाम आश्चर्यजनक थे। रूस के अन्तरिक्ष यात्रियों ने भी अपनी एक अन्तरिक्ष यात्रा के सिलसिले में विचार संप्रेषण का एक ऐसा ही प्रयोग किया था। उसका पूरा विवरण उपलब्ध नहीं है पर वह

भी मिशेल के प्रयोग के समान ही था और सफल भी हुआ था ऐसा विश्वास है।

15 अगस्त 1963 को अमेरिका के टोरंटो टेलीविजन स्टूडियो में 49 वर्ष के एक ट्रक ड्राइवर थियोडर सेरीओस को लाया गया एक वैज्ञानिक प्रयोग के लिए और अनेक गणमान्य वैज्ञानिकों की उपस्थिति में उनके हाथ में एक बिल्कुल नया कैमरा (पोलो रायड) दिया गया। सेरीओस ने कैमरे के लेंस को अपने मस्तिष्क से एक फीट की दूरी पर रखकर एक मिनट तक घूरा और फिर शटर दबा दिया।

भौतिकी नियमों के अनुसार फोटो तो आना चाहिए था सेरीओस के सिर का, पर फोटो आया एक किलेनुमा इमारत का। कैमरे को घूरते समय सेरीओस ने उसी इमारत की कल्पना अपने मस्तिष्क में की थी। एक अन्य प्रयोग में उसने ताजमहल पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और कैमरे में आया ताजमहल का फोटो।

सेरीओस पर अमेरिका के कोलरेडो विश्वविद्यालय के डॉ. आइस ने लगातार दो वर्षों तक वैज्ञानिक प्रयोग किये। फोटो लेते समय कभी उसकी आँखों पर पट्टी बांधी गयी और कभी फैराडे कक्ष जहाँ न रेडियों तरंगे प्रवेश कर सकती हैं और न इलेक्ट्रोमैग्नेटिक यानी विद्युत चुम्बकीय। निस्सरण हाल में बैठाया गया लेकिन हर बार उन्हीं स्थानों के चित्र, फिल्म पर अंकित हुए जिनकी कल्पना शटर दबाने के पूर्व सेरीओस ने की थी।

परामनोविज्ञान से संबंधित ये दोनों घटनाएँ निःसन्देह वर्तमान युग में आश्चर्यजनक और कौतूहलपूर्ण प्रतीत होती हैं लेकिन भारतीय योग विज्ञान के लिए ये कोई नयी बात नहीं है। योगविज्ञान इन्हें "विचार सम्प्रेषण" क्रिया कहता है जो विशेष कठिन नहीं है पर है श्रमसाध्य। योग के अनुसार मनःशक्ति, इच्छाशक्ति और विचारशक्ति भले ही तीनों बाहर से भिन्न–भिन्न प्रतीत होती हों लेकिन तीनों का मूलस्रोत एक ही है और वह है मस्तिष्क की करोड़ों कोशिकाओं से उत्पन्न होने वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगे। वे तरंगे मस्तिष्क में कहाँ से आती है, भले ही इसका उत्तर जानने में वैज्ञानिक असमर्थ हों लेकिन योगविज्ञान ने हजारों वर्ष पूर्व उत्तर प्राप्त कर लिया था अपनी अन्तश्चेतना द्वारा। सूर्य की विभिन्न प्रकार की रश्मियां ही उन तरंगों की जननी हैं इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। लोगों को यह जानकर आश्चर्य

होगा कि सूर्य रश्मियों में चौबीस रंग होते हैं जो अपने आप में मौलिक हैं, मिश्रित नहीं। हमारी नेत्रीन्द्रियों की अपनी सीमा है अन्य इन्द्रियों की तरह। वे अपनी सीमा में आने वाले रंगों को पहचान सकती है और समझ भी सकती है। सूर्य रश्मियों के रंग आपस में इतने घुले मिले रहते हैं कि उनके मौलिक रूपों को पहचानना अत्यन्त कठिन ही नहीं असम्भव कार्य है लेकिन एक परम उच्चावस्था प्राप्त योगी के लिए यह असम्भव नहीं। उनकी घनी लम्बी–लम्बी जटायें उन रश्मियों को पकड़ती हैं और उनकी मस्तिष्क कोशिकाएँ उनके भिन्न–भिन्न रंगों को पहचानती हैं और उसी के अनुसार उन्हें आत्मसात भी करती हैं अपने आप में।

महाभारत काल के पूर्व तक मनुष्य के नेत्र केवल तीन ही रंगों को जानते पहचानते थे। बाद में शनैः–शनैः नेत्र कर्णिकाओं की क्षमता बढ़ती गयी और उसी के अनुसार अन्य मौलिक रंगों को देखने समझने की शक्ति भी बढ़ती गयी उनकी। वर्तमान में केवल सात रंग जो अपने आपमें मौलिक हैं नेत्र देख सकने में समर्थ हैं।

सूर्य की रश्मियों के कुछ रंग विचारशक्ति के रंग होते हैं, कुछ मनःशक्ति के रंग होते हैं तो कुछ होते हैं इच्छाशक्ति के रंग। महापुरुषों, दिव्यपुरुषों अथवा परमयोगियों के प्रभामण्डल उन्हीं रंगों से निर्मित होते हैं। हम यह नहीं कहते हैं कि साधारण लोगों में प्रभामण्डल नहीं होते, उनमें भी होते हैं जिनको समझना सबके वश की बात नहीं। कोई–कोई व्यक्ति ही उसे पहचान कर उसके विषय में बतला सकता है कि जिसका वह प्रभामण्डल है उसका व्यक्तित्व और संस्कार कैसा है और कैसा है उसका चरित्र क्योंकि मनुष्य का प्रभामण्डल ही एक ऐसी वस्तु है जो उसके आन्तरिक स्वरूप को अभिव्यक्त करने में समर्थ है पूर्णरूपेण।

हम इसी प्रसंग में आगे एक ऐसे लड़के की चर्चा करेंगे जो संस्कारवश प्रभामण्डल को देख सकता था और उसके विषय में बतला भी सकता था। अब हम प्रसंग के अनुसार प्रभामण्डल के विषय में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से चर्चा करेंगे। प्रभामण्डल को देखकर किसी व्यक्ति विशेष के चारित्रिक गुण–अवगुण, स्वभाव, विचारधारा, संस्कार आदि का ज्ञान तो होता ही है। इसके अतिरिक्त उसकी मानसिक स्थिति और दैहिक दुर्बलताओं और व्याधियों का भी पता चल जाता है किन्तु इसके लिए दीर्घ साधना और सूक्ष्मदृष्टि की अत्यन्त आवश्यकता है जिनकी सहायता से प्रभामण्डल

से विकीर्ण होने वाली अदृश्य तरंगों को देखा जा सके। भारत की पारम्परिक योगविद्या के अनुसार केवल मानव मन में ही नहीं बल्कि प्रत्येक जीवनधारी तथा हरे पौधों और वृक्षों में भी परा ऊर्जा की ऐसी किरणों को देखा जा सकता है। व्यक्ति अथवा किसी जीवन विशेष की स्थितियों में परिवर्तन के अनुसार ही प्रभामण्डल की आकृति और रंगों में भी परिवर्तन आता है। तदनुसार स्पष्ट रूप से यह तथ्यगत कथन है कि प्रत्येक जीवधारी का अपना एक अलग प्रभामण्डल होता है और वास्तविक रूप में वही उसका सही पहचान पत्र है। जिसके द्वारा उसकी समग्र परिस्थिति का समुचित सत्यापन किया जा सकता है।

वैज्ञानिक अनुसंधान- फ्रांस, जर्मनी और ब्रिटेन के अलावा रूस ने वैज्ञानिक अनुसंधान के इस क्षेत्र में काफी रूचि ली है। इन वैज्ञानिकों ने किसी दैविक सिद्धान्त की ओर कोई ध्यान न देकर भौतिकी और रासायनिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण आरम्भ किया। इस दिशा में जर्मन के भौतिक वैज्ञानिकों के अलावा रूस के किलोरियम बन्धुओं को प्रारम्भिक सफलता मिली। अपने प्रयोगों के दौरान इन्होंने सूक्ष्मदर्शी यंत्रों और तीव्र गति वाले कैमरे से पौधों और हरी पत्तियों के अनेक चित्रों का तुलनात्मक अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि पौधे में लगे हरे पत्तों की आभा उस पौधे को काट देने से या पत्तों को तोड़ लेने से बदलने लगती है।

अपने ऐसे प्रयोगों के दौरान रूसी बन्धुओं ने पौधे के अलावा ईंट पत्थर और निर्जीव वस्तुओं का भी चित्र विश्लेषण किया। उसके अनुसार सभी कठोर और निर्जीव वस्तुओं में भी आभा की पतली पर्त होती है किन्तु वह अतिमन्द और सूक्ष्म होती है। जबकि पौधों और अन्य जीवधारियों का आभालय तेज और रंगीन किरणों से उद्भासित होता रहता है। मूल से पौधों को तोड़कर अलग लिए गये पत्तों के अध्ययन से कई महत्वपूर्ण बातों का पता चला है। चित्रों के विश्लेषण से यह बात मालूम हुई कि पत्तों को मुरझाने के साथ ही, चार पांच घंटे बाद उसका प्रभामण्डल मन्द होकर समाप्त हो जाता है। इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि प्रभा-- मण्डल का जीवन शक्ति से विशेष संबंध है। मनुष्य में भी मृत्यु के समय धूमिल होकर बाद में मृत शरीर का प्रभामण्डल क्षीण होता हुआ धीरे-- धीरे समाप्त हो जाता है लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि मृत्यु के

साथ ही प्रभामण्डल तुरन्त समाप्त नहीं होता है कुछ देर तक उसका अस्तित्व बना रहता है।

भारत के समर्थ वैज्ञानिक इस क्षेत्र में काफी समय से प्रयत्नशील रहे हैं। तथ्यपरक वैज्ञानिक प्रयोगों के अलावा साधु–सन्तों और सिद्ध–साधकों की शक्ति और तद्विषयक क्षमता का अध्ययन किया जाता रहा है। जीवधारियों में भौतिक परिवर्तन और विकिरण की स्थितियों के बारे में दिल्ली स्थित आयुर्विज्ञान संस्थान, भौतिक प्रयोगशाला जयपुर का परामनोविज्ञान विभाग और मुम्बई, कलकत्ता और बंगलोर के अनेक अनुसन्धान केन्द्रों ने काफी सामग्री एकत्र की है। भारत के अनुसंधान का इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान मद्रास के सरकारी अस्पताल में कार्यरत डॉ. नरेन्द्रन का है। इन्होंने स्वयं ऐसा कैमरा तैयार किया है जिसके द्वारा शरीर के किसी भी अंग का चित्रात्मक स्वरूप और उसको आभा सहित प्रदर्शित किया जा सकता है। चित्र लेने की यह प्रक्रिया विशिष्ट होते हुए भी फोटोग्राफी के सामान्य स्थिति पर ही आधारित है। प्रभामण्डल द्वारा न केवल वर्तमान और अतीत के रोगों का पता चलता है बल्कि कई मामलों में समय से पहले ही होने वाले भयंकर रोगों का आभास भी मिल जाता है।

भारत में प्राचीनकाल से ही देवी-देवताओं और सिद्ध, महापुरुषों की छवि के साथ-साथ चक्राकार प्रभामण्डल प्रदर्शित किया जाता रहा है। इनके चित्रों को और उसमें प्रभामण्डल को देखकर सामान्यतः लोग यही समझते हैं कि यह उनकी शोभा के लिए और काल्पनिक रूप से महत्ता बताने के लिए दिया गया है। यह भी कहा जाता है कि सन्त-महात्माओं और सिद्ध योगियों के पास जाते ही वे एक ही नजर में लोगों को पहचान लेते हैं तथा बाधा व्याधियों के बारे में सही-सही जानकारी देते हैं। सिद्ध पुरुषों के ऐसे चमत्कारी प्रभाव से विद्वान और वैज्ञानिक अछूते नहीं रहे हैं। साधु-सन्तों के द्वारा प्रदर्शित ऐसी चमत्कारी घटनाओं को कुछ लोग धार्मिक पाखण्ड और अन्धविश्वास कहकर टाल दिया करते हैं लेकिन विभिन्न संस्थाओं द्वारा किये जा रहे अनुसंधानों के परिणामस्वरूप अब ऐसे तथ्य सामने आने लगे हैं जिनके द्वारा योगविद्या और योगियों द्वारा प्रभामण्डल दर्शन के विवरण वैज्ञानिक रूप में सही माने जा सकते हैं। -लेखक

मनोचिकित्सक डॉ. नरेन्द्रन की आस्था परम्परागत भारतीय योग विद्या में भी रही है। उन्होंने अपने विषय की पुष्टि के लिए हिमालय स्थित

कई योगियों के प्रभामण्डल का चित्र उतारा। जिनके प्रभामण्डल अत्यन्त स्पष्ट तेजोमय लाल, पीताभ किरणों से युक्त पाये गये। उसी समय मेरा भी परिचय डॉ. नरेन्द्रन से कनखल (हरिद्वार) में हुआ था। उस समय उन्होंने एक योगी का ऐसा फोटोग्राफ लिया था जिसका पूरा शरीर प्रभामण्डल से युक्त था। वह प्रभामण्डल अण्डाकार था और मोर के पंख के रंग जैसा था।

मनुष्य का प्रभामण्डल जिस बायोइलेक्ट्रिक मैगैनिक एनर्जी की चर्चा हमने की है उसी से प्रभामण्डल का निर्माण होता है। उसमें विद्युत चुम्बकीय तत्व होने के कारण लोग प्रभामण्डल की ओर स्वतः आकर्षित होने लग जाते हैं। इस पर हम वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करेंगे।

मनुष्य के शरीर से दो तरह की आभा निकलती है पहली भौतिक आभा, दूसरी मानसिक आभा। शरीर से चिपकी हुई रंगों की पट्टी भौतिक आभा है, जो शरीर की बाह्य दशा, भौतिक स्थिति, ऊर्जा एवं स्वास्थ्य आदि को प्रदर्शित करती है। इसका बाहरी रंग आवरण, मानसिक आभा को दर्शाता है, जो मस्तिष्क की दशा तथा आन्तरिक मनोभावनाओं को दर्शाता है। हमारी आभा में भी अनेक रंग होते हैं। इनमें इन्द्रधनुषी सात रंग प्रधान हैं। ये रंग शरीर के विभिन्न मनोभावों को प्रतिबिम्बित करते हैं। आभामण्डल के विभिन्न रंगों का प्रभाव निम्नानुसार है–

योग के द्वारा आभा की वृद्धि की जा सकती है। प्राचीन ऋषि–मुनि साधना के माध्यम से अपनी आभा का प्रभाव क्षेत्र व्यापक कर लेते थे। अच्छा स्वस्थ्य, अच्छी आभा का प्रतिबिम्ब होता है। आभा के रंग मनुष्य की वास्तविक शारीरिक एवं मानसिक दशाओं को दर्शाते हैं। अस्वस्थता की स्थिति में आभा के रंग में अस्थायी परिवर्तन आ जाता है। इन रंगों को देख परख कर व्यक्ति का उपचार किया जा सकता है। आभामण्डल के रंगों को देख मानव शरीर में निकट भविष्य में होने वाले विभिन्न रोगों का काफी समय पहले पता लगाया जा सकता है। आभा क्षेत्र के अध्ययन और विकास से शरीर चिकित्सा विज्ञान को मानव शरीर में झांकने का एक और मार्ग प्राप्त हो गया है। पश्चिमी जगत में आभा के अध्ययन से बड़े–बड़े रोगों का निदान किया जा सकता है। आभा को पहचान कर व्यवसाय अथवा कार्यक्षेत्र का चयन करना लाभकारी हो सकता है।

[redacted] आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक तकनीक है, जिसके द्वारा आभामण्डल का चित्र लेना संभव हो गया है। इस तकनीक को सन् 1939 में रूस के एक शोधकर्ता सैग्योन ईवीकोविच किरलियन ने विद्युत विसर्जन के सिद्धान्त पर विकसित किया। अगर किसी वस्तु को भूमि से जोड़कर एक उच्च आवृत्ति वाले इलेक्ट्रोड के विद्युत क्षेत्र में रख दिया जाता है तो इसमें विद्युत प्रवाहित होने के पश्चात् दोनों के मध्य में स्थापित फोटो फिल्म पर वस्तु के आसपास फैले आभामण्डल का चित्र आ जाता है। किरलियन फोटोग्राफी के प्रयोग से रोग के साथ–साथ मनुष्य की भौतिक बुराईयों का भी उपचार सम्भव है। इस तकनीक द्वारा मानव शरीर में निकट भविष्य में होने वाले विभिन्न रोगों का काफी समय पहले पता लगाया जा सकता है। यह तकनीक विश्व के कई देश जैसे– अमेरिका, जर्मनी, इटली, ब्राजील, ब्रिटेन आदि में प्रयोग में लायी जाने लगी है। भारत में भी मुम्बई में इस तकनीक का विकास किया गया। मुम्बई के एक क्लीनिक में इस तकनीक से रोगों की पहचान तथा उपचार की प्रगति देखने की व्यवस्था है। किरलियन फोटोग्राफी द्वारा किये गये आभा के चित्र का विश्लेषण कर शरीर के रोगों जैसे कैंसर, पक्षाघात, मधुमेह, हृदयाघात आदि की स्थिति वास्तव में प्रगट होने के कई मास पूर्व ज्ञात कर समय रहते इनका उपचार भी किया जाता है। प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि प्रत्येक जीवित प्राणी के मस्तिष्क के न्यूरॉन विभिन्न आवृत्ति एवं कला की विद्युत चुम्बकीय तरंगे उत्पन्न करते हैं। ये न्यूरॉन वातावरण में व्याप्त और ब्रह्माण्ड से प्राप्त विद्युत चुम्बकीय और अन्य प्रकार की ऊर्जा को ग्रहण कर उसका आभावर्धन करने की क्षमता भी रखते हैं। इन दोनों प्रकार की शक्तियों के कारण मनुष्य के चारो ओर एक आभामण्डल का निर्माण होता है, जो विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न–भिन्न तीव्रता का होता है। उचित अभ्यास से स्वयं की तथा दूसरों की आभा देखी जा सकती है।

सारांश में कहा जा सकता है कि आभा के विकास से हम व्यक्तित्व विकास के उच्चतम् स्तर को स्पर्श कर सकते हैं, जिससे मानव जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ सकता है।

यह हुआ वैज्ञानिक दृष्टिकोण। अब हम योग और तंत्र की दृष्टि से संक्षिप्त में विचार करेंगे प्रभामण्डल पर। ध्यानयोग एक ऐसा साधन है

जिसके द्वारा प्रभामण्डल का विकास सम्भव है। ध्यानावस्था में जब मनःशक्ति और प्राणशक्ति का संयोग होता है तो उस अवस्था में शरीर के मस्तिष्क केन्द्र, हृदय केन्द्र और नाभि केन्द्र इन तीनों महत्वपूर्ण केन्द्रों में बॉयो इलेक्ट्रिक मैग्नेटिक एनर्जी उत्पन्न होने लग जाती है। जिसे हम विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा कह सकते हैं। स्पष्ट है यह महत्वपूर्ण ऊर्जा उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव की तरंगों के संघात से उत्पन्न होती है। कहने की आवश्यकता नहीं, तीनों केन्द्रों की ऊजाएँ मिलकर प्रभामण्डल को जन्म देती है लेकिन तभी जब हम पश्चिम मुख बैठकर ध्यान का अभ्यास करेंगे और उसकी गहरायी में प्रवेश करेंगे। जब पश्चिम दिशा की ओर मुख कर बैठेंगे तो हमारी बायीं ओर दक्षिण दिशा और दाहिनी ओर उत्तर दिशा होगी। फलस्वरूप दक्षिणी ध्रुव की विद्युत चुम्बकीय तरंगे हमारे बायीं ओर से टकराकर शरीर के भीतर प्रवेश करेंगी और इसी प्रकार प्रवेश करेंगी उत्तरी ध्रुव की विद्युत चुम्बकीय तरंगे हमारी दाहिनी ओर से टकराकर शरीर में। किसी भी प्रकार की विद्युत तरंगे क्यों न हो। उनका एक स्वाभाविक गुण है पृथ्वी की ओर आकर्षित होकर उसमें विलीन हो जाना। इससे बचने के लिए ध्यान के समय काष्ठ के तख्त पर कम्बल का आसन बिछाकर बैठना चाहिए। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि विद्युत तरंगे पृथ्वी में प्रवेश न कर सकेंगी और मन शीघ्र स्थिर होने लगेगा।

मन और प्राण- ये दोनों ऐसे तत्व हैं जो स्वयं ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। दोनों की अपनी–अपनी तरंगे हैं जो स्वयं एक विशेष प्रकार की विद्युत उत्पन्न करती हैं। पुरुष का मन धनात्मक ऊर्जा और प्राण ऋणात्मक ऊर्जा उत्पन्न करता है। इसी प्रकार स्त्री का मन ऋणात्मक ऊर्जा और प्राण धनात्मक ऊर्जा करता है उत्पन्न। योग तंत्र में इसका भारी महत्व है। कुँवारे स्त्री और पुरुष में दोनों प्रकार की ऊर्जाओं की मात्रा अधिक से अधिक होती है। विवाहोपरान्त मात्रा धीरे–धीरे कम होने लगती है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो योगतांत्रिक साधना भूमि में इन ऊर्जाओं के सहयोग से साधक अपने गन्तव्य पर होता है अग्रसर।

पुरुष की बायीं ओर यदि स्त्री बैठती है तो दोनों के मन और प्राण की धनात्मक और ऋणात्मक ऊर्जाएँ आपस में मिलकर एक विशेष प्रकार की विद्युत चुम्बकीय वृत्त का निर्माण करती हैं। वह वृत्त इसलिए महत्वपूर्ण

होता है कि उसकी सहायता से दक्षिणी और उत्तरी ध्रुव से विकीर्ण होने वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगे ब्रह्माण्ड में विचरण करने वाली दिव्य शक्तियों को साधक की ओर आकर्षित करती हैं जो साधक में दिव्य सिद्धियों के रूप में प्रकाशित होती हैं। योगतांत्रिक साधना भूमि में इस कार्य के लिए प्रयुक्त होने वाली स्त्री को भैरवी कहते हैं। भैरवी को कुवारी होना आवश्यक होता है। 12 वर्ष से 16 वर्ष तक की कन्या सर्वोत्तम मानी गयी है भैरवी के लिए। (इस विषय पर हमने अपने 'तंत्रम्' पुस्तक में विस्तार से प्रकाश डालने का प्रयास किया है।) देवतथ्यों ऋषियों दिव्य महात्माओं और सिद्ध योगियों के अपने–[redacted] के अतिरिक्त [redacted]–गन्धर्व, किन्नर, गण, गुह्यक आदि रजोगुणी अपदेवताओं के भी अपने–अपने प्रभामण्डल होते हैं। जिन सिद्ध साधकों को योग तंत्रपरक प्राणाकर्षणी विद्या और आत्माकर्षणी विद्या का अनुभव गम्य ज्ञान होता है, वे सभी प्रकार के देवताओं और सभी प्रकार के अपदेवताओं के प्रभामण्डल से ही उनके अस्तित्व का बोध कर लेते हैं। प्रभामण्डल का अपना विज्ञान है जो पूर्णरूप से क्रियापरक और साथ ही रहस्यमय भी है। अशरीरी अथवा विदेही आत्माओं से सम्पर्क साधने की दिशा में उनके प्रभामण्डल से ही अत्यधिक सहयोग प्राप्त हुआ मुझे। सिद्ध, सन्त, महात्माओं तथा उच्चकोटि के योगियों से मेरा सम्पर्क सच पूछा जाय तो प्रभामण्डल के द्वारा ही हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि [redacted] और [redacted] का [redacted] होता। वे सभी ज्योतिर्पुञ्ज रूप होते हैं। समयानुसार कोई भी आकार अथवा रूप में अपने अस्तित्व को व्यक्त कर सकने में समर्थ होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर किसी योग्य मानव शरीर में प्रवेश कर अपने किसी भौतिक कार्य को सम्पन्न कर लेते हैं। यदि ऐसा सम्भव न हो सका तो [redacted] को [redacted] ने भौतिक उद्देश्य को पूर्ण कर लिया करते हैं वे।

अब रही अशरीरी विदेही आत्माएं जो कभी संसार में मानव शरीर में रही होती हैं। वे प्रकाशपुञ्ज के रूप में रहती हैं। उस प्रकाशपुञ्ज का अपना प्रभामण्डल भी होता है। कौन अशरीरी विदेही आत्मा किस

श्रेणी की है? किस प्रकार की अभौतिक शक्ति से सम्पन्न है? उसकी गतिविधि क्या है? वह साधक के किस इच्छा को साकार कर सकती है और किस कार्य को सम्पन्न कर सकती है? ये सब बातें तभी ज्ञात होती है जब आत्माकर्षणी विद्या के द्वारा वे साधक के सम्पर्क में आती हैं। (इस विषय पर विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए पढ़े 'परलोक के खुलते रहस्य') और जब सम्पर्क में आती है तो साधक भौतिक अभौतिक और आध्यात्मिक सहयोग उनसे प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है लेकिन सहयोग लेने की अपनी एक विशिष्ट योगतांत्रिक कला है। जो साधक उस कला से भलीभांति परिचित हो जाता है वही लाभान्वित भी होता है। इस प्रसंग पर आगे लिखने के पहले मैं आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि प्रभामण्डल उत्पन्न कहाँ से होता है? सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि जिस स्थूल शरीर से हम परिचित हैं और जिसको हम जन्म लेते हुए, जीते हुए और मरते हुए देखते हैं वही सब कुछ नहीं है। उसके अतिरिक्त दो और मुख्य शरीर हैं भाव शरीर और सूक्ष्म शरीर। मरता है पहला स्थूल शरीर लेकिन अन्य दो शरीर नहीं। मरणोपरान्त आत्मा उन दोनों शरीरों के माध्यम से अपनी यात्रा पूरी करती है।

तीनों शरीर में सूक्ष्म शरीर ही मुख्य है। जैसे पृथ्वी तत्व के अणुओं से स्थूल शरीर की रचना होती है– उसी प्रकार परमाणुओं से सूक्ष्म शरीर की होती है रचना। उन परमाणुओं में पिछले जन्मों के सभी प्रकार के संस्कार रहते हैं। उन अणुओं के विभिन्न रंगों की तरंगे होती हैं। वे तरंगों के रंग ही बतला देते हैं कि व्यक्ति में कौन सा संस्कार अधिक है। जो संस्कार सर्वाधिक होगा। उससे संबंधित तरंगों के रंग का प्रभामण्डल निर्मित होगा। तात्पर्य यह कि वे तरंगे ही विभिन्न रंगों के प्रभामण्डल का निर्माण करती हैं प्रभामण्डल के रंग अत्यन्त गहरे होते हैं। स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर के बीच में भाव शरीर है। भाव शरीर में 'आकार' के रंग थोड़ा हल्के हो जाते हैं। स्थूल शरीर में अभिव्यक्त होते समय थोड़ा और हल्के हो जाते हैं। यह सामान्य बात है लेकिन योगी, सिद्ध साधक और सन्त महात्माओं के प्रभामण्डल के रंग पूर्णरूप से स्थूल शरीर में अभिव्यक्त होते हैं। जिनसे उनकी साधना और तप की गहरायी का ज्ञान स्वतः हो जाता है। इसका कारण यह है कि ऐसे लोग सूक्ष्म शरीर और मनोमय शरीर में रहते हैं और उनके द्वारा ही साधनारत रहते

हैं। यह आपको ज्ञात होना चाहिए कि भारतीय अध्यात्म का विज्ञान अत्यन्त रहस्यमय है। उसे सभी लोग नहीं समझ सकते। उसका कहना है कि साधु संन्यासियों के वस्त्रों का चुनाव और उन वस्त्रों के रंगों का चुनाव सूक्ष्म शरीर के रंगों को देखकर किया गया है। चुनाव अलग–अलग हुए हैं शरीरों की दृष्टि से। सूक्ष्म शरीर का रंग गैरिक है इसलिए कि गैरिक रंग का ही वस्त्र, साधु–संन्यासियों को धारण करने का विधान है। दो वस्त्र नहीं एक ही वस्त्र जिससे ऊपर और नीचे के अंग ढक जाय। बुद्ध ने पीले रंग को महत्व दिया क्योंकि वे सातवें शरीर को उपलब्ध थे। सातवें शरीर को उपलब्ध साधक का जो प्रभामण्डल होता है वह पीले रंग का होता है इसलिए बुद्ध ने अपने और अपने शिष्यों के लिए पीत वस्त्र का चुनाव किया लेकिन उनके इस चुनाव से बौद्ध धर्म का भारत में ठहरना कठिन हो गया। उसके वर्चस्व पर ग्रहण लग गया। इसलिए कि हिन्दू धर्म के अनुसार पीला रंग, मृत्यु से संबंधित है क्योंकि सातवाँ शरीर महामृत्यु है। निर्वाण काया है सातवाँ शरीर।

पीला रंग हमारे मन की गहरायी में मृत्यु का बोध उत्पन्न करता है। लाल रंग, जीवन के बोध को उत्पन्न करता है। गैरिक वस्त्र, वैराग्य का बोधक है। गैरिक वस्त्र धारण करने वाला संन्यासी अत्यधिक आकर्षक सिद्ध होता है बजाय पीत वस्त्रधारी बौद्ध संन्यासियों के। वह जीवन्त लगता है [redacted] का रंग [redacted] है खून के समान लाल। छठा शरीर ब्रह्माण्ड काया है यानि [redacted] सूर्योदय के समय सूर्य का रंग जैसा होता है वैसा ही छठें शरीर को उपलब्ध साधक के प्रभामण्डल का होता है।

अब जैन धर्म को लीजिए। जैन धर्म पांचवें शरीर को महत्व देता है। जैन धर्म की साधना पाँचवें शरीर को उपलब्ध साधक की साधना है। पांचवाँ शरीर आत्मा का शरीर है यानी आत्म शरीर (स्प्रीचुअल वॉड़ी) यहां यह जान लेना आवश्यक है कि कुल सात शरीर हैं। मैंने प्रारम्भ के विषय में आवश्यक समझ कर केवल तीन ही शरीर का उल्लेख किया है। जैन धर्म ने श्वेत वस्त्र को महत्व दिया। श्वेत रंग आत्मा का रंग है। जैन धर्म के लिए परमात्मा का और निर्वाण का कोई महत्व नहीं होता। आत्मा को केवल महत्व देता है वह। आत्मा सर्वोपरि है उसके लिए। महावीर वैज्ञानिक बुद्धि रखते थे। वे उतनी ही दूर तक की बात

करते थे जहां तक का उन्हें अनुभव होता था। किसी प्रकार के रहस्य की चर्चा वे नहीं करते थे। उन्होंने अपने लिए, अपने धर्म के लिए और अपने सम्प्रदाय के लिए श्वेत रंग का चुनाव किया क्योंकि वह पाँचवें शरीर का रंग है और पाचवाँ शरीर आत्मा का शरीर है यानि आत्म शरीर। योग–तंत्र की साधना का प्रारम्भ वस्तुतः सूक्ष्म शरीर से होता है प्रथम और द्वितीय शरीर तो केवल माध्यम है तीसरे शरीर को उपलब्ध होने की दिशा में। सूक्ष्म शरीर को उपलब्ध व्यक्ति तीसरे शरीर में उत्पन्न होने वाले तरंगों के रंगों को अच्छी तरह देखता है और समझता भी है। वास्तव में वे रंग सूक्ष्म शरीर के तरंगों के स्पन्दन के प्रभाव हैं। उच्चकोटि के योगी और साधकगण मनुष्य के स्थूल शरीर को महत्व नहीं देते। महत्व देते हैं उसके सूक्ष्म शरीर को और उसके तरंगों से उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार के रंगों को जिनके द्वारा मनुष्य के आन्तरिक स्वरूप और व्यक्तित्व को तत्काल जान समझ जाते हैं और उसी के अनुसार उसके साथ व्यवहार भी करते हैं वे। इतना ही नहीं उन तरंग वर्णों द्वारा मनुष्य के भूत, वर्तमान और भविष्य का भी ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। वास्तव में आन्तरिक व्यक्तित्व, संस्कार और काल ज्ञान की यह अद्भुत क्षमता, विरले ही किसी व्यक्ति को होता है उपलब्ध।

यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि यह उपलब्धि [illegible] द्वारा प्राप्त तो हुई ही थी लेकिन अशरीरी विदेही आत्माओं से सहयोग लेने की योग–तंत्रपरक, कलापरक मुझे बतलाया रघु स्वामी ने। रघु स्वामी भी हनुमान घाट के बगल वाले घाट, दण्डीघाट के ऊपर एक मढ़िया में रहते थे। कई उच्चकोटि की दिव्यात्माओं से उनका संबंध था। उनका काफी स्नेह था मुझ पर। सतुआ उनको पसन्द था। मैं नित्य सतुआ ले जाता था उनके लिए। जिसे देख खूब प्रसन्न होते थे संन्यासी महाशय और उसी प्रसन्नता के परिणामस्वरूप प्राप्त हुई मुझे वह दुर्लभ कला। जिसकी सहायता से मैं यह जान जाता था कि किस अशरीरी विदेही आत्मा से कौन सा कार्य लिया जा सकता है? किस कार्य में वे सहयोग दे सकती है? उनके सहयोग से कौन सा कार्य कब तक सम्पन्न होगा? वे जो कुछ बतलाती हैं वह कब भौतिक दृष्टि से साकार होगा। इस दिशा में आगे बढ़ने पर मुझे यह भी ज्ञात हो गया कि उन अशरीरी विदेही दिव्य आत्माओं से सात्विक और कुछ सीमा तक राजसी सहयोग

ही लिया जा सकता है तामसिक बिल्कुल नहीं और मुझे यह भी समझते देर न लगी थी कि उन अशरीरी विदेही दिव्य आत्माओं की भी किसी न किसी रूप में भौतिक आवश्यकताएँ हैं। वे अपना सहयोग देकर साधक से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की इच्छा रखती है। उनकी इच्छाओं को कैसे पूर्ण किया जाय? इससे भी परिचित होना आवश्यक था मेरे लिए। यह भी जान गया था कि यदि उनकी आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया गया तो जीवन में किसी न किसी रूप में किसी अनर्थ का सामना करना निश्चित रूप से सम्भव है। अन्त में यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि उस अद्‌भुत 'कला' और उस विलक्षण उपलब्धि का ही परिणाम है मेरी सभी पुस्तकें और जिनमें एक है आपके सामने प्रस्तुत 'आवाहन'। मैं यह तो नहीं कहूँगा कि अनर्थों का सामना करना नहीं पड़ा है मुझे। कई अनर्थ घटित हुए हैं मेरे जीवन में। लेकिन फिर भी मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि उन अशरीरी विदेही दिव्य आत्माओं की सहयोगात्मक अनुकम्पा मुझ पर आज भी है और जीवनपर्यन्त रहेगी भी, इसमें सन्देह नहीं।

आपका अपना
अरुण कुमार शर्मा

आगम निगम संस्थान
बी. 5/23 अवधगर्वी
हरिश्चन्द्र रोड, वाराणसी–1 (उ.प्र.)
दूरभाष : 2277093

प्रथम आवाहन
रहस्यमय दर्पण

जीवन के विधान में ही मृत्यु का स्थान बना हुआ है। यह मानव जाति तब से जानती है जब से उसने मृत्यु को एक घटना के रूप में देखा होगा। समस्त प्राणी जगत मृत्यु के मार्ग से एक न एक दिन गुजरता है। उसकी प्रचण्ड यातना को सहन करना पड़ता है लेकिन यह मनुष्य का विशेषाधिकार है कि उसे अपने अनुभवों को एक सन्दर्भ में रखने की बौद्धिक क्षमता प्रदान की गयी है इसलिए मृत्यु उसके लिए एक घटना ही नहीं एक प्रत्यय भी है। शायद यह भी कहा जा सकता है कि उसने यह क्षमता अपनी कुछ बुनियादी शक्तियों का प्रयोग और विकास करते हुए प्राप्त की हुई है। कोई चीज जितनी भयावह होती है मनुष्य के स्मृति में उसके लिए उतना ही गहरा स्थान होता है इसलिए हमारी भाषा में मृत्यु से अधिक कारूणिक कोई शब्द नहीं है। मृत्यु अर्थात एक व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण संहार जिसके बाद कुछ भी शेष नहीं रहता। तभी तो सभी समुदायों में हत्या को सबसे बड़ा अपराध माना गया है और उसके लिए कठोरतम सजा का प्रावधान किया गया है। फिर भी क्या बात है कि जबतक शरीर स्वस्थ है और उस स्वस्थ शरीर द्वारा जीवन का आनन्द लेने की क्षमता बनी हुई होती है, तबतक हम मृत्यु को याद नहीं करते। मृत्यु के संबंध में कुछ सोचते विचारते भी नहीं और मृत्यु क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर पाने का भी प्रयास नहीं करते। शायद इसलिए कि इसके बिना जीवन का आनन्द लेना ही सम्भव न हो। फिर भी यह समस्या इतनी जटिल है क्योंकि यह ज्ञान, अनुभव तथा स्मृति के साथ ऐसी धोखाधड़ी है कि युधिष्ठिर को यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देते हुए संसार में सबसे बड़े आश्चर्य की बात यही लगी थी। आज हम वैज्ञानिकों और परामनोवैज्ञानिकों के अनवरत प्रयास के

फलस्वरूप मृत्यु से संबंधित अनेक रहस्यों से परिचित हो चुके हैं। फिर भी यह दावा नहीं कर सकते कि हमने मृत्यु के विधान को समझ लिया है, क्योंकि इसे समझने में ही सम्भवतः इस समस्या का समाधान छिपा हुआ है। हम यह भी जानते हैं कि मृत्यु के बाद भी जीवन की सम्भावना बनी रहती है इसलिए सृष्टि हमारे लिये एक ऐसे सर्प की तरह है जिसकी पूँछ घूमकर उसके मुख से लगी हुई है और इसलिए सृष्टि की हमारी अवधारणा चक्राकार है यानी जीवन और मृत्यु एक महाचक्र के भीतर अवस्थित एक छोटा सा चक्र है। 'हम' जिसका विषय हैं नियन्ता नहीं हैं और यही कारण है कि विचार के स्तर पर मृत्यु को दार्शनिक उदासीनता के साथ स्वीकार करते हुए हमें कोई दुविधा नहीं होती। इसी बिन्दु पर हमें एक ऐसे महासत्य का दर्शन होता है, जिसके आगे हम सभी अपने को निरूपाय पाते हैं।

यदि मृत्यु के बाद जीवन की सम्भावना है तो आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करना पड़ेगा। जहाँ आत्मा का अस्तित्व है वहां जीवन अवश्य है। यदि मरणोपरान्त आत्मा का अस्तित्व है तो वहां जीवन अवश्य होगा, भले ही उसका रूप कुछ और हो।

बाल्यावस्था से ही आत्मा के प्रति प्रबल जिज्ञासु रहा हूँ मैं। बगल में ही हरिश्चन्द्र घाट का महाश्मशान है। कभी–कभी घण्टों श्मशान घाट की टूटी–फूटी और धूल से अटी सीढ़ियों पर बैठकर गाल पर हाथ धरे सामने धधकती हुई चिता को जलते हुए देखता रहता था मैं। उसी समय मन में आत्मा संबंधी विचार उठते और उत्पन्न होती तरह–तरह की जिज्ञासाएँ भी और फिर मेरे जीवन में एक ऐसी घटना घटी जिसके फलस्वरूप आत्मा के अस्तित्व को पूर्णरूप से स्वीकार करना पड़ा मुझे। सच पूछा जाय तो मे[redacted] और [redacted]घटना का परिणाम है। यदि वह विलक्षण और अविश्वसनीय घटना न घटी होती तो उपर्युक्त दोनों पुस्तकों का अस्तित्व भी न होता पुस्तक जगत में।

उस समय मेरी आयु यही रही होगी [redacted] के लगभग। मेरे [redacted] थे। स्वयं उनका भी जीवन संन्यासियों

जैसा ही था। सम्भवतः इसी कारण साधु–संन्यासियों के प्रति उनके मन में आकर्षण रहा होगा। प्रायः नित्य ही दो चार साधु–संन्यासी उनसे मिलने के लिए चले आया करते थे घर पर। सभी को दादाजी प्रेम से भोजन कराते और वस्त्र देते। इस कार्य में उन्हें बड़ी ही शान्ति मिलती, प्रसन्न भी होते खूब, लगता था जैसे राजसूय यज्ञ का पुण्य प्राप्त हो गया हो उन्हें।

क्या वह आत्मा का आवाहन था ? सावन का महीना था, पानी बरस रहा था, दुपहरी ढल चुकी थी। उसी समय एक युवा साधु पानी में भींगता हुआ आ गया दरवाजे पर घर पर कोई नहीं था। दादाजी गांव गये हुये थे। उस समय मैं था और मेरा एक मित्र था प्रभाकर। साधु सांवले रंग का था। आयु तीस–पैंतीस के लगभग रही होगी। लम्बी–चौड़ी काठी का शरीर, घनी दाढ़ी मूंछे और सिर पर काले घने घुंघराले बाल। बड़ी–बड़ी तेजस्वी आँखे, घनी भौंहे चेहरे पर गहरी शान्ति और निर्लिप्तता की झलक, शरीर पर केवल एक लुंगी और हाथ में एक लोटा बस और कुछ नहीं। साधु कुछ देर खड़ा चारों ओर देखता रहा। फिर मृदु और शिष्ट स्वर में बोला– 'साधु भूखा है, दो रोटी मिल जाय।

मैं कुछ उत्तर दूँ, इससे पहले प्रभाकर बोल पड़ा–'वाह बाबा! पेट भरने के लिए कितना अच्छा तरीका है। बोलो, पेट भरने के लिए क्या दोगे? साधु क्या दे सकता है बेटा? उसके पास क्या है ? तो तुम साधु हो ? इसका क्या सबूत है कि तुम सच्चे साधु हो, बने हुए धोखेबाज नहीं, अगर तुम सच्चे साधु हो तो कोई चमत्कार दिखाओ अपना। यह कहकर प्रभाकर ने चुभती हुई दृष्टि साधु पर डाली।

साधु तनकर खड़ा रहा निर्विकार पहले की ही तरह। फिर शान्त स्वर में बोला– साधु क्या चमत्कार दिखला सकता है ? चमत्कार तो दिखलाने वाला परमात्मा है। वही तरह–तरह के चमत्कार दिखलाता रहता है संसार को हम कौन हैं, कोई भी नहीं।.....क्या तुम्हारा जन्म लेना कम चमत्कार है ?

प्रभाकर खिलखिला कर हँस पड़ा। उसका हँसना थोड़ा बुरा लगा

मुझे। वह हँसते हुए बोला–क्या अच्छा बहाना है लेकिन यदि कोई ईश्वर को न मानता हो तो ?

साधु की जैसे तन्द्रा भंग हो गयी। गम्भीरता से अपने शब्दों पर वजन देकर वह बोला–कौन उसे नहीं मानता, सभी उसे मानते हैं। आज या कल सभी उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते हैं। ईश्वर होगा! लेकिन मैं नहीं मानता। तुम अपने को परमात्मा का भक्त कहते हो, तब क्यों नहीं उसका कोई चमत्कार दिखाते। यदि ऐसा नहीं कर सकते हो तो मेरे कुछ प्रश्नों का उत्तर ही दो क्या दे..... सकते हो ?

इस प्रकार प्रभाकर का एक साधु से वाद–विवाद करना अच्छा नहीं लग रहा था मुझे। इसे साधु का अपमान समझ रहा था मैं। मौन रहना ही उचित समझा। मैं जानता था प्रभाकर के स्वभाव को अड़ियल जिद्दी और बिना सोचे समझे बोलना.....।

उसी समय मेरा एक और मित्र शशिकान्त भी वहां आ गया। जैसा प्रभाकर वैसा ही शशिकान्त भी लेकिन शशिकान्त थोड़ा समझदार और बुद्धिमान भी था।

साधु कुछ देर तक मौन साधे कुछ सोचता रहा। कभी–कभी आँख उठाकर प्रभाकर की ओर देख लेता। फिर बोला–बेटे! तुमको परमात्मा पर विश्वास नहीं है। अच्छा, उसी के एक छोटे रूप आत्मा को मैं तुम्हारे सामने बुलाता हूँ। जो कुछ तुमको पूछना हो, उससे पूछ लेना। यह अप्रत्याशित था मैं सकते में आ गया। अबतक शशिकान्त भी सारी स्थिति समझ चुका था। साधु से वह बोला–इसके लिए क्या करेंगे आप? देखो क्या करता हूँ मैं! पहले मुझे [redacted] और [redacted] इस बार प्रभाकर थोड़ा उत्तेजित होकर बोला–आप करना क्या चाहते हैं ?

तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मैं आत्मा का आवाहन करना चाहता हूँ– साधु ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया।

यह सुनकर हम सब लोग स्तब्ध रह गये और एक दूसरे का मुंह देखने लगे लेकिन अब विवश हो चुके थे। अबतक वह साधु कमरे के भीतर आकर अपना आसन जमा चुका था। अभी भी उसका चेहरा पहले की ही

तरह गम्भीर था। मेरे घर में एक बड़ा सा बेलजियम के कांच का आइना था। मैंने उसे लाकर साधु के सामने रख दिया और दो मोमबत्तियाँ भी।

प्रभाकर और शशिकान्त कमरे में एक तरफ चुपचाप मौन साधे बैठे थे और देख रहे थे साधु की गतिविधि। उस समय कमरे के वातावरण में एक विचित्र–सी निस्तब्धता छाती जा रही थी धीरे–धीरे। मुझे भी कुछ अजीब सा लग रहा था। कभी–कभी आंखे घुमाकर देख लेता था साधु की ओर। साधु अपने आप में लीन था। उसने पहले पानी से आइने को खूब साफ किया और फिर उसे दीवार से लगाकर खड़ा कर दिया और उसके दोनों ओर मोमबत्तियाँ जलाकर रख दी। जिनकी रोशनी आइने पर साफ दिखलायी दे रही थी। आइने के ठीक सामने पद्मासन लगाकर साधु बैठ गया [redacted] और अपने अगल–बगल प्रभाकर और शशिकान्त को बैठने का संकेत किया उसने। मैं एक ओर खड़ा होकर तटस्थ भाव से देख रहा था साधु की लीला। वातावरण भारी होता जा रहा था धीरे–धीरे और उसके साथ निस्तब्धता भी। आखिर रहा न गया मुझसे। मैंने साधु के निकट जाकर विनम्र स्वर में पूछा–महाराज इसके पहले आप कोई प्रयोग करें, मैं अपने अज्ञान के लिए आपसे क्षमा मांगता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि इस प्रयोग में किसी प्रकार का खतरा हो तो आप इसे स्थगित ही कर दें।

साधु ने अपना सिर घुमाकर मेरी ओर देखा और गम्भीर स्वर में कहा–नहीं, इसमें खतरा नहीं लेकिन क्या मैं पूछ सकता हूँ कि यह क्या है ? य[redacted] इस विद्या का संबंध किसी तंत्र–मंत्र से नहीं है यदि संबंध है तो 'मन' से है। मन में अगाध शक्ति है। मन के एकाग्र होने पर उसकी शक्ति अपने आप प्रकट हो जाती है। तुमको यह बतला देना चाहता हूँ कि मानव मन से सभी प्रकार की मृतात्माओं और विदेही आत्माओं का संबंध अदृश्य रूप से जुड़ा रहता है। उनमें से बहुत सी ऐसी भी आत्माएँ होती हैं जो मानव मन को अपने प्रभाव में लेकर उससे अपने इच्छानुसार कार्य कराती हैं। मन के माध्यम से किसी भी व्यक्ति से कार्य लेकर अपने स्वार्थ की पूर्ति कर लिया करती हैं। ऐसे व्यक्ति बहुत कम ही होते हैं जो अपनी इच्छा की पूर्ति अपने मन से करते हों। तुमको यह जान लेना चाहिए कि मनुष्य के चारो ओर न जाने कितनी अदृश्य मृतात्मायें और विदेही आत्माएँ चक्कर काटती रहती हैं

और उसके मन पर डालती रहती हैं अपना अच्छा--बुरा प्रभाव। जिससे अज्ञात रूप से प्रभावित होकर वह कार्य करता रहता है।

मन के एकाग्र होते ही मन की जो शक्ति उत्पन्न होती है–वह शक्ति इच्छित आत्मा को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है और उसके आकार अथवा उसके स्वरूप को प्रकट भी कर देती है। ऐसी आत्मा से उसके सामर्थ्य के अनुसार अपने किसी भी प्रश्न का उत्तर प्राप्त किया जा सकता है और अपनी किसी भी जिज्ञासा का किया जा सकता है समाधान लेकिन इसके लिए माध्यम चाहिए। यह जो आइना है वह मेरे और आत्मा के बीच माध्यम है क्योंकि बिना किसी माध्यम के कोई निराकार वस्तु साकार नहीं हो सकती। आत्मा निराकार है। उसे भौतिक आकार देने के लिए कोई न कोई भौतिक माध्यम होना ही चाहिए।

क्या मृतात्माएँ अपने परिवार के सदस्यों के आस–पास रहती हैं और उनका भी चक्कर काटती हैं ? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उस रहस्यमय साधु ने बतलाया कि 'हाँ'। इसमें सन्देह नहीं। मरने के बाद शरीर तो अवश्य छूट जाता है, लेकिन मृतात्मा का अपने परिवार के लोगों से संबंध नहीं छूटता। बहुत दिनों तक बना रहता है नाता–रिश्ता जिस मृतात्मा की कामना, वासना, इच्छा, अभिलाषा अधूरी रहती है। किसी कारणवश पूर्ण नहीं हुई होती है, उन्हें अपने परिवार के सदस्यों के माध्यम से पूर्ण करने का प्रयास करती है। यदि प्रयास में सफलता नहीं मिलती है तो परिवार को तरह–तरह का कष्ट पहुँचाती है वह। ऐसे–ऐसे वातावरण की सृष्टि करती है, जिससे परिवार के लोग मानसिक शारीरिक और आर्थिक रूप से परेशान हों।

मृतात्मा का परिवार से कबतक संबंध बना रहता है ? मैंने प्रश्न किया। उत्तर में साधु बोला--जबतक मृतात्मा का मोह और आकर्षण अपने परिवार के प्रति समाप्त नहीं हो जाता है अथवा उसका जन्म नहीं हो जाता है कहीं, इतना कहकर साधु मौन साध गया। मैंने भी आगे कुछ पूछना उचित नहीं समझा। लेकिन मेरे मन में उस समय आत्मा संबंधी अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ उमड़--घुमड़ रही थीं। अब आगे क्या होता है यह देखना और समझना था मुझे।

अबतक वह रहस्यमय साधु अपने चित्त को एकाग्र कर ध्यानस्थ हो चुका था। वातावरण और अधिक बोझिल हो गया था। बारिश बन्द हो चुकी थी लेकिन बादल छाये हुए थे आकाश में। सांझ की स्याह कालिमा बिखरने लगी थी वातावरण में। मैंने ध्यान से देखा आइने पर पड़ने वाली मोमबत्ती की हल्की पीली रोशनी क्रमशः घनीभूत होने लगी थी। हम तीनों कभी साधु की मुखमुद्रा की ओर देखते तो कभी चमकते हुए आइने की ओर। प्रभाकर और शशिकान्त की क्या स्थिति थी। यह तो मैं नहीं जानता था, लेकिन मेरा मस्तिष्क भारी होता जा रहा था उस समय। आइने पर पड़ने वाली मोमबत्तियों की परछाइयाँ अब भयानक लगने लगी थी मुझे। साधु अभी भी एकटक केवल आइने की ओर देख रहा था। अबतक पूरा एक घण्टे का समय व्यतीत हो चुका था। प्रभाकर उतावला होकर साधु से कुछ कहने ही जा रहा था कि आइने की ओर देखकर एकबारगी चौंक पड़ा। आइने पर पड़ने वाले मोमबत्ती का प्रकाश क्षण प्रतिक्षण अपना रंग बदलने लगा था। कभी लाल, कभी हरा, कभी पीला तो कभी नीला। मोमबत्तियों की लौ अपने आप में स्थिर हो गयी थी और उनमें से निकलने वाली रोशनी पहले से अधिक तेज हो गयी थी लेकिन बाद में धीरे–धीरे मन्द पड़ने लगी। प्रभाकर और शशिकान्त स्थिर भाव से बैठे हुए आइने की ओर देख रहे थे, लेकिन उन दोनों का चेहरा स्याह हो गया था। एकाएक आइने का रंग–बिरंगा प्रकाश बीच में सिमटने लगा था और आइने के चारो ओर का कांच पड़ने लगा था काला।

प्रभाकर ने सिर घुमाकर देखा। मैंने भी इस परिवर्तन को लक्ष्य किया था लेकिन उसका कारण मेरी समझ में नहीं आ रहा था। हम तीनों ने एक साथ साधु की ओर देखा। वह अब भी स्थिर दृष्टि से आइने की ओर देख रहा था।

सांझ की स्याह कालिमा अब रात के अन्धकार में बदल चुकी थी और फिर शुरू हो गयी थी बारिश। कमरे का वातावरण पहले से अधिक बोझिल हो गया था। लगा जैसे कोई अदृश्य मायावी शक्ति टहल रही हो कमरे में। कमरे में बत्ती जलाने के लिए मना किया गया। मोमबत्तियों का प्रकाश ही था कमरे में बिखरा हुआ। लेकिन अचानक

दोनों मोमबत्तियाँ भी अपने आप बुझ गयी और पूरा कमरा डूब गया एकबारगी अंधेरे में।

आइने के बीच में सिमटने वाला प्रकाश अबतक एक बिन्दु का रूप धारण कर लिया था। कुछ क्षण बाद वह प्रकाश बिन्दु एक मानवाकृति में परिवर्तित हो गयी जिसे देखकर प्रभाकर और शशिकान्त दोनों घबड़ाने लगे थे और कांपने लगे थे भय से। वैसी ही दशा कुछ–कुछ मेरी भी थी। मगर फिर भी संभाले हुए था अपने आपको मैं। कुछ क्षण बाद उस मानवाकृति के स्थान पर मनुष्य का एक वीभत्स चेहरा प्रकट हुआ। जो बिलकुल स्पष्ट था और हिल–डुल रहा था। अभीतक साधु पाषाणवत् बैठा था लेकिन अब उसके शरीर में हलचल होने लगी। उसने प्रभाकर की ओर देखकर कहा–आपको जो भी प्रश्न पूछना हो, आइने की ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए पूछ सकते हैं। प्रश्न का उत्तर आइने पर लिख जायेगा। भय के कारण प्रभाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप कभी साधु की ओर कभी आइने में उभरे हुए चेहरे की ओर देखता रहा। कुछ देर बाद साधु पुनः बोला–जो कुछ आप सबको पूछना हो उसे जल्दी पूछिए क्योंकि यह आत्मा अधिक समय तक रूक नहीं सकती। अब मैं आत्मा को जगाता हूँ।

तुरन्त ही ऐसा मालूम हुआ कि सब चीजों में जान आ गयी हो। आइने की चमक चौगुनी हो गयी लेकिन प्रकाश बिन्दु अपने स्थान पर स्थिर रहा। मैं अपने स्थान पर खड़े ही खड़े उस आइने में प्रकट हुए चेहरे की ओर ध्यान से देखने लगा। वह चेहरा वीभत्स तो था ही इसके अतिरिक्त डरावना भी था। उसकी बड़ी बड़ी गोल आँखे बाहर की ओर निकली हुई थीं और लाल थीं, नीचे का जबड़ा काफी नीचे लटका हुआ था और बड़े–बड़े दांत बाहर की ओर निकले हुए थे। सब कुछ मिलाकर वह अति भयानक कुरूप और रोमांचित कर देने वाला था चेहरा, इसमें सन्देह नहीं।

प्रभाकर से तो बोला ही न गया लेकिन शशिकान्त प्रश्न कर बैठा–'मैं अपने पिताजी को देखना चाहता हूँ।

प्रश्न सुनकर वह चेहरा अपने स्थान पर धीरे–धीरे हिला–डुला और फिर स्थिर हो गया और उसी के साथ आइने पर अंकित हो

गया–आपके पिता श्रीनारायण मिश्र ने पुनर्जन्म ले लिया है और इस समय उनकी उम्र तेरह साल की है। उनका नाम त्रिभुवन अग्रवाल है। लो मिलो उनसे, इस अन्तिम शब्द के साथ ही एक दुबला–पतला और गोरे रंग का लड़का आइने में प्रकट हुआ। वह अपने कुछ मित्रों के साथ अपने घर में कैरमबोट खेल रहा था उस समय। उसका जन्म बलिया में हुआ था और उसके बाप का नाम था लोचन अग्रवाल। बाद में यह भी लिखकर आ गया सामने।

लड़के को देखकर शशिकान्त एकबारगी पापा.....पापा कहकर चिल्लाने लगा जोर–जोर से। निश्चय उस लड़के में उसे अपने पिता की झलक मिल चुकी थी।

अब प्रभाकर से रहा न गया। मैं अपने मृत बड़े भाई से मिलना चाहता हूँ–एकाएक जोश भरे स्वर में प्रश्न कर बैठा वह।

प्रभाकर द्वारा प्रश्न होते ही वह वीभत्स चेहरा अपने स्थान पर फिर हिला और उसी के बाद आइने पर अंकित हो उठा–आपके भाई का नाम लक्ष्मीकान्त है। एक लड़की से उसका प्रेम हो गया था, लेकिन लड़की के माता–पिता को यह पसन्द नहीं था इसलिए लड़की के भाई ने दूध में जहर दे दिया आपके भाई को। मरने के बाद अभी–तक उसका पुनर्जन्म नहीं हुआ है इसलिए इस समय गांव के ही श्मशान में–जहाँ उसकी चिता जली थी, भटक रहा है वह। लो मिलो!

इस अन्तिम शब्द के साथ ही सबसे पहले आइने में गांव का श्मशान दिखलायी दिया। घोर निस्तब्धता बिखरी हुई थी श्मशान के वातावरण में, कोई चिता जलकर बुझ चुकी थी जिसकी गर्म राख से अभी–तक धुँआ निकल रहा था। बगल में एक पीपल का विशाल पेड़ था। जिसकी डालों में यमघंट लटक रहे थे। हम सभी ने स्पष्ट रूप से देखा उस पीपल के नीचे कुर्ता पाजामा पहने पागलों जैसी हरकत करता हुआ एक युवक इधर–उधर चक्कर काट रहा था। उसका चेहरा देखकर लगता था कि वह अत्यन्त कष्ट में है भैया.....चीख पड़ा एकबारगी प्रभाकर, हाँ! वह व्यक्ति प्रभाकर का भाई लक्ष्मीकान्त ही था। रोने लगा था अब प्रभाकर किसी प्रकार शान्त कराया गया उसे। प्रभाकर के कारण वातावरण उदास सा हो गया था। अबतक चुपचाप

सब कुछ देख सुन रहा था मैं। परिस्थिति से अवगत होने में देर न लगी थी मुझे। पूरा कमरा प्रेताविष्ट हो चुका था अबतक। मैंने आगे बढ़कर आइने की ओर देखते हुए आत्मा से कहा—अब आप जा सकते हैं। हम लोगों को और कुछ नहीं पूछना है। देखते ही देखते आइने की रोशनी मन्द हो गयी। छाया में जो सजीवता आ गयी थी वह भी समाप्त हो गयी। धीरे—धीरे आइने में धुंधलापन छाने लगा, मोमबत्तियों की रोशनी वापस लौट आयी।

शशिकान्त मेरी ओर देखकर बोला—'तुमने आत्मा को वापस क्यों कर दिया ? अभी तो समय था कुछ और प्रश्न पूछे जाते। मैंने तुरन्त कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर ठहर कर गम्भीरता से कहा—पहले मैंने इसे एक मजाक समझा था लेकिन बात ऐसी नहीं है। वातावरण अचानक बोझिल हो गया था और भारी हो गया था हम लोगों का सिर भी। क्या उससे तुम दोनों ने कुछ नहीं समझा कहीं मजाक ही मजाक में कोई अनहोनी घट जाय तो क्या होगा ? जिस बात में अपनी पहुँच न हो उसमें दखल देना मैं उचित नहीं समझता।

लेकिन जब साधु महाराज हैं, तब इसमें क्या खतरा हो सकता है। ठीक है! फिर भी मैं यह उचित नहीं समझता कि किसी बड़ी शक्ति के साथ सिर्फ मनोरंजन के लिए खिलवाड़ किया जाय और इसकी आवश्यकता ही क्या है ?

मैंने साधु की ओर देखा—जो पद्मासन की मुद्रा में पूर्ववत् बैठा हुआ हम तीनों की ओर गम्भीरता से देख रहा था। कुछ देर तक हम तीनों में से कोई कुछ नहीं बोला। साधु ने प्रभाकर की ओर देखकर पूछा—तुम्हे और कोई प्रश्न करना है ?

नहीं महाराज! सिर झुकाकर प्रभाकर ने उत्तर दिया और फिर थोड़ा रूककर विनम्र स्वर में कहा—भोजन करके जाइये महाराज।

नहीं!

क्या मेरा अपराध इतना बड़ा है ? अपराध कुछ नहीं है। संसार में बहुत सारे ऐसे लोग हैं जिनको आत्मा पर विश्वास नहीं होता। शायद तुम भी उनमें से एक थे। मैंने तेरे सामने आत्मा का आवाहन किया, इसलिए नहीं कि तू प्रसन्न होकर मुझे भोजन करा दे, बल्कि इसलिए

कि तुझे आत्मा–परमात्मा पर विश्वास हो जाय। इस जीवन के बाद एक दूसरा जीवन भी है। इसको तू स्वीकार नहीं करना चाहता था–तेरा यही भ्रम मैंने दूर कर दिया। उस समय मैं मन ही मन सोच रहा था कि यदि साधु की तरह मैं भी इसी प्रकार मन को एकाग्र कर आत्मा का आवाहन कर सकूँ तो कैसा रहेगा। पारलौकिक जगत की बहुत सारी रहस्यमयी और तिमिराच्छन्न बातें ज्ञात हो जायेंगी। अचानक मैंने देखा कि साधु स्थिर दृष्टि से देख रहा था मेरी ओर, साथ ही मन्द–मन्द मुस्करा भी रहा था वह। चौंक पड़ा मैं। थोड़ी देर बाद साधु रहस्यमय ढंग से हँसा हो–हो कर और एक झटके से घूमकर तेजी से कमरे के बाहर निकल गया ओर खो गया निविड़ रात्रि के अन्धकार में। यह सब इतना अप्रत्याशित था कि साधु के जाने के बाद भी काफी देर तक हम तीनों गुमसुम बैठे रहे। उस अवस्था में सोच रहा था, अवश्य ही मेरे मन में कौन सी खिचड़ी पक रही है ? उसे साधु जान गया होगा तभी तो मेरी ओर देखकर हँसा था वह।

एक रहस्यमय अंग्रेज आत्मा से परिचय- साधु के गम्भीर व्यक्तित्व का, उसके द्वारा किया गया आत्मा के आवाहन का और उसके द्वारा प्राप्त विवरण का मुझ पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा था कि प्रायः मन के विषय में, मन की शक्ति के विषय में और आत्मा के संबंध में ही सोचा विचारा करता था मैं। इस बात से मैं अच्छी तरह परिचित हो चुका था कि परामनोविज्ञान का विषय अचेतन मन है। परामनोविज्ञान ही अचेतन मन की रहस्यमयी गुत्थियों को सुलझाने वाला एकमात्र विज्ञान है। इसे संयोग ही कहा जायेगा कि अपने आप एक अंग्रेज आत्मा से मेरा सम्पर्क हो गया एकाएक और मनोविज्ञान और परामनोविज्ञान की गहरायी में प्रवेश करने की दिशा में सहयोग भी उपलब्ध हुआ उससे। उस अंग्रेज आत्मा से मेरा कैसे संबंध स्थापित हुआ, यह भी अपने आप में रहस्यमय ही है। यह निश्चित है कि व्यक्ति जिस विषय में अधिक से अधिक चिन्तन–मनन और सोच विचार करता है, उससे संबंधित आत्मा अदृश्य रूप से उस व्यक्ति से अपना सम्पर्क बना लिया करती है, यही बात मेरे साथ हुई। मैं उन दिनों कलकत्ता में रहता था और बंगीय नाट्य कला केन्द्र से जुड़ा हुआ था। स्वभाव के अनुसार प्रायः नित्य सायंकाल

नीमतल्ला के श्मशान में या फिर कभी मुस्लिम और कभी ईसाईयों के कब्रिस्तान में बैठा करता था मैं। मन को एक अबूझ सी शान्ति मिलती थी, ऐसी शान्ति जिसे बतलाया नहीं जा सकता। उस दिन जिस कब्रिस्तान में बैठा था मैं, वह निश्चय ही ईसाईयों का ही रहा होगा। सांझ ढल चुकी थी। एक गहरी उदासी बिखरी हुई थी कब्रिस्तान के मरियल वातावरण में। चारो ओर सन्नाटा पसरा हुआ था और मैं उस सन्नाटे में गालों पर हाथ धरे चुपचाप मौन साधे बैठा था एक टूटे–फूटे कब्रिस्तान के मटमैले चबूतरे पर और तभी न जाने किधर से आकर एक लम्बी–चौड़ी काठी का अंग्रेज काला सूट पहने, सिर पर हैट लगाये और हाथ में चांदी के मूठ की छड़ी लिये मेरे बगल में बैठ गया। मुँह में बर्मी चुरूट दबाये था वह जिसकी तीखी गन्ध फैल रही थी हवा में। बड़ा अजीब सा लगा मुझे उस अनजाने और अपरिचित वृद्ध अंग्रेज को देखकर। उसके चेहरे पर अजीब सी उदासी में लिपटी हुई मुस्कराहट थी। मेरे बगल में आकर क्यों बैठ गया वह अंग्रेज कुछ समझ में नहीं आ रहा था। थोड़ी देर बाद चुरूट की राख झाड़ते हुए उस अपरिचित अंग्रेज ने स्वयं के बारे में बोलना शुरू किया, उसका नाम था सर विलियम मोद था। मनोविज्ञान और परामनोविज्ञान का अनुभवी विद्वान था और इंग्लैण्ड के एक कॉलेज में प्राध्यापक था वह। आत्म सम्मोहन विद्या का भी ज्ञाता था जिसके कारण काफी दूर–दूर तक प्रसिद्धि थी उसकी। कोई परिवार नहीं था और न तो था कोई अपना कहलाने वाला ही। शान्ति की खोज थी उसे और शान्ति की खोज में भटकता हुआ भारत आ गया था वह।

थोड़ा रूककर दूसरा चुरूट जलाते हुए सर विलियम मोद आगे बोला–तुम यंगमैन हो, तुम्हारे भीतर काबिलियत है। दर–दर की खाक छानना तुम्हारे किस्मत में है। सत्य की खोज में पूरी जिन्दगी गुजर जायेगी तुम्हारी। अपने विषय में इतना सुनकर दंग रह गया मैं। बिना पलक झपकाये देखने लगा मैं उस गौरांग को। उस समय और अधिक आश्चर्यचकित हो उठा मैं, जब उसने यह बतलाया कि तुम्हारा सब्जेक्ट मेरा सब्जेक्ट है। तुमको पूरा–पूरा मदद करूँगा मैं। तुमको मालूम होना चाहिए कि 80 वर्ष पहले इण्डिया आया था और तब से इण्डिया में हूँ

लेकिन तुम्हारे जैसा आदमी पहली बार मुझे मिला यहां। अभी तक तो अकेला ही घूम रहा था इधर–उधर मैं। तुम अब मेरा फ्रेण्ड है। यह सब सुनकर अजीब सा लगा मुझे। देखने में सर विलियम मोद 70 वर्ष से कम का नहीं लग रहा था। उसका कहना है 80 वर्ष से इण्डिया में रह रहा है वह। क्या 10 वर्ष का था वह तब, जब वह इण्डिया आया ? झनझना उठा मेरा मस्तिष्क एकबारगी। मेरी समझ में नहीं आ रहा था उस समय कुछ भी और जब सब कुछ स्पष्ट हुआ तो पूरा शरीर रोमाञ्चित हो उठा मेरा। भय और आतंक से भर उठा मैं। सर विलियम मोद कोई जीता जागता इन्सान नहीं था। वह तो कभी का मर चुका था इंग्लैण्ड में 70 वर्ष की आयु में। उसकी शान्ति की खोज में भटकने वाली आत्मा सशरीर मेरे सामने उपस्थित थी उस समय। अब अपने बगल में सर विलियम मोद की उपस्थिति अत्यन्त भयप्रद लगने लगी मुझे। सांझ की स्याही रात्रि की कालिमा में बदल चुकी थी अबतक, मैं उठा और तेजी से कब्रिस्तान से बाहर निकल गया। मेरी मानसिक और शारीरिक स्थिति क्या थी बतलाया नहीं जा सकता। लेकिन क्या सर विलियम मोद की आत्मा से मेरा पिण्ड छूटा ? नहीं! काफी दिनों तक अपने निकट उसकी उपस्थिति का आभास लगता रहा मुझे। कभी–कभी तो उसके चुरूट की तीखी गन्ध भी भर जाती मेरे नासापुट में।

अबतक मनोविज्ञान और परामनोविज्ञान का अच्छा ज्ञाता बन चुका था मैं। मन की गहराइयों को भी समझ गया था एक सीमा तक। कहने की आवश्यकता नहीं सर विलियम मोद की आत्मा के अगोचर सान्निध्य का ही परिणाम था यह इसमें सन्देह नहीं।

मन के दो स्वरूप– मन की गहराइयों में प्रवेश करने पर मुझे ज्ञात हुआ कि मन के दो स्वरूप हैं– चेतन और अचेतन। अचेतन मन का दो तिहाई भाग है जिसके कार्यकलापों से हम अनभिज्ञ ही रहते हैं। परामनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करने पर ज्ञात होता है कि अचेतन में अविश्वसनीय और अकल्पनीय शक्तियाँ विद्यमान हैं और ये शक्तियाँ अचेतन की सीमा को लांघकर चेतन मन में प्रकट होती हैं तो उनके कौतुक लोगों को हत्बुद्धि कर देते हैं। उसे दैवी चमत्कार समझने लगते हैं लोग। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो ये कौतुक वास्तव में अचेतन की

ऐसी साधारण क्रियायें हैं जिनको समझने में अभीतक मानव बुद्धि असमर्थ रही है लेकिन एक ऐसा भी शास्त्र है जो अचेतन मन की अगाध शक्ति को भलीभांति समझता है और वह शास्त्र है एकमात्र तंत्र शास्त्र। वास्तव में तांत्रिक शक्ति अचेतन की ही अगाध शक्ति है जो विभिन्न क्रियाओं द्वारा देव प्रतिमा के रूप में, यंत्र के रूप में और मंत्र के रूप में प्रकट होती है और अपना आश्चर्यजनक प्रभाव व्यक्त करती है।

परामनोविज्ञान अचेतन मन की शक्ति का विज्ञान है वह सिद्धियों अथवा चमत्कारों की तर्कयुक्त व्याख्या यही मानकर करता है कि मन की शक्ति पदार्थ की शक्ति से कहीं अधिक और निस्सीम है। जबकि पदार्थ की शक्ति स्वयं अपने आपमें असीम है। परामनोविज्ञान का विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति का मन रहस्यमयी शक्तियों का विपुल भण्डार है जबकि हजारों वर्ष पूर्व योग और तंत्र शास्त्र में अपने गहन अनुभवों के आधार पर इस सत्य को स्वीकार लिया था एक स्वर में। वैदिक मंत्र हो या हो तांत्रिक मंत्र सभी उसी अचेतन शक्ति को अभिव्यक्त करते हैं। सच पूछा जाये तो अचेतन की शक्तियों की अनुभूतियों के मार्ग में सबसे बड़ा बाधक है चेतन मन और यही कारण है कि साधारण मनुष्य को यह अनुभूति तभी होती है जब उसका चेतन मन निष्क्रिय रहता है जैसे स्वप्नावस्था में, मूर्च्छावस्था या गहरे नशे की स्थिति में। कोई भी नशा हो वह स्थूल शरीर से अधिक सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करता है। सूक्ष्म शरीर न हो तो स्थूल शरीर का कोई महत्व नहीं। वह तो अस्थि–मज्जा–मांस आदि से निर्मित एक यंत्र के समान है जिसे संचालित करता है सूक्ष्म शरीर। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर को संचालित करता है मनोमय शरीर। मन का जितना अंश सूक्ष्म शरीर का भेदन कर स्थूल शरीर में प्रकट होता है वह मन का चेतन रूप है। शेष अंश मन का अचेतन रूप है। यहां यह समझ लेना चाहिए कि अचेतन की जो अगाध शक्तियाँ हैं वे वास्तव में आत्मा की स्व शक्तियाँ हैं। योगीगण आत्मशक्ति का विकास करते हैं और तंत्र साधकगण करते हैं विकास मनःशक्ति का। यही दोनों में अन्तर है। आत्म शक्ति का क्रमिक विकास योगी का उद्देश्य है और मनःशक्ति का विकास है तांत्रिक का उद्देश्य।

मनोमय शरीर के एक ओर आत्म शरीर है तो दूसरी ओर है सूक्ष्म शरीर। जैसे स्थूल में चेतन मन कार्य करता है उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर में कुछ अंश तक कार्य करता है अचेतन मन और यही कारण है कि सूक्ष्म शरीर अत्यधिक शक्तिशाली, अधिक गतिमान और तीनों काल में प्रवेश करने वाला होता है। मदिरा पीने से शारीरिक हानि जो होती है, वह अलग बात है, लेकिन उससे लाभ यह होता है कि मदिरा के प्रभाव से सूक्ष्म शरीर चैतन्य और सक्रिय हो उठता है और एक सीमा तक वह अचेतन से जुड़ जाता है। नशे की स्थिति में व्यक्ति के लिए स्थूल कोई महत्व नहीं रखता विस्मृत हो जाता है वह उसके लिए। वह जो स्थूल शरीर से नहीं कर सकता, जो व्यवहार नहीं कर सकता और जो बोल नहीं सकता वह सब उस स्थिति में अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा कर लिया करता है। वह अच्छा से अच्छा काम कर बैठता है और बुरा से बुरा। उसके मुंह से गाली भी निकलेगी और मधुरवाणी भी। हाथ से खून भी करेगा, गोली भी चलायेगा और आशीर्वाद भी देगा। वास्तव में मदिरापान किया हुआ व्यक्ति अपने आपको विस्मृत कर बैठता है। योगतांत्रिक साधना मार्ग में विस्मरण का अपना महत्व है क्योंकि विस्मरण की अवस्था में अहंकार नहीं रह जाता। मदिरा पीकर विस्मृत हुए व्यक्ति के भीतर अहंकार नहीं रहता। मदिरा के नशे में--कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को विस्मरण तो उपलब्ध होता ही है उसके साथ ही साथ कुछ समय के लिए विस्मरण के प्रभाव से अहंकार रहित भी हो जाता है। मदिरा अहंकार को समाप्त कर देती है। जो मदिरा नहीं पीते हैं उनमें अहंकार कूट–कूट कर भरा होता है। वे एक क्षण के लिए अपने आपको भूल नहीं पाते, विस्मृत भी नहीं कर पाते। अपने को विस्मृत करने और अहंकार रहित होने का उनके पास कोई भी उपाय नहीं है। सच पूछा जाय तो मदिरा ही एक ऐसी वस्तु है जो कुछ समय के लिए विस्मरण और निरअहंकारी की अवस्था उत्पन्न कर देता है। ऐसी अवस्था में मदिरापान करने वाला व्यक्ति प्रायः मृदु स्वभाव का होता है, वह प्रेम चाहता है और प्रेम करना भी चाहता है। वह मैत्रीपूर्ण होता है भला होता है और समय पर काम आ सकता है। उस पर विश्वास किया जा सकता है। वह कंजूस नहीं होता है, कठोर

भी नहीं होता है क्योंकि नशे की स्थिति तक वह अहंकार रहित और शरीर के प्रति विस्मृत रहता है।

जो व्यक्ति मदिरापान कर रहा हो उसकी ओर ध्यान से देखे। उसके चेहरे की उदासी खत्म हो जाती है थोड़ी देर में और प्रसन्नता प्रकट होने लगती है उदासी की जगह। शरीर में न जाने कहाँ से स्फूर्ति आ जाती है। पैरो में गति आ जाती है। नाचने गाने का मन करने लगता है भाषण देने लगता है अपने को बुद्धिमान समझने लगता है। जरा सोचिए यह वही व्यक्ति है न जिसके चेहरे पर कुछ देर पहले उदासी बिखरी हुई थी। मरा–मरा सा लग रहा था। आँखे ऐसी निस्तेज थी जैसे कि जीवन में कोई अर्थ ही नहीं है। वह अब ऐसा कैसे हो गया ? चेहरे पर चमक और आँखों में रौनक कहाँ से आ गयी? वास्तव में यदि सच पूछा जाय तो यह करामात मदिरा की नहीं है। अहंकार के अभाव का है। बिना किसी नशा के और बिना मदिरा के स्थूल शरीर विस्मृत हो और अहंकार का नाश हो इसके लिए एकमात्र उपाय है स्थूल शरीर के बजाय सूक्ष्म शरीर में जीने की कला जानना और सूक्ष्म शरीर के माध्यम से अचेतन की शक्तियों को उपलब्ध करना और यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति योग–तंत्र का अनुशरण करेगा। तांत्रिक साधना के कई सम्प्रदायिक मार्ग हैं। सभी मार्गों में किसी न किसी रूप में नशीले पदार्थों के सेवन का विधान मिलता है लेकिन प्रश्न होता है कि साधना मार्ग में नशे की आवश्यकता क्यों ? इसलिए कि 'नशा' शरीर को विस्मृत करता है। मन को स्थिर करता है और चेतन मन का संबंध सूक्ष्म शरीर से जोड़ता है और जब इस दिशा में साधक सफल हो जाता है तो नशा का त्याग कर देता है। सभी उच्चकोटि के योगी और साधक स्थूल शरीर में कम से कम समय रहना चाहते हैं और अधिक से अधिक समय जीना चाहते हैं सूक्ष्म शरीर में, वे अन्तर्मुखी होते हैं। स्थूल शरीर का कोई, महत्व नहीं। जो मिल गया खा लिया, जो मिल गया पहन लिया, जहां जगह मिली वहां सो लिया। सब स्वीकार, अच्छा भी और बुरा भी। उनका सूक्ष्म शरीर अचेतन की अगाध शक्तियों का केन्द्र बन जाता है जो अपने आप स्थूल शरीर के माध्यम से सिद्धियों के रूप में और विभिन्न प्रकार के चमत्कारों के रूप में प्रकट

होता रहता है। वह सब कैसे होता है ? यह स्वयं न योगी को पता होता है और न तो साधक को ही।

एक असाधारण महिला– कलकत्ता प्रवासकाल में मेरी भेंट हुई एक विदुषी महिला से उनका शरीर बंगदेशीय था, आयु रही होगी पचास के लगभग और नाम था सरोजबाला। उनकी वेशभूषा और रहन सहन संन्यासिनियों जैसा था। मकान तो काफी लम्बा–चौड़ा था लेकिन उसके एक छोटे से कमरे में अकेली रहती थी सरोजबाला। एक दिन प्रसंगवश मैंने उनसे पूछा–आप इतने बड़े सुनसान मकान में कैसे रहती हैं अकेले और वह भी रात में। मेरी बात सुनकर हँस पड़ी सरोजबाला, फिर बोली–बाहर से तुमको लगता है सुनसान मगर मकान सुनसान है नहीं भरा–पूरा है। यह सुनकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे उस समय। लेकिन बाद में सब कुछ स्पष्ट हो गया। वह किलानुमा मकान वास्तव में [redacted]। सरोजबाला साधारण महिला नहीं थीं। उनमें ईश्वर प्रदत्त एक विशेष मानसिक गुण था और वह था अपनी मानसिक शक्ति द्वारा विदेही आत्माओं को आकर्षित करना। दूर–दूर से विदेही आत्माएँ आती थीं। कुछ समय मकान में ठहरती और फिर चली जाती। सब कुछ रहस्यमय था मेरे लिए। भौतिक माध्यमों और संचार व्यवस्था के अभाव में भी एक 'मन' दूसरे मन को प्रभावित और आकर्षित कर सकता है। चाहे वह मन मृतात्मा अथवा विदेही आत्मा का हो या हो चलते–फिरते जीवित व्यक्ति का। दोनों में थोड़ा अन्तर यह अवश्य होता है कि किसी भी प्रकार का भौतिक बन्धन न होने के कारण विदेही अथवा मृतात्मा का 'मन' कुछ अधिक शक्तिशाली होता है इसलिए जीवित व्यक्ति के मन को आकर्षित करने की क्षमता उसमें जीवित व्यक्ति के मन से अधिक होती है। अशरीरी आत्माएँ जिनको विदेही कहिए या कहिए मृतात्मा–उनका मन बराबर मानव मन को अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। जबकि मानव मन को इसके लिए विशेष रूप से अभ्यास करना पड़ता है। इस प्रसंग में यह भी समझ लेना चाहिए कि बिना किसी ज्ञात संवेदी यंत्र की सहायता के 'मन' पदार्थ से सक्रिय ज्ञानात्मक संबंध स्थापित कर सकता है। इस प्रक्रिया में दिक्काल की ओर से कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। सच तो यह है कि 'मन'

भौतिक पदार्थों को इच्छानुसार प्रभावित करने में सक्षम है। इस सत्य को भी देखने का अवसर सरोजबाला के यहां मिला मुझे। आगे कुछ लिखने के पहले यहां एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ मैं और वह यह कि भौतिक शरीर में मन का चेतन रूप काम करता है और जबकि अभौतिक शरीर में काम करता है मन का अचेतन रूप। जब कोई विदेही आत्मा किसी कारणवश अथवा किसी खास प्रयोजन से किसी व्यक्ति को प्रभावित करती है अथवा करती है आकर्षित, तो उस व्यक्ति में अपने आप एक विशेष अलौकिक योग्यता उत्पन्न हो जाती है। सरोजबाला का 'मन' विदेही आत्माओं को प्रभावित करने अथवा उनको आकर्षित करने की क्षमता रखता था इसमें सन्देह नहीं। वह क्षमता ईश्वर प्रदत्त थी इसमें भी सन्देह नहीं। उनका विवाह एक राजघराने के व्यक्ति से मात्र सोलह साल की अवस्था में हुआ था। पति का नाम था श्यामाचरण धरणीधर। विवाह के समय उनकी आयु थी 40 वर्ष के लगभग। स्पष्ट है आयु की दृष्टि से विवाह में बेमेल था। सरोजबाला ने मात्र केवल दो साल वैवाहिक जीवन व्यतीत किया। उसके बाद विधवा हो गयी वह। बाल विधवा के रूप में देखा जाने लगा उन्हें। उस विशाल और हवेलीनुमे लम्बे–चौड़े मकान में एक छोटा सा मंदिर बनवाकर उसमें स्थापित कर दिया राधा–कृष्ण की मूर्ति सरोजबाला ने। अब उनका पूरा समय व्यतीत होने लगा व्रत–उपवास, ध्यान–धारणा और पूजा उपासना में। उन सबसे जब समय मिलता तो अपने पति के चित्र के सामने बैठकर अपलक उसे निहारती रहती घण्टों तक। कभी–कभी तो पति की स्मृति अत्यधिक सजीव हो उठती उनके मानसपटल पर और तब उस अवस्था में भाव विह्वल होकर रोने भी लगती है सिसक– सिसक कर सरोजबाला। बड़ा ही कारूणिक दृश्य होता था वह। गालों पर झर–झर कर आँसू गिरते जाते और आंचल से उसे पोछती जाती वह। उनको समझाने–बुझाने और सान्त्वना देने वाला भी तो कोई नहीं था। वह विधवा थी। कुल कलंकिनी थी। उनका चेहरा भी देखना समाज के लिए पाप था। एकाकी जीवन व्यतीत करने के अलावा और कुछ नहीं रह गया था उनके लिए। ससुराल वालों ने उस किलानुमा मकान में अकेली छोड़कर उनसे अपना संबंध विच्छेद

कर लिया था हमेशा–हमेशा के लिए। उनको कभीकदा देखने सुनने के लिए भी कोई नहीं आता था ससुराल की ओर से। विधवा को क्या चाहिए ? साल में दो सफेद ताड़केश्वरी साड़ी और दोनों समय भात और वह बराबर मिलता रहता था सरोजबाला को ससुराल से और कुछ नहीं। यदि कभी बीमार भी पड़ जाय तो दवादारू भी नहीं। कभीकदा भूले भटके सरोजबाला के बड़े भाई शशिगोपाल भादुड़ी अपनी पत्नी से छिपकर आ जाते देखने के लिए और जाते समय सरोजबाला के हाथ में थमा जाते दस–बीस रुपये बस।

दिन गुजर रहा था और गुजर भी जाता लेकिन एक दिन ऐसी अनहोनी घट गयी जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। दिवंगत श्यामाचरण धरणीधर को मेवे की खीर खाने का शौक था। प्रायः रात्रि में सोने के पहले पांच चम्मच मेवे की खीर अवश्य खाते वह। उस दिन न जाने क्यों पति के चित्र के सामने मेवे की खीर अर्पित करने की इच्छा सवेरे से ही बलवती हो उठी थी उनके मन में। पर कर ही क्या सकती थी विवश जो थी वह। सायंकाल हुआ पति के चित्र को रातरानी की सुगन्धित माला पहनाने के बाद उसके सामने घी का दीप जलाया और फिर जलायी अगरबत्ती भी। वातावरण रातरानी और अगरबत्ती की मिलीजुली सुगन्ध से भर उठा एकबारगी। हमेशा की तरह सामने बैठकर अपलक निहारने लगी पति के चित्र की ओर सरोजबाला। भरभरा आयी थी आँखे और झर–झर कर गालो पर बहने लगे आँसू बार–बार खीर अर्पित न करने की विवशता से दुखी होने लगा मन। अचानक सनसनाने लगा उनका मस्तिष्क। लगता था जैसे हजारों चीटियाँ रेंग रही हो उनके मस्तिष्क में, कुछ समझ पाती वह कि इसके पहले बहुत दूर से आती हुई एक आवाज सुनाई पड़ी उनको। वह आवाज उनको पहचानी सी लगी। ध्यान से सुनने लगी आवाज को। समझते देर नहीं लगी उन्हें। उनके स्वर्गीय पति की थी वह आवाज शायद काफी दूर से बोल रहे थे वह इसलिए स्वर धीमा था थोड़ा। पति महोदय कह रहे थे सरोज तुम खीर बहुत अच्छा बनाती थी कभी फिर बनाओ ना। फिर थोड़े अंतराल के बाद उनकी आवाज सुनाई दी–समझ गया मैं। सब कुछ मेरी समझ में आ गया। चिन्ता मत करो मेरा मित्र

गांगुली तुमसे मिलेगा वह सब ठीक कर देगा। स्पष्ट है सरोजबाला के मन में सबेरे से ही खीर की भावना प्रगाढ़ हो रही थी इसी कारण स्वर्गीय पति के मन से उनके मन का संबंध स्थापित हो गया था अदृश्य रूप से। जिसे एक संयोग ही कहा जायेगा। सरोजबाला पहले इसके रहस्य को समझ न सकी। उन्होंने उसे भ्रम मान लिया मन का। लेकिन जब वह दूसरे दिन नित्य की भांति पति के चित्र के सामने बैठी तो फिर उनका सनसनाने लगा मस्तिष्क और चीटियाँ जैसी रेंगने लगी और फिर उन्हें दिवंगत पति की आवाज सुनाई देने लगी। इस बार वे कह रहे थे—मुझे मेरी सौतेली माँ ने दूध में विष दिया था। उसी से मेरा शरीर मुझसे छूट गया। इस समय जिस शरीर में मैं हूँ वह बहुत हल्का है लेकिन पहले शरीर जैसा ही है। कब तक इस शरीर में रहना पड़ेगा, बतला नहीं सकता.....।

यह सुनकर सरोजबाला से रहा नहीं गया। वह सिसकते हुए कहने लगी मैं अनाथ एकाकी और आश्रयहीन पड़ी हूँ इतने बड़े मकान में। क्या आप मेरे पास नहीं आ सकते, बोलो नहीं आ सकते.....? अन्तिम शब्द गले में अटक गया और रोने लगी सरोजबाला। पति की विष से मृत्यु हुई थी यह नहीं जानती थी वह। सौतेली माँ ने सारी जायदाद को हड़पने के लिए रास्ता साफ किया था विष देकर उनके पति को। यह समझते देर न लगी सरोजबाला को। कुछ क्षण रूक कर फिर उन्हें पति की आवाज सुनाई दी—अवरूद्ध कण्ठ से वे बोले थे—मेरे पिताजी ने छोटी माँ से छिपाकर मकान तुम्हारे नाम लिख दिया है। शायद यह बात किसी को भी नहीं मालूम है तुमको भी नहीं, मकान का कागज वकील समीर बाबू के पास रखा है। गांगुली को साथ लेकर चली जाना और कागज ले लेना.....।

इस प्रकार मानसिक वार्तालाप प्रायः नित्य होने लगा पति—पत्नी के बीच। जिसके फलस्वरूप बहुत से ऐसे तथ्य सामने आने लगे, जिन पर सहज ही लोगों का विश्वास होना कठिन है। लेकिन परामनोविज्ञान की दृष्टि में अतिमहत्वपूर्ण हैं वे तथ्य। विष मिला दूध पीने के थोड़ी देर बाद श्यामाचरण धरणीधर के सारे शरीर में जलन होने लगी और वे बेहोश हो गये और उसी बेहोशी की स्थिति में उनका शरीर छूट गया

और जब उनको होश आया और आन्तरचेतना जागृत हुई तो भौतिक जीवन उनके लिए विस्मृत हो चुका था। अब उनकी आत्मा सूक्ष्म शरीर में थी और थी सूक्ष्म जगत में। उनके लिए सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म जगत ही सब कुछ था। लेकिन सरोजबाला की ओर से जब उनका मानसिक संबंध जुड़ा तो तत्काल भौतिक जीवन की सारी स्मृतियाँ जागृत हो उठी एकबारगी उनकी। सांसारिक मोहमाया से मुक्त हुई उनकी आत्मा एक बार फिर उसी मोहमाया से पुनः ग्रस्त हो गयी वह। धीरे–धीरे जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक की सारी घटना एक के बाद एक उभरने लगी उनके सामने। इससे परामनोविज्ञान का एक सिद्धान्त स्वयं प्रमाणित हो जाता है कि मृतात्मा को अपने भौतिक जीवन की स्मृति नहीं रहती। अपनी वर्तमान स्थिति को ही सत्य समझती है लेकिन कोई उस मृतात्मा का सगा–संबंधी अथवा उसके परिवार का सदस्य उसके संबंध में बराबर कुछ न कुछ सोचता है, उसकी इच्छा, उसकी आवश्यकता, उसके रहन–सहन, उसकी दिनचर्या उसकी आवश्यकता के विषय में सोचता, विचारता अथवा किसी को बतलाता है। उसकी वस्तुओं का उपयोग करता है। उसकी किसी गुप्त बात को प्रकट करता है उसके चित्र को अपने पास रखता है अथवा अपने शयनकक्ष में रखता है। उसे पूजा घर में रखकर उसकी पूजा करता है और उसकी इच्छाओं के विरूद्ध कोई काम करता है, तो इस अवस्था में उस व्यक्ति से स्वयं अपने आप मृतात्मा का अगोचर संबंध स्थापित हो जाता है। जिसका परिणाम यह होता है कि वह मृतात्मा इस संसार के लिए जाग जाती है और उसको अपना सांसारिक जीवन स्मरण हो आता है। इतना ही नहीं जीवन की एक–एक घटनाएँ उसके सामने उभरने लग जाती है।

जागृत मृतात्माएँ- परामनोविज्ञान के इस सिद्धान्त का भी पुष्टिकरण होता है कि ऐसी जागृत मृतात्माएँ अपने परिवार के सदस्यों अथवा अपने सगे–संबंधियों से अपना मानसिक सम्पर्क स्थापित कर लेती हैं और अपने इच्छानुसार उनको और उनके जीवन को संचालित भी करती हैं और इतना ही नहीं उनके कर्म क्षेत्र में समय समय पर उचित सहयोग भी देती हैं लेकिन जबतक सब कुछ उनके अनुकूल होता रहता है, तबतक तो ठीक है और जहाँ उनके प्रतिकूल और उनकी इच्छा के

विरूद्ध हुआ कुछ तो समझिए सारी स्थिति बिगड़ते देर न लगेगी। सब कुछ उलट–पुलट जायेगा। इस सन्दर्भ में परामनोविज्ञान यह भी कहता है कि इस प्रकार की जागृत मृतात्माएँ सूक्ष्म शरीर में रहते हुए भी अपने आपको स्थूल शरीर में जीवित समझने लग जाती हैं और रहने लग जाती हैं अपने घर परिवार के बीच। ऐसी मृतात्माओं को उनकी वस्तुस्थिति को समझना अति कठिन होता है और उनसे पिण्ड छुड़ाना भी होता है, कठिन। एक बात और वह यह कि वे तो रहती ही हैं अपने परिवार में। बाद में धीरे–धीरे उनसे प्रभावित होकर अन्य कई अतृप्त मृतात्माएँ भी रहने लग जाती हैं उनके साथ। फिर तो एक मठ बन जाता है वह स्थान मृतात्माओं का। जिसका परिणाम यह होता है कि प्रचलित शब्दों में उस मकान या उस स्थान को 'भुतहा' कहा जाने लगता है। ऐसे भुतहे मकानों में अपने कुत्सित विचारों और इच्छाओं अथवा वासनाओं को प्रकट करने के लिए वे मृतात्माएँ कभी–कभी ईट पत्थर के टुकड़ों और मल–मूत्र की वर्षा भी करती हैं। कभी–कभी मकान के किसी स्थान में आग लगा देती हैं कपड़ों में आग लगा देना, बर्तनों और अन्य सामानों को इधर–उधर फेंक देना और तोड़फोड़ करना मृतात्माओं के आक्रोश को प्रकट करता है। ऐसा ही हुआ था अन्त में सरोजबाला के साथ सब कुछ। उनके पति श्यामाचरण धरणीधर की आत्मा आकर रहने लगी थी मकान में। बाद में उनके मानसिक आकर्षण के वशीभूत होकर उनकी कई परिचित मृतात्माएँ भी आकर रहने लगी थी मकान में। धीरे–धीरे बाद में वह किलानुमा मकान मृतात्माओं का अखाड़ा बन गया जो सम्भवतः आज भी है।

परामनोविज्ञान के अध्ययन के तीन प्रकार- (1) टेलीपैथी (दूर से किसी के विचारधारा का अनुभव अथवा उनके विचार का ज्ञान)। (2) क्लीयर वोवेन्स (भविष्य दर्शन) (3) प्रिऑग्नीशन (पूर्व ज्ञान एवं अनिश्चित पूर्वाभास) ये तीनों प्रकार इन्द्रियातीत अनुभव के हैं। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है कि इन्द्रियातीत अनुभव तभी होता है जब अचेतन की शक्ति कुछ विशेष मात्रा में चेतन को उपलब्ध होती है। यहाँ यह भी समझ लेना है कि परामनोविज्ञान के तीन मुख्य भाग हैं–(1)

इन्द्रियातीत अनुभव। (2) मानसिक शक्ति का बाह्य प्रकाश। (3) देहहीन व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व।

इन्द्रियातीत अनुभव के संबंध में यह कहना आवश्यक है कि इस पर योग, कुछ नशीली औषधियों एवं सम्मोहन का प्रभाव पड़ता है। इसी आधार पर इसका अनुसंधान किया जा रहा है। **भविष्य दर्शन**-इसके द्वारा जीवित और मृत दोनों प्रकार के व्यक्तियों के सुख–दुख की घटना का दर्शन किया जा सकता है। **पूर्वाभास**-इसके द्वारा व्यक्ति को स्वप्न अथवा अन्य किसी माध्यम से आने वाली घटना का पूर्वाभास मिलता है। अब मानसिक शक्ति के बाह्य प्रकाश को लें। इसमें वस्तु पर मन का आधिपत्य आता है यानी मन की इच्छाशक्ति से सुसम्भव और अघटित को सम्भव और घटित बना देना। देहीतीत यानी देहहीन व्यक्ति का प्रतिनिधित्व इसमें आत्मा का रहस्य शामिल है। पिछले जन्म का वर्णन करना इसी के अन्तर्गत है।

दूरबोध : एक प्रत्यक्ष अनुभव- एक दिन सायंकाल के समय बेलूर मठ में बैठा था गंगातट पर मौन साधे चुपचाप उसी समय मेरे एक संन्यासी मित्र वहां आ गये। नाम था युक्तेश्वर चैतन्य। योग के उच्चतम् अवस्था प्राप्त बहुत बड़े अनुभवी साधक थे [redacted]। अवस्था चालीस से अधिक नहीं थी। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक और प्रभावशाली था। सुदूर बैठे किसी भी व्यक्ति के विचारों अथवा भावनाओं को तत्काल जान समझ जाते थे महाशय। उनका कहना था कि इस क्रिया में योग का विशेष महत्व है। यहाँ योग से मेरा तात्पर्य है– मन और प्राण का योग। शरीर में मन अपने क्षेत्र में और प्राण अपने क्षेत्र में क्रियाशील है। अपने–अपने स्थान पर दोनों स्तम्भूशक्ति है लेकिन विशेष यौगिक क्रिया द्वारा मन और प्राण का योग होता है तो उसके परिणामस्वरूप एक विशेष प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तंरगों का अविर्भाव होता है जिसे वैज्ञानिक भाषा में अल्फा तरंग कहते हैं। अल्फा तरंगों की गति एक सेकेण्ड में 1 लाख 50 हजार मील से भी अधिक होती है लेकिन योगी के मन और प्राण की संयुक्त शक्ति के प्रभाव से अल्फा तरंगों की गति सूक्ष्म और अधिक हो जाती है। जिसके फलस्वरूप इच्छित व्यक्ति के मस्तिष्क से निकलने वाली साधारण विद्युत चुम्बकीय

तरंगों से वह टकराती है और उसके माध्यम से उस व्यक्ति के भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों काल के विचारों और भावों को ग्रहण कर तत्काल साधक के मस्तिष्क में पहुँचा देती है और साधक तत्काल यह जान समझ लेता है कि उस व्यक्ति ने भविष्य में क्या–क्या सोचा था ? क्या–क्या विचार किया था और कौन–कौन से भाव उत्पन्न हुए थे उसके मन में। इसी प्रकार भूतकाल में उसके कैसे विचार और भाव रहे होंगे और इस समय इसके भीतर कौन सा विचार चल रहा है और कौन–कौन सा भाव उत्पन्न हो रहा है।

साधक युक्तेश्वर चैतन्य- युक्तेश्वर चैतन्य काशी के एक मठ में रहते थे लेकिन उस समय अपने किसी कार्य से आये हुये थे कलकत्ता। वास्तव में युक्तेश्वर चैतन्य को कलकत्ता के एक सेठ मारवाड़ी से मिलना था। उस सेठ का नाम था मोहनलाल कन्नौजिया। वह युक्तेश्वर चैतन्य का परम भक्त था। उस समय कलकत्ता हाईकोर्ट में उसके एक मुकदमें का फैसला होने वाला था। वैसे तो कानून की दृष्टि से मुकदमे में हारने ही वाला था वह। लेकिन उसे पूर्ण विश्वास था कि युक्तेश्वर चैतन्य की कृपा से अवश्य विजय प्राप्त कर लेगा और लाखों की सम्पत्ति उसकी अपनी हो जायेगी।

काशी में बैठे ही बैठे युक्तेश्वर चैतन्य सेठ के विचारों और भावों को समझ गये थे। उनके प्रति सेठ की श्रद्धा और विश्वास भंग न हो इसलिए कलकत्ता आये थे वह। क्या सेठ मोहनलाल कन्नौजिया का श्रद्धा और विश्वास बना रहेगा ? केस जीत जायेगा वह ? मेरे इस प्रश्न को सुनकर पहले तो हँसे युक्तेश्वर चैतन्य और बोले–क्यों नहीं! इसीलिए तो मेरा आना हुआ है। कन्नौजिया तो हारने वाला था। जज ने तो उसके विपरीत पहले ही फैसला कर रखा है।

तब क्या होगा ?

होगा क्या कन्नौजिया ससम्मान विजयी होगा– जम्हाई लेते हुए युक्तेश्वर चैतन्य बोले।" दूसरे दिन हाईकोर्ट का फैसला हो गया। सेठ मोहनलाल कन्नौजिया जीत गया लाखों रुपये के जायदाद का मुकदमा। युक्तेश्वर चैतन्य ने [redacted] अपने

[illegible] दिया था एक दिन पूर्व। फिर जो होना था वही हुआ। अब मैं युक्तेश्वर चैतन्य को श्रद्धा भाव से स्वामीजी कहकर सम्बोधित करने लगा था। तीसरे दिन स्वामीजी के साथ मैं भी कलकत्ता से वापस लौटने वाला था। पंजाब मेल का समय हो गया था लेकिन समय बहुत ही कम था। हावड़ा पुल पर हमारी कार भीड़ में फंस गयी। मन ही मन मैं सोचने लगा—अब क्या होगा गाड़ी छूट जायेगी, इसमें सन्देह नहीं। मेरे बगल में पीछे स्वामीजी बैठे थे निर्विकार जैसे उनको कोई चिन्ता ही न हो। सम्भवतः मेरे मन के विचार और भाव को समझ गये थे वह। धीरे से बोले जबतक हम दोनों यथास्थान गाड़ी में बैठ नहीं जायेंगे तबतक गाड़ी नहीं चलेगी समझे न चुपचाप बैठो। माँ काली का स्मरण करो।

स्टेशन पहुँचकर स्तब्ध रह गया मैं एकबारगी। पंजाब मेल प्लेटफार्म पर खड़ी था। पूरे एक घंटे लेट थी वह। जब हम लोग अपने—अपने बर्थ पर बैठ गये और जब सेठ मोहनलाल कन्नौजिया स्वामीजी का चरणस्पर्श कर चला गया तो कुछ क्षण बाद गाड़ी भी चल पड़ी। सिर घुमाकर मैंने देखा स्वामीजी की ओर मुस्करा रहे थे वह उस समय। समझते देर न लगी दूरबोध का प्रयोग किया था स्वामीजी ने इसमें सन्देह नहीं। इसी प्रसंग में स्वामीजी के एक और चमत्कार को यहां प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ मैं। एक नौकरी के लिए आवेदन पत्र दिया था। साक्षात्कार भी सम्पन्न हो चुका था। कुछ ऐसे कारण थे जिनके फलस्वरूप नौकरी मिलने की आशा क्षीण थी। सावन भादों का महीना था। आकाश में बादल घिरे हुए थे। हल्की—हल्की वर्षा हो रही थी। मैं अपने कमरे में बैठा विचार मग्न था और तभी स्वामीजी आ गये और बैठते ही बोले महाशय क्या नौकरी के संबंध में सोच रहे हो ? यह सुनकर चौंक पड़ा मैं। सचमुच नौकरी के विषय में ही सोच विचार कर रहा था उस समय मैं।

अरे बन्धु! शान्त बैठो माँ काली का स्मरण करो सब ठीक हो जायेगा—मुस्कराते हुए स्वामीजी बोले।''

असम्भव है स्वामीजी—चेहरे पर हाथ फेरते हुए मैंने कहा।

हाँ! असम्भव तो है, लेकिन बन्धु उस असम्भव को सम्भव कर दिया मैंने। चार दिन बाद नियुक्ति पत्र प्राप्त हो जायेगा तुझे समझे न।

सचमुच स्वामीजी की वाणी अकाट्य सिद्ध हुई यथासमय नियुक्ति पत्र मुझे मिला और उसके एक महीने बाद पदभार भी ग्रहण कर लिया मैंने। कहने की आवश्यकता नहीं दूरबोध का ही चमत्कार था वह।

कितना अद्भुत है मानव मन- विचारपूर्वक यदि देखा जाय तो मानव मन कैसा अद्भुत है, असीम गति, असीम दिशा और असीम रूप। विश्व का कोई ऐसा स्थल नहीं जहाँ उसकी पहुँच न हो और कोई विषय नहीं जो उसकी परिधि में न आता हो और कोई समय नहीं जो उसकी गति से परे हो। मनुष्य कभी–कभी अपने मन के विस्मयकारी क्रियाकलापों को देखकर स्वयं भी चकित होकर सोचने लगता हैं कि क्या यह सब उसके मन की ही कल्पना है ? मानव मन की इन समस्त भूमिकाओं के सम्मिलित रूप को ही मनोविज्ञान की संज्ञा दी गयी है। जिसकी तीन शाखायें हैं स्वाभाविक, अस्वाभाविक और परास्वाभाविक। इनमें स्वाभाविक और अस्वाभाविक मनोविज्ञान के अध्ययन को स्थान प्राप्त है परन्तु परास्वाभाविक अपने मूल रूप में ही अभी तक वैज्ञानिकों के लिए माथापच्ची का विषय बना हुआ है और यही परामनोविज्ञान का विषय है। मनोविज्ञान का विषय जहां समाप्त होता है वहां परामनोविज्ञान का प्रारम्भ होता है।

इस समय विश्व के सभी प्रमुख देशों, विशेषकर रूस, अमेरिका इंग्लैण्ड, हॉलैण्ड में परामनोविज्ञान पर अनुसन्धान कार्य हो रहा है। लगभग इस समय पांच सौ से अधिक वैज्ञानिक गंवेषणा में लगे हुए हैं।

आज से चालीस–पैंतालीस साल पहले रूस में परामनोविज्ञान को कल्पना से अधिक कुछ नहीं समझा जाता था। परन्तु आजकल रूस में अनेक वैज्ञानिक परामनोविज्ञान के प्रयोगों में अतिव्यस्त हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि रूस में हो रहे इन प्रयोगों में जीवशास्त्री, गणितशास्त्री और भौतिकविद् भी भाग ले रहे हैं। कोई मनोवैज्ञानिक उससे सम्बद्ध नहीं है। वे सब लोग इस प्रश्न का–कि कुछ लोगों में दूरबोध, दूरविचार संप्रेषण और अपरिचित को इच्छानुसार प्रभावित करने की अलौकिक

योग्यता क्यों और कैसे आ जाती है? युक्तिसंगत उत्तर जानने का प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु उनको कौन समझाये कि सारी आलौकिक योग्यता के मूल में अचेतन मन की ही शक्ति काम करती है। बस, प्रयास यह होना चाहिए कि वह शक्ति चेतन मन को कैसे और किस प्रकार उपलब्ध हो ? फिर तो सिद्धियाँ ही सिद्धियाँ हैं जिनको तांत्रिक सिद्धि कहो या कहो योग सिद्धि।

रहस्यमय साधक गोपाल ब्रह्मचारी- परामनोविज्ञान और उससे संबंधित तिमिराच्छन्न रहस्यमय विषयों के अन्वेषण के सिलसिले में जिन सिद्ध साधकों और अनुभवी लोगों से मेरी भेंट हुई उनमें एक थे [redacted] गोपाल ब्रह्मचारी अत्यन्त साधु प्रवृत्ति और एकान्तवासी प्रकृति के थे। काशी के नगवा घाट से थोड़ी दूर पर बिलकुल निर्जन इलाके में एक साधारण सी झोपड़ी में रहते थे महाशय। इस संसार में सभी प्रकार के लोग हैं। जिनमें से बहुत से लोगों के जीवन का उद्देश्य केवल स्वयं मात्र के लिए ही होता है। जबकि इस संसार में कुछ ऐसी विभूतियाँ भी निवास करती हैं जो आध्यात्मिक रूप से मानव सेवा को ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लेती है। व्यक्तिगत स्वार्थों से दूर उनकी यह कर्मशीलता उनको इतना सम्मानजनक और शक्तिशाली बना देता है कि कभी–कभी वह एक सामान्य व्यक्ति न रहकर एक अवतार का रूप धारण कर लेते हैं और उनमें अपने आप अध्यात्म की गहरायी उत्पन्न हो जाती है जो केवल कल्पना मात्र से दूसरे का दुख हरण कर लेते हैं। गोपाल ब्रह्मचारी ऐसे ही एक महापुरुष थे इसमें इसमें सन्देह नहीं। गोरा रंग, लम्बा कद, बड़ी–बड़ी आँखे, चौड़ा ललाट कन्धे तक बिखरी स्याह केशराशि, हल्की दाढ़ी मूंछ। गले में रूद्राक्ष की माला, शरीर पर धोती और दुपट्टा और पैरों में चप्पल। यही था व्यक्तित्व गोपाल ब्रह्मचारी का। आयु उनकी चालीस से अधिक नहीं थी।

ब्रह्मचारीजी बहुत ही कम बोलते थे। बारहों मास अपनी कुटिया में रहते थे। केवल भोर के समय गंगा स्नान आदि नित्य क्रिया के लिए बाहर निकलते थे वह। कब खाते थे और क्या खाते थे और कब सोते थे–किसी ने भी देखा सुना नहीं था अभी तक। उनसे मेरी आध्यात्मिक बातें होती थी और इसी सिलसिले में बहुत सी ऐसी विचित्र और

रहस्यमयी बातें ज्ञात हुई, जिन पर सहज ही विश्वास करना कठिन है। अतः उन बातों की चर्चा आगे करूँगा। पहले यह बतला देना चाहता हूँ कि गोपाल ब्रह्मचारी के मस्तिष्क की विद्युत चुम्बकीय तरंगे अति शक्तिशाली और अति तीव्रगामी थी। निश्चय ही उन्हीं तरंगों से अपनी कुटिया को गर्मी में शीतल और जाड़े में गर्म रखते थे। इसके अलावा मैंने एक बात का यह भी अनुभव किया कि कुटिया के वातावरण में हर समय विभिन्न [redacted] बिखरी हुई रहती थी। शान्ति का साम्राज्य तो था ही लगातार कई घण्टों तक बैठा रहता था मैं कुटिया में ब्रह्मचारीजी के सान्निध्य में। उस अवस्था में उनके [redacted] तरंगों का मैं प्रत्यक्ष अनुभव करता था अपने मस्तिष्क में। आश्चर्य की बात तो यह थी कि विशेषकर साधना अथवा अध्यात्म संबंधी विषयों की चर्चा वाणी के द्वारा नहीं करते थे महाशय। विषयों को तरंगों में परिवर्तित कर मेरे मस्तिष्क को संप्रेषित कर दिया करते थे जिन्हें मेरा मस्तिष्क तत्काल ग्रहण ही नहीं कर लेता था बल्कि उसकी स्मृति भी बन जाती थी स्थायी रूप में। अभी भी उनके द्वारा संप्रेषित विषय ज्यों के त्यों स्मृति रूप में विद्यमान हैं मेरे मस्तिष्क की ज्ञान कोशिकाओं में।

रहस्यमय महात्मा प्रज्ञानन्द- गोपाल ब्रह्मचारी वैशाली के निवासी थे। परिवार में केवल एक वृद्ध महिला थी जो दूर के रिश्ते में दादी लगती थी। पांच वर्ष की अवस्था में ही गांव के एक शिव मंदिर के पुजारी बन गये थे गोपाल ब्रह्मचारी। गांव वाले मंदिर में जो दान दक्षिणा चढ़ाते वही आय का एकमात्र मूल स्रोत था उनका। दादी के देहान्त हो जाने के बाद उनकी वृत्ति स्वतंत्र हो गयी। साधु सन्यासियों जैसा व्यतीत करने लगे जीवन। अधिकांश समय शिव मंदिर में ही बीतने लगा उनका।

अब आगे की कथा सुनिये स्वयं गोपाल ब्रह्मचारी के द्वारा.....उस समय बीस बाइस वर्ष का रहा होऊँगा मैं। सावन भादों का महीना था। पिछले तीन चार दिनों से लगातार वर्षा हो रही थी। नित्य की भांति पूजा आरती करने के बाद मंदिर के दालान में बैठा था मौन और उसी समय लम्बी चौड़ी कद काठी के महात्मा न जाने किधर से आकर खड़े

हो गये मेरे सामने। आश्चर्य की बात तो यह थी कि उस भयंकर वर्षा में भी जरा–सा भी भींगे नहीं थे वह। बड़ा ही अद्‌भुत और आकर्षक व्यक्तित्व था उस अपरिचित महात्मा का इसमें सन्देह नहीं। मैंने सिर उठाकर महात्मा की ओर देखा। वे मन्द–मन्द मुस्कराते हुए गम्भीर स्वर में बोले–तेरा नाम गोपाल है न ?

मैंने सिर हिलाकर कहां–हाँ! मेरा ही नाम है गोपाल।

महात्मा पूर्ववत् गम्भीर स्वर में बोले–तो तू यहाँ क्या कर रहा है? मेरे साथ चल, तुझे लेने आया हूँ मैं।

भौचक्का–सा महात्मा का मुंह देखने लगा मैं। कुछ सोचूँ समझूँ कि उसके पहले ही मेरा हाथ खींचकर मुझे उठाया और लगभग खींचते हुए ले चले अपने साथ महात्मा। लगभग अर्धचेतना की अवस्था थी मेरी उस समय। एक प्रकार से ज्ञान शून्य ही हो गया था मैं और चेतना लौटी तो अपने आपको एक ऐसे स्थान पर पाया जहां एक ओर पहाड़ों का सिलसिला था और दूसरी ओर था घने जंगलों का विस्तार। एक काफी लम्बा–चौड़ा कच्चा तालाब था। तालाब का पानी स्वच्छ और निर्मल था। तालाब के किनारे ही दस बारह आम, पाकड़ और जामुन के घने पेड़ थे जिसके नीचे एक बड़ी सी कुटिया थी घासफूस की। कुटिया के सामने लम्बा–चौड़ा पत्थर का एक चबुतरा था। वातावरण में घोर निस्तब्धता बिखरी हुई थी। अपने आप में गहन शान्ति का कर रहा था अनुभव। वह कौन सा स्थान था यह तो मैं नहीं बतला सकता, लेकिन था अत्यन्त रमणीक और प्राकृतिक छटाओं से भरा हुआ। महात्मा का नाम था प्रज्ञानन्द। आयु कितनी थी यह बतला नहीं सकता लेकिन आगे सब कुछ आश्चर्यजनक ढंग से स्पष्ट हो गया। जब मैं चैतन्य हुआ तो महात्मा मेरे सामने बैठे थे और [redacted] मेरे [redacted] उसी स्थिति में अपने जीवन [redacted]। एकाएक महात्मा प्रज्ञानन्द का गम्भीर स्वर सुनाई दिया मुझे। वे कह रहे थे समझ में आ गया न सब कुछ ?

हाँ! गुरुदेव और मैंने झुककर दोनों हाथों से गुरुदेव के चरणों को गह लिया। आँखों से गल–गल कर आँसू बिखरने लगे चरणों पर।

स्वामी प्रज्ञानन्द की आयु तीन सौ वर्ष थी। दो सौ पचास वर्ष पूर्व उन्होंने गुरुदीक्षा दी थी मुझे इसी काशी के केदारेश्वर खण्ड में। मैंने देखा उस समय स्वामी युक्तेश्वर चैतन्य असहज हो उठे थे। कण्ठ अवरूद्ध होने लगा था और उनकी आँखों में भरभरा आये थे आँसू।

गोपाल ब्रह्मचारी का दूसरा जन्म और साधना- दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् गुरुदेव के साथ हिमालय चला गया और उनके निर्देशन में योग की उच्चतम साधना की मैंने और साधना काल में ही शरीर से मुक्त हो गया मैं। उस समय मेरी अवस्था साठ वर्ष के लगभग थी लेकिन गुरुदेव पूर्ववत् अपने पार्थिव शरीर में बने रहे। प्रकृति के नियम के अनुसार एक गरीब ब्राह्मण कुल में जन्म लिया मैंने। गुरुदेव मुझे खोजते हुए मेरे घर पर पहुँच गये। उस समय मेरी अवस्था पांच वर्ष की थी। मेरे पिता अध्यात्म प्राण और मनस्वी जीव थे। जब उनको यह ज्ञात हुआ कि स्वामी प्रज्ञानन्द मेरे पूर्व जन्म के गुरु हैं और मुझे लेने आये हैं आगे की साधनामार्ग पर अग्रसर करने के लिए तो उन्होंने प्रसन्नचित्त गुरुदेव को अर्पित कर दिया मुझे और फिर मैं पहुँच गया गुरुदेव के साथ हिमालय। पिछले जन्म में जहाँ साधना भंग हुई थी, वहाँ से आगे शुरू हो गयी वह। जिसके फलस्वरूप तीस वर्ष की अवस्था में योग की कई दुर्लभ सिद्धियों का अधिकारी हो गया मैं। अब मेरे लिए पार्थिव शरीर का न मूल्य रह गया था और न तो महत्व ही। प्रायः अपने सूक्ष्म शरीर में ही रहने का अभ्यासी हो गया था मैं। बड़ा ही अद्‌भुत और रोमांचकारी अनुभव होता था मुझे सूक्ष्म शरीर में। सूक्ष्म शरीर द्वारा आकाश मार्ग से दूर–दूर की यात्रा अल्प समय में ही कर लेता था मैं। बैठे ही बैठे संसार के किसी स्थान और वहां के दृश्यों को स्पष्ट देख लेता था। कहाँ कौन सी घटना घट रही है उसे भी अपने मानस चक्षु से देख लेता था। कहाँ क्या होने वाला है ? यह जान लेना मेरे लिए सहज था। दैवी अथवा प्राकृतिक आपदा का पूर्वाभास तुरन्त हो जाता था मुझे। सूक्ष्म शरीर से भी कम लाभ नहीं हुआ मुझे। बहुत लाभ हुआ और संसार का बहुत सारा प्राप्त हुआ ज्ञान भी। उसका भीतरी रूप भी देखा और बाहरी भी। मानव और मानव जीवन कितना मूल्यवान महत्वपूर्ण और दुर्लभ है इसे भी समझा लेकिन यह देखकर भी भारी क्लेश हुआ

कि मनुष्य अपने आपको, अपने जीवन को और उसके मूल्य को कभी भी जान समझ नहीं पाता। बेहोशी में जन्म लेता है। पूरा जीवन बेहोशी में जीता है और बेहोशी में ही एक दिन संसार और शरीर को छोड़कर चला भी जाता है हमेशा–हमेशा के लिए।

थोड़ा रूककर आकाश की ओर देखते हुए ब्रह्मचारीजी आगे कहने लगे–जैसे फूल और उसकी सुगन्ध में भेद करना कठिन है उसी प्रकार योगी और उसकी सिद्धि में भी भेद करना कठिन है। फूल में सुगन्ध स्वयं उत्पन्न हो जाता है। जैसे फूल का नैसर्गिक गुण है सुगन्ध वैसे ही योग का भी नैसर्गिक गुण है सिद्धियाँ। जैसे फूल यह नहीं जानता है कि उसमें सुगन्ध है उसी प्रकार एक परम सिद्ध अवस्था प्राप्त योगी भी यह नहीं जानता है कि सिद्धियों को उपलब्ध है वह। लेकिन उसकी चरम परिणति है निरपेक्षता और जिसके गर्भ से जन्म लेता है परम वैराग्य।

एक दिन परम वैराग्य को हो गया उपलब्ध मैं। मेरी आन्तरिक स्थिति को समझ गये गुरुदेव समाधि की भाषा में बोले–जाओ कुछ दिन संसार में रहो। उसी समय दस हजार फुट ऊपर हिमालय में स्थिति गुरुदेव की गिरिगुहा से निकल कर नीचे संसार में आ गया मैं। कोई अपना घर परिवार तो था नहीं इसलिए श्मशान को ही बना लिया अपना निवास स्थान। श्मशान संसार का अन्त है। उससे अच्छा निवास मेरे लिए और कौन हो सकता था ?

सांझ का समय था। श्मशान में बिखरी हुई थी उदासी, एक अबूझ सा सन्नाटा छाया हुआ था वातावरण में। मैं अपनी झोपड़ी से निकल कर टहल रहा था। अचानक एक खोपड़ी मेरे पैरों से टकरा गयी। उस खोपड़ी को उठा लिया मैंने। कुछ देर तक न जाने क्यों देखता रहा उसकी ओर एकटक और फिर उसे अपनी झोपड़ी में ले आया। वह खोपड़ी हमेशा मेरे पास रहती थी। एक प्रकार से मेरी संगिनी बन गयी थी वह खोपड़ी। कई लोगों ने कहा–खोपड़ी क्यों रखे हैं ? फेंक दें उसे। बड़ी घिनौनी और भद्दी लगती है। किसलिए रखे हैं, समझ में नहीं आता।

आता भी कैसे? संसार का प्रभाव सभी पर पड़ता है। संसार किसी को नहीं छोड़ता चाहे वह योगी हो या हो भोगी। जब कभी संसार का

प्रभाव मुझ पर पड़ता था तो मैं सोचने लगता था कि "मैं कुछ हूँ और जब विचार मेरे भीतर उठता था उस समय मैं उस खोपड़ी की ओर अपलक देखने लगता था और सोचने लगता था कि कभी आज नहीं तो कल मेरी भी खोपड़ी मरघट में पड़ी रह सकती है धूल और कीचड़ में सनी हुई लोगों की ठोकरे भी लगेगी। कोई रूकेगा नहीं क्षमा मांगने के लिए, कोई यह नहीं जानेगा कि यह खोपड़ी किसी सन्त महात्मा की है। वह तो समझेगा बस किसी की खोपड़ी होगी। यह भाव आते ही मैं अपने आप में शून्यता का अनुभव करने लगता था और उस समय अपनी वास्तविक स्थिति का भी स्मरण हो आता "मैं मरणधर्मा" हूँ। यह शरीर थोड़े समय के लिए है मेरी सीमाएँ है। मेरे ज्ञान की सीमा है। मेरी साधनात्मक उपलब्धियों की सीमा है। मेरे सामर्थ्य की भी सीमा है। मैं स्वतंत्र नहीं हूँ परतंत्र हूँ। चारो तरफ से घिरा हूँ और सब ओर से आश्रित हूँ। मेरी कोई स्वतंत्र इकाई नहीं है। कहने की आवश्यकता नहीं सम्भवतः इन्हीं सब की प्रतीति के लिए भेजा था गुरुदेव ने मुझे संसार में।

मेरे शरीर की सीमा समाप्त हो गयी थी अब।

उस दिन श्मशान में एक साथ कई चिताएँ जल रही थीं धूँ–धूँ कर। श्मशान के सामने ही मेरी कुटिया थी। मैं अपनी कुटिया में लेटा हुआ उन जलती हुई चिताओं को देख रहा था और देखते ही देखते अपनी पार्थिव काया से मुक्त हो गया मैं सदैव के लिए। बहुत समय तक सूक्ष्म शरीर में बना रहा मेरा अस्तित्व। उसी अवधि में मेरा साक्षात्कार कई सूक्ष्म शरीरधारी दिव्य महापुरुषों, महात्माओं से हुआ और उनकी प्रेरणा से दिव्य महापुरुषों और सिद्ध साधकों के लोक (वैश्वानर जगत) की भी यात्रा की मैंने। बड़ा ही अद्भुत और अवर्णनीय अनुभव हुआ मेरी आत्मा को। अभी मैं ऐसी योगस्थिति में नहीं था कि जन्म और मृत्यु से सदैव के लिए मुक्त हो सके मेरी आत्मा। जन्म लेना अनिवार्य था उससे मुक्ति कहाँ ? जिस शरीर का आश्रय लेकर मेरी आत्मा इस संसार में अवतरित हुई–वह आपके सामने है।

गुरुदेव से आन्तरिक संबंध और मस्तिष्क की विद्युत चुम्बकीय तरंगे– क्या आपको अपने पिछले जन्मों की साधना उसके क्रम और उसके अनुभव स्मरण हैं ? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्मचारीजी थोड़ा हँसकर

बोले– मेरे शरीर की हर बार मृत्यु हुई है और संस्कार के अनुभव भी। हर बार नया शरीर और नया वातावरण उपलब्ध हुआ है और उन दोनों के अनुसार मन में भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन हुआ है हर बार। लेकिन शरीर, मन के अतिरिक्त एक और अस्तित्व है और वह है आत्मा का अस्तित्व। आत्मा, नित्य है, वह परमात्मा का अंग है। शरीर और मन के द्वारा हुए सभी प्रकार के कर्मों का एकमात्र साक्षी है वह और उसी साक्षी भाव से संस्कार का जन्म होता है। आत्मा के साथ संस्कार सदैव रहता है। आत्मा में कभी भी और किसी काल में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। परम अवस्था प्राप्त योगी न शरीर में जीता है और न तो जीता है मन में। वह जीता है आत्मा में। उसकी समस्त चेतना उसकी आत्मा में रहती है और इसीलिए पिछले जन्मों का कुछ भी विस्मृत नहीं होता। सब कुछ पूर्ववत् रहता है। आत्मा एक ऐसा तत्व है जिसमें पिछले न जाने कितने जन्म–जन्मान्तरों की कथाएँ संकलित रहती हैं। जो मन को तोड़कर अ–मन की अवस्था में उपलब्ध हो जाता है। वही आत्म साक्षात्कार कर पाता है। जिसका परिणाम है पिछले जन्म–जन्मान्तरों की सारी कथाओं को जानना और यही कारण है कि मैं अपने पिछले जन्मों के साधना क्रम और उसकी उपलब्धियों से पूर्ण परिचित हूँ। इतना ही नहीं जब से गुरुदेव ने मुझे दीक्षा दी है, तब से लेकर अबतक मस्तिष्क के विद्युत चुम्बकीय तरंगों द्वारा गुरुदेव के अस्तित्व से मेरा अगोचर संबंध बराबर बना हुआ है। पिछले जन्म में जहाँ साधना क्रम भंग हुआ था वहां से आगे की साधना का निर्देशन बराबर उपलब्ध होता रहता है मुझे। ब्रह्मचारीजी कुछ सोचते हुए आगे बोले–स्थूल शरीर को छोड़कर अन्य किसी भी शरीर द्वारा किसी भी प्रकार की साधना सम्भव नहीं है देव शरीर से भी नहीं। देवताओं को भी कोई साधना करनी होती है तो वह स्थूल शरीर का आश्रय लेते हैं। तात्पर्य यह है कि सभी साधनाएँ मानव शरीर द्वारा ही साध्य है और उसी में उसकी गरिमा है और है महत्व। गुरु प्रदत्त साधना के मार्ग में जन्म मृत्यु आदि बाधक नहीं है। पिछले जन्म में जहाँ साधनाक्रम भंग हुआ है वहाँ से आगे शरीर उपलब्ध होते ही गुरु कृपा से प्रारम्भ हो जाती है यह क्रम तबतक चलता है जबतक साधना अपनी

चरमसीमा को उपलब्ध नहीं हो जाती है।

क्या आपके गुरुदेव अभी भी पार्थिव काया में हैं ?

नहीं आकाश की ओर देखते हुए बोले ब्रह्मचारीजी–दो वर्ष पूर्व महासमाधि स्वीकार कर ली उन्होंने। समाधि के पूर्व मुझसे मिलने के लिए यहाँ आये थे।

मिलने पर क्या कहा था ? उत्सुक होकर पूछा मैंने। कहेंगे क्या ? पूरे तीन सौ वर्षों का नाता रिश्ता हमेशा–हमेशा के लिए टूटने जा रहा था। मेरे सिर पर अपना हाथ रखते हुए सहज भाव से गम्भीर स्वर में गुरुदेव बोले–पार्थिव शरीर का अपना प्राकृतिक नियम है। उस नियम का पालन कभी न कभी मुझ जैसे लोगों को भी करना पड़ता है। पार्थिव शरीर से मुक्त होने जा रहा हूँ सदैव के लिए। अब मैं भू–लोक से सिद्ध लोक जा रहा हूँ। वहाँ मेरी आत्मा कबतक निवास करेगी यह स्पष्ट नहीं है अभी, किन्तु तुम्हारी आत्मा से मेरी आत्मा का नित्य संबंध बना रहेगा। लेकिन उससे तुम्हारे किसी प्रश्न का न उत्तर दे सकूँगा और न तो तुम्हारी किसी शंका का समाधान ही कर सकूँगा मैं।

इसके लिए तुम्हें एक माध्यम की आवश्यकता पड़ेगी। बिना माध्यम के किसी भी लोक–लोकान्तर के प्राणियों से कोई भी साधक सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकता।

यह सब सुनकर मेरा गला भर आया और रोने लगा मैं।

संसारी जीव की तरह रोता क्यों हैं रे! भवसागर से निवृत्त एक परमयोगी है तू और योगी कहीं बालकों की तरह रोता है। यदि रोता है तो अपने लिए रोता है। चल चुप हो जा! इतना कहकर गुरुदेव ने मुझे स्फटिक पत्थर का एक पारदर्शक स्लेट दिया जो एक फुट लम्बा चौड़ा था। देते समय उन्होंने कहा–इस स्लेट पर जो भी प्रश्न तुम लिखोगे–भले ही वह प्रश्न भौतिक हो या आध्यात्मिक उसका उत्तर तुरन्त तुमको स्लेट पर उपलब्ध हो जायेगा मेरी ओर से, यह सुनकर जहाँ मेरी आत्मा को परमशान्ति का अनुभव हुआ, वहीं घोर आश्चर्य भी। मेरी ओर देखते हुए मुस्कराते रहे गुरुदेव। वह मुस्कराहट किसी सिद्ध देवपुरुष की सी लगी

मुझे, झुककर चरण स्पर्श किया मैंने और उसके बाद जाते हुए देखता रहा गुरुदेव को।

गुरु शिष्य के आन्तरिक संबंध का माध्यम एक रहस्यमय स्लेट- ब्रह्मचारीजी बोले उसके बाद एकमात्र स्लेट ही मेरे और गुरुदेव के बीच माध्यम था। एक निश्चित समय पर स्लेट का उपयोग करना पड़ता था और वह समय होता था रात्रि के ठीक बारह बजे।

आज्ञा चक्र का भेदन पिछले जन्म की साधना से हो ही चुका था। वर्तमान जीवन में आज्ञा चक्र से सहस्त्रार चक्र तक की साधना यात्रा पूर्ण करनी थी। गुरुदेव की तरह मैं भी महासमाधि ग्रहण करने के लिए व्याकुल था ताकि जन्म मृत्यु से सदैव के लिए मुझे मुक्ति मिले और इसके लिए सहस्त्रार चक्र का भेदन आवश्यक था। आज्ञा चक्र से सहस्त्रार चक्र पर्यन्त साधना यात्रा के अन्तर्गत तीन महत्वपूर्ण सोपान हैं। प्रथम सोपान का उल्लंघन कर चुका था मैं। शेष दो सोपानों के लिए मुझे गुरुदेव से निर्देश लेना पड़ता। निर्देशन से संबंधित जो जिज्ञासायें उत्पन्न होती है स्लेट के माध्यम से समाधान हो जाता है। गुरु प्रदत्त उस अलौकिक स्लेट को मैं भी देख सकता हूँ ?

हाँ! हाँ! क्यों नहीं यह कहकर ब्रह्मचारीजी कुटिया के भीतर गये और स्लेट ले आये। सचमुच स्फटिक पत्थर का पारदर्शक चौकोर स्लेट था वह। अधिक से अधिक आधा से भी कम इंच मोटा था वह। उसमें से हल्की–हल्की प्रकाश किरणें फूट रही थीं। हाथ में लेते ही सारा शरीर सनसनाने लगा मेरा और उसी के साथ अपने भीतर कुछ विचित्र सी अनुभूति भी होने लगी। वह अनुभूति कैसी थी? बतला नहीं सकता। निश्चय ही वह स्लेट अद्‌भुत दिव्य और अलौकिक था–इसमें सन्देह नहीं।

मैंने ब्रह्मचारीजी की ओर देखते हुए पूछा– क्या आपके गुरुदेव इस स्लेट के माध्यम से मेरी आध्यात्मिक जिज्ञाओं का समाधान कर सकते हैं?

हाँ! हाँ! अवश्य ब्रह्मचारीजी बोले–आप अपनी जिज्ञासाओं को स्पष्ट करें निश्चित ही समाधान होगा।

मुझे अपने आध्यात्मिक विषय में जो कुछ जानना–समझना था, उसे बतला दिया मैंने ब्रह्मचारीजी को, जिसे सुनकर कुछ समय के लिए ध्यानस्थ हो गये वह और फिर झुककर लाल स्याही से उसे लिखने लगे स्लेट पर। पूरा विवरण लिख लेने के बाद पुनः कुछ क्षण के लिए ध्यानस्थ हो गये ब्रह्मचारीजी। मैं ध्यान से सारी क्रिया प्रक्रिया को देख रहा था। मेरे और ब्रह्मचारीजी के बीच एक छोटी सी चौकी पर रखा था स्लेट। मैं उसकी ओर देख रहा था अपलक। एकाएक स्लेट के खाली स्थान पर धीरे–धीरे सधे शब्दों में और सधी भाषा में उभरने लगा मेरी जिज्ञासाओं का समाधान। पिछले जन्म में, मैं क्या था ? कौन था और क्या करता था ? पहली पंक्ति में इनका उत्तर था। दूसरी पंक्ति में लिखा था पिछले जन्मों में मेरी साधना क्या थी और अध्यात्म की किस अवस्था में था इसका उत्तर। अन्तिम तीसरी पंक्ति में लिखा था मेरे वर्तमान जीवन के विषय में बहुत कुछ और उसके बाद लिखा था मेरी आध्यात्मिक उपलब्धियों और साधना विकास के संबंध में। अन्त में लिखा था मेरे लिए आदेश–धैर्य, सन्तोष और उपेक्षा अनिवार्य है तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति के लिए।

हे भगवान! कितना विचित्र अद्‌भुत और आश्चर्यजनक था सब कुछ। यदि मृत्यु को बीच में व्यवधान न माना जाये तो मेरे एक सौ नब्बे वर्ष के जीवन का वृत्तान्त सूत्र रूप में सामने आ गया था उस पाषाण पट्टिका पर, स्तब्ध था और था अवाक्।

एक दिव्य और योग की सर्वोच्च परमावस्था प्राप्त विदेही योगी द्वारा दिया गया "आदेश" मेरे तिमिराच्छन्न साधना मार्ग का प्रकाश स्तम्भ सिद्ध हुआ बाद में। आश्चर्य तो यह है कि उसी दिन से ब्रह्मचारीजी के विदेही गुरुदेव से मेरा मानसिक संबंध न जाने कैसे जुड़ गया अपने आप।

सद्‌गुरु प्रज्ञानन्द से मानसिक तरंगों द्वारा संबंध– पश्चिमी देशों में परामनोविज्ञान की चर्चा सन् 1934 में तब हुई जब एक अमेरिकी विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान के प्राध्यापक डॉ. जोसेफ राइन की कृति "एक्स्ट्रा सेन्सरी पर्सेप्शन" का प्रकाशन हुआ था। उन्होंने पहली बार परामनोविज्ञान को 'विज्ञान' की एक शाखा मानकर अनेक महत्वपूर्ण प्रयोग किए। उन्हें परामनोविज्ञान का पिता मानते हैं पश्चिमी देश।

अन्तरिक्ष यात्री मिशेल ने जिन चिन्हांकित कार्डो की सहायता से अपना प्रयोग किया था। वैसे ही कार्डों की सहायता से डॉ. राइन ने 85,000 प्रयोग किए। इन प्रयोगों के बाद वे इन निष्कर्षों पर पहुँचे– (1) भौतिक माध्यमों और संचार व्यवस्था के अभाव में भी एक मन दूसरे मन को प्रभावित कर सकता है। (2) बिना ज्ञात संवेदी यंत्र की सहायता के मन पदार्थ से सक्रिय ज्ञानात्मक संबंध स्थापित कर सकता हैं। (3) इस प्रक्रिया में दिक्काल की ओर से कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। (4) मन भौतिक पदार्थों को इच्छानुसार प्रभावित करने में सक्षम है।

आज से पच्चीस तीस साल पूर्व (सन् 1973 से) रूस में परामनोविज्ञान को एक कल्पना माना जाता था। पर अब रूस में अनेक वैज्ञानिक परामनोवैज्ञानिक, परामनोविज्ञान के प्रयोगों में व्यस्त है। आश्चर्य की बात तो यह है कि इन प्रयोगों में जीवशास्त्री, गणितशास्त्री और भौतिकविद् भी भाग ले रहे हैं। ये लोग इस प्रश्न का कि कुछ लोगों में दूरबोध, दूरविचार, संप्रेषण और अपरिचित को इच्छानुसार प्रभावित करने की अलौकिक शक्ति अथवा योग्यता क्यों और कैसे आ जाती है? युक्ति संगत उत्तर पाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

मन एक प्रसारण केन्द्र– रूस के अग्रणी परामनोवैज्ञानिक प्रोफेसर एल.एल. वोसीलियेव ने अमरीकी वैज्ञानिकों की भाँति अतीन्द्रिय शक्तियों से सम्पन्न व्यक्तियों को रेडियो तरंगों 'क्ष' किरणों और विद्युत चुम्बकत्व के प्रभाव से मुक्त रखकर यह जानने का प्रयत्न किया कि इसके बाद भी दूरबोध की उनकी शक्ति कायम रह पाती है या नहीं–वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे–मन से प्रवाहित होने वाली कुछ सूक्ष्म और अदृश्य तरंगों के कारण कोई मन कभी–कभी "ब्रॉडकास्टिंग" स्टेशन बन जाता है और कोई दूसरा मन "रिसिविंग" स्टेशन।

परामनोविज्ञान के क्षेत्र में शोधरत अमरीकी वैज्ञानिकों के अनुसार मस्तिष्क तरंगें अति दीर्घ रेडियों तरंगों के समान हैं। यही नहीं उन्होंने ऐसा यंत्र भी बना लिया है जो इन तरंगों को संप्रेषित भी कर सकता है।

एक अविश्वसनीय अनुभव– गोपाल ब्रह्मचारी से मेरा बराबर दस वर्षों तक सम्पर्क बना रहा। इस अवधि में उनके द्वारा मुझे कई विचित्र

और अलौकिक अनुभव हुए। आश्चर्य की बात तो यह थी कि एक बार मैंने उनका फोटो लेना चाहा। उनके सामने कैमरा रखकर मेरे एक मित्र ने उनका फोटो खींचा। फिल्म की धुलाई हुई। आश्चर्य हुआ मुझे और मेरे मित्र को भी। तस्वीर ब्रह्मचारीजी की आनी चाहिए थी, लेकिन उनके स्थान पर उभरी तस्वीर हिमालय स्थित किसी गुफा की। कारण क्या था ? ब्रह्मचारीजी उस समय हिमालय स्थित अपनी उस गुफा के बारे में सोच रहे थे जिसमें पिछले जन्म में रह चुके थे कुछ समय तक। इसमें कोई आश्चर्य को बात नहीं है। अमरीका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक को भी ऐसी ही अनोखी शक्ति प्राप्त थी। उनका नाम था टेड सेरियस एक बार टेड सेरियस के सामने कैमरा रखा गया। तस्वीर उनकी उतरने के बजाय वाशिंगटन की उतरी। वे उस समय वाशिंगटन के बारे में सोच रहे थे।

मस्तिष्क की विचारणा शक्ति भौतिक पदार्थों को गति देने में सक्षम- मस्तिष्क मुख्यतः तीन प्रकार के तरंगों का जनक है; पहला है मस्तिष्क तरंग जिसको मानसिक तरंग भी कहा जाता है। दूसरा है भाव तरंग और तीसरा है विचार तरंग। इन तीनों में विचार तरंगों की गति अत्यन्त तीव्र है।

सावन भादों का महीना था। सवेरे से ही बारिश हो रही थी। मैं ब्रह्मचारीजी की झोपड़ी में बैठा उनसे किसी विषय पर बातें कर रहा था। कुछ दूर पर झोपड़ी के सामने पत्थर का एक लम्बा चौड़ा चबुतरा था। जिस पर एक टोकरी में आम रखा हुआ था। ब्रह्मचारीजी बोले–आम खाओगे ? मैंने मुस्कराकर कहा–हाँ लेकिन बारिश बहुत तेज है। इसलिए भींगकर टोकरी लेने नहीं जाऊँगा। ब्रह्मचारी जी हँसें। बोले–तुमको कौन भेजता है ? टोकरी स्वयं चलकर झोपड़ी में आयेगी। अरें! यह क्या कह रहे हैं आप ? टोकरी तो एक निर्जीव और जड़ वस्तु है वह कैसे चलकर आ सकती है ? लेकिन उस समय मुझे आश्चर्य हुआ, जब देखा कि चबुतरे से धीरे–धीरे घिसक कर चलती हुई आमों से भरी टोकरी झोपड़ी की ओर आ रही थी। कुछ क्षण बाद मेरे सामने थी टोकरी। कहने की आवश्यकता नहीं यह ब्रह्मचारीजी के विचार तरंगों के प्रभाव का परिणाम था।

योग विज्ञान के इस तथ्य को परामनोविज्ञान भी स्वीकार करता है कि ब्रह्माण्ड में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसमें आकर्षण–विकर्षण की शक्ति न हो। कुछ ऐसे विशिष्ट व्यक्ति होते हैं जिनके मस्तिष्क में आकर्षण–विकर्षण शक्ति होती है जैसे गोपाल ब्रह्मचारी का मस्तिष्क। वह शक्ति भौतिक पदार्थो का ही एक मौलिक गुण धर्म है। इसका कारण यह है कि मनुष्य का विकास भौतिक तत्वों की एक खास योजना के अन्तर्गत ही हुआ है पर किस वस्तु द्वारा आकर्षण विकर्षण की यह क्रिया सम्पन्न होती है ? इसका उत्तर अभी वैज्ञानिकों को प्राप्त नहीं हुआ। भौतिक शास्त्रियों ने गुरुत्वाकर्षण शक्ति के लिए ग्रेविटी तत्वों की कल्पना की है पर वह तत्व स्वयं क्या हैं ? इसका उत्तर स्वयं वे नहीं जानते। एक भौतिक पिण्ड से उत्सर्जित ग्रेविटी दूसरे भौतिक पिण्ड के ग्रेविटी को आकर्षित या विकर्षित कर सकती है तो यह भी माना जा सकता है कि मस्तिष्क की विचारशक्ति भौतिक शक्ति है और विशेष परिस्थितियों में अन्य भौतिक पदार्थों को गति प्रदान कर सकती है।

निश्चय ही गोपाल ब्रह्मचारी ने अपनी विचारशक्ति से उत्पन्न तरंगों द्वारा फल की टोकरी को आकर्षित किया था, इस तथ्य से यही समझा जा सकता है।

सुख-दुख और आनन्द- मेरा अधिकांश समय व्यतीत होता था गोपाल ब्रह्मचारी की झोपड़ी में। एक दिन मुझे अकेले रहने का अवसर मिला झोपड़ी में। उस समय गोपाल ब्रह्मचारी स्नानध्यान के लिए गंगातट की ओर जा रहे थे। सायंकाल का समय था। एकाएक मेरा मस्तिष्क सनसनाने लगा और उसी के साथ मैं अन्दर ही अन्दर अपनी मानसिक चेतना के शनैः शनैः विकास का भी अनुभव करने लगा। निश्चय ही बड़ा ही विचित्र था वह अनुभव। अपने आप मेरे मस्तिष्क में दार्शनिक और आध्यात्मिक विचार उत्पन्न होने लगे जिनकी कल्पना मैंने कभी नहीं की थी। कभी सोचा भी नहीं था उन विचारों के संबंध में। दुःख, सुख और आनन्द इन तीन शब्दों को लेकर मस्तिष्क में नाना प्रकार की लहरें उत्पन्न हो रही थी। लगा जैसे उन तीनों शब्दों को लेकर कोई अदृश्य शक्ति मेरे मस्तिष्क में भरती जा रही है धीरे–धीरे....।

दुख क्या है ? सुख क्या है और आनन्द क्या है ? जीवन यात्रा में इन तीनों को समझना अति आवश्यक है। दुख और सुख एक दूसरे से भिन्न नहीं है। दोनों में जो भेद है वह परिणाम अथवा मात्रा का है। सुख की सारी अनुभूतियाँ दुख से जुड़ी हुई है और इसी प्रकार दुख की सारी अनुभूतियाँ सुख से जुड़ी हुई है। इन दोनों के बीच जो है वह है संसार। संसार में होने का अर्थ है केवल दुख की अनुभूति। यदि संसार में केवल दुख की ही अनुभूति हो तो कोई इधर उधर भटके ही नहीं। भटकने का कोई कारण ही नहीं रह जायेगा। कोई भटकता है तो केवल इसलिए कि उसके भीतर सुख की आशा होती है। उसी आशा को साकार करने के लिए लोग दुख में भटकते हैं। भटकने की अवस्था में जो सुख उपलब्ध होता है वह कुछ ही क्षणों के बाद पुनः दुख में बदल जाता है। सुख सदैव भविष्य में है। भविष्य में मिलने वाले सुख के लिए लोग दुख झेलते रहते हैं। दुख इसलिए झेलने के लिए लोग तैयार रहते हैं कि कल सुख मिलेगा। यदि कल सुख की कोई आशा न हो तो लोग एक क्षण के लिए दुख झेलने के लिए तैयार न होंगे। फिर दुख झेलना कठिन हो जायेगा नर्क बन जायेगा जीवन।

हम भटकते क्यों हैं आशा के कारण और आशा क्या है? कल सुख मिलेगा इसका आश्वासन। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि सुख मिलते ही वह दुःख में बदल जाता है। सुख को लेकर हमने जो कल्पनाएँ की थी वह धूल में मिल जाती है तत्क्षण।

हमारे चारों ओर दुख ही दुख है लेकिन हमारी आखें सदा अटकी रहती है सुख में। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि हम दुख को भूल जाते हैं और दुःख को झेलने की क्षमता उपलब्ध कर लेते हैं। यदि गहरायी से विचार किया जाय तो संसार दुखमय है। दुख से भरा हुआ एक विशाल समुद्र है। सुख मात्र केवल सम्भावना है सत्य कभी नहीं। दुख सदा सत्य है तथ्य है वास्तविक है। दुख इतना गहरा है इतना अगाध है और इतना व्यापक है कि हमारी आत्मा उसे झेल नहीं सकती। उसे सहन नहीं कर सकती। उससे उत्पन्न पीड़ा को, वेदना को, व्यथा को और कष्ट को एक क्षण के लिए भोग नहीं सकती। लेकिन सुख की आशा के कारण सब कुछ सहन कर लेती है और भोग

लेती है सब कुछ। सुख पाने की आशा उसे दुख सहने योग्य बना देती है और वह सुख जिसे पाने की आशा है। वह कभी उपलब्ध होता ही नहीं। जीवन को गतिमान बनाती है आशा। आशा न हो तो जीवन गतिहीन हो जायेगा। शून्य के अलावा और कुछ नहीं रह जाता है जीवन में। इसी अवस्था को योग में मुक्तावस्था कहते हैं। योगी के जीवन में आशा का अभाव रहता है। किसी वस्तु की आशा नहीं रखता है वह। सुख और दुख इन दोनों के बीच की अवस्था का नाम मुक्तावस्था है। योगी न दुख को स्वीकार करता है और न तो सुख को ही। दोनों से वह मुक्त होता है। मुक्तावस्था दुख और सुख इन दोनों अवस्थाओं से ऊपर और भिन्न है। इसी अवस्था को योग में कहते हैं आनन्द की अवस्था। वह अवस्था परम आनन्द की अवस्था है जिसमें न दुख है और न तो है सुख। सुख और दुख एक दूसरे के विपरीत हैं लेकिन आनन्द के विपरीत कोई शब्द नहीं है। आनन्द के विपरीत कोई अवस्था नहीं है और आनन्द सुख नहीं है। यदि हम आनन्द को सुख माने तो स्थिति और कुछ हो जायेगी। वही सुख कभी भी दुख में बदल जायेगा। आनन्द को उपलब्ध होने का अर्थ है सुख और दुख दोनों से मुक्त। जीवन में दोनों का अभाव। दोनों का अभाव आनन्द है। आनन्द न सुख है और न तो दुख है। वह दोनों से ऊपर है। उसकी क्रमशः कई अवस्थाएँ हैं जिनको भारतीय योगदर्शन ने नित्यानन्द, परमानन्द, विरजानन्द, आत्मानन्द आदि नामों से सम्बोधित किया है। किन्तु बौद्ध योगदर्शन एक ऐसा दर्शन है जिसने कहीं भी आनन्द शब्द का प्रयोग नहीं किया है और न तो दिया है उसे महत्व ही। वह 'आनन्द' को कोई अवस्था विशेष नहीं मानता। भगवान बुद्ध ने अपने दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक भावों को व्यक्त करने की दिशा में जिन शब्दों का प्रयोग किया है, बहुत समझ कर किया है। इतनी समझ किसी असाधारण व्यक्ति में ही सम्भव है।

आनन्द के संबंध में कहा गया है कि वह सुख विशेष नहीं बल्कि सुख–दुख दोनों से परे है। किन्तु लोग इसे हृदय से स्वीकार नहीं करते हैं। वे आनन्द के भीतर सुख का भाव लिए रहते हैं। उनकी कल्पना यह होती है कि आनन्द कोई बहुत बड़ा और परम सुख है और इसीलिए लोग कहते हैं–आनन्द कैसे प्राप्त हो? प्रायः लोग सुख का पर्यायवाची

समझते हैं आनन्द को। सुख के लिए आनन्द का और आनन्द के लिए सुख का प्रयोग करते हैं। व्यक्ति सुखी है तो कहता है बड़े आनन्द में हूँ। ऐसा आनन्द भाग्यवानों को ही प्राप्त होता है। ऐसे लोग धन अथवा अन्य किसी वस्तु से प्राप्त सुख को आनन्द समझ बैठते हैं जबकि वह आनन्द नहीं है। आनन्द में सुख का भ्रम है और इसीलिए भगवान बुद्ध ने आनन्द के स्थान पर 'शान्ति' शब्द का प्रयोग किया। आनन्द का भाव खतरनाक है। शान्ति का भाव पूर्णरूप से पृथक है। शान्ति का अर्थ है न सुख न तो दुख सब शान्त है न सुख का भाव है और न तो है दुख का ही भाव और यही कारण है कि भगवान बुद्ध आनन्द का आश्वासन नहीं देते। उनका कहना है कि यदि आश्वासन दूँ भी तो लोग उसे सुख का ही आश्वासन समझेंगे, क्योंकि लोगों की आकांक्षा सुख की है। यदि हम दुख का सामना करने के लिए तैयार भी होंगे तो केवल इसलिए कि दुख से बचा कैसे जाय? यदि कोई सामना करने के लिए तैयार भी हो जाय तो सामना कर ही नहीं सकेगा क्योंकि जिससे हम बचना चाहते हैं उसका सामना हम कैसे कर सकेंगे ? दुख के परिपूर्ण रूप को देखना बड़े साहस का काम है। सब में वह साहस नहीं होता। विरले ही किसी में होता है।

हमें प्रीतिकर है 'शान्ति'। जो अपने आप में महत्वपूर्ण भी है लेकिन हमको इस बात का खयाल भी नहीं है कि दुख भी एक प्रकार से अशान्ति ही है जो अप्रीतिकर है। सुख भी एक प्रकार से अशान्ति ही है जो प्रीतिकर प्रतीत होती है। यदि सुख से उत्पन्न अशान्ति अपनी चरमसीमा पर पहुँच जाय तो 'मृत्यु का कारण बन जाती है। इसी प्रकार दुख की भी अशान्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाय तो वह भी मृत्यु का कारण बन जाती है। सुख से ऊबे हुए लोग मृत्यु में शान्ति खोजते हैं। दुख से भी ऊबे हुए लोग शान्ति खोजते हैं मृत्यु में। दोनों प्रकार के लोग आत्महत्या करते हैं। सुख से ऊबा हुआ भी और दुख से ऊबा हुआ भी।

सुख की तीव्रता का एक आघात प्राणघातक सिद्ध हो सकता है। इसी प्रकार दुख की तीव्रता का भी एक आघात सिद्ध हो सकता है प्राणघातक। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि दुख की चरम सीमा पर

पहुँच कर भी बहुत ही कम लोग आत्महत्या करते हैं। इसका कारण है और वह यह कि कितना ही बड़ा दुख क्यों न हो। उस स्थिति में भी सुख की थोड़ी बहुत आशा बनी ही रहती है इसलिए दुख के प्रभाव में थोड़ी बहुत कमी आ जाती है। दुख सहने योग्य हो जाता है सुख की आशा के कारण। लेकिन सुख में ऐसा नहीं होता। हम सुख में घबड़ाते नहीं, छटपटाते नहीं, ऊबते हैं। सुख में ऊब है और वह ऊब अपनी चरमसीमा पर पहुँच कर आत्महत्या का कारण बन जाती है।

प्रीतिकर सुख भी कभी किसी समय अशान्ति बन जाती है। जप, पूजा–अर्चना, देवदर्शन, तीर्थयात्रा, गाना–बजाना, संगीत आदि एक सीमा तक प्रीतिकर सुख प्रतीत होता है और जब वह सीमा समाप्त हो जाती है वही प्रीतिकर सुख अप्रिय और कष्टकर हो जाता है।

प्रीतिकर अशान्ति को हम सुख कहते हैं और अप्रीतिकर अशान्ति को कहते है दुःख। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि प्रीतिकर अशान्ति को बराबर बना रहने दे तो प्रीतिकर शब्द हट जायेगा अपने आप, केवल रह जायेगी शान्ति। इसी प्रकार यदि अप्रीतिकर अशान्ति को भी बना रहने दीजिए बराबर तो अप्रीतिकर शब्द अपने आप नष्ट हो जायेगा और शेष रह जायेगी अशान्ति जो सहने योग्य होगी और होगी प्रीतिकर।

सुख का भ्रम कभी नहीं टूटता। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो आनन्द की प्राप्ति के लिए हम सुख की खोज करते हैं जो गहरे उपद्रव का कारण सिद्ध होता है। इसलिए कि आनन्द की प्राप्ति के लिए हम व्याकुल क्यों हैं ? क्या हमने पूर्णरूप से दुख को झेल लिया है ? क्या हमने दुख को गहरायी तक भोग लिया है? यदि नहीं तो हमको कभी भी आनन्द के दर्शन नहीं होंगे। कभी भी अनुभव नहीं होगा आनन्द का। आनन्द के सागर में कभी भी आकण्ठ डूब न सकेंगे हम। सुख की उस स्थिति में ही रहेंगे जबतक वह दुख में न बदल जाय।

यदि हाँ तो हमको आनन्द खोजना नहीं पड़ेगा। हमको आनन्द के लिए पागल नहीं होना पड़ेगा और हमें आनन्द को प्राप्त करने के लिए किसी अनुष्ठान, पूजा–पाठ, देवदर्शन आदि नहीं करना पड़ेगा और न तो किसी शास्त्र–पुराण आदि को पढ़ना ही पड़ेगा। आनन्द स्वयं हमें हो

जायेगा उपलब्ध। दुख की चरमसीमा पर पहुँचकर हम या तो आत्महत्या कर लेंगे या फिर आनन्द को हो जायेंगे उपलब्ध और आनन्द को उपलब्ध होने का लक्षण है कारण का अभाव। जो भी कार्य हम करेंगे उसका कोई कारण नहीं होगा। हमारे किसी भी क्रियाकलाप की पृष्ठभूमि में कोई कारण नहीं रहेगा। यह योग की अवस्था विशेष है। सच्चे अर्थों में जो भी योगी होगा, साधक होगा और होगा सच्चे अर्थों में सन्त, महात्मा उसका समस्त कर्म और उसका समस्त क्रियाकलाप अकारण ही होगा।.....

अचानक मेरा सिर हल्का होने लगा। फिर धीरे–धीरे आँखे खुली। देखा सामने खड़े थे गोपाल ब्रह्मचारी। उन्हें सारी स्थिति बतलायी और उस स्थिति में मेरे मस्तिष्क को जो ज्ञान उपलब्ध हुआ था उसे सुनाया।

सब कुछ सुन लेने के बाद गोपाल ब्रह्मचारी बोले– मेरे गुरुदेव के कास्मिक तरंगों से तुम्हारे मस्तिष्क तरंगों का संबंध अकस्मात् जुड़ गया था। तुम मेरी कुटी में थे इसीलिए क्योंकि इस स्थान पर गुरुदेव की कास्मिक तरंगे प्रायः बराबर मंडराती रहती हैं।

यह सुनकर आश्चर्य हुआ मुझे। अनजाने में एक दिव्य योगी से मेरा संबंध जुड़ गया था। मुझे मौन देखकर गोपाल ब्रह्मचारी बोले– ध्यान किया करो। जितना गहरा ध्यान होगा, उतनी ही मानसिक तरंगे उत्पन्न होगी और उतनी ही उसमें गति भी होगी।

ध्यान क्या है ?

चित्त को वर्तमान में ले जाना ही ध्यान है। वही समाधि भी है। चित्त को वर्तमान में इधर–उधर भटकाए रखना अशान्ति है। कोई ऐसा क्षण नहीं है जहाँ चित्त अशान्त न हो। जहाँ यह अशान्ति बन्द हुई उसी क्षण मन शान्त हो जायेगा और हम उपलब्ध हो जायेंगे ध्यान को।

लोभ-लालच और अहंकार- वर्तमान में कैसे चित्त को ले जाया जा सकता है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में गोपाल ब्रह्मचारी बोले–वर्तमान को हम पकड़ नहीं पाते। इसलिए कि हमारा चित्त कभी अतीत में भटकता है तो कभी भविष्य में। इसी कारण हमारा चित्त वर्तमान से चूक जाता है। भूत और भविष्य में भटकने का कारण लोभ, लालच और है अहंकार। लोभी सदैव भविष्य की बातें करता है। लोभी व्यक्ति कभी भी

वर्तमान की बातें नहीं करता। सदैव भविष्य की ही सोचेगा ? करेगा भी कैसे जो उसे अबतक प्राप्त नहीं हुआ है उसे कल यानी भविष्य में प्राप्त करना है। वर्तमान में तो पाया ही नहीं जा सकता है। इसलिए वर्तमान के विषय में वह कभी सोचेगा ही नहीं। इसलिए सदैव भविष्य की भाषा बोलता है। इसी प्रकार अहंकार सदैव अतीत की ही भाषा बोलता है वर्तमान की कभी नहीं। अहंकारी ने जो प्राप्त किया, जो कुछ किया है, जो कुछ बनाया है, उसकी चर्चा सदैव करेगा। जो कुछ वर्तमान में हो रहा है उसका उसे कोई पता नहीं। अहंकारी के पास इतने रुपये हैं। इतने मकान हैं, इतने बेटे हैं, इतनी जमीन जायदाद है इसकी चर्चा करेगा जिसे वह प्राप्त कर चुका है अबतक। वह यह कभी नहीं कहेगा कि इतना रुपया कमाना है, इतने मकान बनवाने हैं। इतने बेटे पैदा करने हैं। इतनी जमीन जायदाद बनानी है। इसका दावा वह कभी नहीं करेगा उसके पास जो कुछ भी है वह सब उसके अतीत से है आया। उसके पास न अतीत का समय है न वर्तमान का और न तो भविष्य का। यही उसका अहंकार है। लोभ सदैव हमें भविष्य में ले जाता है अहंकार हमें सदैव पीछे ले जाता है यानी अतीत में।

समस्त लोभ का संग्रह अहंकार है। वह हमें अतीत में भटकाता है। आप वृद्ध व्यक्ति को देखे और उसकी बातें सुने। वह हमेशा अपने अतीत की बातें करेंगा। वर्तमान तो उसके लिए कुछ भी नहीं है। भविष्य के लिए कुछ सोचने विचारने के लिए कुछ है ही नहीं, लोभ की भी कोई सम्भावना नहीं है भविष्य में यदि सम्भावना है तो बस मृत्यु की। वृद्ध व्यक्ति का मस्तिष्क अतीत में सदैव भटकता रहता है क्योंकि उसे भविष्य में दिखलायी देती है मृत्यु। बालक और युवक सदैव लोभ में जीते हैं और वृद्ध अहंकार में। जितनी उम्र बढ़ती जाती है। उतना ही अहंकार भी बढ़ता है वृद्ध का, साथ ही उसका क्रोध और बेचैनी बढ़ती जाती है क्योंकि आगे कुछ भी नहीं है उसके लिए अहंकार के कारण वह चिड़चिड़ा और क्रोधी होता है। सारांश यह कि मरे हुए लोभ का नाम है अहंकार और अजन्मा अहंकार का नाम है लोभ।

सत्य और अस्तित्व वर्तमान में– वास्तव में यही सब कारण है कि हम चूक रहे हैं वर्तमान से। वर्तमान का सर्वाधिक महत्व है उसका

अपना मूल्य है, इसलिए कि जो सत्य है और जो अस्तित्व है वह एकमात्र वर्तमान में ही है। लोभी का लोभ जब चरमसीमा पर पहुँच जाता है तो उसे आध्यात्मिक लोभ परेशान करने लगता है। अब परमात्मा को पाने की इच्छा होती है। स्वर्ग की कामना जागृत होती है। मोक्ष भी मिलना चाहिए उसे। अपने लोभ की भाषा में यह सब भी सोचने लगता है वह। उसके लिए रामायण, भागवत, गीता, पुराण आदि की कथा सुनने जाता है वह। आज के युग में कथा सुनने वाले कम और कथा सुनाने वाले अधिक हैं। कथा सुनाना भी एक 'कला' है। हमारे देश में इस कला को सिखाने के लिए बड़े–बड़े आचार्य विद्यमान हैं। लोभी तीनों है कथा सुनाने वाला और कथा सुनने वाला और साथ ही कथा की कला में मर्मज्ञ बनाने वाला आचार्य बस थोड़ा अन्तर है तो लोभ की सिद्धि में। मैं यह नहीं कहता हूँ कि आप लोभ न करें। मैं तो आपसे कहूँगा कि लोभ को समझ लें अहंकार को समझ लें। केवल वर्तमान समय ही सत्य है और अस्तित्व भी है। एक क्षण के लिए भी उस बिन्दु पर पहुँच जाय जहाँ आप यह कह सके कि मेरे पास न कोई अतीत है और न तो है भविष्य। बस "मैं हूँ" आपको आपका यह बोध तत्काल परमात्मा के अस्तित्व में प्रविष्ट करा देगा। परमात्मा के अस्तित्व में प्रविष्टि ही सत्य का साक्षात्कार है और है आत्मदर्शन। जिसका परिणाम है समग्र को जान लेना और समग्र को जान लेने का अर्थ है परमशून्य को उपलब्ध होना। जो भारतीय योग–तंत्र का मूल उद्देश्य है।

❐

द्वितीय आवाहन

एक दिव्यलोक की आत्मा से सम्पर्क

मानव मस्तिष्क का ज्ञान अत्यन्त रहस्यमय है। वैज्ञानिकों को अभी दस प्रतिशत उसका ज्ञान प्राप्त हो सका है। परन्तु यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि वैज्ञानिकों ने यह अवश्य प्रमाणित कर दिया है कि मस्तिष्क तरंगों को पकड़ना असम्भव भी नहीं है। उल्लेखनीय है कि विज्ञान के नवीनतम् प्रयोगों का सबसे अच्छा उदाहरण कम्प्यूटरों का विकास है। कम्प्यूटर की सहायता से लगभग सभी क्षेत्रों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार मानव मस्तिष्क भी एक प्राकृतिक दृष्टिकोण से अद्भुत महाशक्ति से सम्पन्न कम्प्यूटर ही है। यह मानव निर्मित महायंत्र एक हजार कणों वाला ऐसा अंग है जो एक सेकेण्ड में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखने की शक्ति की क्षमता से युक्त है। यहां तक कि उस पर अपना प्रभाव तथा हस्तक्षेप की भूमिका छोड़ने में भी समर्थ हैं। इस प्रकार मानव मस्तिष्क की विद्युत चुम्बकीय तरंगों में अनन्त शक्तियों का भण्डार भरा हुआ है। यदि उन रहस्यमयी और शक्तिशालिनी तरंगों का सदुपयोग किया जाय तो निःसन्देह सभी प्रकार और सभी दृष्टि से लाभकारी सिद्ध होगा। यदि इसी प्रकार उसका दुरूपयोग किया जाय तो निश्चय ही उसका परिणाम भयंकर सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन रहस्यमय तरंगों को ठीक–ठीक जानना, समझना और उनका उपयोग करना सभी के वश की बात नहीं। उच्चकोटि के सिद्ध साधक और योगी ही उन विलक्षण अद्वितीय और अपने आप में रहस्यमयी तरंगों को जान समझ सकते हैं और उनका यथावत उपयोग अथवा प्रयोग भी कर सकते हैं। इस प्रसंग में यहां यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि योग और तंत्र से संबंधित

संबंधित जितनी साधनाएँ, उपासनाएँ और अन्तरंग बहिरंग क्रियायें हैं उन सबके मूल में मस्तिष्क की विभिन्न विद्युत चुम्बकीय तरंगे ही हैं और उन्हीं का परिणाम विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ हैं जिनको हम योगसिद्धि और तंत्रसिद्धि कहते हैं।

निश्चय ही मेरे किसी पिछले जन्म का आध्यात्मिक संस्कार रहा होगा कि गोपाल ब्रह्मचारी जैसे साधक का सान्निध्य प्राप्त हुआ मुझे और उनकी अहैतुकी कृपा से ध्यान योग की गहरायी में प्रवेश कर सका मैं और ध्यान की उस चरमबिन्दु को सहज ही उपलब्ध हो गया। जहाँ न अतीत है और न तो है भविष्य है तो केवल वर्तमान। जिसका आध्यात्मिक परिणाम यह हुआ कि पूर्णरूप से अन्तर्मुखी हो गया मेरा आन्तरिक व्यक्तित्व। अपने आप में एक विचित्र प्रकार के शून्य का करने लगा अनुभव मैं। मेरी शारीरिक और मानसिक स्थिति सहज नहीं रह गयी थी।

तीन शरीर और तीन प्रकार की तरंगे- स्थूल शरीर के अतिरिक्त तीन विशेष शरीर और है--भाव शरीर, (वासना शरीर अथवा प्रेत शरीर) सूक्ष्म शरीर और मनोमय शरीर। भावशरीर में भाव ही मुख्य होता है और इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर में विचार और मनोमय शरीर में मन की प्रधानता होती है। उसी प्रकार जैसे स्थूल शरीर में अन्न की। इसीलिए स्थूल शरीर को अन्नमय शरीर भी कहते हैं। उपर्युक्त तीनों शरीर स्थूल शरीर में एक दूसरे के भीतर समाये रहते हैं और उन तीनों शरीरों से एक दूसरे से भिन्न तीन प्रकार की ऊर्जायें निकलती हैं--भाव ऊर्जा, विचार ऊर्जा और मनो ऊर्जा। इन तीनों प्रकार की ऊर्जा का केन्द्र है क्रमशः मुख्य मस्तिष्क, लघु मस्तिष्क और अधोलघु मस्तिष्क। मस्तिष्क के इन तीनों महत्वपूर्ण भागों में अरबो कोशिकाओं का मायाजाल फैला हुआ है। उनमें कई करोड़ कोशिकाएँ विद्युत उत्पन्न करती हैं। जिन ऊर्जाओं की चर्चा की गयी है। वे ऊर्जाएँ और कोशिकाओं से उत्पन्न होने वाली विद्युत--दोनों मिलकर विद्युत चुम्बकीय तरंगों के रूप में परिवर्तित हो जाती है। जिनको वैज्ञानिकों ने मस्तिष्कीय विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा तरंग की संज्ञा दी है। उन तरंगों में जो मुख्य मस्तिष्क से निकलती है उनको भाव तरंग कहते हैं और जो लघु मस्तिष्क से निकलती है,

उनको विचार तरंग और इसी प्रकार अधोलघु मस्तिष्क से विसर्जित होने वाली तरंग को मनस तरंग कहते हैं। अत्यधिक सूक्ष्म होता है मनस तरंग, उनसे सूक्ष्म होता है विचार तरंग और उनसे भी सूक्ष्म होता है भाव तरंग।

मनस तरंग- वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रकाश की गति सर्वाधिक है उसके ऊपर किसी की गति है तो वह है उड़नतश्तरी की गति। उड़नतश्तरी क्या है और किस लोक से उसका संबंध है और पृथ्वी के आकाश में क्यों दिखलायी देती है? ये और ऐसे अनेक रहस्यमय प्रश्नों का ठीक–ठीक उत्तर अभी वैज्ञानिकों के पास नहीं है किन्तु उड़नतश्तरियों की अकल्पनीय गति से अवश्य परिचित हैं वे। वैज्ञानिक इस बात को लेकर अत्यधिक आश्चर्यचकित हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क से विशेष परिस्थितियों में निकली ऊर्जा इसी की गति से चल सकती है। इस गति में समय और दूरी के सिद्धान्त का बंधन भी टूट जाता है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि आश्चर्यजनक पहलू यह भी है कि जब मनुष्य के मस्तिष्क में तीव्र इच्छाशक्ति उत्पन्न होती है तो मस्तिष्क से अज्ञात मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न होती है। वास्तव में वह मनस ऊर्जा है वह ऊर्जा प्रकाश की गति से भी अधिक तेज चल सकती है। इस नयी जानकारी ने आधुनिक युग के भौतिकशास्त्र की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। एक वेबसाइट पर इस संबंध में जारी रिपोर्ट के अनुसार अभी कई ऐसे डार्क मैटर या ऊर्जा स्रोत हैं जिनकी खोज करना शेष है। रिपोर्ट में वैज्ञानिकों ने कहा है कि कम्प्यूटर मॉडल से यह पता चला है प्रकाश को भी गतिशील बनाया जा सकता है। यह गति अबतक की गति से काफी अधिक हो सकती है। इस कथन का आधार इलेक्ट्रॉन व प्रोटॉन नामक तत्वों की गति बढ़ा सकने की क्षमता है। उनका कहना है कि प्रकाश की गति से हजारों गुना तेज गति से भी समय और दूरी की गणना की जा सकती है। उड़नतश्तरियाँ अन्तरिक्ष में एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु के बीच की दूरी तय करने के लिए इसी तकनीकी (समय और दूरी की गणना) का प्रयोग करती है। वैज्ञानिकों के सामने इस समय एक सर्वाधिक विकट प्रश्न है यह खड़ा है कि जबर्दस्त तीव्रगति को प्राप्त करने के लिए कौन सा उपाय किया

जाना चाहिए ? वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि प्रकाश की तरह तत्वों और ऊर्जाओं को भी प्रकाश की गति से हजारो गुना तेज चलने योग्य बनाया जा सकता है। कुछ वैज्ञानिक यह मानते हैं कि अन्तरिक्ष में ब्लैकहोल जैसे स्थान हैं जहाँ किसी तत्व और दूरी की गणना की जा सकती है।

यह हुई आज के वैज्ञानिकों की बात। योग विज्ञान का कहना है कि लघु मस्तिष्क मनस ऊर्जा का क्षेत्र है। वहां से विद्युत चुम्बकीय तरंगों के रूप में वे बराबर विकीर्ण होती रहती हैं और बराबर करती रहती हैं प्रभावित जड़ और चेतन दोनों तत्वों को। गहन चिन्तन–मनन के समय अथवा गहन ध्यान की अवस्था में वे तरंगे अत्यधिक गतिमान हो उठती हैं। समाधि की अवस्था में उसकी गति प्रकाश की गति हो जाती है कभी–कभी उससे भी अधिक।

मन की विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा तरंगे जीवित व्यक्ति के मन को तो प्रभावित करती ही हैं, इसके अतिरिक्त मनोमय शरीरधारी मृतात्माएँ, मनः शक्ति प्रधान योगी साधकों और दिव्य पुरुषों को भी प्रभावित करती हैं।

मन की विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा तरंगे कभी–कभी पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर निकल जाती है और ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की सहायता से अन्य लोक–लोकान्तरों में भी प्रवेश कर जाती है और वहां के निवासियों से सम्पर्क भी स्थापित करती है।

जिस प्रकार प्राणयोग में प्राण की साधना है उसी प्रकार ध्यानयोग में मन की है साधना। ध्यानयोग की चरम उपलब्धि है नरमेध समाधि। उसके पहले समाधि की दो सर्वोच्च अवस्थाएँ हैं–सविकल्प समाधि और निर्विकल्प समाधि। ध्यान योग के मार्ग पर जैसे–जैसे साधक आगे बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे अचेतन मन की अलौकिक शक्तियाँ चेतन मन को उपलब्ध होती जाती है। वे ही अलौकिक शक्तियाँ कालान्तर में साधक में योग अथवा तंत्र की सिद्धियों के रूप में प्रकट होती है।

स्पर्श दीक्षा– प्रायः नित्य सायंकाल का समय गोपाल ब्रह्मचारी के निवास पर ही व्यतीत होता है। घंटो आध्यात्मिक चर्चा होती थी। उस दिन पानी बरस रहा था सांझ गहरा गयी थी। अर्धमिलित समाधि की

स्थिति में थे उस समय गोपाल ब्रह्मचारी महाशय। मुझे इस बात का पूरा विश्वास हो चुका था कि मेरे पूर्व आध्यात्मिक संस्कारों से भलीभांति परिचित हो चुके थे वह, तभी तो मेरे प्रति उनके योग हृदय में सहजभाव था और थी करुणा। किसी योगी के हृदय में स्थान बनाना अत्यन्त दुरूह और कठिन कार्य है। संस्कार सम्पन्न व्यक्ति ही उनके हृदय में स्थान कर सकता है उपलब्ध। एकाएक गोपाल ब्रह्मचारी की स्वप्निल समाधि भंग हुई और उन्होंने एक बार स्थिर दृष्टि से मेरी ओर देखा और नेत्र के संकेत से अपने निकट बुलाया। थोड़ा खिसक कर उनके बिलकुल समीप पहुँच गया मैं। उनके संकेत का क्या अभिप्राय था? यह उस समय मेरी समझ में आया जब उन्होंने अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ाकर मेरे लघु मस्तिष्क के ऊपर अपनी उँगलियाँ रखी। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि लघु मस्तिष्क को योग की भाषा में सहस्त्रार चक्र कहा गया है जिसमें एक अरब तेरह लाख, बीस हजार विद्युत कोशिकाएँ हैं। एक प्रकार से यदि देखा जाय तो लघु मस्तिष्क शरीर का सबसे बड़ा और अत्यन्त क्षमतावान विद्युत निर्माण गृह है।

योग विज्ञान के अनुसार लघु मस्तिष्क का संबंध उन वर्णनातीत विद्युत कोशिकाओं के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड से है। ब्रह्मचारीजी की कोमल ऊँगलियों के कोमल स्पर्श होते ही वह स्थान तीव्र गति से सनसनाने लगा एकबारगी। लगा जैसे हज़ारों चीटियाँ रेंग रही हो वहाँ। विचित्र स्थिति हो रही थी मेरी उस समय।

पिछले जन्म का एक महत्वपूर्ण दृश्य- मेरा बाह्य अस्तित्व धीरे–धीरे लुप्त होता जा रहा था जैसे। लेकिन उस अवर्णनीय अवस्था में भी मेरे अन्तःकरण में "मैं" का बोध बना रहा बराबर और मैं अपने आप को एक सुनहले प्रकाशमय बादलों से घिरा हुआ अनुभव कर रहा था। मेरे चारो ओर मंड़रा रहे थे वे सुनहले बादल। बड़ी ही सुखद अनुभूति हो रही थी मेरी आत्मा को उन बादलों के बीच और उसी सुखानुभूति के बीच एक सपना सा देखने लगा मैं। नहीं.....नहीं सपना नहीं था वह। मेरे पिछले किसी जन्म का एक गहरा सत्य था जो अतीत के तिमिराच्छन्न अन्धकार में समाधिस्थ था अबतक और अब धीरे–धीरे उभर रहा था मेरे मानसपटल पर। गंगा तट और उस तट के ऊपर एक विशाल शिव मंदिर

और उसी मंदिर से लगा हुआ एक तीन मंजिला पुराना मकान। तीसरी मंजिल में एक लम्बा–चौड़ा कमरा था जिसकी ऊँची–ऊँची खिड़कियाँ खुली हुई थी गंगा की ओर। शान्त, सुखद और आध्यात्मिक वातावरण था कमरे का और उसमें दो व्यक्ति आमने–सामने बैठे हुए थे। एक किशोरवय युवक था और दूसरा था अतिवृद्ध किन्तु तेजस्वी था वह। पहचानने में भूल नहीं हुई मुझसे वह वृद्ध व्यक्ति सामने बैठे युवक के पिता थे और गुरु भी और उनका नाम था शिवदत्त शास्त्री। अपने समय के उच्चकोटि के विद्वान और सिद्ध अवस्था प्राप्त परमयोगी थे। षट्दर्शन और षट्शास्त्र कण्ठस्थ था शिवदत्त शास्त्रीजी को।

अब उस युवक की ओर ध्यान से देखने लगा मैं। गौरवर्ण सुन्दर और आकर्षक रूप और व्यक्तित्व, निर्विकार शान्त और सौम्य मुखमण्डल। एकाएक कुछ कौंध सा गया मेरे मस्तिष्क में। अरे यह क्या ? वह युवक और कोई नहीं स्वयं मैं ही था, तीन सौ वर्ष पूर्व का योगेश शास्त्री। हे भगवान! कितना अविश्वसनीय और कितना आश्चर्यजनक था सब कुछ। तीन सौ वर्ष पूर्व के कालपटल पर मैं स्वयं अपने आपको और अपने पिताश्री को देख रहा था उस अनर्वचनीय अवस्था में। क्या कोई विश्वास करेगा ? कोई नहीं करेगा बन्धु! कोई नहीं करेगा.....।

एकाएक मेरी आँखे खुल गयी लेकिन न जाने कबतक जड़वत् और पाषाणवत् बैठा रहा मैं अपने स्थान पर और उसी समय मुझे सुनायी दिया गोपाल ब्रह्मचारीजी का स्वर। कह रहे थे वह अपने आपको और गुरु रूप में अपने पिताश्री को पहचाना तुमने ?

सिर हिलाकर हाँ! कहा मैंने।

दीक्षाकाल का दृश्य था वह। पिछले चौथे जन्म में योग की आन्तरिक दीक्षा दी गयी थी तुमको। तब से अबतक योग के गुह्य साधना मार्ग पर अग्रसर है तुम्हारी आत्मा लेकिन तुम्हे बाह्य अनुभव नहीं है उसका। पाँचवा जन्म है यह तुम्हारा। अब आगे बढ़ना है तुम्हे। यह सब सुनकर चकित होना स्वाभाविक था मेरा। लेकिन सत्य तो सत्य ही था स्वीकार कर लिया उसे मेरी आत्मा ने और उसी दिन से गोपाल ब्रह्मचारी के निर्देशन में ध्यानयोग का अभ्यास शुरू हो गया मेरा। पूरे चार वर्ष का समय देखते ही देखते न जाने कब व्यतीत हो गया समझ में नहीं आया।

गोपाल ब्रह्मचारी का महाप्रयाण- शरीर की अवधि पूरी हो गयी थी गोपाल ब्रह्मचारी की। एक दिन सायंकाल के समय गया तो देखा–झोपड़ी में तख्त पर निष्प्राण काया पड़ी थी उस महान योगी की। न जाने कब तक अपलक निहारता रहा मैं उस इच्छा मृत्युधारी परमयोगी के मुख की ओर। अभी भी दमक रहा था उनका मुखमण्डल सोने की तरह। मृत्यु की छाया ने स्पर्श तक नहीं किया था उनकी निर्जीव काया को।

ब्रह्मचारीजी को शरीर त्याग किए लगभग एक मास हो गया था। उनके अभाव में रिक्त हो गया था मेरा जीवन। मन की शांति गवां बैठा था मैं। पागलों जैसी स्थिति हो गयी थी मेरी और उसी विषण्ण अवस्था में एक रात मुझे गोपाल ब्रह्मचारी दिखलाई दिए। शायद आधीरात व्यतीत हो चुकी थी। नींद नहीं आ रही थी। बस आँख मूंदे निश्चेष्ट पड़ा था बिस्तर पर और उसी समय एक अनर्वचनीय सुगन्ध से भर गया मेरा कमरा और उसी के साथ मुझे अपने सामने खड़े दिखलायी दिये ब्रह्मचारीजी उनका पूरा शरीर पारदर्शक था और उसमें से शुभ्र रश्मियाँ विकीर्ण हो रही थी चारो तरफ। मुस्करा रहे थे वह मन्द–मन्द। वे प्रसन्न थे और उनकी आंखों में करूणा का सागर लहरा रहा था जैसे। मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए गम्भीर स्वर में बोले–अशान्त होने की आवश्यकता नहीं अपने आपको पहचानो और नित्य कम से कम दो घंटे का समय अपने लिए दो और वह समय तुम्हारी साधना का होना चाहिए संसार का नहीं। जब तुम शरीर का त्याग करोगे उस समय अवश्य आऊँगा तुम्हारे पास मैं तबतक मेरी प्रतीक्षा करना।

एकाएक उठकर बैठ गया मैं। सिर घुमाकर देखा, कोई नहीं था वहाँ, वह अनर्वचनीय सुगन्ध का अस्तित्व अभी भी था कमरे में।

दूसरे ही दिन से मेरा योगाभ्यास शुरू हो गया रात्रि दो से चार बजे तक नित्य ध्यानयोग का अभ्यास करने लगा मैं। जिस समय ध्यानस्थ होता मैं उस समय लघु मस्तिष्क से अपने आप विकीर्ण होने लग जातीं मनस ऊर्जा की विद्युत चुम्बकीय तरंगे और काफी दूर तक फैलती चली जाती वह। जैसे–जैसे मैं ध्यान की गहरायी में उतरता जाता वैसे ही वैसे तरंगों का विस्तार भी बढ़ता जाता जिसका प्रत्यक्ष मानसिक अनुभव होता मुझे। आनन्दमग्न रहने लगा था अब मैं। एकान्त

में रहना मेरा स्वभाव बन गया था। समाज और परिवार में रहते हुए भी अनाशक्त और निरपेक्ष जीवन था मेरा अब। धीरे–धीरे अन्तर्मुखी होता चला गया मैं। ऐसी स्थिति में तरह तरह के विचित्र और अविश्वसनीय अनुभव होने लगे थे मुझे।

मैं जीवित मंनुष्य के मन, विचार और भाव को तो तत्काल जान समझ लेता था। मेरा मनोमय शरीर मनुष्य की मानसिक स्थितियों को तत्काल जान जाता था। इसी प्रकार मैं अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा उसके विचारों और भावों को अपने भाव शरीर द्वारा उसके भावों को भलीभांति जान समझ लेता था सहज ही। इसके लिए कोई किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता था मुझे। वास्तव में इसका कारण विकीर्ण होने वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगे ही थी। इतना ही नहीं उन विद्युत चुम्बकीय तरंगों द्वारा भाव शरीरधारी, सूक्ष्म शरीरधारी और मनोमय शरीरधारी विदेही आत्माएँ भी आकृष्ट होने लगी मेरी ओर। मनोमय शरीरधारी आत्माओं में कोई दिव्य महापुरुष होता, कोई परम योगी, परम साधक भी होता और कोई कोई होता परम ज्ञानी भी। उनके और मेरे बीच माध्यम होता था मेरा मनोमय शरीर। यह पहली बार मुझे ज्ञात हुआ कि आत्मा मुख्य रूप से जिस शरीर में रहती है, उसी शरीर को देख सकती है और उसमें रहने वाली आत्मा को जान सकती है।

एक दिन नित्य की भांति एकान्त में ध्यानस्थ बैठा हुआ था। तभी लघु मस्तिष्क से विकीर्ण होने वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगों की सहायता से मेरे मनोमय शरीर का संबंध अपने आप स्थापित हो गया एक विदेही आत्मा से।

शिवलिंग का यौगिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप– वे मनोमय शरीरधारी एक दिव्य महात्मा थे और उनका संबंध किसी दिव्यलोक से था। भौतिक जीवन में उनका नाम था परमेश्वरानन्द। शरीर त्याग के बाद लगभग चार सौ वर्षों से हिमालय में निवास कर रहे थे। कभीकदा तीर्थयात्रा पर भी निकल पड़ते थे महाशय। उस समय काशी यात्रा पर थे। भगवान शिव के अनन्य भक्त थे वह। मुझे देखकर प्रसन्न हुये बोले– अध्यात्म का समुद्र अत्यन्त गहन और गम्भीर है। उसमें प्रवेश

करने का जो प्रयास कर रहे हो, निश्चय ही श्लाघनीय है वह। जिस सत्य को तुम उपलब्ध होना चाहते हो वह आज के युग में दुर्लभ है। तुम्हारे जन्म–जन्मान्तर का जो आध्यात्मिक संस्कार इस दिशा में सहयोग दे रहा है वह शीघ्र किसी को सम्भव नहीं।

मैंने कहा–बाबा मुझे तो कुछ नहीं मालूम है मैं कौन हूँ ? क्या हूँ? महापुरुषों का कृपापात्र कैसे बन गया ? किस योग्यता के फलस्वरूप ये सब आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय उपलब्धियाँ हो रही हैं ? स्वयं अपरिचित हूँ मैं। मेरी बाल्यसुलभ बाते सुनकर महात्मा परमेश्वरानन्द हँसे फिर कहने लगे–तुम भौतिक शरीर में हो। इसलिए तुम सीमाबद्ध हो और यही कारण है कि तुम अपने आपको, अपने आध्यात्मिक संस्कार को और अपनी अलौकिक अनुभूतियों को समझ नहीं पा रहे हो। समय पर सब ठीक हो जायेगा।

महात्मा परमेश्वरानन्द भगवान शिव के उपासक और साधक थे। भगवान शिव के संबंध में उनका अपना आध्यात्मिक विचार था कि शिव की प्रतिमा का निर्माण शिवलिंग के रूप में हुआ है।

शिव का एक रूप अर्धनारीश्वर का भी है। जिसमें आधा रूप पुरुष का है और आधा रूप स्त्री का है। जो लोग जीवन के परम रहस्य को जानना चाहते हैं उन्हें शिव के व्यक्तित्व को गहरायी से समझना होगा और सब देवताओं को हमने देवता कहा है लेकिन शिव को महादेव कहा है। उनसे ऊँचा हमने किसी को नहीं रखा। इसके कई कारण हैं क्योंकि उनकी कल्पना में हमने अध्यात्म की दृष्टि से जीवन का सम्पूर्ण सार छिपा दिया है और छिपा दिया है सम्पूर्ण रहस्य भी।

अर्द्धनारीश्वर का अर्थ यह है कि जिस समय परम सम्भोग अपनी चरमावस्था में पहुँचता है उस क्षण आपका आधा व्यक्तित्व आपका और आपका आधा व्यक्तित्व आपकी पत्नी का हो जाता है। आपकी ही आधी ऊर्जा पुरुष तत्व की हो जाती है और आधी ऊर्जा हो जाती है स्त्री तत्व की और उन दोनों विपरीत ऊर्जाओं के आन्तरिक मिलन से जो रस और लीनता उत्पन्न होती है उससे शक्ति का विसर्जन नहीं होता बल्कि उसका उत्थान होता है।

जगत द्वन्द से निर्मित है इसलिए आप जब भी होंगे, दो होंगे। आप बाहर खोज रहे हैं स्त्री को इसलिए कि आपको अपने भीतर की स्त्री का ज्ञान अथवा अनुभव नहीं है। स्त्री खोज रही बाहर पुरुष को क्योंकि उसे अपने भीतर के पुरुष का न ज्ञान है और न तो है अनुभव। जिस समय भीतर के स्त्री–पुरुष का मिलन हो जाता है। उसी क्षण से बाहर किसी की खोज समाप्त हो जाती है। दूसरा कोई नहीं बचा। द्वन्द समाप्त हुआ निर्द्वन्द हो गये। द्वैत का अस्तित्व समाप्त और अद्वैत की स्थिति आ गयी, अद्वैत यानी परम आलिंगन। ऐसा जो साधक है वह शिवलिंग स्वरूप है। वह अपने भीतर वर्तुलाकार रूप में पूर्ण हो गया होता है। वह अपने ही भीतर के 'रस' का आनन्द लेने लगता है और उसके भीतर ही होने लगता है आत्मरमण। इसी अवस्था को कहते हैं, स्वसम्भोग। अपने भीतर के ही स्त्री–पुरुष का सम्भोग। इस सम्भोग की अवस्था में ऊर्जा बाहर नहीं निकलती बल्कि भीतर ही वर्तुलाकार घूमती रहती है और उस वर्तुलाकार का स्वरूप शिवलिंग के समान है।

एक साधक से सम्पर्क- इसी प्रकार विद्युत चुम्बकीय तरंगों के माध्यम से एक तंत्र साधक से मेरा सम्पर्क हुआ। उनका नाम था सच्चिदानन्द। दो वर्ष पूर्व काशी के महाश्मशान में उन्होंने कई तांत्रिक साधनाएँ की थी। उपलब्धि तो अवश्य हुई किन्तु शरीर छोड़ने के पश्चात अधोगति को प्राप्त हो गये महाशय। स्थिति बड़ी दयनीय थी उनकी। कहीं जन्म लेकर प्रायश्चित करना चाहते थे वह किन्तु ऐसे लोगों को कहाँ उपलब्ध होता है शीघ्र गर्भ। तंत्र के विषय में अपने अनुभवजन्य विचार थे सच्चिदानन्द के कहने लगे–तंत्र की शक्तियाँ तांत्रिकों की क्रियायें अवचेतन मन पर प्रभावी होती है। जो जितना गहरा तांत्रिक होगा उसका प्रभाव आपके अवचेतन मन पर उतनी ही गहरायी से पड़ेगा। तांत्रिक की अपनी शक्ति ही अवचेतन मन की गहरायी का निर्धारण करती है। अवचेतन मन चेतन मन को प्रभावित करेगा और चेतन मन शरीर को संचालित करेगा। तंत्र के षट्कर्म नकारात्मक हैं और तंत्र की शक्तियों का प्रयोग अधिकांशतः नकारात्मक ही होता है। बहुत से लोगों के जीवन में ऐसा हुआ होगा कि अचानक सिर में दर्द उठा, पेट में दर्द उठा, पैर में पीड़ा हुई, दिल में दर्द उठा.....

उनके प्राण तक हिल गये। डॉक्टर के पास गये उसने ट्रैक्वी लाइजर की सुई लगायी और तुरन्त आराम हो गया। बाद में बहुत तरीके की जाँच हुई एक्सरे हुआ लेकिन कारण ज्ञात न हो सका। इसी प्रकार किसी को डिप्रेशन हो गया। जीवन में कोई 'रस' ही नहीं रहा। सब कुछ है घर–परिवार, सुन्दर, पत्नी, आज्ञाकारी बेटे, हँसता–खेलता जीवन है, धन है; प्रतिष्ठा है मगर मन अचानक अवसाद से घिर गया। कोई कारण समझ में नहीं आता। रात अच्छे भले सोये थे। प्रातः उठने पर मन उदास–उदास सा हो जाता है। कई दिन और महीने बीत जाते हैं। हर तरह की दवा और इलाज होता रहता है मगर मनः स्थिति में कोई सुधार नहीं होता। जबतक दवा चलती तबीयत सुधरी रहती है। दवा बन्द होते ही मन फिर अवसाद ग्रस्त हो जाता है। कभी–कभी इसी प्रकार व्यक्ति मर भी जाता है। कभी–कभी किसी को भूख नहीं लगती। खाने को सब कुछ उपलब्ध है मगर खाने की इच्छा नहीं होती। डॉक्टर के पास जाते हैं तो वह मनोवैज्ञानिक के पास भेज देता है। मनोवैज्ञानिक इसे उचाटपन बताकर घूमने जाने की सलाह देता है।

कभी–कभी शरीर घुलने लगता है। कमजोरी होने लगती है। वजन घटने लगता है। इस प्रकार बहुत सी बीमारियाँ तांत्रिकों के दुष्कृत्यों का परिणाम होती हैं। किसी को विक्षिप्त कर देना, किसी पर मारण प्रयोग कर देना, किसी के सुखी परिवार को नष्ट कर देना, किसी की जीविका का हनन कर देना, किसी को हरेक प्रकार से हतोत्साहित कर देना। किसी स्त्री और पुरुष को एक दूसरे से अलग कर देना। किसी का उच्चाटन कर उसको उसके परिवार अथवा उसके व्यवसाय से विमुख कर देना। वशीकरण क्रिया द्वारा किसी स्त्री या पुरुष को अपने वश में कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना। इस प्रकार की तांत्रिक क्रियायें तांत्रिक करता है। अधिकांशतः आपके शत्रु, ईर्ष्या रखने वाले संबंधियों और अन्य विरोधी इन क्रियाओं को करवाते हैं। कभी–कभी ऐसा भी हो जाता है कि किसी दम्पत्ति को सन्तान नहीं होती। डॉक्टर के अनुसार सब कुछ ठीक होता है। यदि गर्भ ठहरता भी है तो खण्डित हो जाता है। इसका कारण तंत्र का निर्वंश होने वाला प्रयोग है। आपके ही किसी रिश्तेदार ने किसी तांत्रिक से वंश आगे न बढ़ने का प्रयोग करवाया है।

कानून में इसकी पकड़ नहीं है। कोई प्रमाण भी नहीं है। ज्ञानी और बुद्धिजीवी इसे अन्धविश्वास मानकर नकार देते हैं। सामान्य व्यक्ति में घटनाओं की जड़ तक पहुँचने का सामर्थ्य नहीं है। इसलिए तंत्र का अभिचार कर्म अबाध गति से चलता रहता है। घटनाओं के वास्तविक कारणों को तांत्रिक ही समझ सकता है। जिन समस्याओं का निराकरण और जिन आपदा–विपदाओं का निवारण नहीं हो पा रहा है। उनका उपचार तंत्र के द्वारा ही सम्भव है। तांत्रिक क्रियायें ही उनका समाधान कर सकती हैं। लेकिन बन्धु यह सब तो ठीक है लेकिन तांत्रिक ने किसी भी प्रकार के अभिचार कर्म करने के पूर्व वास्तविकता को समझने का प्रयत्न नहीं किया और सत्यता का पता लगाने की चेष्टा नहीं की तो उसका परिणाम स्वयं उसे तो भोगना ही पड़ता है और उसके साथ ही साथ अभिचार कर्म कराने वाले की भी दुर्गति होती है।

थोड़ा रूककर सच्चिदानन्द आगे बोले–मुझे ही लीजिए। बिना समझे बूझे और बिना सत्य का पता लगाये और बिना सत्य को जाने मैंने अहंकार में डूबकर अनेकों प्रकार का अभिचार कर्म किया। धन मिला, यश–कीर्ति मिली और सभी प्रकार का सुख–वैभव प्राप्त हुआ लेकिन सब व्यर्थ। पहले युवा पुत्र की मृत्यु हुई और फिर पत्नी की। पुत्रवधु ने भी आत्महत्या कर ली बाद में। वृद्धावस्था में मुझे सर्वांग कुष्ठ हो गया। अन्त में एक समय ऐसा आया कि कोई मुझे दो रोटी और एक लोटा पानी देने वाला भी नहीं था। अपने ही तलवार से अपनी गर्दन काट लिया था मैंने बन्धु। तांत्रिक शक्ति के वशीभूत होकर धन के लोभ में ऐसे सैकड़ों अभिचार कर्म किए जो धर्म, समाज और परमात्मा की दृष्टि में भारी अत्याचार था, भारी कुकर्म था और था घोर पाप। जिनका परिणाम मृत्यु के बाद भी भोग रहा हूँ मैं। इतना कहकर बिलख–बिलख कर रोने लगे सच्चिदानन्द। मैं पाषाणवत् उनकी बातें सुनता रहा....।

धीरे–धीरे मेरी मानसिक स्थिति रहस्यमय ढंग से विचित्र होती जा रही थी। अबतक अपनी खोज और शोध की दिशा में पूरे तीन वर्ष का समय व्यतीत हो चुका था। इस अवधि में अपने भाव, विचार और मन की विद्युत चुम्बकीय तरंगों को पहचानने और समझने लगा था और उनके रहस्यमय चमत्कारों से भी होने लगा था परिचित मैं। जब किसी

देवी या देवता के सामने जाता तो मस्तिष्क से विकीर्ण होने वाली तरंगे उनकी प्रतिमा में समाने लग जाती थी उस समय सजीव–सी हो उठती वह प्रतिमा। इसी प्रकार किसी देवी या देवता के मंत्र का जप करता तो उस अवस्था में मंत्र के अधिष्ठात्र देवी या देवता का स्वरूप मेरे मानस पटल पर उभर आता स्पष्ट रूप से। यही स्थिति होती पूजा पाठ आदि करते समय भी। नवरात्र का समय था। मैं नित्य रात्रि के समय मध्यम चरित्र का पाठ करता था। दुर्गा सप्तशती में मध्यम चरित्र का अपना अतिशय महत्व है। जब मैं मध्यम चरित्र का पाठ करता उस समय श्लोक के अर्थ के अनुसार देवी का चरित्र उभरने लगता था मेरे मानस पटल पर। भगवती का आविर्भाव असुरों का उनके द्वारा वध और देवताओं की स्तुति आदि को चलचित्र की भांति देखता था मैं। सबसे सुन्दर और मनोहारी दृश्य लगता था मुझे माँ के सुरापान का। धीरे–धीरे स्वर्णपात्र में भरे मदिरा का पान करती और बीच–बीच में पलकें उठाकर अपने चारो ओर देख भी लेती माँ। उनके बड़े–बड़े रक्ताभ हो रहे नेत्रों में करूणा, दया और अनुकम्पा के मिले–जुले भाव के साथ आक्रोश की भी झलक दिखलायी दे जाती कभी–कभी। उनके होंठो पर बिखरी हुई मुस्कराहट क्या कभी भूल सकूँगा मैं ? एक दिन सायंकाल के समय टहलता हुआ श्मशान की ओर चला गया मैं। कई शव जल रहे थे वहाँ। मेरा विरक्त मन और अधिक विरक्त हो उठा। घाट के ऊपर एक पत्थर का चबुतरा था उसी पर बैठ गया मैं। बड़ी शान्ति मिली मेरे विरक्त मन को। लेकिन कुछ देर बाद मस्तिष्क से विकीर्ण होने वाली ऊर्जा तरंगे श्मशान की ओर आकर्षित होने लगी और वहां से सीधे ऊपर की ओर उठकर आकाश में समाने लगी। आश्चर्य हुआ मुझे। समझते देर न लगी मुझे भाव ऊर्जा की तरंगे थी वह। एकाएक मेरे सिर में भयानक दर्द होने लगा। शायद सावन भादों का महीना था। आकाश में काले भूरे बादल घिरे हुए थे। बारिश होने ही वाली थी। लेकिन जहाँ बैठा था वहाँ छाया थी, इसलिए भींगने का डर नहीं था। सामने जलती हुई चिता की लाल, पीली लपटों को निहारता हुआ न जाने कब ध्यानस्थ हो गया मैं।

एक श्मशान भैरवी से सम्पर्क– उसी ध्यान की अवस्था में अपने सामने एक युवती को देखा मैंने, आयु अधिक नहीं थी। काला रंग, गोल चेहरा, चौड़ा मस्तक और मस्तक पर लाल सिन्दूर का बड़ा सा गोल टीका। बड़ी–बड़ी झील जैसी गहरी नीली आँखे, नितम्ब तक झूलते काले घने बाल, कमर में लाल रंग का घाघरा बस यही था स्वरूप उस रहस्यमयी युवती का। कुल मिलाकर एक अजीब सा सम्मोहन भरा आकर्षण था उसके व्यक्तित्व में। मेरे मस्तिष्क की विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा तरंगों के जाल में फंसकर आ गयी थी मेरे मानस पटल के आंगन में वह इसमें सन्देह नहीं।

कौन हो तुम ?

पहचाना नहीं मुझे? श्मशान भैरवी हूँ मैं। पूरे तीन सौ वर्षों से भटक रही हूँ मैं इस महाश्मशान में समझे न। मेरे सामने यहाँ इस महाश्मशान में कितनी लाशें आयी, कितनी लाशें धूँ–धूँ कर जली और फिर अन्त में मुट्ठी भर राख में बदल कर अपना अस्तित्व खो बैठी हमेशा–हमेशा के लिए। उनमें से कितनी की आत्माएँ विलाप कर रही हैं यहाँ अपने–अपने शरीर के लिए। जब शरीर था तो उसकी महिमा नहीं समझी। उसका मूल्य और महत्व नहीं समझा और मौत ने उसे छीन लिया तो रो रही है इस तरह।

तुम युवक हो। कितना सुन्दर है तुम्हारा रूप। कभी कोई अतृप्त मृतात्मा लग गयी तुम्हारे पीछे तो फिर पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जायेगा तुम्हारे लिए।

श्मशान भैरवी की भाषा दार्शनिक थी। थोड़ा आश्चर्य हुआ। वह आगे बोली–अच्छा मैं अब चलूँ एक अच्छी आत्मा की लाश आने वाली है। जरा देखभाल करना होगा न। फिर कभी मिलूँगी। अच्छा तुम भी जाओ यहां से। घर वापस चला आया मैं थोड़ी देर और बैठकर। मन न जाने कैसा हो गया मेरा उस समय। गोपाल ब्रह्मचारी की कुटिया अभी तक खाली ही पड़ी थी। मेरी जो मानसिक और वैचारिक स्थिति थी उसके प्रतिकूल था घर परिवार का वातावरण। मुझे पूर्ण एकान्त की और पूर्ण शान्ति की थी आवश्यकता उस समय। इसलिए दूसरे ही दिन गोपाल ब्रह्मचारी की कुटिया पर अपना जमा लिया अधिकार। रात्रि का

समय था बादलों से अटकर काला पड़ गया था आकाश। कभी–कभी बिजली चमकती और बादल गरजते और फिर एक दो पल के लिए वातावरण की नीरवता भंग हो जाती।

जब स्थूल शरीर में प्रकट हुई श्मशान भैरवी– अन्धकार में डूबी हुई कुटिया के शान्त वातावरण में अचानक एक काली छाया प्रकट हुई। समझते देर न लगी मुझे श्मशान भैरवी थी वह लेकिन भाव शरीर को भौतिक शरीर में कैसे परिवर्तित कर लिया उसने ? आश्चर्य हुआ मुझे उस समय। रोशनी करो–श्मशान भैरवी कोमल स्वर में बोली। न जाने कब की डिबरी रखी थी। तेल था भी नहीं उसमें लेकिन जला दिया मैंने उसे। हल्का पीला प्रकाश फैल गया कुटिया में और उस प्रकाश में भरपूर दृष्टि से देखा मैंने श्मशान भैरवी के अपरूप को और मानव दुर्लभ सौन्दर्य की कहीं कोई विषमता नहीं थी। जैसा भाव शरीर था वैसा ही था उसका पार्थिव शरीर भी लेकिन कैसे सम्भव हुआ यह? शायद मेरे कौतूहल को समझ गयी श्मशान भैरवी हँसकर बोली–तुम्हारे अन्दर एक ऐसी चीज है जिसे तुम अभी समझ नहीं पा रहे हो। कभी समझ जाओगे। मैं उसी चीज से आकर्षित होकर आयी हूँ यहाँ। रही काया परिवर्तन की बात वह तो मेरे लिए कोई भारी समस्या नहीं है। कुछ समय के लिए पंचतत्वों को एकत्र कर अपने स्थूल शरीर की रचना करने की शक्ति तो मेरे गुरुदेव ने दी ही है मुझे।

यह सुनकर एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। पाषाणवत् देखता रहा कुछ क्षण तक उस कृष्णवर्णा को जो अब मेरे लिए अत्यन्त रहस्यमयी हो गयी थी।

सच–सच बतलाओ कौन हो तुम? कौन है तुम्हारे गुरुदेव? श्मशान भैरवी के रूप में क्यों भटक रही हो तुम यहाँ?

इस प्रकार एक साथ कई प्रश्न कर बैठा मैं, भावावेश में कुछ बोली नहीं श्मशान भैरवी मौन साधे अपलक निहारती रही मेरी ओर वह। उसकी बड़ी–बड़ी आँखे सहज नहीं थी उस समय, इस प्रकार अपनी ओर देखना रहस्यमय लगा मुझे। कुछ भय भी लगा लेकिन अपने को संयमित रखे रहा मैं।

एकाएक कुटिया की नीरवता भंग हुई। गम्भीर किन्तु सहज स्वर में श्मशान भैरवी बोली– मैं कौन हूँ? क्यों भटक रही हूँ मैं श्मशान में

सब कुछ बतलाऊँगी। कोई रहस्य शेष नहीं रहेगा सब कुछ स्पष्ट हो जायेगा तुम्हारे सामने। इसी दिन की तो प्रतीक्षा कर रही थी मैं.....। इतना कहकर कुछ क्षण के लिए रूकी वह रहस्यमयी और फिर पूर्ववत् गम्भीर स्वर में बोली– पहले तुमको यह जान लेना आवश्यक है कि जिस मार्ग पर तुम चल रहे हो, उसकी धूल पर शताब्दियों बाद किसी भूले भटके व्यक्ति के पद–चिन्ह अंकित होते हैं। इसके अलावा तुमको यह भी जान लेना आवश्यक है कि तुम्हारी आत्मा जन्म–जन्मान्तर से जिस वस्तु को ढोती हुई तुम्हारे इस शरीर में प्रकट हुई है–वह एक प्रबल आध्यात्मिक तत्व है जिसके प्रभाव से इस अवस्था को प्राप्त हुए हो तुम। सम्भव है कभी किसी समय तुम्हारे मस्तिष्क से आश्चर्यजनक ढंग से विकीर्ण होने वाली ऊर्जा तरंगे कभी भी पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की सीमा लांघकर ब्रह्माण्डीय ऊर्जा तरंगो (कास्मिक वेब) से मिल सकती है और मिलकर उनकी सहायता से लोक–लोकान्तरों में प्रवेश कर सकती है और वहाँ के प्राणियों से सम्पर्क भी कर सकती है स्थापित। तुम तो जानते ही हो मानव मस्तिष्क विश्व ब्रह्माण्ड का लघु संस्करण है। जो ब्रह्माण्ड में है वह तुम्हारे मस्तिष्क में है। कभी सोचा है क्या स्थिति होगी तुम्हारी ? जिज्ञासु हो उठा मैं। कुछ बोलना चाहा किन्तु मुँह से शब्द नहीं निकले न जाने क्यों लेकिन मेरे मन के भाव को समझ गयी श्मशान भैरवी। बोली– तुम उन तिमिराच्छन्न तथ्यों और उन रहस्यमय सत्यों से धीरे–धीरे परिचित हो जाओगे। जिनको न संसार जानता है न समाज जानता है और न कोई धर्मगुरु की जानता समझता है। रही बात शास्त्र, पुराण और वेद, उपनिषद की उनमें उन तथ्यों और सत्यों को खोजना अत्यन्त कठिन कार्य है। साक्षात् कृतधर्मा ही उन्हें उपलब्ध कर सकता है। यदि तुम परिचित हो भी गये तो जीवन तुम्हारे लिए सार्थक हो जायेगा लेकिन अन्य के लिए हो जायेगा निरर्थक। तुम सब कुछ जान समझ जाओगे। जीवन जगत का सारा रहस्य हो जायेगा तुम्हारे सामने अनावृत। लेकिन कोई तुमको न जान सकेगा और न तो समझ ही सकेगा। सभी के लिए एक रहस्यमय व्यक्ति ही बने रहोगे सदैव तुम।

अब मैं तुमको कुछ ऐसी बातें बतलाऊँगी, जिनको अपनाने से इस कंटकाकीर्ण संसार में जीने की कला जान जाओगे और तुमको अपने मार्ग पर अग्रसर होने में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आयेगी।

व्यस्त रहना ही जीवन नहीं है। व्यर्थ की बातों में उलझने से अपना समय नष्ट होता है। व्यर्थ वार्तालाप से समय का दुरुपयोग तो होता ही है साथ–साथ अपने आत्मविश्वास में भी कमी आ जाती है। अनुकूल परिवेश में न रहने से मानसिक तनाव होता है। हमें यदि जीवन को जीना ही है तो सोच–विचार कर जीना चाहिए। जानते हो जीवन अतिमूल्यवान है जल्दी नहीं मिलता। अनेक समस्याओं को झेलें, अनेक बाधाओं से हम उलझें, अनेकों कष्टों, दुखों, पीड़ाओं और अनेकों व्यवस्थाओं को सहें लेकिन एक समय ऐसा भी मिलना चाहिए जब हम एकान्तवास करें। उस समय न किसी से बात करें, न किसी से बोले और न तो किसी व्यक्ति अथवा विषय के संबंध में सोचें। किसी को अपने पास भी न रहने दें। केवल स्वयं को सोचें। स्वयं पर विचार करें। स्वयं का आत्म मंथन करें और स्वयं की करें समीक्षा। यह सोचें कि हमारा जीवन जो चल रहा है, उसे क्या मनोनुकूल व्यतीत कर रहे हैं। क्या हम जीवन से सन्तुष्ट हैं ? हमें जो चाहिए वह मिल रहा है? क्या हम अपना कर्तव्य का पालन कर रहे हैं ? हमें जितना चाहिए उसके अनुसार क्या हमारा परिश्रम है ? हम क्या पाना चाहते हैं? क्या खो रहे हैं ? क्या बोल रहे हैं ? अन्यों के विषय में नहीं अपने विषय में समीक्षा करें। अपने भूलों की, अपनी गलतियों की और अपने गुण दोषों की। मनुष्य जो अन्य लोगों के लिए अपरिचित है वह सदैव अपने लिए परिचित होता है। यही परिचय उसकी आत्म चेतना है। उसी आत्म चेतना से हमें कल का मार्ग प्रशस्त करना होगा।

आज हर व्यक्ति चिन्तित है। क्यों और किससे ? यह वह अच्छी तरह जानता है। यदि गम्भीर रूप से चिन्तन करके देखें तो लोग किसी न किसी को दोषी पायेंगे और कहेंगे कि अमुक ने उसे दुखी कर रखा है। अमुक से वह परेशान है लेकिन यह धारणा सत्य नहीं है। सत्य तो यह है कि हम स्वयं के विचारों से, स्वयं के मनोभावों से और स्वयं की

बुद्धि से ऐसी धारणा बना लेते हैं। इस दिशा में जब हम अपना ही सूक्ष्म अध्ययन करेंगे तो पता चलेगा कि हमें स्वयं ही किसी व्यक्ति से, किसी वस्तु से, किसी स्थान से गहरा लगाव था और था गहरा स्वार्थ। जब हमारे लिए वस्तु, स्थान और व्यक्ति अनुकूल और उपयुक्त नहीं होता है तब हम दुखी हो जाते हैं। दुखी क्यों ? जबकि हमें कुछ भी नहीं चाहिए। सुख और दुख हमारी इच्छाओं से होता है उत्पन्न। हमारी आत्मा का संबंध परमात्मा से हो या न हो, पर मानव जगत में किसी न किसी आत्मा से तो है। यदि हम मात्र आत्म संबंध ही बना लें और सन्तोष कर लें कि भले ही इच्छित वस्तु हमें उपलब्ध नहीं हुई दूसरी किसी आत्मा को तो हो गयी प्राप्त। फिर किस प्रकार का दुख ? फिर चिन्तन क्यों ? हमें रोटी नहीं मिली भूखा रहा वह। रोटी किसी और को मिल गयी और उसने उसे खा लिया। उसकी तृप्ति अपनी तृप्ति मान लें हम फिर कष्ट या दुख क्यों ? यह आत्म सन्तोष ही समस्त समस्याओं का और समस्त दुख अथवा कष्टों का विनाशक है। आत्म सन्तोष से इतना ही नहीं, वह अपने और पराये के भेद को भी नष्ट कर देता है। तब हम दुखी नहीं रहते। तब हमारे सामने कोई समस्या भी नहीं रहती।

हमारा जीवन महायात्रा है। वह तबतक सफल नहीं होगा, जबतक हम छोटी–छोटी वस्तुओं, इच्छाओं, कामनाओं, आकांक्षाओं के अतिरिक्त क्षुद्र स्वार्थो के पीछे पागलों की तरह पड़े रहेंगे। उनसे अपने को पृथक नहीं समझेंगे और अन्त में एक दिन ऐसा आयेगा कि जब आप अपने जीवन की सार्थकता को सही अर्थो में समझने लगेंगे। आप जो परिश्रम करेंगे वह अपने लिए नहीं दूसरे के लिए करेंगे। जीवन जीयेंगे अवश्य दूसरे के लिए। जीवन यात्रा को पूर्ण करने और सफल बनाने के लिए तीन बातें आवश्यक है। पहली है एकान्त का अधिक से अधिक सेवन दूसरी है अपने गुण दोषों को बराबर परखते रहना और तीसरी है बराबर आत्म चिन्तन करते रहना। यदि तुम करोगे तो निश्चिय ही तुम आध्यात्मिक जीवन यात्रा में सफल होगे। आध्यात्मिक जीवन जीने वाला वास्तव में सन्त होता है और आध्यात्मिक जीवन यात्रा के कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलने वाला होता है महात्मा। ये दोनों परम उपलब्धियाँ प्रतीक्षा

कर रही है तुम्हारी। एकाग्र होकर सुन रहा था मैं उस रहस्यमयी श्मशान भैरवी की बातें। अन्त में उसने कहा जैसा मैंने कहा है, वैसा ही तुम करोगे तो निश्चय ही तुम अपने आध्यात्मिक जीवन में और साथ ही भौतिक जीवन में सफल होगे और दूसरों को भी सफल बनाने में सहयोगी सिद्ध होगे। इतना ही नहीं दूसरों का सुख–दुख भी समझोगे और उन्हें दूर करने की भी चेष्टा करोगे और प्रयास करोगे इसी प्रकार दूसरों की पीड़ा, व्यथा और कष्ट को भी दूर करने का अपना समझ कर।

क्यों इतनी ज्ञान की बातें कर रही है? क्यों दार्शनिक भाषा में इतना उपदेश दे रही है और क्यों मेरे विषय में इतना सब कुछ बतला रही है मुझे श्मशान भैरवी आखिरी क्यों और किसलिए ?

रात का दूसरा प्रहर था शायद। आकाश में काले भूरे बादल मंडरा रहे थे। एकाएक कड़कड़ाती हुई बिजली चमकी और क्षण भर के लिए फैल गया दूर दिगन्त तक उसका धवल प्रकाश और उसी के साथ गरज उठे बादलों के समूह भी। पहले धीरे–धीरे पानी गिरा फिर बरसने लगा झम–झम कर आसमान। स्याह रात और अधिक गहरा गयी। अचानक हवा का एक तेज झोंका आया और बिखर गया कुटिया के भीतर चारो तरफ और उसी के साथ जलती हुई डिबरी भी बुझ गयी और गहन अन्धकार में डूब गयी कुटिया। अभी भी श्मशान भैरवी का पार्थिव अस्तित्व था वहाँ। जिसका बराबर लग रहा था आभास मुझे। अब वह मेरे बिलकुल निकट आ गयी थी शायद। उसके भीतर से निकलने वाली नारी गन्ध से भर रहा था मेरा नासापुट। उस गहन अन्धकार में भी मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसकी बड़ी–बड़ी आँखे घूर रही हैं मुझे ? क्या चाहती हैं वह मुझसे। एकाएक याद आ गया श्मशान भैरवी का वह वाक्य उसने धीमे स्वर में कहा था–इसी दिन की तो प्रतीक्षा कर रही थी मैं.....बड़ा ही रहस्यमय वाक्य था वह इसमें सन्देह नहीं। फिर इस प्रकार मुझे दार्शनिक भाषा में उपदेश देने और समझाने का क्या प्रयोजन था उसका और मेरे आध्यात्मिक जीवन में झांकने का क्यों प्रयास किया उसने ? मेरी समझ में नहीं आ रहा था कुछ भयमिश्रित जिज्ञासा और कौतूहल के भाव से भर उठा मेरा मन एकबारगी। आखिर

है यह कौन। उसका रहस्यमय व्यक्तित्व और गहरा होता चला गया मेरे मन में। अब असहनीय हो उठी थी नारीगन्ध मेरे लिए। कुछ क्षण बाद लगा जैसे स्पर्श कर रही है, मेरे शरीर को वह कृष्णवर्णा श्मशान भैरवी। कैसा था वह मादक स्पर्श और कैसा थी विचित्र वह गन्ध। कुछ सोचूँ और कुछ समझूँ कि उसके पहले ही चेतनाशून्य हो गया मैं। उसके बाद का अनुभव अपने आप में विचित्र और साथ ही अविश्वसनीय भी था। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो मेरे आध्यात्मिक जीवन का परम संक्रान्तिकाल था वह। मैं एक ऐसे तिमिराच्छन्न रहस्य के भीतर प्रवेश कर चुका था, जिसका न आदि है और न तो है अन्त। निश्चय ही वह अज्ञात और अव्यक्त का था रहस्य इसमें सन्देह नहीं।

अज्ञात और अव्यक्त के रहस्य में प्रवेश- उसी अवस्था में मैंने देखा मेरा पार्थिव शरीर कुटिया के तख्त पर बैठा हुआ है उसी मुद्रा में जिस मुद्रा में चेतनाशून्य हुआ था मैं। अब मैं अपने भाव शरीर में था और उस भाव शरीर में केवल 'भाव' था और वह भाव जिसके द्वारा ज्ञान की उपलब्धि होती है और होता है देव दर्शन। **"भावेन लभते ज्ञानं भावेन देव दर्शनम्"** बस वही भाव था। न मन था और न तो था विचार केवल "मैं" था और था मेरा भाव। इसके अलावा और कुछ का बोध नहीं था। शरीर का भी बोध नहीं था। जरा सोचिए क्या और कैसी स्थिति थी मेरी? और उसी अवर्णनीय स्थिति में पहली बार जो भाव उत्पन्न हुआ वह यह था—संसार का अर्थ है अशान्ति। जीवन की उत्पत्ति कब हुई और उसकी शान्ति का नाश कब हुआ—यह बताना सरल नहीं। यह कल्पना की जा सकती है कि कदाचित किसी शान्त उदास द्रव्य की शान्ति के वैषम्य से जीव की उत्पत्ति हुई है और जीव फिर उसी शान्ति को पाने की बराबर चेष्टा करता रहता है। बाह्य जगत यानी भौतिक जगत शान्ति के स्थापन में बहुत बड़ा अवरोध है। जबतक अशान्ति है तबतक जीव है और है संसार। जीव और संसार एक दूसरे के पर्याय हैं और हैं एक दूसरे पर आश्रित। जबतक शरीर है तबतक शान्ति पूर्णतया उपलब्ध नहीं। संसार का जन्म ही अशान्ति के क्षणों में हुआ है। संसार का सीधा अर्थ है अशान्ति। जैसा कि कहा भी गया है—

"सशरीरस्य प्रियाप्रिययो रजति रस्ति"। शरीर और बाहरी संवेदनाएँ संसार पर्यन्त हैं। जबतक शरीर है तबतक पूर्णशान्ति को उपलब्ध होना सम्भव नहीं और यही कारण है कि मनुष्य सदैव असाध्य को साध्य बनाने का प्रयास बराबर करता रहता है।

भावराज्य में प्रवेश- भाव शरीर द्वारा मैंने जिस क्षेत्र में प्रवेश किया था वह भाव राज्य था। भावना का ही सूक्ष्म प्रवाह था वहां। मैं वहां अपने आप में एक विशेष प्रकार की दिव्यानुभूति कर रहा था। उसी अनुभूति के साथ ही साथ मैं इस बात का भी बोध कर रहा था कि भाव राज्य अन्यत्र कहीं नहीं, इसी भौतिक राज्य के अन्तर्गत ही है। भौतिक जगत के निर्माण में जड़ तत्वों अथवा जड़ पदार्थों का योगदान है इसलिए भौतिक जगत को जड़ जगत भी कहते हैं। किन्तु उन तत्वों अथवा पदार्थों में एक सीमा तक 'चेतना' का भी अंश विद्यमान है यदि ऐसा न होता तो वृक्ष फल–फूल, लता, गुल्म, अन्न आदि का उद्भव न होता, विकास न होता और न तो होती गति ही। उसी अल्प चेतना के प्रभाव से मैं अपने अस्तित्व का बोध तो कर ही रहा था इसके अतिरिक्त भौतिक जगत का भाव रूप भी स्पष्ट देख रहा था और उनमें निवास करने वाले प्राणियों के भाव रूप को भी। आश्चर्य की बात तो यह थी कि मनुष्य के पार्थिव शरीर के ठीक विपरीत उसका भाव शरीर था। शरीर तो गोरा है सुन्दर–आकर्षक व्यक्तित्व है लेकिन वृत्ति तमोगुणी है इसलिए उस व्यक्ति का भाव शरीर काला है। शरीर काला है, व्यक्तित्व प्रभावहीन है लेकिन वृत्ति सत्वगुणी है इसलिए उस व्यक्ति का भाव शरीर उज्ज्वल है। ऐसी विषमता और भी देखनी पड़ी मुझे।

न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर इधर–उधर भटकने के बाद मैं हरिश्चन्द्र घाट के महाश्मशान की ओर चला गया। वहाँ स्थूल शरीरधारी मनुष्यों की भीड़ तो थी ही उससे अधिक कहीं थी भाव शरीरधारी लोगों की भी। मेरे लिए सर्वाधिक आश्चर्य की बात तो यह थी कि उन भाव शरीरधारी लोगों की भीड़ में चक्कर काट रही थी श्मशान भैरवी। सहसा उसकी नजर मुझ पर पड़ी। मुझे देखकर हँस पड़ी खिलखिला कर।

यहाँ क्या कर रही हो ? मैंने सहज भाव से पूछा। जो मरे हुए लोग हैं उन्हें मार्गदर्शन कराना मेरा कर्तव्य है और उसी कर्तव्य का पालन कर रही हूँ मैं। मैंने सिर हिलाया जैसे उसका कर्तव्य समझ गया हूँ लेकिन सच पूछा जाय तो समझा–बूझा कुछ नहीं था मैं। वह पहले ही मेरे लिए रहस्यमयी थी और अब भी रहस्यमयी ही थी मेरे लिए। मेरे साथ चलोगे–मेरे निकट आकर बोली धीरे से श्मशान भैरवी ? कहाँ–कहाँ ले चलोगी मुझे तुम ? पूछना मेरा स्वाभाविक था।

भाव जगत और सूक्ष्म जगत की सीमा की ओर- पहले चलो तो बन्धु! फिर सब मालूम हो जायेगा–यह कहकर मुझे लगभग खींचती हुई ले चली अपने साथ वह कृष्णवर्णा। बलि के बकरे की तरह चल पड़ा मैं उसके पीछे–पीछे। कुछ ही क्षणों के बाद भाव राज्य की सीमा पर था मैं। बड़ी विलक्षण अनुभूति हुई आत्मा को। देखा वहाँ उस सीमा पर भाव शरीरधारी उच्चकोटि के तंत्र साधक सिद्ध योगी और सन्त–महात्माओं की मण्डलियाँ विद्यमान थी। सभी अपने आप में लीन, निरपेक्ष और अपने आप में रत थे। श्मशान भैरवी ने बतलाया कि इन मण्डलियों के सभी लोग दिव्य पुरुष हैं। साधना पथ, साधना भूमि और साधना लक्ष्य भले ही भिन्न–भिन्न हो लेकिन कुछ अवधि तक इस स्थान पर निवास करना सभी के लिए अनिवार्य है। बाद में कुछ लोग अपनी इच्छा से धरती पर जन्म ले लेते हैं और अन्तर्मुखी जीवन व्यतीत करते हुए अपनी साधना में बराबर अग्रसर होते रहते हैं। ऐसे लोगों को पहचानना अधिक कठिन है। वे ही पहचानने में समर्थ होते हैं जो उनके मार्ग के अनुगामी हैं या हैं परिचित। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो भाव शरीर को त्याग कर सूक्ष्म शरीर द्वारा सूक्ष्म जगत में चले जाते हैं और कालान्तर में किसी अन्य लोक–लोकान्तर में प्रवेश कर पाते हैं। जो तंत्र साधक हैं वे यहाँ से सीधे यक्षलोक में चले जाते हैं और कभी उनकी इच्छा हुई तो अच्छे साधक के रूप में संसार में जन्म भी ले लिया करते हैं।

थोड़ा रूक कर श्मशान भैरवी आगे बोली–चलो मैं तुम्हारा एक ऐसे तंत्र साधक से परिचय कराती हूँ जो कुछ काल पश्चात संसार में मानव तन स्वीकार करने वाले हैं।

एक सिद्ध तंत्र साधक से साक्षात्कार- यह सुनकर अत्यधिक उत्सुक हो उठा मैं। स्थूल शरीर को उपलब्ध होने के लिए सूक्ष्म शरीर आवश्यक है इसलिए जिस समय में उन तंत्र साधक से मिलने गया तो भाव शरीर से पृथक होकर सूक्ष्म शरीर ग्रहण करने वाले थे और प्रवेश करने वाले थे उसके द्वारा सूक्ष्म जगत में। भू–लोक को छोड़कर अन्य किसी लोक में शरीर का कोई नाम नहीं होता। जागतिक नाम से ही उसको सम्बोधित किया जाता है। तंत्र साधक महाशय का जागतिक नाम था सन्त पूर्णागिरि। संत पूर्णागिरि तीन सौ वर्ष पूर्व काशी के राजा हरिश्चन्द्र घाट के महाश्मशान में तीन वर्ष निवास कर श्मशान काली को सिद्ध कर उनकी करूणा, दया, अनुकम्पा के सहज पात्र बने थे। श्मशान काली की साधना मार्ग के ही अन्तर्गत उन्होंने चिता साधना, श्मशान साधना और शव साधना भी की थी जो अति आवश्यक है माँ महामाया के चरणों के समीप पहुँचने के लिए। सन्त पूर्णागिरि अपने भौतिक शरीर में कैसे रहे होंगे उसकी स्पष्ट झलक दिखलायी दे रही थी उनके भाव शरीर में अभी भी। सन्त पूर्णागिरि के साधना व्यक्तित्व को देखकर मुग्ध हो उठा मैं एकबारगी। जिस साधना मार्ग के पथिक थे सन्त पूर्णागिरि उसमें महाभैरवी रूप में नारी शक्ति का अपना महत्वपूर्ण स्थान और महत्व है। बिना नारी शक्ति के सहयोग से साधना में उपकृत नहीं हुआ जा सकता इसमें सन्देह नहीं। उन दिनों श्मशान में ही एक कुटिया बना कर रहते थे सन्त पूर्णगिरि महाशय। उनकी वह कुटिया ही उनकी साधना स्थली थी। उन दिनों काशी का हरिश्चन्द्रघाट श्मशान आज जैसा नहीं था। घाट के आसपास पीपल– पाकड़ आदि के दर्जनों वृक्ष थे। अगल–बगल के सभी घाट प्रायः कच्चे थे एक साथ दर्जनों चिताएँ धूँ–धूँ कर जलती रहती थी सदैव। झुण्ड के झुण्ड श्मशान के मरियल कुत्ते अधकचरे लाशों के चारों ओर मंडराया करते थे। रात में श्मशान की नीरवता को कभी–कभी भंग करता रहता था सियारों का समवेत स्वर में रूदन। सन्त पूर्णागिरि महाशय के एक परम शिष्य थे श्यामलेन्दु शेखर घोषाल। पश्चिम बंगाल के किसी राजपरिवार के सदस्य थे महाशय। प्रत्येक दृष्टि से सम्पन्न होना स्वाभाविक था। अवस्था साठ के ऊपर ही थी। स्वभाव से मृदु और कोमल चित्त थे।

काशीवास के लिए आये हुये थे अपना पूरा राजपरिवार छोड़–छाड़कर। घोषाल महाशय पूर्ण भक्त थे अपने गुरु के। सन्त पूर्णागिरि के प्रति पूर्ण समर्पित भाव था उनके हृदय में। गुरु आज्ञा भगवती महामाया की आज्ञा थी उनके लिए। उनकी एक पौत्री थी, नाम था कालिन्दी। दस वर्ष की आयु से ही रहने लगी थी अपने दादा के साथ काशी में। अपनी पौत्री को बहुत ही मानते थे घोषाल बाबू। पौत्री भी अपने दादा की खूब सेवा करती थी। अब वह किशोरावस्था में प्रवेश कर चुकी थी। रंग तो सांवला था लेकिन सौन्दर्य का अभाव न था उस किशोरी में। यौवन से प्रस्फुटित मादकता की भीनी–भीनी गंध बिखरने लगी थी अब उसके सौन्दर्य में। पहले तो स्वयं घोषाल बाबू ही भोजन लेकर जाते थे सन्त पूर्णगिरि के लिए कुटिया में लेकिन अब भोजन ले जाने लगी थी कालिन्दी। "बाबा" कहकर सम्बोधित करती थी वह सन्त पूर्णागिरि महाशय को। जबतक बाबा भोजन न कर लेते तबतक उनके तेजोमय मुखमण्डल की ओर देखती रहती टुकुर–टुकुर कालिन्दी। कौन सी जिज्ञासा थी और कौन सा कौतूहल था उसके अन्तराल में ? जिनका समाधान चाहती थी वह कालिन्दी समझ के परे था।

❐

तृतीय आवाहन
श्मशान भैरवी की कथा

काली अमावस्या की रात थी। श्मशान में गहन निस्तब्धता बिखरी हुई थी चारों ओर। श्मशान के मरियल कुत्ते कभी–कभी आपस में झगड़ने लगते थे। कभी–कभी हवा में तैरती हुई सियारों के समवेत स्वर में रोने की आवाज टकरा जाती थी श्मशान से। कुछ देर पहले दो तीन चिताएँ जलकर गर्म राख में बदल चुकी थी। सिर्फ उस समय उनमें से निकल रही थी धूएँ की पतली लकीरें।

नीले स्याह आकाश में शुक्र तारा झिलमिलाने लगा था। अभी भोर होने में काफी देर थी। सन्त पूर्णागिरि अपनी कुटिया के तख्त पर बैठे माँ महामाया के ध्यान में मग्न थे उस समय। एकाएक श्मशान की जड़ीभूत निस्तब्ध वातावरण को भेदती हुई पायल की मधुर और कोमल आवाज गूँज उठी वहाँ। कौन थी ? किसके पायल की रूनझुन थी वह। ध्यान में बाधा पड़ी साधक के। अंधेरे में ही आँखे खोलकर उन्होंने चारो ओर निहारा कुटिया के बाहर देखा–सामने कालिन्दी खड़ी मुस्करा रही थी। उस समय उसके चेहरे पर अलौकिक तेज था और बाल खुलकर पीठ पर बिखरे हुए थे सावन भादों की घटा की तरह। कालिन्दी कैसे आना हुआ इस निविड़ बेला में तुम्हारा ? सन्त पूर्णागिरि अचकचाकर बोले। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि इतनी रात को श्मशान में आ सकती है कालिन्दी।

धीरे–धीरे चलकर कर कुटिया में प्रवेश किया कालिन्दी ने। भीतर अबतक जल रही डिबरी की कांपती पीली रोशनी में उसके यौवन से भरपूर अनावृत देहवल्लरी और दप्–दप् करते चेहरे को देखकर असहज हो उठे सन्त पूर्णागिरि। कालिन्दी को इस अप्रतिम रूप में देखने की कल्पना ही नहीं की थी उस महातंत्र साधक ने। निश्चय ही उन्होंने इसे

माँ महामाया की कोई लीला समझी लेकिन कोई लीला नहीं थी वह। जो कुछ था वह पूर्ण सत्य था और जिसका संबंध था अतीत की गहराइयों से। दूसरे ही क्षण वास्तविकता को समझ गये संत पूर्णागिरि।

पच्चीस तीस वर्ष पूर्व नैहाटी (बंगाल) का महाश्मशान तांत्रिक साधना स्थली थी सन्त पूर्णागिरि की और उस समय उनकी भैरवी थी काकूली। चालीस के लगभग आयु लेकिन देखने में अट्ठारह से अधिक नहीं। लगता था बंगाल का सारा सौन्दर्य समेट कर जन्म लिया हो नारी काया में काकूली ने। दस वर्ष की आयु से उस महान साधक की साधना में निर्विघ्न बराबर सहयोग दे रही थी काकूली लेकिन अन्त में जो होना था वही हुआ। भारी विघ्न पड़ गया तांत्रिक क्रियाओं में।

भैरवी साधना के अन्तिम चरण में श्मशान भैरव का आवाहन किया जाता है। वह महान श्मशान पुरुष प्रत्यक्ष तो प्रकट होता नहीं लेकिन अपना महाभोग ग्रहण करने के लिए किसी मांसखोर पशु के रूप में आता अवश्य है साधक के सम्मुख। साधक ने रख दिया श्मशान में महाभोग यानी मांस, मदिरा, खीर, पूड़ी और चावल एक पात्र में। समय बीतता गया प्रतीक्षा की घड़ी समाप्त हुई लेकिन न श्मशान भैरव प्रकट हुये और न तो उनका कोई प्रतिनिधि ही। थोड़ा व्याकुल हो उठे सन्त पूर्णागिरि। कुछ ही क्षणों के बाद देखा गया कि महाभोग अपने स्थान पर नहीं था गायब हो चुका था वह। थोड़ा आश्वस्त हुए सन्त पूर्णागिरि उन्होंने सोचा चलो कार्य सिद्ध हुआ। पर उनका यह सोचना मात्र भ्रम था। उस महाभोग को श्मशान के ही किसी धूर्त प्रेत ने गायब कर दिया था। परिणाम जो सामने आने वाला था वह आया। साधना के बोझ को संभाल न सकी काकूली और शरीर छोड़ दिया उसने। हाहाकार कर उठा महातंत्र साधक लेकिन विवश था भला कर ही क्या सकता था वह।

कालान्तर में काकूली ने जन्म लिया कालिन्दी के रूप में। इसे माँ महामाया की लीला ही समझी जायेगी न। आश्चर्य की बात तो यह थी कि स्वयं इस रहस्य से परिचित थे सन्त पूर्णागिरि।

बाबा आपको अपनी साधना पूर्ण कर लेनी चाहिए। कालिन्दी का स्वर गम्भीर और आदेश भरा था। सन्त पूर्णागिरि की तन्द्रा भंग हुई।

धीमे किन्तु कोमल स्वर में बोले वह–हाँ माँ! पूर्ण तो करना ही होगा। भैरवी दीक्षा तो अब देनी ही नहीं थी। पिछले जन्म में दी जा चुकी थी काकूली को और भी आवश्यक तांत्रिक क्रियायें सम्पन्न की जा चुकी थीं उसी काल में। शेष अन्तिम कार्य जो अपने आप में गोपनीय था बस उसी को सम्पादित करना था महासाधक को और उसके लिए आगामी दीपावली की महानिशा बेला का समय निश्चित किया गया।

श्यामलेन्दु शेखर घोषाल महाशय को इस रहस्य का किञ्चित मात्र ज्ञान नहीं था। कालिन्दी को अपने पौत्र की पुत्री जानते थे और सन्त पूर्णागिरि को समझते थे अपना परम गुरु इसके आगे कुछ भी नहीं।

दीपावली की वह रहस्यमयी काली रात– उसी दिन से गम्भीर रहने लगे सन्त पूर्णागिरि। गम्भीरता का कारण क्या था? यह वही समझ सकते थे। सम्भवतः वह यह सोच रहे हों कि कैसे अपने पिछले जन्म का स्मरण हो आया कालिन्दी को ? यह एक प्रबल आध्यात्मिक रहस्य था। निश्चय ही कालिन्दी के अंतःकरण में काकूली का साधना संस्कार जागृत हो उठा था इसमें सन्देह नहीं। दीपावली को अभी दो महीने शेष थे लेकिन धीरे–धीरे कालिन्दी में शारीरिक और मानसिक परिवर्तन होने लगे थे अभी से। सोलह वर्ष की आयु में ही पूर्ण नवयौवना दिखलायी पड़ती थी। हमेशा आँखे लाल रहती थी उसकी। मस्तक पर पसीने की बूँदें मोती की तरह झिलमिलाते रहते थे और हमेशा लम्बे काले घने बाल पीठ पर बिखरे रहते थे सावन भादों की काली घटा की तरह। सदैव चेहरे पर गम्भीरता का भाव रहता। आँखे भी अधमुंदी रहती। कहने की आवश्यकता नहीं कुल मिलाकर परिवर्तित हो चुका था उसका सारा व्यक्तित्व महाभैरवी के रूप में कहीं कोई कमी न थी। कभी–कभी कालिन्दी को गम्भीर दृष्टि से देखते सन्त पूर्णागिरि।

अन्त में दीपावली आ ही गयी। अमावस्या की महानिशा बेला लम्बे चौड़े सुनसान महाश्मशान में कुछ चिताएँ जल रही थी और कुछ जल कर बुझ चुकी थी। वातावरण में घोर निस्तब्धता बिखरी हुई थी। उस समय कुटिया में सन्त पूर्णागिरि थे और थी कालिन्दी। तांत्रिक विधि से महाभैरवी के रूप में पूजन किया गया कालिन्दी के अष्टांग का। कालिन्दी

का मुखमण्डल दिव्य स्वर्णिम आभा से दप्–दप् करने लगा। झील जैसे गहरी आँखों में करूणा, कृपा, अनुकम्पा आदि के मिले जुले भाव भर गये एकाएक। सामने छोटा सा हवनकुण्ड था जिससे सुगन्धित धूम्र निकल कर कुटिया में चारो ओर फैल रहा था। हवन कुण्ड के बगल में महाप्रेत के रूप में नरमुण्ड स्थापित था जिसके ऊपर घी का दीप जल रहा था। वैसा ही एक नरमुण्ड दूसरी ओर भी रखा था–जो श्मशान भैरव का प्रतीक था। उस पर लाल सिन्दूर का लम्बा टीका लगा था और लाल पुष्प की माला पड़ी थी। दोनों नरमुण्डों के सामने मदिरा और मांस का भोग रखा था और जिसके बगल में जल रही थी अगरबत्ती और घी का दीपक भी। वातावरण आध्यात्मिक होते हुए भी भयप्रद था। लगता था कभी कोई अघटित घट सकता था उस रहस्यमय वातावरण में। हवनकुण्ड के एक ओर बैठी थी कालिन्दी पद्मासन की मुद्रा में अर्द्ध समाधिस्थ और दूसरी ओर बैठे थे महातंत्र साधक सन्त पूर्णागिरि महाशय। उनके नेत्र बन्द थे। किसी अलौकिक तेज से रक्ताभ हो उठा था उस समय उनका मुखमण्डल। उनकी उँगलियों में फँसी माला द्रुतगति से घूम रही थी उस समय। कभी–कभी रोमाञ्चित हो उठता था उनका सारा शरीर फिर हल्के से कांप भी उठता अपने आप। लगभग ऐसी ही स्थिति कालिन्दी की भी थी। रह–रह कर उसका सारा शरीर पहले रोमाञ्चित हो उठता और फिर नीचे से ऊपर तक जोर से हिल उठता। गले में पड़ी जवा पुष्प की माला, चौड़े ललाट पर लाल सिन्दूर का बड़ा सा गोल टीका, पीठ पर बिखरे हुए काले स्याह बाल, शरीर पर लाल रंग की रेशमी साड़ी किसी अज्ञात शक्ति की छाया से प्रभावित रक्ताभ मुखमण्डल–साक्षात् माँ महामाया का प्रतिरूप लग रही थी उस समय कालिन्दी।

श्मशान काली की सिद्धि तामसिक तंत्र साधना भूमि की एक प्रकार से अन्तिम सिद्धि थी। इस सिद्धि से 'माया' का तिरोधान हो जाता है और साधक महामाया के राज्य में प्रवेश करता है। भावराज्य ही महामाया का राज्य है। वहाँ महामाया की करूणा, अनुकम्पा और मातृस्नेह उपलब्ध होता है साधक को। माँ की करुणा के अथाह सागर में मग्न रहता है वह। तंत्र में इसी अवस्था को "मातृअंक" कहते हैं।

मातृअंक यानी "माँ की गोद" परम शांति और परम करूणा का सागर भरा रहता है जिस गोद में। कौन भला त्याग करेगा ऐसी गोद को, ऐसे मातृअंक को ?

साधक का मंत्र जप चल रहा था। कुछ क्षण बाद मौन और गम्भीर भाव से अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ाकर मदिरापात्र कालिन्दी के रक्ताभ हो रहे होंठों से लगाया उन्होंने। गट्गट् कर पूरी मदिरा पी गयी कालिन्दी और गूलर की तरह लाल हो रही थी उसकी बड़ी–बड़ी भौंराली आँखे। लगा कभी किसी पल खून टपक पड़ेगा आँखों से। मदिरा पी लेने के बाद उसने स्थिर किन्तु तीक्ष्ण दृष्टि से देखा हवनकुण्ड के सामने बैठे सन्त पूर्णागिरि की ओर। उस रहस्यमयी दृष्टि में क्या था? क्या कोई समझ सकेगा और क्या कोई उसकी परिभाषा कर सकेगा ? नहीं कोई नहीं। दूसरे क्षण उसी रहस्यमयी दृष्टि से बाल से भी पतली नीले रंग की एक प्रकाश रेखा धीरे–धीरे साधक की ओर बढ़ने लगी निकल कर और फिर अन्त में समा गयी साधक के चौड़े ललाट पटल पर। श्मशान में घोर निस्तब्धता बिखरी हुई थी कभी–कदा गंगा पार से सियारों के समवेत स्वर में रोने की आवाज उस श्मशानी नीरवता को कर देती थी भंग। एकाएक श्मशान का वातावरण अप्रिय हो उठा। श्मशान की सोयी हुई प्रेतात्माएँ जाग उठी एकबारगी और नर कंकाल के रूप में कुटिया को चारो ओर से घेर लिया। वे सभी नर कंकाल एक दूसरे से टकरा रहे थे। एक दूसरे पर गिर रहे थे। फिर उठते थे। लगा जैसे वे सभी ताली पीट–पीट कर आपस में नृत्य कर रहे हों। कभी–कभी वे जोर–जोर से चीखने लगते थे या फिर लगते थे सामूहिक रूप से विलाप करने। अबतक श्मशान का वातावरण अति भयंकर और रोमांचक बन चुका था। कब कौन सी चमत्कारी घटना घटेगी कहा नहीं जा सकता था। कुछ देर बाद नरकंकालों का सामूहिक नृत्य समाप्त हो चुका था और सभी श्मशान में समा गये थे। अब उनका स्थान ले लिया था श्मशान पिशाचिणियों ने। बड़ा ही वीभत्स और डरावना था उन सबका रूप, रंग, काफी लम्बे कद की थी। शरीर हड्डियों का ढांचा मात्र था। उनके जटाजूट से बाल हवा में बिखरे हुए थे। रंग काला था। आँखे हद से ज्यादा बड़ी और डरावनी थी। नीचे का

जबड़ा लटका हुआ था और पीले दांत बाहर निकले हुये थे। अबतक उनका भी नृत्य शुरू हो गया था। मन में भय का संचार कर देने वाली भाषा में प्रलाप भरे स्वर में न जाने क्या–क्या गाकर अपने–अपने स्थान पर झूम रही थी। बड़ा ही भयावह और डरावना दृश्य था वह इसमें सन्देह नहीं। लेकिन इन सबसे बेफ्रिक और निश्चिंत अपने कमरे में चटाई पर सोये हुए थे श्यामलेन्दु शेखर घोषाल। वे भला क्या जानते थे दीपावली की काली अन्धेरी रात में कोई भयंकर तांत्रिक लीला हो रही है और लीला के पात्र हैं स्वयं उनकी पौत्री और स्वयं उनके परम गुरु। एकाएक चिंहुक कर उठ बैठे घोषाल महाशय। आँखे मली फिर चारो ओर सिर घुमाकर देखा। कमरे में अंधेरा था साफ कुछ नहीं दिखलायी दिया उन्हें। अन्धेरे में टटोलते हुए कालिन्दी की खाट के पास पहुँचे। खाट खाली थी। यह क्या ? आधी रात के समय गयी कहाँ कालिन्दी ? क्या गुरुदेव की कुटिया से वापस लौटी नहीं अभी तक। गंजी लुंगी पहने थे, उसी अवस्था में श्मशान की ओर चल पड़े किसी प्रकार अपने को संभालते हुए। भोर होने ही वाली थी। कुटिया के सामने चार पांच लोग खड़े थे। शायद वे डोम थे श्मशान के बारी–बारी से वे झांक लेते थे कुटिया के भीतर लेकिन भीतर जाने की हिम्मत कोई जुटा नहीं पा रहा था। लोगों को ढकेलते हुए तीर की तरह घुस गये कुटिया के भीतर घोषाल महाशय। स्तब्ध और किंकर्तव्यविमूढ़ से हो गये वह। कालिन्दी का कहीं कोई अस्तित्व नहीं था लेकिन सन्त पूर्णागिरि अवश्य बैठे हुए थे अपने स्थान पर पाषाणवत्। माला अपने स्थान पर स्थिर थी और उसमें फंसी उंगली लकड़ी की तरह टेढ़ी हो चुकी थी। उनका मस्तक बीच से टूटकर अलग हो गया था और उसमें थोड़ा सा खून निकल कर कन्धे पर बिखर गया था। कपाल का भेदन कर उनकी आत्मा शरीर से बाहर निकल चुकी थी अन्तहीन यात्रा पर। भाव विह्वल हो उठे घोषाल महाशय गुरुदेव के महाप्रयाण की अवस्था देख कर। रहा न गया चरणों पर गिर पड़े लगे फफक–फफक कर रोने महाशय, उपस्थित लोगों की आँखे भी छल–छला आयीं।

कालिन्दी का कहीं भी अता–पता नहीं था खूब खोजा गया चारों तरफ। गंगा में भी जाल डालकर देखा गया लेकिन उस तरुणी को नहीं

मिलना था और नहीं मिली वह। लोग हार–थककर बैठे गये अन्त में। बिलकुल पागलों जैसी मानसिक स्थिति हो गयी थी घोषाल महाशय की। कभी–कभी हाँ..... गुरुदेव और हाँ..... कालिन्दी कहकर जोर से चींख उठते थे और फिर हिलक–हिलक रोने लगते थे वह। खाना पीना तो छूट ही गया था और अन्त में खटिया थाम लिया महाशय ने।

लगभग एक मास बाद उनके छोटे भाई मेदिनीपुर से आये नाम था रमानाथ घोषाल। बड़े भाई की करूण स्थिति देखी नहीं गयी उनसे। काफी समझाया बुझाया उन्होंने श्यामलेन्दु शेखर को। तब कहीं जाकर शान्ति मिली थोड़ी उनकी दुखी आत्मा को और फिर एक दिन मकान बेचकर अपने भाई को साथ लिया और वापस चले गये मेदिनीपुर। लेकिन जाने के पूर्व कालिन्दी को मृत समझ कर उसका श्राद्धादि द्वारा उद्धार कर दिया था। उसके पूर्व श्यामलेन्दु शेखर महाशय ने गंगा लाभ उपलब्ध करा दिया अपने गुरुदेव को।

धीरे–धीरे चार साल का समय व्यतीत हो गया। मई–जून का महीना था। दोपहर का समय था। कड़कड़ाती धूप फैली हुई थी। श्मशान में सन्नाटा पसरा हुआ था। श्मशान के मरियल कुत्ते लकड़ी के टाल के पीछे ऊँघ रहे थे दुबके हुए। डोम चौधरी हिरामन अपनी कच्ची झोपड़ी की खटिया पर बैठा हुक्का गुडगुड़ा रहा था और अपनी सतर्क दृष्टि से देख लेता था सिर घुमाकर चारो ओर कि कहीं कोई मुर्दा तो नहीं आ रहा है और उसी समय एक भिखारिन न जाने किधर से आकर श्मशान में टहलने लगी। आयु यही रही होगी पच्चीस–तीस के बीच। कभी वह आकर्षक और सुन्दर युवती रही होगी लेकिन उस समय उसका चेहरा विकृत और कुरूप लग रहा था। सिर के बाल जटाजूट से हो गये थे। पूरे शरीर पर मैल जमी थी। शायद नहाना भूल गयी थी वह। मटमैले शरीर पर एक मैली कुचैली साड़ी थी जो चिथड़े–चिथड़े हो रही थी। युवती की भाव भंगिमा असहज और अस्वाभाविक थी उसे देखकर दया भी उपजती थी और घृणा भी। लगभग तीन चार महीने लगातार चक्कर काटती रही वह अज्ञात और रहस्यमयी भिखारिन। रात में कहाँ रहती थी और क्या करती थी किसी को मालूम नहीं। उसके पीछे कुत्ते भौंकते और बच्चे उसे चिढ़ाते पगली–पगली कहकर लेकिन

वह इन सब से अनभिज्ञ अपने आप में खोयी–खोयी सी रहती। कभी–कभी सिर उठाकर आकाश की ओर शून्य में निहारती या श्मशान में जलती हुई चिताओं को देखती रहती अपलक।

एक दिन भोर के समय लोगों ने देखा श्मशान से थोड़ा हट कर औधें मुँह एक औरत की लाश पड़ी थी, जिसका आधा हिस्सा गंगा के पानी में था। वह लाश और किसी की नहीं उसी भिखारिन की थी जो महीनों से श्मशान में चक्कर काट रही थी। कौन थी वह भिखारिन ? कहाँ से आयी थी वह ? क्यों श्मशान में इधर उधर घूमती थी पागलों की तरह ? इन सबका उत्तर भला किसके पास था। डोम चौधरी ने एक बड़े से वजनी पत्थर में भिखारिन की लाश रस्सी से बंधवायी और गंगा की बीच धारा में डलवा दिया क्योंकि डोम चौधरी का वह कर्तव्य था जिसे उन्होंने पालन किया था श्मशान बाबा का नाम लेकर।

हिरामन चौधरी भला क्या जानते थे कि वह भिखारिन और कोई नहीं तीन–चार साल से लापता कालिन्दी थी और यह भी भला वह क्या जानते थे कि तांत्रिक साधना भूमि में प्रचण्ड मंत्र शक्ति के प्रभाव को सहन न करने के कारण कालिन्दी अपनी मानसिक शक्ति का सन्तुलन खो बैठी थी और उसी अर्द्ध विक्षिप्त अवस्था में न जाने कैसे पहुँच गयी थी वह तारापीठ और सन्त पूर्णागिरि महाशय उसका आश्रय लेकर उपलब्ध हो गये थे भावराज्य को। सन्त पूर्णागिरि अपनी शिष्यारूपा महाभैरवी को भूले नहीं थे। भूलते भी कैसे ? उसी के सहयोग से तंत्र की विकट और कठोर साधना में सिद्धि लाभ किया था उन्होंने और भावराज्य को हुए थे उपलब्ध। इसी कारण शरीर छूटते समय कालिन्दी के पास आये थे वह और अपने साथ ले गये भावराज्य में उसे।

वह रहस्यमयी संन्यासिनी– जब मेरी चेतना भावराज्य से वापस लौटी उस समय सवेरा होने वाला था। अभी भी मेरे मानस पटल पर सन्त पूर्णागिरि और कालिन्दी की कथा अंकित थी। मैं आश्चर्यचकित था और था हतप्रभ भी। अबतक अपने क्षेत्र में जो कुछ उपलब्ध हुआ था और जो कुछ हुआ था अनुभव, वह सब आध्यात्मिक जगत का परम सत्य था जिसके भीतर योग–तंत्र साधना का गूढ़ रहस्य छिपा हुआ

था। जिसको जानने समझने की दिशा में और अधिक व्यग्र और आकुल हो उठा मैं। क्या बतलाऊँ मैं आपको ? मेरी आन्तरिक स्थिति अपने आप में दयनीय हो रही थी उस समय। मैं अपने शरीर में रहते हुए भी नहीं था। इस संसार में रहते हुए उससे अलग था। संसार–समाज और परिवार में यदि रहना है तो उनके नियमों के अनुसार चलना पड़ेगा। उनके सिद्धान्तों को मानना पड़ेगा, लेकिन मुझसे ठीक से उन नियमों और उन सिद्धान्तों का पालन नहीं हो पा रहा था। सचमुच मेरे जीवन का संक्रान्तिकाल था वह। मैं न इधर का था और न तो उधर का। उसी विकट अवस्था में आकृष्ट हुआ मैं पहली बार हिमालय की ओर। अब तक मेरी विद्युत चुम्बकीय मानसिक ऊर्जा तरंगों ने काफी उन्नति कर ली थी। जिसके फलस्वरूप मुझे स्वयं ज्ञात हो जाता था कि कौन महात्मा, कौन सन्त, कौन योगी और कौन सिद्ध साधक कहाँ है, किस रूप में है और किस स्थिति में है। यह महान उपलब्धि थी मेरे लिए इसमें सन्देह नहीं। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर एक दिन चल पड़ा मैं ऋषिकेश के लिए। वहां के आध्यात्मिक वातावरण ने मुग्ध कर लिया मेरी आत्मा को एकबारगी। हिमालय के उत्तुंग हिमाच्छादित शिखरों का स्पर्श करते हुए बादलों के झुण्ड, कल–कल निनाद करती हुई गंगा की धवल धारा और शान्त वातावरण, लीन हो गया मैं जैसे उनमें और तभी मेरी दृष्टि पड़ी स्नान करने के बाद सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आती हुई एक नवयुवती पर। बहुत ही सुन्दर युवती थी वह इसमें सन्देह नहीं। लालिमा लिए गोरा रंग और उस गोरे रंग के शरीर पर लिपटा हुआ गैरिक वस्त्र। बाल खुलकर बिखरे हुए थे पीठ पर, मस्तक पर सफेद चन्दन का गोल टीका लगा था। निश्चय ही कोई संन्यासिनी थी वह युवती लेकिन इतनी कम आयु में संन्यास ? समझ न सका मैं। इतना अगाध सौन्दर्य क्यों और कैसे चढ़ गया संन्यास की बलि वेदी पर ? भावाविभूत हो उठा मैं एकबारगी। न जाने क्यों अपलक निहारने लगा मैं उसके साधना के तेज से दप्–दप् करते चेहरे की ओर। उसने भी मेरी ओर देखा एक बार स्थिर दृष्टि से और मुस्करा दी धीरे से। अब वह संन्यासिनी मेरे निकट आ चुकी थी आखिर रहा न गया मुझसे। पूछ ही बैठा कौन हैं आप ?

एक भटकती हुई संन्यासिनी। गुरु का दिया हुआ नाम है कपिला आनन्द.....तुम कौन हो ? मैं आपकी तरह संन्यासी नहीं हूँ और न तो मेरा कोई गुरु ही है बस समझिए अध्यात्म के मार्ग पर भटकने वाला एक अति क्षुद्र प्राणी हूँ मैं।

मेरी बात सुनकर आकाश की ओर शून्य में देखने लगी सिर उठाकर कपिला आनन्द। फिर उन्होंने एक लम्बी सांस ली और धीमे स्वर में बोली–सब संयोग है। दो भटकती हुई आत्माओं को नियति कब, कैसे और किस रूप में मिला देती है आश्चर्यजनक रूप से कहा नहीं जा सकता।

उस संन्यासिनी का एक–एक शब्द रहस्य में डूबा हुआ लगा मुझे। समझ में नहीं आया कुछ, उस समय मुझे आश्चर्य हुआ जब उस रहस्यमयी संन्यासिनी ने कहा–तुम मुझे नहीं जानते लेकिन तुम्हें मैं अच्छी तरह जानती हूँ। मैंने पूछा– कैसे ?

जब मेरी कथा सुनोगे तुम।

कैसी कथा है वह ?

अत्यन्त मर्मस्पर्शी, पीड़ादायिनी और हृदयविदारक इतना कहकर एक लम्बी सांस ली संन्यासिनी ने।

संन्यासिनी की आत्मकथा- रात की स्याह कालिमा बिखर चुकी थी ऋषिकेश के शीतल और प्रकृति के सुगन्ध से भरपूर वातावरण में। थोड़ी ही देर बाद लक्ष्मण झूला के पीछे बादलों की ओर से शुक्ल पक्ष का तृतीया का चांद झांकने लगा था आकाश में। गहरी निस्तब्धता बिखरी हुई थी चारो ओर। तीव्र गति से बहती हुई गंगा की धारा का कल–कल निनाद और पहाड़ों और वृक्षों से टकराकर बहने वाली हवा का शोर बस यही सुनाई दे रहा था वहाँ।

सचमुच मेरी कथा सुनने की लालसा है ? गंगा किनारे एक बड़े से पत्थर पर बैठती हुई बोली वह संन्यासिनी।

हाँ! सिर हिलाकर उत्तर दिया मैंने। मेरी कथा लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व सत्रहवीं शताब्दी से संबंधित है।

चौंक पड़ा मैं एकबारगी–सत्रहवीं शताब्दी ?

हाँ बन्धु! सत्रहवीं शताब्दी।

उत्तर प्रदेश का एक छोटा सा कस्बा बांदा (अब जिला) वहाँ एक नदी है जिसका नाम है केन और उसी नदी के तट पर स्थित था एक किला जिसका नाम था भूरागढ़ का किला। आज तो वह किला अपनी आन–बान गंवाकर खण्डहर में बदल चुका है लेकिन उस समय उसका कोई जवाब ही नहीं था। दिन में वह किला सोने की तरह दमकता और रात की चांदनी में चमकता चांदी की तरह। स्याह रात में जब किले की परछाई केन के पानी में झिलमिलाती तो अजीब सा लगता देखने वालों को और रोमाञ्चित हो उठते।

वास्तव में भूरागढ़ का किला अजयगढ़ बुन्देलखण्ड के राजा गुमान सिंह का था लेकिन उन्होंने अपने मित्र रिपुदमन सिंह को दे दिया था। उस समय रिपुदमन सिंह भूरागढ़ किला के किलेदार थे। बड़ा ही आकर्षक और प्रभावशाली व्यक्तित्व था रिपुदमन सिंह का। संसार की जितनी अच्छाइयाँ हैं सभी उनमें थी। वे धार्मिक और भगवान शंकर के परम भक्त और ब्राह्मणों के थे सेवक।

उस दिन किले के तोपखाने में शहनाई बज रही थी। पूरे किले को दुल्हन की तरह सजाया गया था। किले के विशाल द्वार पर सजे पण्डाल में रिपुदमन सिंह ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देकर प्राप्त कर रहे थे उनक आशीर्वाद। उनको कन्यारत्न की प्राप्ति हुई थी। महारानी की गोद, विवाह के लगभग बीस वर्ष बाद भरी थी। सन्तान प्राप्ति के लिए उन्होंने क्या–क्या नहीं किया था ? कौन सा व्रत, कौन से देवी देवताओं की पूजा–उपासना और कौन सा तीर्थ छूटा था उनसे। सुन्दर सी कन्या पाकर भाव विभोर थी उस समय वह। उनकी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं थी। बधाई देने वालों का तांता लगा हुआ था। उसी समय भूरागढ़ का प्रसिद्ध नट बहादुर ढोल पर बधाई का गीत गाता हुआ किले के फाटक पर आया। बहादुर नट उस जमाने का बहुत बड़ा नट था और अपने नटविद्या में पारंगत था। इसी कारण दूर–दूर तक उसकी फैली हुई थी ख्याति। मोटे रस्से को हवा में उछाल कर उसे बांस की तरह खड़ा कर और उस पर आराम से चढ़ जाना और चढ़कर कूद जाना, कूदते ही खून फेंक कर मुंह से, मर जाना और मरने के कुछ देर

बाद हँसते हुए उठ जाना। सैकड़ों लोगों की भीड़ में देखते ही देखते गायब हो जाना और उसी क्षण दूसरी जगह प्रकट हो जाना इन सबके अलावा मनचाहे फलों और फूलों के मैदान और बाग बगीचा की सृष्टि कर देना उसके लिए साधारण बात थी। एक बार भूरागढ़ में सूखा पड़ गया था। चारो ओर त्राहि–त्राहि मची थी। सूर्य के प्रचण्ड ताप से पशु पक्षी और आदमी मरने लगे थे। ऐसी भीषण और विकट स्थिति में बहादुर नट ने जो अलौकिक चमत्कार दिखाया उससे लोग सन्न रह गये एकबारगी। महाराज रिपुदमन सिंह उस आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय चमत्कार को देखकर हतप्रभ हो गये और भावावेश में अपने गले से उतार कीमती रत्नों का हार बहादुर नट को पहना दिया उन्होंने। वह चमत्कार क्या था ? बहादुर नट किले के सामने दोनों हाथ जोड़कर स्थिर भाव से कुछ देर तक आकाश की ओर देखता रहा और मन ही मन न जाने क्या बुदबुदाता रहा और फिर देखते ही देखते आकाश में चारों ओर से काले भूरे बादल घिरने लगे और कुछ ही देर बाद हा–हाकार करती हुई पछुआ हवा के लय पर होने लगी बारिश। लगातार चार दिन, चार रात हुई बारिश, सचमुच नटविद्या का सिद्धहस्त साधक था बहादुर नट इसमें सन्देह नहीं।

महाराज रिपुदमन सिंह बड़ा सम्मान करते थे बहादुर नट का। किले में प्रवेश करने के लिए उसे किसी की आज्ञा नहीं लेनी पड़ती थी। जब चाहे और जिस समय चाहे किले के भीतर जा सकता था और महाराज से मिल भी सकता था वह। उस दिन भी महाराज की जय–जयकार करता हुआ महाराज के समक्ष था खड़ा हुआ वह रहस्यमय नट। उसे देखकर मन्द–मन्द मुस्कराये महाराज और फिर सिर उठाकर बोले–बहादुर तुम्हें यहां नहीं दरबार में इनाम दूँगा।

मुझे तो इनाम मिल गया महाराज। बहादुर ने हाथ जोड़ते हुए कहा– पर मैंने तो कोई इनाम नहीं दिया–महाराज ने हँसते हुए कहा–सरकार मैं पिता बन गया। थोड़ी ही देर पहले मेरी पत्नी ने पुत्र रत्न को जन्म दिया है। पुत्र के रूप में भगवान ने आपकी सेवा का इनाम दिया। इतना कहकर बहादुर नट और जोर से ढोल बजाने लगा।

प्रातःकाल का समय था। दरबार लग चुका था। सभासद अपने–अपने स्थान पर बैठे चुके थे। कुछ देर बाद महाराज रिपुदमन सिंह भी आ गये दरबार में और अपने स्वर्णमण्डित और रत्नजड़ित सिंहासन पर विराजमान हो गये। जय–जयकार के बाद दान प्राप्त करने वाले एक–एक करके बुलाये जाने लगे दरबार में। ऐसे अवसर पर महाराज गुमान सिंह भी उपस्थित थे। उनके आदेश का पालन करते हुए महाराज रिपुदमन सिंह लोगों को दान देने लगे। इसी बीच दान लेने वालों में बहादुर नट भी आ गया। जैसे ही महाराज रिपुदमन सिंह ने जेवर की डलिया बहादुर नट की झोली में डाली वह बोला उठा– महाराज मुझे आपकी बेटी का उतारन चाहिए ताकि आपके दास के बेटे की गर्दन भरी जा सके।

महाराज रिपुदमन सिंह मुस्कुराते हुए बोले–बहादुर मुझे तुम्हारे प्रति प्रेम और अपनत्व है। तुम नटविद्या के सिद्धहस्त कलाकार हो। तुम्हारा और मेरा विवाह एक ही दिन और एक ही मुहूर्त में हुआ है और प्रारब्ध देखो कि आज बीस वर्ष बाद हम दोनों साथ–साथ पिता भी बने हैं। इतना कहकर महाराज रिपुदमन सिंह अपने स्थान से उठे और अपनी पत्नी के शयनकक्ष में गये और माँ की गोद में सो रही बेटी की गर्दन में पड़ी रत्नजड़ित माला उतारने के लिए अपनी पत्नी रत्नमाला से कहा उन्होंने। माला लेकर महाराज दरबार में आये और उसे दे दिया। बहादुर नट प्रसन्नता से झूम उठा एकबारगी, नटविद्या का वह रहस्यमय साधक घर पहुँच कर उस बहुमूल्य माला को अपने बेटे के गले में पहना दिया।

उस दिन दशहरा का पर्व था। सायंकाल परम्परा के अनुसार शस्त्र पूजन का था कार्यक्रम। हथियारों की सफाई का काम सुबह से ही चल रहा था। महाराज की उपस्थिति में उसी समय राजपण्डित आचार्य शिवदत्त आ गये। महाराज अपने आसन से उठ कर उन्हें सम्मान सहित बैठाया।

वार्तालाप के प्रसंग में आचार्य शिवदत्त बोले आज शुभ पर्व है। कन्या का नामकरण संस्कार आज ही होना चाहिए। इतना सुनकर महाराज खुशी से गद् गद् हो उठे। उन्होंने तुरन्त अपने मंत्री दउदा को

आदेश दिया कि नामकरण संस्कार की तैयारी कराएँ। किले में खबर कर दी गयी कि शस्त्र पूजन के बाद किलेदार की पुत्री का नामकरण संस्कार सम्पन्न होगा।

बड़ी धूमधाम के साथ शस्त्र पूजन के पश्चात् पुत्री का नामकरण संस्कार सम्पन्न हुआ। नाम रखा गया सोनालिका उसी अवसर पर बहादुर नट अपने नवजात पुत्र को गोद में लिए आ गया वहाँ और अपने पुत्र को महाराज के चरणों पर रख दिया उसने और फिर बोला वह–महाराज मैं अपने पुत्र का नाम आप से लेने आया हूँ।

इतना सुनते ही महाराज ने सामने रखी अशर्फियों से भरी चांदी की थाली से एक अशर्फी निकालकर शिशु की हथेली पर रख दी और जब बालक पर नजर डाली तो चौंक पड़े वह एकबारगी। इतना सुन्दर बालक अपने जीवन में कभी देखा ही नहीं था उन्होंने। काफी देर तक निहारते रहे वह कामदेव जैसे बालक को। फिर बोले–तेरा बेटा तो सचमुच विरला ही है अपने आप में। इसका नाम "विरला" ही रखो।

विरला धीरे–धीरे बढ़ने लगा। पिता ने उसे नटविद्या से संबंधित सभी तांत्रिक क्रियायें सिखाना प्रारम्भ कर दिया। जो तांत्रिक विद्यायें बहादुर नहीं जानता था उसे प्राप्त करने के लिए उसने विरला को पन्ना, रीवा, झांसी और महोवा के सिद्धतंत्र साधकों के पास भेज दिया।

18 वर्ष की आयु में नटविद्या के अलावा तंत्र मंत्र से संबंधित अन्य रहस्यमयी विद्याओं में पूर्णरूप से पारंगत हो गया विरला। चन्दन की भीनी–भीनी सुगन्ध की तरह विरला की फैल गयी प्रसिद्धि दूर–दूर तक। ऊँची कदकाठी, गोरा रंग, रसीली आँखें, घुंघराले घने काले बाल, उन्नत ललाट। उस सुन्दर और सुदर्शन युवक पर जिस किसी की दृष्टि पड़ती वह बरबस आकर्षित और मोहित सा हो जाता। युवतियाँ उसे देखते ही पागल हो उठती और एकटक निरखने लग जाती भाव विभोर होकर सचमुच राजकुमार सा लगता था विरला।

अबतक सोनालिका भी बीस वर्ष की युवती हो चुकी थी। रक्ताभ गोरा रंग, लम्बी नुकीली नाक, गुलाबी होंठ, सफेद दन्तपंक्तियाँ, झील जैसी गहरी नीली स्वप्निल आँखे और यौवन से भरपूर सुगठित देहयष्टि।

लगता था जैसे कोई देवकन्या भटक कर आ गयी हो धरती पर। उच्च शिक्षा के अतिरिक्त स्त्रियोचित शिक्षा का भी प्रबन्ध किया था सोनालिका के लिए महाराज ने। वे अच्छी तरह जानते थे कि उनकी पुत्री के समान कोई विदुषी और सुन्दर युवती नहीं थी। कभी–कभी चिन्तित हो उठते कि उसके लिए योग्य और सुन्दर वर मिलेगा कहाँ ? एक बार ग्वालियर स्टेट के राज ज्योतिषी श्रीधर गंगाधर पाटलेकर ने सोनालिका के हाथ की रेखाएँ देखकर भविष्यवाणी की थी कि उसका विवाह होगा ही नहीं, वह तो उच्चकोटि की संन्यासिनी होगी। महाराज की चिन्ता का यह भी एक विषय था। वे जानते थे कि राज ज्योतिषी की भविष्यवाणी कभी भी असत्य नहीं होती। किले को छूती हुई केन नदी की धवल धारा चांदनी रात में किले के मोती महल की छत से बहुत सुन्दर लगती। कभीकदा मोती महल की छत पर खड़ी होकर उस सौन्दर्य को घण्टों निहारती रहती सोनालिका। नदी की धारा में डोलती हुई नावें तो उसका मन ही मोह लेती। शायद इसी कारण नाव चलाना सीखने की इच्छा प्रकट की उसने महाराज के सामने। महाराज अपनी बेटी की हर इच्छा पूरी करते थे और उसकी इस इच्छा को भी पूरी कर दिया उन्होंने। सोनालिका खुश हो गयी। 60 वर्षीय दिनवा निशाद बड़ा चतुर और सिद्धहस्त था नाव चलाने में। दूसरे दिन से नाव चलाना सीखने लगी उससे सोनालिका। सर्दियों का मौसम था। धूप खूब खिली हुई थी। अब काफी कुछ सीख चुकी थी नाव चलाने के संबंध में। उस दिन नाव पर बैठकर स्वयं नाव चला रही थी। दिनवा सामने बैठा उसे नाव चलाने की कला के संबंध में समझा रहा था। दोपहर का समय था। नाव बीच नदी में थी। एकाएक पतवार को पानी के अन्दर किसी ने पकड़ लिया और जैसे ही सोनालिका ने पतवार को जोर से खींचा। पतवार हाथ से छूट गयी और उसे झटका लगा और उसी झटके के साथ चीखती हुई सोनालिका गिर पड़ी नदी में। यह देखते ही दिनवा घबड़ा गया एकबारगी वह समझ गया कि मगरमच्छ का झटका था वह। लेकिन वह करता ही क्या बेचारा। सोचने का समय भी नहीं था। उसी समय नदी के किनारे खड़े एक युवक ने देख लिया। वह फुर्ती से छलांग लगाकर कूद पड़ा केन की प्रचण्ड धारा में। लगभग एक घण्टे तक लड़ता रहा वह युवक

मगरमच्छ से और अन्त में उसका जबड़ा फाड़ दिया उसने और फिर सोनालिका को गोद में उठाकर नाव में रखा और मगरमच्छ को घसीटता हुआ किनारे ले आया वह वीर युवक।

जब सोनालिका के घायल होने की सूचना किले में पहुँची तो हा–हाकार मच गया चारो ओर। तबतक द्वारपाल ने सूचना दी कि बहादुर नट का बेटा विरला मृत मगरमच्छ को अपने कन्धे पर लादे किले की तरफ आ रहा है। महाराज रिपुदमन सिंह दौड़कर किले के फाटक पर पहुँचे और विरला के आते ही उसे गले से लगाते हुए बोले–तुमने मेरी बेटी की जान बचाकर यह सिद्ध कर दिया कि तुम्हारा विरला नाम बहुत उचित है। मैं तुम्हारा बहुत ऋणी हूँ बेटा और इतना कहकर महाराज ने अपने गले का मूल्यवान हार विरला के गले में डाल दिया उतार कर।

सोनालिका का इलाज ग्वालियर के राजवैद्य ने किया। वह ठीक तो हो गयी लेकिन मगरमच्छ के नुकीले दांतों के तीन निशान बन गये उसके बाँये हाथ पर। वह युवक कौन था ? कैसे उसने उसकी प्राण रक्षा की ? बेहोश होने के कारण उस समय वह जान न सकी ये सब और जब उसे पता चला कि उसका प्राणरक्षक और कोई नहीं विरला था उसी ने अपनी जान खतरे में डालकर काल के मुंह से निकाला था उसे।

यह सुनकर एकबारगी चौंक पड़ी सोनालिका। आश्चर्य और कौतूहल की सीमा ही नहीं रही। न जाने क्यों रोमाञ्चित हो उठा उसका सारा शरीर। यौवन से भरपूर विरला का सुगठित सुन्दर शरीर थिरक उठा उसके सामने उस समय। न जाने क्यों विरला को देखने के लिए आकुल हो उठी उसकी आत्मा ? कौन सा वह क्षण था जब विरला के प्रति उसके हृदय में प्रेम अंकुरित हुआ। अब हर समय और हर पल विरला की ही याद में खोयी–खोयी सी रहने लगी वह। आश्चर्य की बात तो यह थी कि विरला का रूप और व्यक्तित्व सोनालिका की कल्पना में ही था, प्रत्यक्ष में उसने अभी तक देखा ही नहीं था विरला को।

एक दिन दोपहर के समय कल्पना में डूबी हुई सोनालिका चित्रकारी कर रही थी। उसी समय एक सिपाही किले की बुर्जी पर चढ़

कर जोर–जोर से आवाज देकर विरला को बुलाने लगा। वह कह रहा था– जल्दी आओ दूतराज को नाग ने डस लिया है। सिपाही की आवाज सोनालिका ने भी सुनी तो उसने अपनी एक सहेली से पूछा यह विरला आखिर है कौन ? सांप के डसने पर क्यों बुलाया जा रहा है उसे ?

सहेली का नाम था केसर। केसर हँसकर बोली–इतनी जल्दी विरला को भूल गयी तुम और यह भी भूल गयी कि उसी ने मगरमच्छ से तेरी जान बचायी थी।

यह सुनकर न जाने क्या कुछ सोचने लगी सोनालिका। फिर केसर से पूछा यह विरला है कौन ? दूसरी बार यह प्रश्न सुनकर केसर से रहा न गया जरा तुनककर बोली–क्या तुमको फिर से यह बतलाना पड़ेगा कि विरला ने ही मौत के मुंह से निकाला था तुमको और तेरा हाथ निकाला था मगरमच्छ का जबड़ा फाड़कर। उसी को बुलाया जा रहा है राजदूत के सांप का जहर उतारने के लिए। फिर तब तो बड़ा बलशाली होगा विरला खिड़की के बाहर देखती हुई बोली सोनालिका। इसमें क्या शक, तेरी ही उम्र का तो लड़का है बहुत सुन्दर और नौजवान है। मेरा तो मन करता है कि जी भर कर बातें करूँ उससे पर मेरे ऐसे भाग्य कहाँ ?

केसर की बात सुनकर विरला को देखने की लालसा जागृत हो उठी सोनालिका के मन में। वह पहले से ही विरला के लिए पागल थी और अब तो इस लालसा ने आग में घी का काम कर दिया था।

सवेरा हो चुका था। पक्षी कलरव करने लग गये थे। उस समय रोज की तरह अपने महल की छत पर टहल रही थी सोनालिका। केसर उसे भोर का गीत सुना रही थी। तभी उसकी नजर नदी के बीच में स्थित पहाड़ी पर गयी। उसने देखा एक गोरा, सुन्दर और बलिष्ठ नौजवान पहाड़ी से कूद कर नहा रहा था। सोनालिका बोली देख केसर यह युवक कितना सुन्दर और कितना आकर्षक है। लगता है जैसे कोई राजकुमार हो।

केसर हँस पड़ी खिलखिलाकर, फिर बोली यह कोई राजकुमार नहीं है सोनालिका। यही है विरला नट जिसके सपने देख रही हो

तुम। बहुत देर तक पहाड़ी की ओर देखती रही सोनालिका। विरला ने ही उसकी प्राण रक्षा की है–यह जब भी सोचती तब रोमाञ्चित हो उठती वह।

शिवरात्रि का पर्व था। केसर, भगवान शंकर का दर्शन करने जा रही थी। उस दिंन उसका व्रत भी था अचानक एक जहरीला नाग उसके पैर से दब गया। वह चीखने–चिल्लाने लगी। दर्शनार्थी उसकी ओर दौड़े। सोनालिका भी मान–मर्यादा का ख्याल छोड़कर केसर के पास पहुँची। पैर पकड़े जोर–जोर से रो रही थी केसर उस समय। विरला ने जब सुना कि केसर को नाग ने डस लिया है तो वह भी जा पहुँचा उसके पास और जैसे ही उसने केसर के पैर से खून बहते हुए देखा वह चकरा गया, क्योंकि सांप के डसने का घाव ही नहीं था वह।

केसर को यह समझते देर न लगी कि कुछ शंका हो रही है विरला को। उसने बेहोश होने का नाटक किया। विरला ने फुर्ती से हाथ बढ़ाकर केसर को थाम लिया और उसी अवस्था में केसर ने धीरे से विरला के कान में कह दिया राजकुमारी सोनालिका तुमसे प्रेम करती है। कल इसी मंदिर के बाग में नाग पकड़ने के बहाने तुम आ जाना। विरला ने झाड़ फूंक का नाटक किया और नाटक किया केसर ने अच्छा हो जाने का। कुछ ही देर में भीड़ छट गयी। विरला भी चला गया। केसर को अपने साथ महल में ले आयी सोनालिका। एकान्त में हँस–हँस कर केसर ने बताया–तू समझी नहीं सोनालिका, वह तो मेरा नाटक था नाटक समझी। मैंने जानबूझकर अपने पैर में चाकू से घाव कर दिया था। सोचा था जब खून निकलेगा तो नाग काटने का नाटक करूँगी और जब नाग का विष उतारने विरला आयेगा तब उसे बतला दूँगी कि राजकुमारी सोनालिका तुम्हे प्यार करती है। कल सांझ के समय मैंने विरला को नाग पकड़ने के बहाने मंदिर के बगीचे में बुलाया है। वह जरूर आयेगा तुम उससे मिल लेना, मैं भी साथ में रहूँगी तुम्हारे साथ लजाती हुई सोनालिका ने कहा– कितनी चतुर और बुद्धिमान है रे! तुझे तो बहुत सीधी समझती थी मैं।

दूसरे दिन सांझ के समय दोनों मंदिर के बाग में पहुँची। उस समय विरला मंत्रों के द्वारा सांपों का आवाहन कर रहा था। अबतक

उसके सामने छोटे बड़े दर्जनों नाग नागिन एकत्र हो गये थे। सोनालिका एकटक उस अद्‌भुत दृश्य को देख रही थी। उसी समय सोनालिका की नजर बचाकर झाड़ी के पीछे जा छिपी केसर। जब सारे सांप एक–एक कर चले गये तो विरला का ध्यान सोनालिका की ओर गया। वह उस रूपांगना को अपने सामने देखकर जितना मुग्ध हुआ, उससे अधिक घबरा गया, सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर वह बोला– राजकुमारी को मेरा प्रणाम। मैं नट हूँ मैं किसी भी तरह आपके योग्य नहीं हूँ। आप ठहरी राजकुमारी और मैं ठहरा नट। मेरा और आपका कोई जोड़ नहीं मुझे क्षमा करें।

यह सुनकर सोनालिका की आँखों में आँसू छलछला आये। रुंधे गले से बोली–ऐसा न कहो विरला। नया जीवन तुमने ही दिया है मुझे। मेरे प्राणरक्षक हो। फिर तुमसे बढ़कर मेरे योग्य कौन हो सकता है विरला? यदि तुम मुझे स्वीकार नहीं करोगे तो नदी में कूद कर जान दे दूँगी मैं।

विरला क्या कहता ? जब वह अपनी जान हथेली पर रखकर उस भयंकर मानवभक्षी मगरमच्छ से जूझा था और राजकुमारी की प्राण रक्षा की थी। तभी से वह भी राजकुमारी की मनमोहक और लावण्यमयी छवि को भूला न पाया था। उसने भाव विह्वल होकर राजकुमारी का हाथ अपने हाथ में लेकर माथे से लगाया और होठों से चूमा और मुड़कर चला गया। उसे जाते देखती रही राजकुमारी सजल नेत्रों से।

धीरे–धीरे सहेलियों के माध्यम से मिलन होने लगा विरला और सोनालिका का। भेष बदल कर कभी–कभी विरला सोनालिका के शयन कक्ष में भी जाने लगा। शयनकक्ष में दोनों प्रेमी आलिंगनवद्ध पड़े रहते पूरी रात। होश दोनों को न रहता समय और स्थिति का। बात तो छिपने की थी नहीं। शीघ्र ही गुप्तचरों तक पहुँच गयी दोनों प्रेमियों की प्रणय गाथा। गुप्तचरों ने विरला को रंगे हाथ पकड़ने का प्रयास किया लेकिन सफल न हो सके। अन्त में खीझकर इसकी सूचना महाराज रिपुदमन सिंह को दे दी कि आपकी बेटी सोनालिका का विरला से अवैध संबंध है। वह प्रायः शयनकक्ष में राजकुमारी से मिलने के लिए आता है।

यह सूचना सुनकर महाराज रिपुदजन सिंह स्तब्ध और अवाक् हो गये एकबारगी। कुछ देर बाद न जाने क्या सोचते हुए उन्होंने विरला

नट और राजकुमारी सोनालिका को सभा भवन में उपस्थित होने का हुक्म दिया। सभा भवन में महाराज रिपुदमन सिंह अपने मंत्री दउदा के साथ विराजमान थे। प्रकरण दउदा ने प्रस्तुत किया। उसने कहा—गुप्तचरों की सूचना के अनुसार राजकुमारी सोनालिका का विरला नट से अवैध संबंध है जो परम्परा के विपरीत है। इसके लिये विरला नट और राजकुमारी सोनालिका को यथोचित दण्ड देना चाहिए जिसके कारण महाराज रिपुदमन सिंह का सिर नीचा हो रहा है लेकिन मंत्री की बात को कोई महत्व नहीं दिया गया। महाराज के पहल पर सभासदों ने फैसला किया कि दोनों का विवाह कर देना चाहिए क्योंकि महाराज अपनी लाडली पुत्री को मृत्युदण्ड देना नहीं चाहते थे इसलिए कि उनके वंश के बाग में खिली पहली कली थी वह। इस पर मंत्री दउदा ने दृढ़ता से कहा—मैं महाराज रिपुदमन सिंह और सभासदों के निर्णय का सम्मान करता हूँ लेकिन एक शर्त है और वह यह कि इस वर्षाकाल में विरला नट धागे के सहारे नदी के उस पार से इस पार आ जाता है सकुशल, तो राजकुमारी सोनालिका का विवाह राजोचित ढंग से विरला नट से कर दिया जायेगा। महाराज विचारमग्न हो गये बोले नहीं लेकिन सभासदों ने मंत्री के इस शर्त का समर्थन किया। विरला और सोनालिका से पूछा गया तो दोनों ने एक दूसरे की ओर बड़े ही आत्मविश्वास के साथ देखा और शर्त स्वीकार कर ली।

पूरे भूरागढ़ की जनता में इस शर्त को लेकर घोर आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन नदी पार करने की परीक्षा होनी थी। विरला ने अपने पिता के निर्देशन में अति रहस्यमयी तांत्रिक क्रियायें की और शाबरी मंत्रों का अनुष्ठान भी किया। जिससे उसकी नटविद्या की शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी और उसका आत्मविश्वास जाग उठा। सवेरा होते ही नदी की ओर के तोपखाने की गुम्बज से धागा बांधकर नदी की दूसरी ओर पहाड़ी पर उसका दूसरा सिरा बांध दिया गया। दर्शकों की अपार भीड़ जमी थी किले पर। बाढ़ के कारण केन नदी की धारा प्रचण्ड और उग्र थी उस समय। नाव से विरला पहाड़ी की तरफ पहुँचा और किले की तरफ से झण्डी के इशारे की प्रतीक्षा करने लगा। तांत्रिक शक्ति और आत्मविश्वास के मिले—जुले भाव से दप् दप् कर रहा था उसका चेहरा उस समय।

एक बार उस पार किले पर अपनी सहेलियों के साथ खड़ी सोनालिका की ओर स्थिर दृष्टि से देखा उसने और मंत्री दउदा ने हरी झण्डी दिखाई। धागे के सहारे नदी पार करने लगा विरला। मोती महल की छत पर हाथ में फूलों का हार लिए खड़ी सोनालिका अपने प्रति प्रेम की लगन को एकटक देख रही थी और कुछ ही हाथों की दूरी पार करने को रह गयी तो सोनालिका हार लिये तोपखाने के गुम्बज पर पहुँच गयी। उसने देखा विरला गुम्बज के पास पहुँच गया था और तभी हवा में लहराता हुआ नदी की प्रखर धारा में समा गया विरला। उसे बचाने की क्षमता किसी में नहीं थी। क्या विरला का आत्मबल टूट चुका था और क्या उसकी तांत्रिक शक्ति क्षीण हो गयी? नहीं, न उसके आत्मबल में कमी आयी थी और न तो उसकी तांत्रिक शक्ति ही व्यर्थ सिद्ध हो गयी थी। सब कुछ एक धोखा था। एक ईर्ष्या का परिणाम था और थी एक असफल प्रेम की परिणति। मंत्री दउदा सोनालिका को चाहता था लेकिन सोनालिका ने फटकार दिया था उसे और तभी से धधक रही थी असफलता की आग उसके हृदय में बदला लेना चाहता था वह अपने अपमान का और उसने बदला ले ही लिया। पहाड़ी के पीछे छिपे हुए दउदा के एक आदमी ने सफलता की सीमा पर पहुँचने के पहले ही रापी से काट दिया था धागे को। शोकाकुल हो उठी थी भूरागढ़ की जनता। चारो ओर दुख का सागर लहरा रहा था। महाराज की आँखे भी विरला के लिए छलछला आयी थी उस समय। लेकिन करते भी क्या विवश थे। यदि दउदा की नीचता और कुटिल नीति से परिचित होते तो उसी समय उनका भाला दउदा की छाती को चीरता हुआ बाहर निकल गया होता। लेकिन सोनालिका जान गयी थी कि दउदा ने छल किया है उसके साथ। वह एकबारगी चीख पड़ी– दउदा तूने यह अच्छा नहीं किया।

दउदा का उत्तर था–राजकुमारी। मैं क्षत्रिय हूँ मैं तुम्हारे पिता की तरह भावनाओं के वश में नहीं हो सकता। विरला को तो मृत्युदण्ड मिलना ही था। मैंने तो केवल अपना कर्तव्य पूरा किया है।

उस समय झर–झर कर आँसू बह रहे थे सोनालिका की आँखों से। उसकी पीड़ा, वेदना, कष्ट, दुख और उसके हृदय पर लगे आघात

को भला कौन समझने वाला था वहाँ। कुछ क्षण रूककर उसने घृणा की दृष्टि से दउदा की ओर देखा और फिर तड़पकर बोली दउदा तूने मेरा जीवन खण्डहर किया है। भगवान तेरा यह किला भी एक न एक दिन खण्डहर कर देगा। तू तो मुझे कभी भी पा न सकेगा। इतना कहकर हाथ में पुष्पाहार लिये गुम्बज से नदी में कूद पड़ी सोनालिका और दूसरे ही क्षण समा गयी प्रचण्ड प्रवाह में लेकिन उसकी माला काफी दूर तक बहती रही धारा में।

भूरागढ़ के किले को तो खण्डहर होना ही था और हो भी गया लेकिन उस खण्डहर के बगल में केन नदी के किनारे अगल–बगल दो समाधियाँ आज भी हैं। एक समाधि है विरला की और दूसरी है सोनालिका की।

ऋषिकेश के आकाश पर घिरे हुये बादल अब छट गये थे और चाँद काफी ऊपर आ गया था। अब और गहरी हो गयी रात की कालिमा और उससे अधिक गहरी हो गयी थी निस्तब्धता भी। सिर ऊपर उठाये अपलक निहार रही थी चांद की ओर कपिला आनन्द। मैं कुछ देर तक मौन साधे रहा। बाद में रहा न गया मुझसे। आखिर बोल ही पड़ा–क्या आपकी समाप्त हो गयी कथा ?

चाँद की ओर उसी तरह अपलक निहारते हुए धीमे स्वर में बोली वह बैरागिन–नहीं! अभी समाप्त नहीं हुई मेरी कथा शर्माजी अभी तो बहुत कुछ शेष है। विरला तो डूबते ही मर गया था, लेकिन सोनालिका नहीं। वह पानी में गिरते ही बेहोश हो गयी थी और उसी अवस्था में नदी की प्रखर धारा में डूबती उतराती बहती रही, बहती रही वह और जब चेतना लौटी तो अपने आपको घने जंगलों से घिरे एक गुफा में पाया उसने। उसका सिर एक युवा संन्यासी की गोद में था और वह सन्यासी अपनी कोमल उँगलियों से उसके बालों को सहला रहा था। धीरे–धीरे सम्भवतः उसी की सुखद अनुभूति के कारण उसकी आँखे खुल गयी थी और खुलते ही संन्यासी को देखा उसने। संन्यासी मन्द–मन्द मुस्करा रहा था उस समय। देखा तो देखती ही रह गयी सोनालिका उस सुदर्शन गौरांग युवा संन्यासी को। कुछ क्षण के लिए उसे लगा कि जैसे किसी अनजाने लोक में आ गयी है वह और वह संन्यासी कोई देवपुरुष हो। फिर एक झटके से उठ बैठी सोनालिका

और संन्यासी की ओर देखकर हकलाते हुए बोली—मैं कहाँ हूँ ?.....कौन लाया मुझे यहाँ ? कौन हैं आप.....बतलाइये मुझे कौन हैं आप, संन्यासी भेष में.....?

संन्यासी मौन रहा। उसके चेहरे की मुद्रा गम्भीर थी। कोई उत्तर नहीं दिया उसने। बस अपने तेजस्वी और प्रखर नेत्रों से अपलक निहारता रहा वह सोनालिका को।

संन्यासी का मौन सोनालिका को विचित्र लगा, कुछ भयभीत भी हो उठी वह। संन्यासी को अपनी ओर अपलक देखना रहस्यमय लगा उसे, चीख उठी सोनालिका दूसरे क्षण बोलिए तो कुछ, जवाब तो दीजिये ?

फिर उस युवा सुदर्शन संन्यासी ने जो कुछ बतलाया और जो कुछ कहा उसे सुनकर स्तब्ध रह गयी सोनालिका। आश्चर्य और कौतूहल से भर उठा उसका हृदय और अन्त में रहा न गया उससे। विगलित हो उठी थी उसकी आत्मा। झुककर अपना सिर रख दिया उसने उस युवा संन्यासी के चरणों में और न जाने कबतक संन्यासी के चरण भींगते रहे सोनालिका के आँसुओं से। संन्यासी पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। निर्विकार और तटस्थ बैठा रहा वह अपने आसन पर। थोड़ी देर बाद दोनों हाथों से सोनालिका का सिर उठाते हुए गम्भीर स्वर में बोला वह—क्या तुम अपने माता—पिता के पास जाना चाहती हो ? संन्यासी के स्वर में गम्भीरता थी और थी सहजता सम्भवतः अपनत्व का मिश्रण भी रहा हो कहा नहीं जा सकता।

सिर झुकाकर विनम्र स्वर में उत्तर दिया सोनालिका ने—नहीं! अब मैं देवपुरुष जैसे अपने प्राणरक्षक और आश्रयदाता के सान्निध्य में ही रहना चाहती हूँ। यही मेरे लिए शुभ और मंगलकारी भी होगा। थोड़ा रूककर आगे बोली वह—वैसे भी तो मर चुकी हूँ माता—पिता के लिए मैं। यदि लौटकर जाती भी हूँ तो वहाँ क्या रखा है मेरे लिए अब ? जो मेरा था और जो अपना था वह तो रहा ही नहीं.....इतना कहकर रो पड़ी फफक—फफक कर सोनालिका। आगे न बोला ही गया और न तो कुछ कहा ही गया उससे।

सब कुछ समझते देर न लगी संन्यासी को। गुफा के बाहर निकल आया वह और एकटक देखने लगा आकाश की ओर शून्य में। निश्चय

ही आत्मसंघर्ष कर रहा था वह उस समय। क्यों इस युवती को नदी से निकालकर ले आया अपनी गुफा में ? बेहोशी की स्थिति में क्यों उसकी सेवा की ? क्यों उसके प्रति उसके मन में मोह और आकर्षण है? क्या कारण है इसका ? क्या इस युवती से अनजाने में प्रेम करने लगा है वह ? नहीं नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता असम्भव है। अपने आपको अर्न्तद्वन्द से मुक्त करने के लिए एक लम्बी सांस लेकर संन्यासी बोला– सोनालिका संसार, समाज और धर्म के विरूद्ध है एक साथ मेरा तुम्हारा यहाँ रहना।

यह सुनकर रोने लगी सोनालिका। उसी स्थिति में अवरूद्ध कण्ठ से बोली–कहाँ जाऊँ मैं ? कौन है मेरा इस संसार में आपको छोड़कर आप ही बतलाइये ? माता पिता के पास जाती हूँ तो लोगों का यह पूछना स्वाभाविक है कि कहाँ थी पूरे दो महीने ? यदि लोग यह जाने लेंगे कि एक युवा सन्यासी के संरक्षण में रही और उसी सन्यासी ने बेहोशी की अवस्था में मुझे नदी से उबारा था तो लोगों का सशंकित होना भी स्वाभाविक है। मेरी पवित्रता पर निश्चित ही उनको सन्देह होगा। सोनालिका की बात सुनकर फिर सोच में पड़ गया युवा संन्यासी। कुछ देर बाद बोला–क्या तुम संन्यास लोगी ? मैं तंत्रमार्ग का संन्यासी हूँ ? संन्यासिनी के रूप में मेरी भैरवी होकर रहना होगा मेरे साथ स्वीकार है ? संन्यासी के शब्दों में ओज था और थी गम्भीरता।

हाँ! स्वीकार है मुझे–सोनालिका ने भी उत्तर दिया गम्भीर स्वर में। दृढ़ता की झलक थी उसकी वाणी में।

सोनालिका को भैरवी दीक्षा– उस युवा और सुदर्शन संन्यासी का नाम था ताराचरण शाक्त। साधना के प्रभाव से देखने में युवा था, लेकिन उसकी आयु थी पूरे अस्सी वर्ष की। ताराचरण ने विधिवत सन्यास की दीक्षा लेकर अपनी भैरवी बना लिया सोनालिका को। बिना भैरवी के सहयोग से तांत्रिक साधना अपूर्ण समझी जाती है। माँ महामाया की कृपा से ताराचरण को सोनालिका के रूप में भैरवी उपलब्ध हो गयी थी। उसकी साधना की पूर्णता के लिये माँ ने ही भेजा होगा सोनालिका को ताराचरण ने यही समझा। दोनों ने एक दूसरे के सहयोग से पूरे

तीस वर्षों तक कठोर तंत्र साधना की उस गुफा में। किसी वस्तु का अभाव नहीं था उस जंगली गुफा में। पहले तो गाँव–गाँव घूमकर भिक्षा माँग लाता था संन्यासी लेकिन सोनालिका के आ जाने से यह भिक्षा कर्म छोड़ दिया था उसने जिस वस्तु का अभाव होता और जिस पदार्थ की इच्छा होती, उस वस्तु और पदार्थ की सृष्टि स्वयं हो जाती संन्यासी की मानसिक शक्ति के द्वारा। तीस वर्षों की कठोर योग तांत्रिक साधना के परिणाम स्वरूप दोनों अपने सूक्ष्म शरीर से अधिक कार्य लेने लग गये थे। दोनों एक साथ अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा आकाश मार्ग से लम्बी–लम्बी यात्रा करते। हिमालय स्थित गुप्त साधना स्थलों में जाते। गोपनीय ढंग से साधनारत साधकों से मिलते और जिन तीर्थों में जाने की इच्छा होती वहाँ तत्काल पहुँच जाते। कभी–कभी गुफा में सूक्ष्म शरीर से उच्चकोटि के योगी और साधक भी आते और उनके साथ तरह–तरह की साधनाओं की चर्चा होती। सोनालिका की आत्मा को असीम शान्ति मिलती और असीम सुख मिलता उस समय आनन्द विभोर हो उठती वह। जब कभी अपने अतीत में झांकती सोनालिका तब उसे सब कुछ तुच्छ और व्यर्थ प्रतीत होता। राजसुख और एक नट से प्रेम और उस प्रेम में पागल हो जाना कितना निरर्थक और सारहीन था अब उसके लिए। हँस पड़ती वह मनुष्य की मूर्खता और अज्ञानता पर। आध्यात्मिक भूमि में प्रवेश करने पर ऐसा ही प्रतीत होता है। संसार, समाज, परिवार और जीवन सारहीन हो जाता है साधक के लिए। वह जीवन को नहीं जीवन में जीने की कला को देता है महत्व और इस कला का मर्मज्ञ होता है वह इसमें सन्देह नहीं। सोनालिका के पास जीवन तो था लेकिन जीने की कला नहीं थी और अब उस कला को जान गयी थी वह।

महात्मा रत्नकीर्ति- अब उस गुफा में सिद्धलोक, दिव्यलोक और आत्मलोक में निवास करने वाले सूक्ष्म शरीरधारी सिद्ध साधकगण भी आने लगे थे कभी–कभी। इसके मूल में थी सोनालिका की मानसिक शक्ति की विद्युत चम्बकीय ऊर्जा तरंगे। जिनके फलस्वरूप गुफा में दिव्य महापुरुषों का आगमन होता था। उन्हीं दिव्य महापुरुषों में एक थे रत्नकीर्ति। रत्नकीर्ति योग के अतिरिक्त औषधितंत्र के प्रकाण्ड विद्वान

थे। रस सिद्ध था उन्हें। रसों के माध्यम से कायाकल्प करने की विद्या के रहस्य से परिचित थे महाशय।

ताराचरण शाक्त की साधना से अत्यधिक प्रभावित थे रत्नकीर्ति। एक वार्तालाप के प्रसंग में ताराचरण शाक्त से उन्होंने कहा–आप जिस मार्ग के साधक हैं वह एक दो जन्म में पूरी नहीं होने वाली है। उसके लिए आपको अभी पांच जन्म और लेने पड़ेंगे। क्यों नहीं आप इसी जन्म में और इसी शरीर से अपनी साधना पूर्ण कर लेते ? यह सुनकर–ताराचरण शाक्त विस्मित हुए, कौतूहल और आश्चर्य के मिले भाव से बोले– यह कैसे सम्भव है ? मृत्यु और पुनर्जन्म का तो साक्षात्कार प्रकृति के नियम के अनुसार सभी को करना पड़ता है। मैं भला उससे कैसे वंचित रहूँगा? कायाकल्प द्वारा मुस्कराकर किन्तु गम्भीर स्वर में उत्तर दिया रत्नकीर्ति ने। आप कायाकल्प द्वारा इसी अवस्था में बराबर बने रहेंगे यानी युवा लेकिन आयु अपनी दृष्टि से बराबर बढ़ती रहेगी। काल का प्रभाव नहीं पड़ेगा आपके शरीर, मन और प्राण पर। लेकिन यह विचार कर लीजिए। साधना की पूर्णता और आपका शरीर त्याग एक ही साथ होगा। पूर्णता के क्षण के बाद जीवन के लिए एक क्षण भी प्राप्त नहीं होगा आपको।

मृत्यु के बाद अगले जन्म में साधना का संस्कार ही विद्यमान रहता है आत्मा में स्मृति नहीं। यदि गुरु की कृपा और इष्ट की हुई अनुकम्पा तो साधक के लिए वही संस्कार आधार बन जाता है आगे की साधना यात्रा के निमित्त किन्तु कृपा और अनुकम्पा प्राप्त होगी ही यह निश्चित नहीं है अगले जन्म के लिए। कभी किसी भी जन्म में प्राप्त हो सकती है वह। यह सब सोच समझकर गम्भीर स्वर में ताराचरण शाक्त बोले– स्वीकार है मुझे। जन्म और मृत्यु के कष्ट और पीड़ा से बचा रहूँगा साधना की पूर्णता की अवधि तक। कृपा और अनुकम्पा की प्रतीक्षा तो नहीं करनी पड़ेगी मुझे।

योगी का कायाकल्प– रत्नकीर्ति के औषधितंत्र की रासायनिक क्रियाओं द्वारा एक ही मास में चिरयौवन की उपलब्धि हो गयी ताराचरण शाक्त को। सोने की तरह चमकने लगा उनका चेहरा। लेकिन सोनालिका का क्या हुआ ? न उसका कायाकल्प हुआ और न तो हुआ उसे चिरयौवन

की उपलब्धि ही। काल का प्रभाव तो पड़ना निश्चित था और वह बराबर पड़ रहा था सोनालिका पर। धीरे–धीरे अस्सी वर्ष की हो गयी सोनालिका। किन्तु उसके गुरु बराबर बने रहे चिरयौवन सम्पन्न। आयु का कोई प्रभाव नहीं था उन पर।

सोनालिका की मृत्यु और पुनर्जन्म- इस संसार में जैसे और लोग मरते हैं उसी तरह सोनालिका का भी शरीर छूट गया इस संसार में। मरने के बाद उसका जन्म हुआ एक महादरिद्र बंगाली परिवार में। संयोग ही कहा जायेगा या कहा जायेगा इसे प्रारब्ध। इस जन्म में भी एक उच्चकोटि के महासाधक की भैरवी ही बनी सोनालिका। लेकिन साधनाकाल में ही न जाने क्यों और कैसे मृत्यु हो गयी उसकी। कुछ समय के अन्तराल में इसे संयोग ही कहिए। सोनालिका का जन्म पुनः बंगाली ब्राह्मण परिवार में ही हुआ। वह परिवार समृद्ध और धर्मपरायण था और सुसंस्कृत भी। आश्चर्य की बात तो यह है कि इस तीसरे जन्म में भी भैरवी बनी सोनालिका और वह भी उसी महासाधक की जिसकी पिछले जन्म में रह चुकी थी वह। इसे नियति की लीला ही समझी जायेगी या सोनालिका का दुर्भाग्य। उस महासाधक की तो साधना पूर्ण हो गयी, लेकिन न जाने किस त्रुटि के कारण साधना भूमि में ही दम तोड़ दिया सोनालिका ने पिछली बार की तरह। परिणाम यह हुआ कि उस महासाधक को अपनी साधना की पूर्णता के फलस्वरूप भावराज्य प्राप्त हुआ लेकिन सोनालिका को उपलब्ध हुआ केवल मात्र भाव शरीर जो प्रेत शरीर का विशिष्ट रूप है। अब उसके लिए संसार की सीमा में रहकर श्मशान में भटकने के अलावा और कुछ नहीं रह गया था। कभी–कभी अपने गुरु से मिलने के लिए अवश्य जाती थी भाव राज्य में लेकिन उसको कोई लाभ नहीं था गुरु दर्शन से। इसे नियति अथवा परमेश्वर की अनुकम्पा ही समझी जायेगी कि दीर्घकाल के पश्चात् लगभग चालीस वर्ष पूर्व सोनालिका की भटकती हुई आत्मा को पुनः प्राप्त हुआ मानव शरीर। इस बार भी उसने एक ब्राह्मण कुल में ही जन्म लिया और उसका नाम रखा गया सरस्वती। बहुत सुन्दर थी सरस्वती। गोरा रंग, बड़ी–बड़ी झील जैसी गहरी आँखे और गुलाब की पंखुड़ियों जैसे रक्ताभ होंठ और जब सरस्वती पन्द्रह सोलह साल की हुई तो

उसका रूप और यौवन पूरी तरह खिल चुका था। उसकी रतनारी आँखों में कामना और वासना की स्पष्ट दिखलायी देने लगी थी झलक।

मातृअंक- साधक ताराचरण शाक्त की साधना अपनी पूर्णता के समीप थी लेकिन उसकी सिद्धि बिना महाभैरवी के मातृअंक में समर्पित हुए बिना सम्भव नहीं थी और उसके अभाव में सिद्धलोक में प्रवेश भी नहीं हो सकता था। साधना की पूर्णता सिद्धि में है। साधकगण उसी परम सिद्धि का आश्रय लेकर सिद्धलोक में प्रवेश करते हैं किन्तु तभी जब उन्हें मातृअंक यानी माँ की गोद प्राप्त हो। योग तंत्र में मातृअंक का सर्वाधिक महत्व और मूल्य है। माता की गोद में सिर रखकर महाप्रयाण करने वाला साधक ही अपने निजलोक यानी सिद्धलोक को उपलब्ध होता है। यदि यह उपलब्ध न हो सका तो साधना तो पूर्ण अवश्य हो जायेगी और हो जायेगी प्राप्त सिद्धि भी लेकिन सिद्धलोक प्राप्त न होगा देहान्तर के बाद।

तांत्रिक साधना भूमि में महाभैरवी ही माँ तुल्य होती है। उसकी गोद मातृअंक होती है। वास्तव में महाभैरवी साक्षात् जगदम्बा स्वरूप है। मातृअंक का इसी से महत्व समझा जाता है कि भगवान शिव को भी महाकाली रूप महामाया पराशक्ति की गोद में बैठना पड़ा सिद्ध लोक को उपलब्ध होने के लिए।

ताराचरण शाक्त की साधना पूर्ण हो चुकी थी अब और उसके परिणामस्वरूप सिद्धि लाभ भी हो चुका था उनको लेकिन अब था उनके सम्मुख देहान्तरण के पश्चात् सिद्धलोक गमन। परन्तु मातृअंक के अभाव में यह सम्भव नहीं। व्याकुल हो उठा वह परम साधक और तभी याद आयी उन्हें सोनालिका। यथा अवसर उनके आकाशचारी गुरु स्वामी परमानन्द परमहंसदेव ने महाभैरवी की दीक्षा दी थी सोनालिका को और उसका गुरु प्रदत्त नाम रखा अमृतकीर्ति और यह स्मरण होते ही और अधिक व्याकुल हो उठे ताराचरण शाक्त लेकिन अब क्या होगा सोनालिका को शरीर त्याग किये दो सौ वर्ष से भी ऊपर हो चुका था। कहाँ होगी वह ? कहाँ जन्म लिया होगा उसने ? किस स्थिति और किस स्थान पर होगी वह ? क्या पहचान पायेगी वह उन्हें नहीं—नहीं कभी नहीं। अबतक तो वह कई जन्म ले चुकी होगी। पिछले जन्म की

स्मृति होगी उसे? नहीं यह सम्भव नहीं है। भला किसी को अपने पिछले जन्मों की स्मृति रहती है? सब कुछ भूल चुकी होगी उसकी आत्मा सम्भव है संस्कार हो उसमें।

पूरी रात सो न सके ताराचरण शाक्त यही सब सोचते विचारते रहे वह। भोर के समय हल्की सी झपकी लगी उन्हें और उसी अल्प समय में सोनालिका के मृत्योपरान्त की सारी कथा बतला दी उनके आकाशचारी गुरु स्वामी परमानन्द परमहंसदेव ने। अन्त में उन्होंने कहा–सोनालिका की आत्मा में महाभैरवी का जो संस्कार था उसके फलस्वरूप मरणोपरान्त एक महासाधक की दो बार भैरवी बनी। संयोग ही समझा जायेगा इसे कि दोनों बार साधना भूमि में ही मृत्यु हो गयी बेचारी की। यह सुनकर एकबारगी स्तब्ध और अवाक् रह गये ताराचरण शाक्त फिर उनसे रहा न गया और चल पड़े इस खोज में कि तीसरी बार कहाँ जन्म लिया है सोनालिका ने। खोज सफल हुई। सोलह वर्षीया रूप यौवन से सम्पन्न सरस्वती के रूप में अपनी महाभैरवी सोनालिका को देखकर, दंग रह गये एकबारगी साधक महाशय। इतनी कमनीयता, इतनी लावण्यता और इतनी सुन्दरता एक किशोरी में? स्तब्ध रह जाना स्वाभाविक था ताराचरण शाक्त के लिए। सामने जाकर खड़े हो गये सोनालिका के वह। ऊँची कद–काठी, सोने जैसी देह, साधना के तेज से दप्–दप् करता हुआ मुखमण्डल, कन्धे तक झूलती हुई घनी स्याह केश राशि, आत्मतेज से धधकती भौंराली आँखे, मस्तक पर लाल सिन्दूर का गोल टीका और त्रिपुण्ड, गले में स्फटिक की माला, बायें हाथ में चमकता हुआ पीतल का कमण्डल और शरीर पर रेशमी कषाय वस्त्र।

तीन सौ वर्ष से अधिक आयु व्यतीत हो जाने पर भी युवा बने रहे उस सन्यासी को अपने सामने देखकर आश्चर्य और कौतूहल से भर उठी सरस्वती। अपलक देखने लगी सिर उठाकर उस सुन्दर और युवा साधक को। उससे न कुछ बोला ही गया और न तो कुछ कहा ही गया।

लगभग ऐसी ही स्थिति थी उस कालञ्जयी महातंत्र साधक की भी। मुग्ध भाव से निर्मिनेष देख रहा था उस नवयौवना को और फिर सहसा एक अघटित घट गया वहाँ। थोड़ा सा आगे बढ़कर साधक ने अपना दाहिना हाथ सरस्वती के मस्तक पर रख दिया। एक महान योग

तंत्र साधक का पाणी स्पर्श पाते ही समाधिस्थ हो गयी सरस्वती दूसरे ही क्षण और उस परम अवस्था में पिछले तीन सौ वर्षों की सारी स्मृति जागृत हो उठी। पिछले जन्मों में वह कौन थी, क्या थी, किस जन्म में कौन सी घटना घटी थी और किस जन्म में कौन महत्वपूर्ण था उसके लिए ? ये सब कुछ एक–एक कर उभरने लगे उसके मानसपटल पर।

कुछ देर बाद भंग हुई समाधि। सिर उठाकर स्थिर दृष्टि से सरस्वती ने देखा अपने गुरुदेव के तेजोमय मुखमण्डल की ओर और फिर झुक गयी उनके चरणों पर। न जाने कब तक हिलक–हिलक कर रोती रही वह। महासाधक के चरण भींग उठे एकबारगी महाभैरवी के आसुओं से।

चाँद पश्चिम की ओर झुक गया था। बर्फीली हवा अब और अधिक तेज हो गयी थी। बादल तो छट गये थे लेकिन उनका धुन्ध अभी भी वातावरण में पसरा हुआ था और उसी धुन्ध में खो–सा गया था पूरा ऋषिकेश।

उलझनों से भरी और साथ ही अत्यन्त रहस्यमयी कथा सुनकर अनेक विचार, अनेक प्रश्न और अनेक जिज्ञासाएँ उठने लगी थी मेरे मन में। गर्म शॉल को शरीर पर लपेटते हुए मैंने पूछा– फिर क्या हुआ? धीमें स्वर में बोली संन्यासिनी– होगा क्या ? जो होना था वही हुआ। शरीर तो सरस्वती का था लेकिन आत्मा थी सोनालिका की और इस जन्म में भी संन्यासिनी बन गयी वह और उसका नाम रखा गया कपिला आनन्द। एकबारगी चौंक पड़ा मैं यह सुनकर स्तब्ध रह गयी मेरी आत्मा। पाषाणवत् देखता रहा मैं कुछ क्षण तक उस रहस्यमयी संन्यासिनी की ओर।

क्या आप ही सोनालिका हैं– किसी प्रकार हकलाते हुए पूछा मैंने?

हाँ! मैं ही सोनालिका हूँ– यह कहकर अपना दाहिना हाथ मेरे सामने फैला दिया संन्यासिनी ने। देखा उजले गोरे और सुन्दर हाथ पर तीन गहरे निशान थे मगरमच्छ के नुकीले दांतों के। जिसे देखकर सन्न रह गया मैं एकबारगी।

मेरी सारी शंकाओं का, जिज्ञासाओं का समाधान हो चुका था और उत्तर भी मिल गया मेरे तमाम प्रश्नों का। वास्तविक स्थिति के प्रति जो

उत्कंठा थी और जो था कौतूहल उसका हो गया था समाधान। योगी और साधकों का आध्यात्मिक जगत कितना गूढ़, गोपनीय और कितना होता है रहस्यमय ? इसका ज्ञान पहली बार हुआ मुझे।

मैंने सिर घुमाकर कपिला आनन्द की ओर देखा वह निर्विकार भाव से सिर झुकाये और आँखे बन्द किये बैठी थी मौन निश्चल।

कहने की आवश्यकता नहीं सरस्वती के रूप में जन्म लेने वाली कपिला आनन्द के अस्तित्व में, मैं देख रहा था सोनालिका, काकुली और कालिन्दी की मिली जुली छवि। हे भगवान! कितनी अविश्वसनीय और आश्चर्य की बात है यह ?

❐

चतुर्थ आवाहन
कालञ्जयी महातंत्र साधक ताराचरण शाक्त

सब कुछ जान समझ लेने के पश्चात् भी स्वाभाविक रूप से मैंने पूछा–इतने समय से क्यों प्रतीक्षा कर रही थीं आप और क्यों आपने सुनाई मुझे अपने तीन जन्मों की मार्मिक कथा ? कोई अवश्य कारण होगा ? मेरे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दिया कपिला आनन्द ने।

कुछ देर मौन रही और फिर स्वयं प्रश्न कर बैठी मुझसे वह– क्या आप मेरे गुरुदेव का दर्शन लाभ करना चाहेंगे ?

क्या आपके गुरुदेव अभी मातृअंक को उपलब्ध नहीं हुए हैं–मैंने जिज्ञासा प्रकट की। नहीं उसके लिए कुछ समय शेष है। एक कालञ्जयी महासाधक से मिलने का लोभ संवरण न कर सका मैं। सिर हिलाकर कहा–हाँ अवश्य दर्शन करूँगा। कहाँ जाना होगा ?

मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया कपिला आनन्द ने बस अपने स्थान से उठी और चल पड़ी वह और मैं भी बिना कुछ बोले चलने लगा उनके पीछे–पीछे। भोर का समय हो चुका था। नीले स्याह आकाश में शुक्र तारा झिलमिला रहा था। कब और कैसे एक हिमाच्छादित गुफा के सामने पहुँच गया मैं इसका होश ही नहीं रहा मुझे। कौन सा स्थान था वह यह भी समझ में नहीं आया। चारो ओर पहाड़ ही पहाड़ थे जिनके शिखरों पर बर्फ जमी थी। एक खिन्नता भरी उदासी बिखरी हुई थी शान्त वातावरण में। गुफा का द्वार तो छोटा था लेकिन भीतर जाने पर काफी लम्बा–चौड़ा स्थान मिला मुझे। हल्का सा धुन्ध जैसा प्रकाश फैला हुआ था वहाँ। उस लम्बे–चौड़े स्थान के बगल में एक बड़ा सा कमरा था जिसकी जमीन पर कीमती कालीन बिछी हुई थी। एक बड़ा सा तख्त भी था और उस तख्त पर भी एक काफी मोटा ऊनी कालीन

बिछा हुआ था और जिस पर व्याघ्र चर्म भी था और उस व्याघ्र चर्म पर एक युवा संन्यासी अर्ध समाधि की अवस्था में बैठा हुआ था। गुफा के भीतर का वातावरण किसी अनजाने लोक सा प्रतीत हुआ मुझे। घोर नीरवता पसरी हुई थी वहाँ।

हे भगवान! कहाँ आ गया मैं।

कुछ अद्‌भुत सा, कुछ विचित्र सा और कुछ अविश्वसनीय सा लग रहा था मुझे वहाँ। वह संन्यासी और कोई नहीं महातंत्र साधक ताराचरण शाक्त थे। तीन सौ पचास वर्ष के काल का किञ्चित मात्र प्रभाव नहीं पड़ा था उस महासाधक के शरीर पर। पूर्ण युवा थे वह। साधना के तेज से दप्–दप् करता हुआ मुखमण्डल, सोने जैसी चमकती हुई सुगठित देहयष्टि, कन्धे तक झूलती हुई घनी काली केशराशि, शरीर ऊँचा, चौड़ा ललाट और उस ललाट पर लाल सिन्दूर का गोल टीका और शरीर पर कषाय वस्त्र।

काफी देर तक देखता रहा मैं उस महासाधक की ओर अपलक जो अपने आप में साधना के अनुभवों का विशाल भण्डार समेटे हुए था और समेटे हुए था योग–तंत्र का रहस्यमय विशद ज्ञान । जिसे देखकर भला कौन कह सकता था कि उस युवा संन्यासी की आयु तीन सौ पचास वर्ष से भी अधिक होगी। पद्‌मासन की मुद्रा में व्याघ्र चर्म पर अर्ध समाधि की अवस्था में बैठे हुए थे उस समय वह। सिर झुकाकर प्रणाम किया मैंने और बैठ गया जमीन पर बिछी कालीन में। थोड़ी देर बाद हाथ में फल दूध लिए कपिला आनन्द आ गयी वहाँ। सम्भवतः साधक के फलाहार का समय हो गया था। कुछ क्षणों के बाद उनकी आँखे खुली और एक बार तीक्ष्ण दृष्टि से देखा उन्होंने मुझे। नेत्रों में लगा जैसे आग धधक रही हो। रोमाञ्चित हो उठा सारा शरीर।

साधक के नेत्रों की भाषा समझते देर न लगी मुझे। पहले अपना परिचय दिया और फिर अन्त में अपना उद्‌देश्य स्पष्ट किया मैंने। मेरी बात सुनकर थोड़ा मुस्कराये ताराचरण शाक्त फिर बोले– तुमने मुझे पहचाना नहीं, पहचानते भी कैसे ? भला किसी को याद रहती है अपने पिछले जन्मों की कथा।

यह सुनकर हतप्रभ हो गया मैं। क्या कहना चाहते हैं यह महाशय? बाद में सब कुछ स्पष्ट हो गया। उस महासाधक ने अपना दाहिना हाथ बढ़ाकर मेरे सिर पर रख दिया। हाथ का स्पर्श होते ही कुछ कौंध–सा गया मेरे मस्तिष्क में और चलचित्र की भांति उभरने लगा मेरे पिछले जन्मों का अतीत मेरे मानस पटल पर। सब कुछ स्पष्ट हो चुका था मेरे सामने। कुछ शेष नहीं बचा था। न जाने कबतक किंकर्तव्यविमूढ़ सा देखता रहा मैं उस महासाधक की ओर आश्चर्यचकित भाव से। फिर एक झटके से उठा मैं और उस महातंत्र साधक के गले लगते हुए बोला शशिकान्त....तुम...?

हाँ! वह शशिकान्त ही था पूर्वजन्म का मेरा साधक मित्र। फफक फफक कर रोते रहे न जाने कब के बिछड़े हम दोनों मित्र। क्यों मुझे सुनायी थी कथा कपिला आनन्द ने अब मेरी समझ में आ गया था उसका कारण।

अतीत में प्रवेश- सन् 1753 ई0। काशी में एक संस्कृत पाठशाला थी। मेरे साथ शशिकान्त भी पढ़ता था उस पाठशाला में। मैं सोलह वर्ष का था और शशिकान्त था अठ्ठारह–उन्नीस वर्ष का। मेरा नाम था शशिभूषण। हम दोनों ब्राह्मण कुल से थे। दोनों के नाम का प्रारम्भ भी शशि शब्द से था संभवतः इसी सबके कारण हम लोग सहपाठी तो थे ही प्रगाढ़ मित्रता भी थी हम दोनों में। शशिकान्त मुझसे भी अधिक गोरा और सुगठित शरीर का था। सुन्दर और आकर्षक तो था ही, गम्भीर स्वभाव का था और कम बोलता था वह। अधिक से अधिक अध्ययन करना चाहता था। प्रायः एकान्तवासी था। संसार की किसी भी वस्तु के प्रति आकर्षण और मोह नहीं था उसमें। बिलकुल तड़के उठना, नित्यक्रिया से निवृत्त होकर गंगा स्नान करना और फिर घण्टों पूजा–पाठ, जप आदि करना और फिर पढ़ने के लिए पाठशाला जाना, नित्य का नियम था शशिकान्त का। एक बार भोजन करना और अधिक रात तक पढ़ना भी उसके नित्य के नियम में था संलग्न। समय मिलने पर अपने आप में लीन घंटों गाल पर हाथ धरे बैठा रहता था वह विचारमग्न और जब कभी मैं उससे इसका कारण पूछता तो, टाल जाता। बहुत जोर देने पर

उल्टे मुझसे प्रश्न कर बैठता वह, बताओ बन्धु मैं क्यों और किसलिए पैदा हुआ ? क्या कारण था ? यह जीवन क्या है एक दिन शरीर भी छूट जायेगा फिर कहाँ जाऊँगा मैं ?

भला मैं क्या उत्तर देता शशिकान्त के इन दार्शनिक प्रश्नों का। मौन साध लेता मैं। इसके अलावा कर ही क्या सकता था। हम दोनों छात्रावास में रहते थे और संन्यासी छत्र में करते थे भोजन। उन दिनों एक संन्यासी से न जाने कैसे परिचय हो गया शशिकान्त का। उस संन्यासी का नाम था परमेश्वरानन्द। परमेश्वरानन्द प्रौढ़वय का था लेकिन उसका व्यक्तित्व आकर्षक था। वह योगाभ्यास करता था। उसका कहना था कि उसे कई योग सिद्धियाँ प्राप्त हैं। सम्भवतः योग और उसकी सिद्धियों के कारण ही संन्यासी परमेश्वरानन्द की ओर आकर्षित हुआ होगा शशिकान्त, इसमें सन्देह नहीं। अब वह प्रायः उस संन्यासी के साथ देखा जाता था। कभी–कभी दोनों गंगा किनारे घंटों बैठकर न जाने किस विषय पर बातें करते रहते थे। सम्भवतः योग का ही रहता होगा विषय। धीरे–धीरे इस प्रकार दो वर्ष का समय व्यतीत हो गया। इस अवधि में शशिकान्त अधिक गम्भीर और अधिक एकान्त प्रेमी हो गया था। सुनने में आया कि योगाभ्यास भी करने लगा है वह। कुछ दिनों बाद यह भी सुनने में आया कि संन्यासी परमेश्वरानन्द के साथ चित्रकूट चला गया वह। इस समाचार से बहुत बड़ा आघात लगा मुझे इतना घनिष्ठ मित्र शशिकान्त बिना मुझको कुछ बतलाए और बिना मुझसे मिले कैसे चला गया चित्रकूट ? क्रोध, आश्चर्य और कौतूहल के मिले–जुले भाव से भर गया मेरा मन। रहा न गया शशिकान्त की खोज में चित्रकूट गया वहाँ के सारे मठ, मंदिर और धर्मशालाओं का चक्कर लगाया लेकिन शशिकान्त को न मिलना था और न तो मिला मुझे। हार थक कर वापस आ गया मैं काशी। धीरे–धीरे भूल गया मैं शशिकान्त को। उसके बाद कई बार मेरी मृत्यु हुई और कई बार जन्म लिया मैंने जिनकी स्मृति कथा शायद मेरी मस्तिष्क कोशिकाओं में सुरक्षित हो लेकिन मुझे स्मरण नहीं है। अतीत के दीर्घ अन्तराल के बाद इस प्रकार और इस रूप में शशिकान्त से मेरी भेंट होगी इसकी कल्पना मैं ही नहीं अन्य लोग भी कभी नहीं कर सकते। यदि महातंत्र साधक के रूप में

शशिकान्त अपने योगबल से अपने से संबंधित जन्म की स्मृति को जागृत न करता तो निश्चय ही मेरी इस पुस्तक का यह प्रसंग कुछ दूसरा ही होता।

संन्यासी परमेश्वरानन्द- फलाहार करने के बाद शशिकान्त ने कहना शुरू किया–उस समय मेरी मानसिक स्थिति विचित्र थी–स्वामी परमेश्वरानन्द एक उच्चकोटि के योगी थे, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। उन दिनों स्वामीजी योग्य शिष्य की खोज में भटकते हुए काशी आये हुए थे। परम निर्वाण को उपलब्ध होने के लिए योग्य और संस्कार सम्पन्न शिष्य की आवश्यकता थी उन्हें।

परम निर्वाण से शिष्य का क्या संबंध है ? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में शशिकान्त ने बतलाया कि शाक्त परम्परा के योगी थे परमेश्वरानन्द। शाक्त परम्परा का अन्तिम लक्ष्य है–परम निर्वाण और उस परमपद को उपलब्ध होने में सबसे बड़ी बाधक हैं योग सिद्धियाँ और एकमात्र यही कारण है कि उस परमपद को प्राप्त करने के लिए योगीगण जन्म जन्मान्तर की कठिन साधनाओं से उपलब्ध मूल्यवान, महत्वपूर्ण और दुर्लभ मानवेतर सिद्धियों को योग्य और संस्कार सम्पन्न शिष्य में स्थान्तरित कर देते हैं और मुक्त हो जाते हैं उन सिद्धियों से वे। मुझे देखकर मन ही मन प्रसन्न हो उठे थे संन्यासी परमेश्वरानन्द। थोड़ा रूककर आगे कहना शुरू किया शशिकान्त ने–उनकी दृष्टि में योग्य और संस्कार सम्पन्न था मैं। संन्यासी महाशय योगी और तांत्रिक दोनों थे लेकिन मुझ पर उन्होंने योग अथवा तंत्र की शक्तियों का कोई प्रयोग नहीं किया। सहज ही आकृष्ट हो गया मैं उस महात्मा की ओर। हाँ! दो–तीन बार काशी में उनकी योगतांत्रिक सिद्धियों का चमत्कार अवश्य देखा था मैंने और वह भी प्रसंगवश।

वह चमत्कार क्या था ? सहज ही उत्सुक हो उठा मैं। पूछना स्वाभाविक भी था। एक बार प्रसंगवश महात्मा ने कहा– योगी, साधकों को कहीं आना जाना नहीं पड़ता। वे एक स्थान पर बैठे ही बैठे करतलवत् कहीं का भी दृश्य देख लेते हैं। दूर या समीप कहीं की भी यात्रा कर सकने में समर्थ होते हैं। इतना ही नहीं ब्रह्माण्ड में कहीं भी आ जा सकने का सामर्थ्य रखते हैं अपने आप में। इस पर न जाने क्यों

और कैसे पूछ बैठा मैं– क्या, आपमें यह शक्ति सामर्थ्य है ? मेरी बात सुनकर महात्मा हँस पड़े फिर बोले हाँ है। क्या तुम जानना चाहते हो? हाँ! सिर हिलाकर मैंने कहा।

हम लोग उस समय गंगातट पर बैठे हुए थे। सायंकाल का समय था और वातावरण में शान्ति थी महात्मा ने एक बार मेरी ओर देखा और धीरे से मेरे सिर पर अपना हाथ रख दिया।

तंत्र-योग का अद्भुत चमत्कार- क्षणमात्र में मेरी [redacted] और अपने आप में शून्य का अनुभव करने लगा मैं। निश्चय ही अपने अन्तःकरण में प्रविष्ट हो गया था इसमें सन्देह नहीं और उसी अगम्य अवस्था में मैंने देखा अपने सामने सम्पूर्ण पृथ्वी को घूमते हुए अपने स्थान पर। बड़ा ही दुर्लभ और अलौकिक दृश्य था वह, इसमें सन्देह नहीं। अब मैं संन्यासी परमेश्वरानन्द को बाबा कहकर सम्बोधित करने लगा था। इस सम्बोधन से वे प्रसन्न दिखलायी दिए मुझे। सावन का महीना था। रक्षाबंधन समीप था। घर की याद आ रही थी मुझे। साथ ही छोटी बहन से राखी बंधवाने के लिए भी उद्वेलित था मन। क्या करूँ, क्या न करूँ ? समझ में नहीं आ रहा था। गंगा किनारे सीढ़ियों पर बैठकर गाल पर हाथ धरे सोच रहा था मैं और तभी मुस्कराते हुए बाबा आ गये वहाँ। मेरे बगल में बैठ गये वह। शायद मेरी मानसिक स्थिति समझ गये थे बाबा मुस्कराते हुए ही मीठे स्वर में बोले–गांव जाना चाहते हो ? राखी का पर्व है.....।

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

बाबा मेरी व्यथा को समझ रहे थे। बोले कुछ नहीं बस थोड़ा आगे बढ़कर मेरे सिर पर अपना हाथ रख दिया उन्होंने पहले की तरह। मेरी आँखे बन्द हो गयी अपने आप। अब मेरे मानस पटल पर मेरा पूरा गांव था। गाय, भैंसे चारा खा रही थी। बच्चे खेल रहे थे। गांव की औरतें पानी भर रही थीं कुएँ पर। अपना घर देखा मैंने। दालान में खाट पर पिताजी बैठे किसी व्यक्ति से बातें कर रहे थे। मेरी दोनों बहनें आँगन में घूम रही थी और मेरी माँ चौके में बैठी मेरे पसन्द का भोजन बना रही थी– चने की साग और बाजरे की मोटी–मोटी रोटी। धीरे–धीरे मेरी

आँखे खुल गयी। उस समय मुझे घोर आश्चर्य हुआ कि जब मैंने देखा अपने सामने केले के पत्ते पर रखी माँ के हाथ की बनायी हुई वही चने की सब्जी और गरम–गरम बाजरे की मोटी रोटी।

बाबा हँसकर बोले–लो खाओ माँ का बनाया भोजन। यही चाहते थे न तुम ? क्या बोलता भला और क्या उत्तर देता मैं मौन साधे खाने लगा मैं। सचमुच माँ के हाथों की बनी रोटी थी वह। समझने में देर न लगी मुझे। सब योग का चमत्कार था इसमें सन्देह नहीं। अपने योगबल से बाबा ने चौके से चार रोटियाँ मंगवा ली थी साग के साथ। वहां चार रोटियाँ कम पड़ गयी थी। आश्चर्य हुआ था माँ को। भला वे क्या जानती थी कि वे रोटियाँ योगबल से काशी पहुँच गयी थी उसके बेटे के पास और बेटे ने खाया भी है उनको। मुँह बाये सुन रहा था परमेश्वरानन्द के योग चमत्कार की कथा।

नाशहीन योगसृष्टि- शशिकान्त कहते गये इस प्रकार बाबा के कई अलौकिक चमत्कार को देखा मैंने। जिन पर सहज ही किसी को विश्वास नहीं हो सकता। काशी में बाबा कहाँ रहते थे यह मुझे अन्त तक ज्ञात न हो सका। जब भी वे मिलते तो गंगातट पर ही मिलते। वहाँ से उठने पर रास्ते में बातचीत करते हुए न जाने कहाँ गायब हो जाते वे और फिर भौचक्का सा इधर–उधर देखने लगता मैं। बड़ी विचित्र माया थी उनकी।

बाबा के व्यक्तित्व से तो पहले ही प्रभावित था मैं और उनके चमत्कारों को देखकर अब अविभूत हो उठी थी मेरी आत्मा। सम्भवतः उसी के कारण अपने घर, परिवार, इष्टमित्र और अपनी पढ़ाई लिखाई आदि सब भूल चुका था एक प्रकार से मैं। केवल बाबा का एकमात्र अस्तित्व था मेरे लिए। क्या बाबा ने मुझ पर कोई तांत्रिक प्रयोग किया था ? नहीं, ऐसा कुछ नहीं था। पूर्णरूप से निरपेक्ष, उदासीन और स्थितप्रज्ञ थे बाबा इसमें सन्देह नहीं। मुझ पर उस सिद्ध महात्मा की अनुकम्पा क्यों थी ? इसका कारण पहले ही बतला चुका हूँ मैं। मेरे पिताजी पर थोड़ा कर्ज हो गया था। दो बीघा जमीन गिरवी रखकर मेरी बहन का विवाह किया था उन्होंने। चार साल का समय हो गया था अभी तक

खेत छुड़ाया नहीं था उन्होंने। सूद ब्याज आदि मिलाकर लगभग सोलह असर्फी देने थे। कर्ज की चिन्ता में हमेशा डूबे रहते थे पिताजी। मुझे इस बात का जरा–सा भी पता नहीं था। एक दिन बाबा कपड़े की एक पोटली मुझे थमाते हुए बोले–इसे अपने पिताजी को दे दो गांव जाकर। रक्षाबन्धन के अवसर पर मुझे घर जाना ही था। पोटली में क्या था यह न बाबा ने मुझे बतलाया और न तो उसे खोलकर देखने की आज्ञा ही दी।

पोटली को चुपचाप रख लिया मैंने। तीन चार दिनों के बाद जब गांव गया तो वह पोटली पिताजी को थमा दी मैंने।

क्या है इस पोटली में ? मेरी ओर देखते हुए पिताजी ने पूछा।

आप स्वयं खोलकर देख लें–मैंने कहा। पोटली खोलकर देखा गया। आश्चर्यचकित और हतप्रभ हो गये हम पिता–पुत्र एकबारगी सोने के सोलह असर्फी थे और वह भी बिलकुल नये।

ये असर्फी कहां से लाये ? किसने दिया और क्यों दिया ? सच–सच बतलाओ।

क्या बोलता ? क्या उत्तर देता मैं ? मेरी भी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। निश्चय ही बाबा का चमत्कार था वह इसमें सन्देह नहीं।

हाथ में असर्फी को लिए उसे अपलक देखते रहे पिताजी मैं वहीं खड़ा था और तभी जमीन्दार का मुंशी आ गया हाथ में बहीखाता लिए यंत्रचालित सा। पिताजी ने उन असर्फी को थमा दिया मुंशीजी को और उसकी पक्की रशीद ले ली। यदि उस दिन असर्फी न दिया गया होता तो दो बीघा जमीन जमीन्दार का हो जाता इसमें सन्देह नहीं। मेरी आँखे छल–छला आयी। मन ही मन प्रणाम किया बाबा को कितने बड़े योगी थे बाबा ? उसे समझ पाना साधारण लोगों के वश की बात नहीं। अब तो बाबा का चरण रज हो गया था मैं।

एक–एक कर सारी बातें बतलायी मैंने बाबा की पिताजी को। सब कुछ सुन लेने के बाद द्रवित और विगलित हो उठे वह। माँ ने भी सुनी बाबा की चमत्कारी कथा। रहा न गया वृद्ध पति–पत्नी से। बाबा के दर्शन की लालसा से उद्वेलित हो उठे थे वे लोग। मेरे साथ आकर

दर्शन किया उन दोनों ने। बाबा का तेजस्वी मुखमण्डल, तपाये हुए सोने जैसा सुगठित देहयष्टि, झील जैसी गहरी स्याह आँखे जिनमें करूणा, दया, अनुकम्पा और कृपा का लहरा रहा था सागर। देवता स्वरूप बाबा को देखकर पिताजी की आँखों से झरझर कर गिरने लगे आँसू। गला अवरूद्ध हो गया था उनका। कुछ कहना चाहते थे लेकिन वाणी साथ नहीं दे रही थी। माँ की तो स्थिति और दयनीय थी। वे बाबा के दोनों चरणों को दोनों हाथों से थामकर हिलक–हिलक कर रो रही थी और बाबा के चरण भींगते जा रहे थे आँसुओं से। बड़ा ही करूण और मर्म को छूने वाला दृश्य था वह इसमें सन्देह नहीं।

उसी समय बाबा ने सिर घुमाकर मुझसे पूछा–क्या तू संन्यास ग्रहण करेगा ? अपने आप मेरे मुंह से निकल गया हाँ! फिर तो इसके लिए तुम्हे अपनी माँ से आज्ञा लेनी होगी। बिना माँ की आज्ञा के संन्यास सफल नहीं होता–बाबा ने कहा। माँ को जब यह बात मालूम हुई तो सहर्ष आज्ञा दे दी मुझे संन्यास ग्रहण करने के लिए। पिताजी ने कहा–बाबा की मुझ पर अत्यन्त कृपा है। मेरे छः पुत्र हैं। यदि एक पुत्र भी संन्यास ले लेगा तो इससे अधिक पुण्य क्या हो सकता है भला। परिवार में कोई एक व्यक्ति संन्यास ग्रहण कर लेता है तो वह परिवार तो देवऋण, पितऋण, कुलऋण और माता–पिता के ऋण से मुक्त होता ही है इसके अतिरिक्त पीछे की तीन पीढ़ियाँ भी मुक्त हो जाती हैं उन ऋणों से।

शशिकान्त थोड़ा उद्विग्न हो उठे थे। कुछ क्षण मौन रहने के पश्चात् भारी गले से आगे बोले– उसी समय माता–पिता के चरणों का स्पर्श कर संन्यास ग्रहण कर लिया मैंने। बाबा ने मुझे संन्यास दीक्षा देते हुए मेरा नया नाम रखा ताराचरण शाक्त। अब मैं शशिकान्त नहीं ताराचरण शाक्त था। संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् चल पड़ा मैं बाबा के साथ चित्रकूट की ओर। वहाँ कुछ दिन व्यतीत कर हिमालय की यात्रा पर निकल गया। वहाँ बाबा ने मुझे तंत्र योग साधना की गुह्य दीक्षा दी। पूरे दस वर्ष तक योग–तंत्र की कठोर साधना की बाबा के निर्देशन में और फिर एक दिन मानवेतर शक्तियों से सम्पन्न दुर्लभ योग तांत्रिक विपुल भण्डार मुझे दे दिया बाबा ने, यह कहते हुए कि अब तुम

इसके योग्य अधिकारी हो दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। फिर बाबा समाधिस्थ हो गये। निश्चय ही महापुरुष की अन्तिम समाधि थी फिर वापस नहीं लौटी उनकी आत्मा पार्थिव काया में।

बाबा की समाधि के बाद हिमालय में रह ही क्या गया था मेरे लिए। सिद्धियों का बोझ सिर पर उठाये चल पड़ा मैं। फिर पैर थमे नहीं, चलता रहा, चलता रहा और चलता ही रहा मैं और जब रूका तो वहाँ हमेशा–हमेशा के लिए ठहर ही गया मैं। एक ओर था घोर जंगल और दूसरी ओर था पहाड़ों का सिलसिला। दो नदियों का संगम भी था वहाँ बड़ा ही रमणीक और मनोहारी दृश्य था प्रकृति का। वातावरण में गहरी शान्ति थी जिसने मेरी आत्मा को छू लिया एकबारगी। मन को रमते देर न लगी। एक संन्यासी को प्राकृतिक शान्त वातावरण और एकान्त के अलावा भला और क्या चाहिए। पहाड़ों के भीतर कई गुफाएँ थी। उन्हीं में से एक गुफा में अपना निवास बना लिया मैंने। अपना इतना दीर्घ जीवनवृत्त सुनाकर समाधिस्थ हो गया वह महातंत्र साधक आश्चर्यचकित था मैं। सब कुछ सुनकर विह्वल हो उठी थी मेरी आत्मा उस समय। जन्म मरण रहित एक ही शरीर में रहकर पूरे तीन सौ पचास वर्ष पर्यन्त जीवन यात्रा करने वाला एक कालञ्जयी महातंत्र साधक कभी शशिभूषण के रूप में मेरा परम मित्र और निकटस्थ सहपाठी रहा होगा इस पर विश्वास करना और वह भी सहज रूप में कठिन था मेरे लिए यदि अवस्था विशेष में शशिभूषण के रूप में अपना जीवनवृत्त न देखा होता मैंने।

पूर्वजन्म की कथा– शशिभूषण के रूप में उस समय मेरी अवस्था पच्चीस वर्ष के लगभग थी। शशिकान्त का वियोग मेरे लिए असहनीय था इसलिए काशी से अपने गाँव चला गया मैं। गाँव में एक पाठशाला खोल दी और उसमें हिन्दी के साथ संस्कृत भी पढ़ाने लगा। अशान्त मन को थोड़ी शान्ति मिली।

पिताजी आध्यात्मिक प्रवृत्ति के धर्म परायण व्यक्ति थे। मैं इकलौता पुत्र था। वे मेरा विवाह कर देना चाहते थे। उनके अनुरोध को टाला न गया मुझसे यथा समय विवाह हो गया। पत्नी का नाम था राधा। बहुत

ही सुन्दर थी राधा एक ही दृष्टि में मन को मोह लेने वाला था उसका व्यक्तित्व। पतिपरायणा सिद्ध हुई राधा। आत्मा का स्पर्श कर गया उसका स्वभाव, अन्तरात्मा के तल पर उतर गया उसका अपनत्व उसका प्रेम, उसका पावन स्नेह और उसका निश्चल स्नेह, उसकी ममता भरी पुकार सुनकर मेरी आत्मा विह्वल हो उठी एकबारगी।

प्रथम रात्रि का प्रथम सामीप्य–मानो आगे बढ़ने का प्रथम सोपान सिद्ध हुआ। राधा का मेहंदी लगा गुलाब के फूल की तरह कोमल हाथ थामे सोपान दर सोपान आगे बढ़ता गया मैं। पीछे मुड़ने का नाम नहीं। गिरने का भय नहीं, ठोकर खाने का डर नहीं, रूकने का नाम नहीं, थकान का नाम नहीं और विराम का भी नाम नहीं। एक छोटा सा कमरा था हम दोनों का। एकमात्र यही इकलौता कमरा था, वहीं रसोई घर था, अध्ययन कक्ष था और था शयन कक्ष भी। लिखने पढ़ने की आदत तो बचपन से ही थी। भारत में अंग्रेजों के आ जाने से देश–विदेश के ज्ञान का अनुभव और डिग्री का महत्व तेजी से बढ़ रहा था। इसलिए पूरी रात लिखता–पढ़ता था मैं। सोना जैसे भूल ही गया था। कब सवेरा हो जाता था, पता ही न चलता मुझे। अपने आप में डूबा रहता जैसे। घासफूस जलाकर कटोरी में चाय बनाती राधा और बिना मांगे और बिना पूछे धीरे से रख जाती टेबल पर चाय वह। पता ही न चलता मुझे। कभीकदा अचानक ध्यान भंग होता तो अचकचा कर पूछ बैठता मैं–अभी तक जाग ही रही हो तुम सोयी नहीं? सहज स्वर में उत्तर देती राधा–आप रात–रात भर जागकर लिखे पढ़े और मैं आराम से रजाई ओढ़कर सोऊँ यह कैसे हो सकता है।

यह सुनकर मैं कहता–रात भर जागकर तपस्या करोगी और दिन भर गृहस्थी में पिसती रहोगी यह कैसे हो सकता है।

अच्छा चुप रहिए अपना काम करिए और फिर अपने काम में डूब जाता मैं आकण्ठ। एक दिन भावाविष्ट होकर राधा ने कहा–आप प्रसिद्ध विद्वान हैं, प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं ख्याति प्राप्त लेखक हैं और इन सबके अतिरिक्त ऊँचे पद वाले अंग्रेज अफसरों में आपका सम्मान है। इन सबके प्रति मेरा जन्मजात आकर्षण रहा है और सदैव अपने आप में एक

अभाव सा, एक अपूर्णता सी और सूनापन सा अनुभव करती रही हूँ। विवाह के पहले बराबर आपका साहित्य पढ़ा करती थी और पढ़कर सोचने लगती थी कैसा होगा वह पुरुष जिसने ऐसा सब कुछ लिखा है जो जीवन में और जीवन के मार्ग में उतर जाने वाली वस्तु है। फिर सोचने लगती कैसा होगा वह पुरुष ? कैसा होगा उसका व्यक्तित्व और कैसा होगा उसका जीवन और जब से मैंने आपको पा लिया है, तब से ऐसा लगता है कि अब अभाव रहा ही नहीं, वह रिक्तता रही ही नहीं और वह सूनापन रहा ही नहीं। अपने पूर्णत्व को उपलब्ध हो गयी हूँ मैं विश्वास करिए आप। यह स्नेह और यह मोह और कुछ नहीं है उच्छ्वास है मेरी अन्तरात्मा का। मुझे सदैव यही इच्छा होती है कि आपको क्या दूँ मैं ? कैसे अपने सम्पूर्ण हृदय को आपके हृदय में उतार दूँ ? कैसे आप में लीन हो जाऊँ ? क्या करूँ मैं?

मैंने धीरे से कहा—सह नहीं पा रहा हूँ मैं तुम्हारे शब्दों को और फिर आँखे डबडबा आयी। हट गया पत्नी के सामने से।

रात्रि में भोजन परोसते समय पत्नी ने तन्मय होकर कहा—मेरी बात सुनने के बाद अचानक आप उठकर चले क्यों गये थे ? मुझे होश ही नहीं रहा था। यदि कुछ अनुचित कह दिया हो तो क्षमा करना मुझे। आपके मन की बात कैसे जान सकती हूँ मैं। कभी कुछ कहा ही नहीं आपने परमेश्वर जाने। 'इधर देखो, स्नेह भरे स्वर में मैंने पत्नी से कहा—क्या मन का सभी कुछ कहने योग्य होता है ? क्या बिना कहे नहीं कह दिया जाता है सब ? तुम मुझे पत्थर समझती हो क्या ? पत्नी ने एक बार सजल नयनों से मेरी ओर देखकर पलकें गिरा ली।

मैं मोह से बोला—मुझे ऐसा लगा है कि जीवन ऋण है एक प्रकार का और सदा यही अनुभूति होती है मुझे कि अपने पूर्वजों का अपने समाज का और अपने परिवार की ऋणी हूँ मैं। तुम्हारे सम्पर्क में आत्म सुख पाया मैंने और जीवन का अर्थ समझा। तुम्हारा भी ऋण है मुझ पर। तुमने मुझे क्या नहीं दिया ? स्नेह दिया, प्रेम दिया और करूणा दी अपनी, तुम्हारा कितना भारी ऋण है मुझ पर। क्या करके उऋण हो पाऊँगा मैं। सोच भी नहीं पाता। कितना क्षुद्र हूँ और कितना तुच्छ हूँ मैं तुम्हारे आगे। पत्नी ने भरे गले से कहा—आपको कौन क्षुद्र कहेगा?

और कौन कहेगा आपको तुच्छ ? क्षुद्र और तुच्छ मैं स्वयं हूँ बीस वर्ष की अवस्था में पत्नी बनकर आयी थी आपके जीवन में मैं। उसके पहले अन्धेरे को ही प्रकाश समझती थी। आपने अपने स्पर्श मात्र से ही मेरी आँखे खोल दी। पर यह न समझ पायी कभी कि आपके मन में मेरे लिए क्या है ? करूणा है, दया है, कृपा है, प्रेम है, स्नेह है, मेरे इस टूटे और भटके हुए व्यक्तित्व पर या घृणा है—जिसे प्रकट नहीं होने देते आप।

ऐसी बात मत कहो राधा, मैंने शान्त भाव से कहा—घृणा करूँगा मैं तुमसे ? छिः इतना नीच हूँ मैं क्या ? इतना मैं गिरा हुआ हूँ क्या ? करूणा दया, कृपा आदि की बात गलत है। परमेश्वर ने तुम्हे सब कुछ दिया है। सब ओर से भरी पूरी हो तुम। करूणा और दया के पात्र तो असहाय होते हैं। मैं तो तुम्हे श्रद्धा का पात्र मानता आया हूँ। तुम्हारा व्यवहार, तुम्हारी वाणी, तुम्हारा रूप, तुम्हारा नारीत्व और मातृत्व—सभी को श्रद्धा की दृष्टि से देखता आया हूँ मैं विश्वास करो। सच कहता हूँ मैं बिल्कुल सच।

राधा की आँखों में पानी भर आया उन्हीं पानी में डूबी आँखों से मेरी धुधली होती मुखाकृति को निहारती हुई कहने लगी राधा इतना अन्याय मत करो मेरे साथ। मुझे आपकी श्रद्धा नहीं चाहिए। छाती पर इतना बोझ मत लादो कि मैं दबकर मर ही जाऊँ। श्रद्धा के योग्य बिलकुल नहीं हूँ मैं। श्रद्धा मत करिये हाथ जोड़ती हूँ। थोड़ा रूककर आंचल से आँसू पोछते हुए राधा ने आगे कहा—जिसके लिए आज तक तरसती रही वह न होगा। मेरी प्यास अब कभी नहीं बुझेगी। आप कितने निर्दयी और स्वार्थी होंगे यह मैं जानती थी। 'तुम मुझसे क्या चाहती हो राधा ? कुछ कहो तो सही।

राधा की आँखों में फिर पानी भर आया बोला न गया उससे। तुम मुझसे क्या चाहती हो राधा ? कुछ कहो भी तो सही। द्रवित होकर फिर कहा मैंने। राधा ने कांपते स्वर में कहा—एक बार भी आपके मुख से न निकला कि राधा, मैं तुमसे स्नेह करता हूँ, तुमसे प्रेम करता हूँ। कहते कैसे मैं इस योग्य हूँ ही नहीं कि आपका स्नेह और प्रेम पा सकूँ।

कभी का छोटा सा पाठशाला अब कॉलेज बन चुका था। अंग्रेजों का प्रभाव चारो ओर द्रुतगति से फैल रहा था। साथ ही साथ अंग्रेजी

भाषा का भी हो रहा था प्रचार और प्रसार। एक अंग्रेज मेरा शुभचिन्तक बन गया था, सम्भवतः मेरे व्यक्तित्व से प्रभावित होकर। उसी की कृपा का फल था मेरा कॉलेज। इसलिए मेरा कर्तव्य और उत्तरदायित्व बढ़ गया था। इसके अतिरिक्त अध्ययन और चिन्तन–मनन में डूबा रहकर एक प्रकार से अन्तर्मुखी बन गया था मैं। जिसका अर्थ उल्टा ही लगा लिया था राधा ने।

चुपचाप बैठा रहा और अपलक निहारता रहा मौन साधे राधा का चेहरा। न जाने क्यों झर–झर कर गिरने लगे आँसू आँखों से। मेरे निकट सरक आयी राधा। ममता भरे स्वर में बोली–रो क्यों रहे हैं आप ? मैं नहीं बोला। चुपचाप पूर्ववत् राधा का चेहरा निहारता रहा।

शायद राधा का दिल कांप उठा मेरे आँसुओं को देखकर। अपने हाथों से उन आँसुओं को पोछती हुई कहने लगी–मोह में डूबकर रोइये मत मेरा कलेजा फटा जा रहा है चुप हो जाइये।

मैंने राधा की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा–भरे गले से राधा तुम मेरी.....राधा ने मेरे मुँह पर हथेली रख दी और रोकर बोली–कुछ मत कहो, अब कुछ मत कहो मगर मैंने नहीं माना। बोला–प्रेम करना अति कठिन काम है। प्रेम को लोग साधारण काम समझते हैं। बहुत ही सरल और समझते हैं सहज व्यापार और लोगों को प्रेम हो भी जाता है अति सरलता से और टूट भी जाता है वह अति सरलता से। मेरा कहना है कि प्रेम करना सहज नहीं। प्रेम निभाना भी सरल नहीं। विरले ही प्रेम निभाना जानते हैं और निभा पाते भी हैं। उन्हें प्रेम करना भी आता है और आता हैं निभाना भी। कोई प्रदर्शन नहीं है वहाँ विश्वास करो। तुम्हारे प्रेम का, तुम्हारे स्नेह का और तुम्हारी ममता भरी पुकार का तिरस्कार करने का सामर्थ्य नहीं है मुझमें राधा। तुम्हारा सम्पूर्ण अस्तित्व मेरी आत्मा के इतने निकट है कि विगलित हो उठता हूँ मैं कभी–कभी एकबारगी। तुम मेरे जीवन की मरुभूमि के बीच कल–कल बहती निर्झरिणी के समान हो। तुमसे मेरे जीवन को एक बहुत भारी सहारा मिला, विश्वास मिला, स्नेह मिला और मिली ममता। जब रात में शान्त क्लान्त होकर लेटता हूँ और तुम आकर मेरे सिरहाने खड़ी होती हो और नीचे झुककर मोह से कहती हो– बहुत थक गये हैं लाइये पैर दबा दूँ।

कितना काम करते हैं। कॉलेज में कितना बोलते हैं और रात में कितनी देर तक लिखते पढ़ते हैं। इतना श्रम मत किया करिए आप ? देखकर मेरा कलेजा फटता है लाइये पैर दबा दूँ।

जानती हो तुम यह सब देखकर और सुनकर भावाविष्ट हो उठता हूँ मैं और मन ही मन कहता हूँ–तुम आ गयी हो तो जीवन का सारा दुख, सारी पीड़ा और सारी थकान भूल गया हूँ। कितना सन्तुष्ट हूँ मैं। कितना सुखी हूँ मैं, कितना आनन्दित हूँ मैं। कितना प्रसन्न हूँ मैं, तुम्हारें, सान्निध्य में बतला नहीं सकता।

यह सुनकर मेरी गोद में अपना सिर रखकर सिसकने लगी राधा एकबारगी और सिसकते हुए बस इतना ही बोल पायी कितने अन्तर्मुखी हैं आप ? अब तक समझ न पायी थी मैं आपको सचमुच।

अपने आप में व्यस्त रहा मैं जीवन भर और राधा भी व्यस्त रही अपने गृहस्थ जीवन में। माता–पिता कभी के चल बसे थे इसलिए गृहस्थी का और बाल बच्चों का सारा भार था राधा पर। कब सोती थी? कब जागती थी और कब क्या करती थी ? स्वयं मैं भी नहीं जानता था। कई–कई व्रत–उपवास रखती थी। न जाने कितना पूजा–पाठ करती थी। गंगा स्नान और विभिन्न देवी–देवताओं के दर्शन की मात्रा कम न थी। कभीकदा राधा का अति देखकर मैं टोकता तो गम्भीर स्वर में कहती राधा पूजा–पाठ और धर्म–कर्म एवं पुण्य के कामों में बाधा नहीं डालनी चाहिए और फिर ये सब कुछ तो आपके लिए ही कर ही हूँ मैं। चुप हो जाता यह सुनकर मैं। मुझे एक मास के लिए कलकत्ता जाना पड़ा। लौटकर आया तो देखा राधा सूखकर कांटा हो गयी थी। कंचनकाया काली पड़ गयी थी। न जाने कौन सा ग्रहण लग गया था उसके रूप और सौन्दर्य पर ? आयु ही कितनी थी उसकी बस यही चालीस साल।''

आते ही राधा से सटकर बैठ गया मैं चारपायी पर। कमजोर काफी हो गयी थी। उसके होंठ उस समय थर्रा रहे थे जैसे कुछ कहना चाहती हो वह। उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में ले लिया मैंने। उसके हाथ हिम की तरह शीतल लगे मुझे। मेरी ओर अपलक निहार

रही थी वह उस समय। भावविभूत हो उठी मेरी आत्मा अन्त में रहा न गया। झर–झर कर गिरने लगे आँसू। कण्ठ जैसे अवरूद्ध हो गया मेरा। विह्वल हो उठी मेरी आत्मा।

राधा एक सम्पूर्ण नारी थी इसमें सन्देह नहीं। मादक सौन्दर्य और उन्मादक यौवन से भरपूर अभी भी। ऐसी कि देखकर एक बार किसी का भी पौरूष अभिभूत हो जाय। मीठी हँसी, मीठी वाणी, मीठा स्वभाव और मीठा–मीठा सा व्यक्तित्व।

अवरूद्ध स्वर में राधा के दोनों शीतल हाथों को थामकर बोला–मुझे अकेला छोड़कर क्यों और कहाँ जा रही हो राधा? मेरी इतनी लम्बी जिन्दगी कैसे कटेगी एकाकी। जीवन का सारा बोझ और सारा भार छाती पर लादकर मृत्यु तक कैसे सफर पूरा करूँगा। मैं एक अभिशप्त प्राणी था। तुमने मुझे दिया स्नेह, दिया करूणा और दिया अपनत्व। फिर मुझे कहाँ मिलेगी ये सारी वस्तुएँ? थोड़ा रूकी आँसू पोछे और फिर भावाविष्ट होकर भर्राये स्वर में कहने लगा–मेरी मरुभूमि जिन्दगी में तुम स्वाती की बूँद बनकर आयी हो। तुमको पाकर तुम्हारे सान्निध्य को पाकर और तुम्हारी ममताभरी पुकार सुनकर जिन्दगी की सारी थकान, सारा दुख और सारा कष्ट भूल गया था मैं। कितना सुखी था, कितना प्रसन्न था और कितना था आनन्दित....।" तुम मेरा साथ मत छोड़ो राधा, मत छोड़ो। क्यों फिर से बनाना चाहती हो तुम मेरी जिन्दगी को मरूभूमि?

होंठ थर–थरा रहे थे राधा के उस समय। शायद कुछ बोलना चाहती थी और कुछ कहना चाहती थी वह। धीरे से बन्द आँखे खोली उसने और फिर बड़े कष्ट से धीमे स्वर में धीरे–धीरे रूक–रूककर कहने लगी वह–तुम मेरे देवता हो, तुम मेरे आराध्य हो, मेरा तन–मन आत्मा सभी कुछ तुम ही हो। रो क्यों रहे हो? इतने कातर, इतने विह्वल और इतने व्यथित क्यों हो रहे हो तुम? केवल शरीर ही तो छोड़ रही हूँ मैं। मेरी आत्मा तो हमेशा–हमेशा रहेगी तुम्हारे पास। मैं पुनर्जन्म पर पूरा विश्वास रखती हूँ। इस जन्म में न सही लेकिन अगले जन्म में कभी न कभी और किसी न किसी रूप में अवश्य मिलूँगी तुमसे मैं। यह तो निश्चित है प्रतीक्षा करना मेरी अवश्य। करोगे न मेरी प्रतीक्षा भूलना मत मुझे। अपने आँसुओं को रोक न सका मैं। झर–झर कर फिर

गिरने लगे वह। गला भर आया था मेरा। चाहकर के भी कुछ बोला और कुछ कहा नहीं जा रहा था मुझसे।

अब जोर–जोर से सांस ले रही थी राधा। मैं और करीब चला गया और तेजहीन हो रहे उसके पीले चेहरे को दोनों हाथों से थाम कर किसी प्रकार भर्राये स्वर में मैंने कहा–कैसे यह जानूँगा ? कैसे समझूँगा और कैसे विश्वास होगा कि तुम्ही मेरे पिछले जन्म की राधा हो, प्रेयसी, प्रेमिका और पत्नी हो ? बतलाओ राधा बतलाओ।

आँखे झपकने लगी थी और गला भी सूखने लगा था अब राधा का। निश्चय ही राधा के जीवन का अन्तिम क्षण आ गया था किन्तु फिर भी उसका मनोबल अभी भी पूर्ववत् बना रहा। बन्द हो गयी आँखे। फिर धीरे–धीरे खुली। स्याह होती जा रही थी आँखे और उसी के साथ बुझते जा रहे थे जीवन के लक्षण भी। फिर बड़े ही कष्ट से डूबते हुए स्वर में राधा बोली–जीवन पथ पर जब चलते–चलते थक जाओगे और थककर जीवन की उस सीमा पर पहुँच जाओगे–जहाँ पहुँचकर थका हारा मनुष्य अपने आपको आश्रयहीन, असहाय और एकाकी का करने लगता है अनुभव और जब शून्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रह जाता है उसके थके हारे जीवन में तभी आऊँगी मैं संजीवनी बनकर तुम्हारे जीवन में। मुझे समझने और पहचानने में देर न लगेगी तुमको। जो होना था वही हुआ।

सांस लेने में तकलीफ होने लगी थी राधा को। अधिकतर समय मेरा व्यतीत होता था राधा के समीप ही। उससे अलग नहीं होना चाहता था मैं। उस दिन सांझ के समय हल्की बारिश हो रही थी वातावरण में निस्तब्धता बिखरी हुई थी। मैं चारपायी पर राधा के निकट गालों पर हाथ धरे बैठा हुआ था चुपचाप। उसने सिर घुमाकर मेरी ओर देखा और बोली–अब मैं बिलकुल थक गयी हूँ राधा के स्वर में कम्पन था और साथ ही उदासीनता का भाव भी। थोड़ा रूककर आगे बोलने लगी–आप अब बतलाइये मेरी मंजिल कहाँ है ?

राधा का सिर सहलाते हुए गम्भीर स्वर में मैंने कहा– मंजिल कहीं नहीं है। मंजिल तो एकमात्र मृत्यु ही होती है बस। चलते ही रहना है। जीवन क्या है एक लम्बी यात्रा। यात्रा में न जाने क्या–क्या देखने को मिलता है और एक पड़ाव के बाद दूसरा पड़ाव आता जाता है। पिछला

सब कुछ छूटता जाता है और नया जुड़ता जाता है। पिछले को याद करना मूर्खता है। नये की चिन्ता करना भूल है, गति है। गति यदि रूक जाय तो कितना कष्ट होता है फिर। जीवन की एकरसता से बढ़कर कोई दुखदायी वस्तु और भला क्या हो सकती है। मेरी बातों को बड़े ध्यान से सुन रही थी राधा। उसके बाद अपनी आँखें बन्दकर ली उसने और आँखें बन्द किये हुए ही धीरे से बोली वह–मेरी अन्तिम मंजिल आ गयी है। मेरी यात्रा पूरी हो चुकी है। अब उसकी बन्द आँखों से आँसू गिरने लगे थे। मैं एकबारगी स्तब्ध रह गया उसकी वाणी सुनकर। मेरे भीतर कुछ हिल–सा गया। राधा के दोनों कन्धों को पकड़कर मैंने अवरूद्ध स्वर में कहा–क्या कहती हो तुम ? मुझे अकेला अनाथ और आश्रयहीन करके कहाँ जाओगी तुम ? बोलो राधा बोलो ? कुछ कहो ? तुम्हारे बिना कैसे रहूँगा मैं इस संसार में ? मेरा तो सब कुछ तुम्ही हो तन भी, मन भी, प्राण भी और आत्मा भी। इस संसार के घनघोर जंगल में अकेला भटकने के लिए मुझे मत छोड़कर जाओ राधा। गला भर आया मेरा, फिर आगे बोला न गया मुझसे कुछ। केवल अपलक निहारता रहा राधा के निस्तेज हो रहे चेहरे की ओर काफी देर तक। फिर उसके गालों पर ढुलक आये आँसुओं को पोछा मैंने अपनी उँगलियों से। मेरा स्पर्श पाकर जैसे चैतन्य हो उठी राधा। धीरे–धीरे आँखे खोली उसने और फिर एक बार स्थिर दृष्टि से देखा मेरी ओर। क्या था उस दृष्टि में समझ न सका मैं। किसी प्रकार उसके स्याह होंठ खुले और अस्फुट वाणी में धीरे–धीरे से बोली–साथ....छोड़ रही हूँ...? आपका सदैव रहेगी मेरी आत्मा आपके....साथ....अपना खयाल रखियेगा। राधा के ये अंतिम शब्द थे जीवन के अन्तिम क्षणों के। हमेशा–हमेशा के लिए बन्द हो गयी उसकी निस्तेज आँखे और हमेशा–हमेशा के लिए बन्द हो गयी उसकी वाणी भी और शान्त हो गयी हमेशा–हमेशा के लिए उसकी जर–जर काया भी।

राधा के स्याह हो गये चेहरे की ओर अपलक न जाने कबतक निहारता रहा मैं और न जाने कबतक भींगता रहा मेरे आँसुओं से उसका भावहीन चेहरा। पूरे पचास वर्ष की जीवनकथा के सारे पृष्ठ फड़–फड़ा रहे थे वहाँ।

चिता की लाल–पीली लपटों में राधा की निर्जीव प्राणहीन काया जलकर मुट्ठी भर राख में बदल गयी और वह मुट्ठी भर राख बिखर गयी मेरे पूरे जीवन में और उसी के साथ श्मशान की सारी उदासी और सारी नीरवता भी भर गयी पूरे जीवन में। शून्य के सिवाय जैसे कुछ रह ही न गया अपने आपमें। भरा पूरा परिवार होते हुए भी अकेला आश्रयहीन और अनाथ हो गया था मैं। अपने आपको एक प्रकार से निष्प्राण शव समझने लग गया था मैं। अपने अन्तिम समय में क्या दे गयी थी मुझे राधा, सिवाय रोने के और कुछ नहीं। बहुत समझाता और बहुत संभालता अपने आपको, अपने मन को लेकिन फिर भी झरझर कर गिरने ही लगते आँसू राधा की याद में।

भले ही बाद के जीवन से अपरिचित हूँ लेकिन शशिभूषण के रूप में जो जीवन जीया था मैंने वह कभी भी भुलाया न जा सकेगा मुझसे। कभी नहीं, कभी नहीं।

जब मैंने अपनी यह करुण कथा शशिकान्त को सुनायी तो एकबारगी द्रवित हो उठे वह। करूणा से भर उठा उनका हृदय और विह्वल हो उठी उनकी आत्मा। अपने आसन से थोड़ा उठकर मेरा दोनों हाथ थाम लिया उन्होंने और उसी भाव विह्वलता की अवस्था में विगलित स्वर कहा– एक ही स्वर में रहकर और एक ही जीवन जी कर गुरु कृपा से शशिकान्त से ताराचरण शाक्त बना और बनकर जिस परम ज्ञान की अनुभूतियाँ हुई मुझे जो तुम्हारी आत्मा को उपलब्ध हो चुकी है। ऐं क्या कहा आपने ? समझ में नहीं आया। यह सुनकर आश्चर्यचकित और जिज्ञासु हो उठा मैं।

वह महातंत्र साधक एक बार हो–होकर हँसा और फिर सहज स्वर में बोला–मेरे और तुम्हारे में बस यही अन्तर है कि मैं जन्म–मरण से मुक्त रहा तब से लेकर अबतक लेकिन तुम बंधे रहे दोनों के बन्धनों से। ज्ञान को कर्म में और कर्म को ज्ञान में आयत्त करने की जो कला है उसी का नाम साधना है और साधना एक–दो जन्म में पूरी नहीं होती। उसे पूर्ण होने में पूरे सोलह जन्म लगते हैं। इस दीर्घकाल में तुमने पन्द्रह बार जन्म लिया है। ज्ञान के सोलह सोपान हैं। अन्तिम सोपान परमज्ञान है। प्रत्येक जन्म में एक–एक कलश भरा है ज्ञान का तुम्हारी

आत्मा ने। यह तुम्हारा पन्द्रहवाँ जन्म है। इस जन्म में जितना जो कुछ तुम्हारी आत्मा को ज्ञानानुभव होगा उसे ज्ञान की चरमसीमा समझी जायेगी। तुम इस जन्म में क्यों व्याकुल हो ? उसे भलीभांति समझता हूँ मैं। अबतक के उपलब्ध ज्ञान को तुम्हारी आत्मा संसार के समक्ष किसी न किसी रूप में प्रकट कर देना चाहती है लेकिन पूर्ण रूप से ऐसा सम्भव नहीं है। शरीर की सीमा में बंधे रहकर तुम जितना कर सकोगे इस दिशा में वही पर्याप्त है संसार के लिए। थोड़ा रूककर उस महासाधक ने आगे कहा–अभी तुम्हारा एक जन्म शेष है। अगला जन्म सोलहवाँ जन्म होगा और उस जन्म में भर लेगी तुम्हारी आत्मा ज्ञान के अन्तिम कलश को। अध्यात्म भूमि में ज्ञान के इसी सोलह सोपानों को षोडशी विद्या की संज्ञा दी गयी है। षोडशी विद्या ही महाविद्या अथवा महामाया है। उसे उपलब्ध हो जाने पर जन्म–मरण से सदैव के लिए मुक्त हो जाती है आत्मा और स्वतंत्र अनुभव करने लगती है वह अपने आपको।

मातृअंक की उपलब्धि– यह सब सुनकर स्तब्ध और अवाक् रह गया। एक कालञ्जयी महात्मा के मुख से अपने लिए निकली वाणी पर सहज ही विश्वास करना पड़ा मुझे। इसलिए कि उसने मेरी अन्तरात्मा का कर लिया था स्पर्श। भाव विह्वल होकर अपलक निहारने लगा मैं उस उच्चकोटि के तंत्र साधक के दीप्त और तेजोमय मुखमण्डल की ओर। महासमाधि में धीरे–धीरे प्रवेश कर रही थी उस महासाधक की महान आत्मा उस समय। उस छोटी सी बर्फीली गुफा में गहन शून्यता का हो रहा था विचित्र अनुभव। कुछ क्षण बाद हल्के गुलाबी रंग के प्रकाश से भर उठा गुफा का वातावरण।

महासाधक के समीप बैठी हुई थी ध्यानस्थ कपिला आनन्द। उनके चेहरे पर भी एक विशेष प्रकार की अलौकिक आभा बिखरी हुई थी उस समय।

मैं हतप्रभ था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कुछ और तभी मेरी दृष्टि घूम गयी बायीं ओर देखा वहाँ एक महात्मा शान्त मुद्रा में खड़े थे। वे महात्मा और कोई नहीं संत पूर्णागिरि थे जिन्होंने अपनी दुर्लभ सिद्धि द्वारा ताराचरण शाक्त का किया था कायाकल्प। हे भगवान! कितना

तेजोमय था उनका सम्पूर्ण शरीर। लगता था जैसे उनके शरीर से प्रकाश की किरणे फूट रहीं हों। अभी मैं उन महापुरुष की ओर चकित भाव से देख ही रहा था कि उसी समय न जाने किधर से स्वामी परमेश्वरानन्द आ गये। उन्हें पहचानने में देर न लगी मुझे। कई जन्मों के पश्चात् भी उस दिव्य योगी को पहचानने में भला कैसे भूल हो सकती थी मुझसे। किञ्चितमात्र परिवर्तन नहीं हुआ था उस योगी की योगकाया में। काशी में पहली बार उन्हें जैसा देखा था वैसा ही था सब कुछ। वही रूप रंग और वही कद काठी, सदैव होठों पर स्थिर रहने वाली वही रहस्यमयी मुस्कान। मुझ पर दृष्टि पड़ते ही स्वामी परमेश्वरानन्द भी पहचान गये मुझे और मुस्कराये मैं भी मुस्कराया। दाहिना हाथ उठाकर फिर आशीर्वाद दिया उन्होंने। उस दिन शरद पूर्णिमा थी। जब मुझे यह ज्ञात हुआ कि आज मातृअंक को उपलब्ध होने वाले हैं ताराचरण शाक्त तो न जाने कैसा हो गया मेरा मन। विचलित हो उठी मेरी आत्मा। अनजाने में ढुलक पड़े गालों पर आँसू। सिर उठाकर निर्विकार भाव से देखने लगा मैं धीरे–धीरे महासमाधि में प्रवेश करते हुए उस महासाधक को। कितनी गहन शान्ति थी उस समय उस सिद्ध योगी के मुख पर बतलाया नहीं जा सकता। धीरे–धीरे उनके शरीर को शवासन का रूप दे दिया गया। पूर्ववत् बैठी हुई थी पद्मासन की मुद्रा में कपिला आनन्द। उन्होंने अपना दोनों हाथ आगे बढ़ा कर योगी का सिर अपनी गोद में रख लिया और फिर स्वयं समाधिस्थ हो गयी वह। बड़ा ही अद्भुत विचित्र रोमाञ्चकारी और कारूणिक दृश्य था वह इसमें सन्देह नहीं।

अवाक्, स्तब्ध और पाषाणवत् खड़ा था अपने स्थान पर। मातृअंक को उपलब्ध एक महान सिद्ध परमयोगी हमेशा–हमेशा के लिए नश्वर शरीर और नश्वर संसार से मुक्त होकर सिद्धलोक में प्रवेश करने जा रहा था मेरे सामने। क्या यह मेरे लिए सौभाग्य की बात थी ? कितना महत्वपूर्ण क्षण था वह मेरे लिए। निश्चय ही मेरे कई जन्मों का पुण्य एक साथ उदय हो गया था उस समय, इसमें सन्देह नहीं।

आवाहन की यौगिक क्रिया– अब उस अन्धेरी चिपचिपी गुफा में किसी का अस्तित्व नहीं था। भीतर अंधेरे की स्याही फैलने लगी थी

और उस स्याही में सभी चमत्कारपूर्ण और अविश्वसनीय आध्यात्मिक दृश्य डूब गये थे एकबारगी। अब वहां रहना कठिन था मेरे लिए। धीरे–धीरे चलकर बाहर निकल आया मैं गुफा से। शुक्ल पक्ष की रात थी, हिमाच्छादित पर्वत शिखरों के ऊपर कुहरे की धवल चादर ओढ़े चांद झांकने लगा था। उसकी रूपहली चांदनी ऋषिकेश के आध्यात्मिक वातावरण पर पसरने लगी थी अब। चारों ओर सांय सांय कर रहा था, निस्तब्ध वातावरण में कभीकदा शंख–घंटों की मधुर ध्वनि गूंज उठती थी। मैं उसी पाषाण खण्ड पर बैठ गया, जहां प्रथम बार भेंट हुई थी कपिला आनन्द से। मौन साधे निर्विकार गालों पर हाथ धरे अपलक निहारने लगा मैं बादलों से आँख मिचौली खेलते हुए रूपहले चांद को। मन ही मन सोचने लगा मैं, क्या था सब? जो कुछ देखा सुना और अनुभव किया था गुफा के भीतर क्या वह सब कोई गहरा इन्द्रजाल था या कोई योगमाया? मन का भ्रम भी हो सकता है या फिर और कुछ। हौले से किसी ने कहा–नहीं, नहीं, ये सब कुछ नहीं था। न मायाजाल था न इन्द्रजाल था और न तो मन का भ्रम ही। सब सत्य था, बिल्कुल सत्य।

अब मेरा ध्यान गया कपिला आनन्द की ओर। उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व रहस्यमय लगा था मुझे। सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि उस रहस्यमयी योगिनी ने मुझे ही क्यों अपनी सारी कथा सुनायी थी? किसी और को भी तो सुना सकती थी एकाएक मेरा मन अव्यवस्थित हो गया और उद्भ्रान्त हो गया मैं। न जाने कैसा मोह जाग्रत हो उठा मेरे मन में कपिला आनन्द के प्रति। क्या कभी फिर मिलेगी वह साधिका? फिर कभी भेंट होगी उस करुणामयी से? विह्वल हो उठी मेरी आत्मा एकबारगी। लगा, जैसे मेरी ही कोई अपनी थी वह। बिछुड़ गयी होगी संसार की भीड़ में कभी किसी समय। वियोग का कौन सा क्षण था वह बतला सकता है भला कोई ? नहीं कोई नहीं।

ऋषिकेश में अब मन नहीं लग रहा था। कैलाश मानसरोवर की यात्रा पर निकला था लेकिन बीच में ही कपिला आनन्द की कथा का साक्षी बन जाना पड़ा। हरिद्वार आ गया, सोचा अब बनारस ही लौट जाना ठीक है फिर देखा जायेगा आगे। लेकिन ऐसा क्यों ? किसने बनारस लौटने की प्रेरणा दी मुझे?

सांझ का समय था। गालों पर हाथ धरे लालीघाट की सीढ़ियों पर मौन साधे बैठा था मैं और सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आते हुए एक सज्जन दिखलायी दिए पहचानने में देर न लगी। वे मेरे परम मित्र थे रामेश्वर पाण्डेय। गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी पूर्णरूप से विरक्त, संन्यासी थे पाण्डेय जी। योग साधना में अच्छी गति थी उनकी। घण्टों समाधि में रहते थे वह। कई यौगिक सिद्धियों का चमत्कार भी देखा था मैंने।

इधर–उधर की कुछ औपचारिक बातें करने के बाद कपिला आनन्द की चर्चा की मैंने रामेश्वर पाण्डेय से। क्या उस दिव्य आत्मा से पुनः साक्षात्कार सम्भव है पाण्डेयजी। यह अवश्य मैं जानता हूँ कि वह दिव्य आत्मा पार्थिव शरीर में नहीं है, फिर न जाने क्यों उसके लिए व्याकुल है मेरी आत्मा ? क्या कोई मार्ग है?

सब कुछ सुनने के बाद रामेश्वर पाण्डेय सिर उठाकर नीले आकाश की ओर शून्य में न जाने क्या देखते हुए गम्भीर स्वर में बोले– है शर्माजी है। क्या? आतुर हो उठा मैं।

'आवाहन'।

आवाहन, समझा नहीं।

उच्चस्तरीय दिव्य आत्माओं को आकर्षित करने और उनसे संपर्क साधने के लिए आवाहन आवश्यक है। आवाहन के दो प्रकार हैं– पहला है तांत्रिक है दूसरा है योगिक। तांत्रिक आवाहन में मंत्रशक्ति और योगिक आवाहन में प्राणशक्ति काम करती है। जिसके वशीभूत होकर दिव्यात्माएँ स्वयं आकर्षित होकर साधक के सान्निध्य में आ जाती हैं। कभी–कभी तो आवश्यकता पड़ने पर अपने लोक में भी ले जाती हैं साधक को। फिर पाण्डेयजी ने दोनों प्रकार के आवाहन की प्रक्रिया बतलायी मुझे। इस बात की प्रसन्नता हुई कि अनजाने में मुझे दिव्यात्माओं के अतिरिक्त रहस्यमय लोक–लोकान्तरों में निवास करने वाली आत्माओं को पृथ्वी के वायुमण्डल में बुलाने के लिए एक अतिदुर्लभ तांत्रिक और यौगिक प्रक्रिया उपलब्ध हो गयी थी पाण्डेयजी से। भला मैं उस समय क्या जानता था कि एक बड़ी भारी भूल कर रहा हूँ जीवन में। उसी रात सपने में दिखलायी दी कपिला आनन्द। श्वेत वस्त्रधारिणी

उस रहस्यमयी साधिका का तेजोमय मुखमण्डल क्लान्त और विवर्ण लगा मुझे। उस समय अपलक देख रही थी मेरी ओर वह अपनी सूनी आँखों से। क्या था उस महासाधिका की सूनी आँखों में, लगा जैसे अपनी आँखों की मूक भाषा में वह कह रही हो– मेरी प्रेरणा से तुम आये हो बनारस। मैं बनारस में ही रह रही हूँ इस समय, इसीलिए तुमको बुलाना पड़ा मुझे।

एक बार फिर कपिला आनन्द आगे बोली– गुरुदेव तो सिद्ध लोक को उपलब्ध हो गये, लेकिन मैं नहीं। मुझमें भला इतनी योग्यता कहां थी? मुझे तो सूक्ष्मलोक में भटकना था अभी।

समझते देर न लगी मुझे। भैरवी का आश्रय लेकर उस महापुरुष ने उच्चतम् अवस्था को स्वयं तो प्राप्त कर लिया था और भटकने के लिए छोड़ दिया संसार के बीच धारा में कपिला आनन्द को। निश्चय ही ऐसी ही विदग्ध आत्मा को एकमात्र काशी ही शान्ति प्रदान करती है।

मैंने इस सपने की चर्चा पाण्डेयजी से की। उन्होंने कहा, अभी आवाहन स्थगित मत करो आगे देखा जायेगा। उसी रात फिर सपने में आयी कपिला आनन्द। मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखती हुई अवरूद्ध कण्ठ से बोली– शुरू से ही तुम्हारे प्रति मेरे मन में आकर्षण है भौतिक नहीं आध्यात्मिक? इसका कारण है और वह यह कि तुम्हारी आत्मा से मेरी आत्मा का सदियों पुराना संबंध है इसीलिए तुमको मैंने सुनाई थी अपनी करुण कथा। फिर सपना टूट गया और आँखे खुल गयी।

एक दिन पाण्डेयजी से मिला सब सुनाया उन्हें। पाण्डेयजी ने कहा– कपिला आनन्द का आप से क्या आध्यात्मिक नाता–रिश्ता है यह तो मैं नहीं बतला सकता। लेकिन इतना तो अवश्य जानता हूँ कि सपने में दिखलायी देने वाले लोगों में वासना की छाया बनी रहती है। इसलिए दिव्य आत्माएं सपने में नहीं आती। जबतक वासना की छाया थी तबतक कपिला आनन्द आपको सपने में दिखलायी दी। सम्भवतः उनकी आत्मा और ऊपर चली गयी हो। आप तो समाधि में प्रवेश करने की कला जानते हैं। समाधि की अवस्था में वासना का आवरण नहीं रहता। आत्मा की स्वच्छ और निर्मल स्थिति है समाधि। क्या ध्यानावस्था में दिव्यात्माओं से सम्पर्क नहीं हो सकता।

हो तो सकता है, लेकिन समीपस्थ आत्मा से। लोक–लोकान्तरों अथवा भावराज्य में रहने वाली आत्माओं से नहीं।

पूरी रात सोया नहीं। सोचता रहा, कहाँ ? किस लोक में, किस जगत में और किस अवस्था में होगी कपिला आनन्द। मोहाविष्ट–सी हो गयी थी मेरी आत्मा कपिला आनन्द के प्रति। उसी समय झपकी सी आने लगी और उसी तन्द्रिल अवस्था में देखा– मेरे सामने खड़ी है कपिला आनन्द। मेरी ओर देखते हुए कहने लगी– अपनी मानसिक अवस्था ऐसी क्यों बना रखी है तुमने? महान योगी पूर्णागिरि की कृपा से मैं उस स्थान पर पहुँच गयी हूँ, जहां उच्चकोटि की दिव्यात्माएं कालक्षेम कर रही थी इसलिए स्वप्नावस्था में नहीं आ सकती थी मैं। न आने के कारण ही तुम चिन्तित थे है न! अब भाव विह्वल होने की आवश्यकता नहीं। मैं तो हूँ न, तुम्हारे निकट शरीर से नहीं, आत्मा से ही सही। तुम जब भी चाहोगे पार्थिव आकार भी ग्रहण कर लूँगी मैं। लेकिन हर समय नहीं अति आवश्यकता पड़ने पर। सच बात तो यह है जिस मार्ग पर तुम चल रहे हो। उस मार्ग की धूल पर शताब्दियों बाद किसी भूले भटके व्यक्ति के पदचिन्ह अंकित होते हैं समझ गये न।

कपिला आनन्द का आवाहन- यह सुनकर आश्चर्य हुआ और साथ ही प्रसन्नता भी। एक दिव्य योगात्मा से इस प्रकार संबंध स्थापित होना, परम सौभाग्य ही समझा जायेगा मेरे जैसे साधारण जीव के लिए।

ध्यान से समाधि में प्रवेश करने का तुम्हारा अभ्यास तो है ही। अभ्यास और बढ़ाओ। इतना कहकर वह दिव्यात्मा वातावरण में विलीन हो गयी।

अभ्यास बढ़ाने लगा मैं और अभ्यास के परिपक्व होने में पूरा एक वर्ष का समय लग गया। इस अवधि में कपिला आनन्द की आत्मा सम्पर्क में नहीं आयी। ध्यान की चरम सीमा समाधि है। अब मेरी समाधि एक से तीन घंटे की लगने लगी। समाधि के लिए प्राकृतिक वातावरण और एकान्त आवश्यक है इसके लिए मेरे एक मित्र ने काशी के नगवा में मेरे रहने की व्यवस्था कर दी थी। सन् 1960–65 ई0 के बीच का समय था। समाधि में बड़ा ही सुख मिलता था। आनन्द की तो बात ही छोड़िये। समाधि की गहन अवस्था में जाने से भय लगता था उस

समय, एकबार भी शरीर का आत्मा से संबंध टूटा तो कभी नहीं जुड़ता और न जुड़ने का मतलब है मृत्यु।

उसी समयावधि में कलकत्ता के प्रसिद्ध उद्योगपति श्री रतनलाल सुरेखा और चिरञ्जीवलाल शर्मा से परिचय हुआ। बाद में परिचय प्रगाढ़ मित्रता में बदल गयी। रतनलाल का मुझ पर पूरा भरोसा और विश्वास था। काशी में मानस मंदिर बनवाने की योजना थी उनकी और उस पुनीत धार्मिक योजना को साकार रूप देने में मैंने भी पूरा सहयोग दिया रतनलालजी का। आज भी काशी में मानस मंदिर के रूप में साकार है मेरी उनकी मित्रता। चिरञ्जीवलाल शर्मा अच्छे ज्योतिषी थे और योग के भी साधक थे। एक दिन उनके साथ मैं सारनाथ घूमने गया था। दोनों एक खुले मैदान में जाकर बैठ गये। बातचीत के सिलसिले में अचानक मेरी ओर सिर घुमाकर शर्माजी बोल पड़े– अरे! तुम्हारे साथ यह औरत कौन है?

औरत.....? कौन औरत? कैसी औरत! बोले कुछ नहीं फिर बाद में पता चल गया। वह औरत और कोई नहीं कपिला आनन्द थी। आश्चर्यचकित हो उठा था मैं उस समय समाधि में क्यों नहीं आयी वह? आना चाहिए था। शर्माजी ने समाधान कर दिया। समाधि की अपनी एक सीमा होती है। वह आत्मा उस सीमा से बाहर है। समझ में आया आवाहन करना होगा, आवाहन।

तांत्रिक आवाहन क्रिया विशेष है और वह मंत्र सिद्धि पर भी निर्भर है इसलिए उस प्रपंच में न पड़ कर मैंने यौगिक क्रियाओं द्वारा विशेष अवस्था में आवाहन करना शुरू किया। कुछ देर बाद मानसपटल पर अवतरित हो गयी आत्म शरीरधारिणी कपिला आनन्द। पहले जैसा कुछ नहीं था। कभी का उदास विवर्ण और तेजहीन मुखमण्डल अब सोने की तरह चमक रहा था। लावण्य के कण बिखरे थे वहां। रूप यौवन से भरपूर दप्–दप् करती देहयष्टि को देख कर आश्चर्यचकित होना पड़ा मुझे।

आप अनजाने में और अनदेखे में मेरे शरीर के पीछे–पीछे क्यों लगी रहती हैं?

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कपिला आनन्द एक योगी की तरह हँसते हुए बोली– तुम ही मोहाविष्ट हो सकते हो, मैं नहीं! मैं भी तो तुम्हारी ही तरह थी।

इसका उत्तर नहीं था मेरे पास। हँस दिया बस फिर बोला– जैसे मानसिक रूप से आ गयी, उसी प्रकार भौतिकस्तर पर नहीं आ सकती हैं आप?

आ क्यों नहीं सकती–कपिला आनन्द बोली– मैं जिस स्थान पर रहती हूँ। वह कोई दिव्यलोक है। उसके बाद क्रमशः यक्षलोक, गन्धर्व, किन्नरलोक, गणलोक और अन्त में भूलोक है। भूलोक के अन्तर्गत मनोलोक– जिसमें नैमित्तिक देवता और पितर रहते हैं– सूक्ष्मलोक, वासनालोक और भौतिकलोक या जगत है। अब जरा तुम सोचो–तुम तक आने में मुझे इतने सारे लोकों को अतिक्रमण करना पड़ा है इस समय। वहां से यहां तक आने के लिए कोई सरल मार्ग नहीं है। मानव शरीर में जन्म लेने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। समाधि में न आ सकी। हमें अब तुम समझ ही गये होगे। यदि तुम आवाहन न करते तो भला कहाँ आ सकती थी मैं। ब्रह्माण्ड के अपने नैसर्गिक नियम हैं। उन नियमों में आत्मा से लेकर परमात्मा तक बंधे हुए हैं। किसी भी लोक की किसी भी प्रकार की आत्मा अपने आपमें स्वतंत्र नहीं है। ब्रह्माण्डीय नियम के अनुसार ही किसी भी लोक–लोकान्तर की आत्मा अन्यत्र आवागमन कर सकती है और शरीर भी ग्रहण कर सकती है। आश्चर्य की बात तो यह है कि सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड के आकर्षण का केन्द्र भूलोक है। भूलोक का जो भौतिक खण्ड है वह मानव शरीर है। पंच भौतिक शरीर केवल मनुष्य का ही है एकमात्र। ऐसा शरीर ब्रह्माण्ड में सर्वत्र दुर्लभ है जो कर्म शरीर और भोग शरीर दोनों है। जबकि अन्य शरीर केवल मात्र भोगशरीर ही है। कोई भी आत्मा और कैसी भी आत्मा क्यों न हो। वह दुर्लभ मानव शरीर द्वारा ही अपनी सर्वोच्च अवस्था प्राप्त करने में समर्थ होती है।

थोड़ा रूककर कपिला आनन्द आगे बतलाने लगी यह सुनकर आश्चर्य होगा तुमको।

क्या ? उत्सुक हो उठा मैं।

सच पूछो तो मानव लोक में मानव गुणों से सम्पन्न मनुष्य है ही कहाँ? जो है उन्हें जानना समझना और पहचानना अति कठिन है। त्रेता में केवल मनुष्य थे– राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुध्न, दशरथ, काक भुसण्डी, केवट, बानर रूप में सुग्रीव, हनुमान और राक्षस रूप में विभीषण। द्वापर में कृष्ण, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, अर्जुन, भीम, बलभद्र और विदुर। इनके अलावा और कोई नहीं था मनुष्य। जिसको महासंग्राम कहते हैं। अबतक वे तीन ही हुए हैं। जिनका आयोजन सृष्टि के प्राक्काल में ही हो चुका था। देवासुर संग्राम पहला महासंग्राम था। उस भयंकर संग्राम में जो तमोगुणी प्रकृति के प्राणी मारे गये वे सब के सब सोलह गुना अधिक बन कर त्रेता युग में मानव शरीर में जन्म ले लिया। शरीर जो मनुष्य का था लेकिन वृत्ति राक्षसों की थी। संस्कार भी अमानवीय था। उन सबको मारने के लिए दूसरा महासंग्राम राम–रावण युद्ध के रूप में हुआ, उस महासंग्राम में जो मारे गये। उन्होंने भी अधिक से अधिक संख्या में मानव शरीर में जन्म ले लिया द्वापर युग में आकर। जिनका वध हुआ महाभारत के युद्ध में यह तीसरा महासंग्राम था। कहने की आवश्यकता नहीं महाभारत काल के महायुद्ध में करोड़ों की संख्या में लोग मारे गये। उन सबने मानव शरीर में जन्म लिया कलियुग में। आज का मनुष्य केवल शरीर से मनुष्य है आचरण से नहीं, व्यवहार से नहीं, धर्म, कर्म से नहीं, विचार से नहीं और संस्कार से भी नहीं। एक मनुष्य को खोजने निकलिए तो बीच में लाखों राक्षसी प्रवृत्ति के मिलेंगे लोग और उस 'मनुष्य' तक पहुँचते–पहुँचते जानते हो, वह खोजने वाला भी बेचारा पूर्ण राक्षसी प्रवृत्ति का हो जायेगा क्योंकि संसर्ग दोष जो मिलेगा उस बेचारे को और यही कारण है कि महाभारत काल के बाद अनेक धर्मावतारी हुए लेकिन कोई मानवातार नहीं हुआ। यदि होगा भी तो युग के अन्त में होगा।

इस प्रसंग में और कुछ भी बतला देना चाहती हूँ जिनसे सम्भवतः कम ही लोग परिचित होंगे। जैसा तुम्हे बतला चुकी हूँ मानव शरीर में अत्यधिक आकर्षण है। उसके द्वारा पूर्णत्व प्राप्ति के लिए उसके प्रति सभी प्रकार के पारलौकिक प्राणी लालायित रहते हैं। आकर्षण का मूल

कारण है पूर्णत्व लाभ और वह बिना मानव शरीर के सम्भव नहीं। सबसे ऊपर सिद्धलोक है और उसके बाद है दिव्यलोक। इन दोनों पवित्र लोक की उपलब्धि कई जन्मों की साधना के पश्चात् होती है। सरल और सहज नहीं है दोनों लोकों में प्रवेश करना। फिर भी मोक्ष अथवा परम निर्वाण वहां से दूर है। उसको उपलब्ध होने के लिए किसी साधना की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है भगवद् कृपा की, करुणा की और अनुकम्पा की और ये प्राप्त होती है नर शरीर में। इसलिए सिद्धलोक की सिद्धात्माएं और दिव्यलोक की दिव्यात्माएं बराबर प्रयत्नशील रहती हैं मानव गर्भ के लिए। वे जातपात नहीं जानती। वे धर्म, कर्म नहीं मानती। वे उत्कृष्ट, निकृष्ट भी नहीं जानती। बस वे तो जानती है कि किसी भी प्रकार नरकाया उपलब्ध हो जाय। यदि प्रयत्न सफल हो गया और मानव शरीर मिल भी गया तो वे पश्चाताप और ग्लानि से भर उठती है संसार का कलुषित रूप देख कर और मनुष्य की राक्षसी वृत्ति देख कर। वे आत्माएं मनस्वी होती है। संसार उनके लिए निरपेक्ष होता है और संसार के लिए वे। शरीर का उपयोग करना आवश्यक है पूर्णत्व प्राप्ति हेतु इसलिए जीवन और जगत के मायामोह और प्रपञ्च को छोड़कर चले जाते हैं हिमालय की दुर्गम गिरि–कन्दराओं में। क्या मुझे ऐसे प्रच्छन्न महापुरुषों का दर्शन लाभ हो सकता है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कपिला आनन्द बोली– क्यों नहीं, तुम संस्कारी हो और फिर मेरा सहयोग भी तो किया है।

अचानक आँख खुल गयी। सवेरा होने वाला था। आत्मा में एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक शान्ति का अनुभव कर रहा था मैं।

❐

पञ्चम आवाहन
महापुरुष की परिभाषा

आवाहन की यात्रा समाप्त हो चुकी थी। मानसपटल पर अंकित अतीत की बहुत सारी स्मृतियां शब्दों के रूप में परिवर्तित होकर बिखर चुकी थी आवाहन के पृष्ठों पर। थोड़ी शान्ति का अनुभव किया मैंने जीवन की निशा बेला में। लेकिन वह शान्ति अधिक समय तक स्थिर न रह सकी। मेरी प्रकाशित पुस्तकों को पढ़कर साधिकार प्रवचनकर्त्ता प्रवचन देते हैं अपनी भक्त मण्डली में। लगता है जैसे वे पुस्तकें उनकी अपनी सम्पत्ति हो।

ऐसी पुस्तकों को पढ़कर तार्किकों के मन में तर्क उत्पन्न होता है। जो अल्पज्ञ है, उसके मन में उत्पन्न होता है अविश्वास जन्य कौतूहल। जो पूर्ण रूप से भौतिकवादी हैं उनके मन में उत्पन्न होती है कल्पना, ऊँची कल्पना और अध्यात्मप्राण जिज्ञासु हैं, वे अपनी आत्मतुष्टि के लिए अपनी जिज्ञासाओं को प्रकट करते हैं। ऐसे ही कुछ विशिष्ट अध्यात्मप्राण लोगों ने अपनी जिज्ञासा प्रस्तुत की– महापुरुष कौन है और उनकी परिभाषा क्या है? कहने की आवश्यकता नहीं, इसी परम जिज्ञासा के समाधान को लेकर आगे चल पड़ती है आवाहन की फिर एक लम्बी यात्रा।

मेरी दृष्टि में जो सच्चे अर्थों में सन्त–महात्मा हैं, सच्चे अर्थों में जो साधु पुरुष हैं, सिद्ध साधक हैं और है सच्चे अर्थों में योगीजन वे महापुरुष है लेकिन आज के युग में साधारणतः महापुरुषों की परिभाषा है व्यक्ति विशेष। व्यक्ति तो कोई भी हो सकता है, नेता भी अभिनेता भी, देश सेवक भी और समाज सेवक भी, इनके अलावा धर्माचार्य भी हो सकते हैं महापुरुष। लेकिन हमारे देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह रहा है कि लोग जिसे महापुरुष कहते हैं वे कभी भी उनकी आलोचना करने में

कारण है पूर्णत्व लाभ और वह बिना मानव शरीर के सम्भव नहीं। सबसे ऊपर सिद्धलोक है और उसके बाद है दिव्यलोक। इन दोनों पवित्र लोक की उपलब्धि कई जन्मों की साधना के पश्चात् होती है। सरल और सहज नहीं है दोनों लोकों में प्रवेश करना। फिर भी मोक्ष अथवा परम निर्वाण वहां से दूर है। उसको उपलब्ध होने के लिए किसी साधना की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है भगवद् कृपा की, करुणा की और अनुकम्पा की और ये प्राप्त होती है नर शरीर में। इसलिए सिद्धलोक की सिद्धात्माएं और दिव्यलोक की दिव्यात्माएं बराबर प्रयत्नशील रहती हैं मानव गर्भ के लिए। वे जातपात नहीं जानती। वे धर्म, कर्म नहीं मानती। वे उत्कृष्ट, निकृष्ट भी नहीं जानती। बस वे तो जानती है कि किसी भी प्रकार नरकाया उपलब्ध हो जाय। यदि प्रयत्न सफल हो गया और मानव शरीर मिल भी गया तो वे पश्चाताप और ग्लानि से भर उठती है संसार का कलुषित रूप देख कर और मनुष्य की राक्षसी वृत्ति देख कर। वे आत्माएं मनस्वी होती है। संसार उनके लिए निरपेक्ष होता है और संसार के लिए वे। शरीर का उपयोग करना आवश्यक है पूर्णत्व प्राप्ति हेतु इसलिए जीवन और जगत के मायामोह और प्रपञ्च को छोड़कर चले जाते हैं हिमालय की दुर्गम गिरि–कन्दराओं में। क्या मुझे ऐसे प्रच्छन्न महापुरुषों का दर्शन लाभ हो सकता है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कपिला आनन्द बोली– क्यों नहीं, तुम संस्कारी हो और फिर मेरा सहयोग भी तो किया है।

अचानक आँख खुल गयी। सवेरा होने वाला था। आत्मा में एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक शान्ति का अनुभव कर रहा था मैं।

❐

पञ्चम आवाहन
महापुरुष की परिभाषा

आवाहन की यात्रा समाप्त हो चुकी थी। मानसपटल पर अंकित अतीत की बहुत सारी स्मृतियां शब्दों के रूप में परिवर्तित होकर बिखर चुकी थी आवाहन के पृष्ठों पर। थोड़ी शान्ति का अनुभव किया मैंने जीवन की निशा बेला में। लेकिन वह शान्ति अधिक समय तक स्थिर न रह सकी। मेरी प्रकाशित पुस्तकों को पढ़कर साधिकार प्रवचनकर्त्ता प्रवचन देते हैं अपनी भक्त मण्डली में। लगता है जैसे वे पुस्तकें उनकी अपनी सम्पत्ति हो।

ऐसी पुस्तकों को पढ़कर तार्किकों के मन में तर्क उत्पन्न होता है। जो अल्पज्ञ है, उसके मन में उत्पन्न होता है अविश्वास जन्य कौतूहल। जो पूर्ण रूप से भौतिकवादी हैं उनके मन में उत्पन्न होती है कल्पना, ऊँची कल्पना और अध्यात्मप्राण जिज्ञासु हैं, वे अपनी आत्मतुष्टि के लिए अपनी जिज्ञासाओं को प्रकट करते हैं। ऐसे ही कुछ विशिष्ट अध्यात्मप्राण लोगों ने अपनी जिज्ञासा प्रस्तुत की– महापुरुष कौन है और उनकी परिभाषा क्या है? कहने की आवश्यकता नहीं, इसी परम जिज्ञासा के समाधान को लेकर आगे चल पड़ती है आवाहन की फिर एक लम्बी यात्रा।

मेरी दृष्टि में जो सच्चे अर्थों में सन्त–महात्मा हैं, सच्चे अर्थों में जो साधु पुरुष हैं, सिद्ध साधक हैं और है सच्चे अर्थों में योगीजन वे महापुरुष है लेकिन आज के युग में साधारणतः महापुरुषों की परिभाषा है व्यक्ति विशेष। व्यक्ति तो कोई भी हो सकता है, नेता भी अभिनेता भी, देश सेवक भी और समाज सेवक भी, इनके अलावा धर्माचार्य भी हो सकते हैं महापुरुष। लेकिन हमारे देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह रहा है कि लोग जिसे महापुरुष कहते हैं वे कभी भी उनकी आलोचना करने में

समर्थ न हो सके। जो समाज अपने महापुरुषों की आलोचना करने में समर्थ न हो। जो समाज अपने महापुरुषों की आलोचना करने में अपने आपको समर्थ नहीं पाता, उसके संबंध में मुख्यतः दो बातें कहीं जा सकती है। पहली बात तो यह है कि वह अपने महापुरुषों को इस योग्य समझता ही नहीं कि उनकी आलोचना की जा सके। दूसरी बात यह कि अपने महापुरुषों को इतना कमजोर और साधारण समझता है कि वे आलोचना का सामना कर न सकेंगे। ठहर ही नहीं सकेंगे आलोचना के सामने। यह तो निश्चित है कि आलोचना से महापुरुष की कोई हानि या क्षति नहीं हो सकती। हाँ, आलोचकों का अवश्य हो सकता है लाभ। इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि आज तक इस धरती पर कोई ऐसा मनुष्य कभी भी नहीं हुआ, जिसने जीवन में भूले न की हो और गलतियाँ न की हो। एक बात का अन्तर अवश्य है और वह यह कि छोटे लोग छोटी भूले और गलतियाँ करते हैं और सन्त पुरुष लोग बड़ी भूले और बड़ी गलतियाँ करते हैं लेकिन इस संसार में अभी तक किसी ऐसे व्यक्ति ने जन्म नहीं लिया, जिसने जीवन में किसी प्रकार की गलती या किसी भी प्रकार की भूल न की हो। जिससे भूल नहीं होती और गलती नहीं होती, वही मोक्ष का अधिकारी समझा जाता है। उसे धरती पर आने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वे मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं। इसमें कितनी सत्यता है और कितनी है वास्तविकता– इसका का निर्णय तो समाज ही कर सकता है लेकिन हमारे मन में घबराहट और बेचैनी बराबर बनी रहती है कि हमारे महापुरुषों की कोई गलती, कोई भूल और कोई त्रुटि सामने न आ जाय और ध्यान में न आ जाय। समाज कहता है कि इसके लिए पूजा करना चाहिए, उपासना करना चाहिए, प्रार्थना करना चाहिए, महापुरुषों की। लेकिन भूल करके भी ऐसा विचार मत करिए। ध्यान रखें, जैसे ही विचार शुरू होगा, वैसे ही आलोचना शुरू हो जायेगी। बिना आलोचना के विचार का जन्म होता ही नहीं। पूजा हो सकती है, साधना उपासना हो सकती है और प्रार्थना भी हो सकती है, स्तुति और प्रशंसा भी हो सकती है लेकिन विचार नहीं हो सकता। जो समाज अपने महापुरुषों पर विचार नहीं करता उसके महापुरुषों का जीवन व्यर्थ हो जाता है। उसके कोई काम में नहीं आ पाता।

महापुरुष के प्रति दो दृष्टि है– सामाजिक दृष्टि और धार्मिक दृष्टि। दोनों दृष्टियों में अन्तर है लेकिन फिर भी उनका मूल एक ही है। हम हजारों वर्षों से यही कर रहे हैं। महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण आदि सभी अवतारी महापुरुष हैं। हम उनकी पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, उपासना करते हैं, उनके नाम की माला जपते हैं, लेकिन उन पर हम कभी विचार नहीं करते। समझ लीजिए, जिन पर हम विचार नहीं करते, उनका हमारे जीवन पर कोई सस्पर्श और हमारे जीवन को परिवर्तित करने वाला कोई भी प्रभाव कभी भी नहीं पड़ता। पूजा, उपासना, जप, कीर्तन आदि जो कुछ भी है, उनसे हम रूपान्तरित नहीं होते, हो भी नहीं सकते यदि रूपान्तरित होते हैं तो विचार से। पूजा उपासना आदि हो सकते हैं, तभी जबकि केवल हमारी धारणा हो, महापुरुषों से बच जाने की। भारतीय मानसिकता यह है कि जिससे वह बचना चाहता है, उसे भगवान का रूप देकर स्थापित कर देते हैं मन्दिर में। फिर झंझट और परेशानी से अपने को मुक्त समझ लेता है वह। कभी फूल चढ़ा देते हैं, कभी माला पहना देते हैं, भोग चढ़ा देते हैं, श्रृंगार कर देते हैं, जन्मोत्सव मना लेते हैं, लेकिन उस पर विचार नहीं करते हैं क्योंकि विचार करने का परिणाम एक ही हो सकता है और वह यह कि विचार करने से वह हमें, इस योग्य समझे कि हम अपने जीवन को बदले। लेकिन हम सतर्क हैं, होशियार हैं और चालाक भी हैं। हम सोचते हैं कि हम महावीर बुद्ध, राम, कृष्ण की पूजा करते हैं तो उन पर हम अनुग्रह कर रहे हैं उनका कोई उपकार कर रहे हैं लेकिन हमको यह समझ लेना चाहिए कि महापुरुष पूजा अर्चना आदि के लिए जन्म नहीं लेते। जिनके मन में पूजा अर्चना की लालसा है वह कुछ भी हो, महापुरुष नहीं हो सकता। महापुरुष का उपयोग यह है कि वह हमारे जीवन में हमारे रक्त में, हमारे विचार में, हमारी प्रतिभा में प्रवेश कर सकें और हमारी प्रतिभा में प्रवेश करने के लिए द्वार तभी खुलता है जब हम विचार करते हैं, आलोचना करते हैं, अन्वेषण करते हैं। हमारे सभी महापुरुष भारत की प्रतिभा के बाहर खड़े हैं। खड़े नहीं मंदिरों के भीतर बन्द हैं। भारत के प्राणों में प्रवेश न कर सका कोई अभी तक।

भारत के विचारशील महापुरुष एक प्रकार से पलायनवादी रहे हैं।

उन्होंने पीठ कर ली समाज और संसार की ओर। उन्होंने मोक्ष, निर्वाण, मुक्ति के मार्ग की खोज की है लेकिन समाज और जीवन का भी कोई महत्व है और जीवन है उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया। महान व्यक्ति हो या हो महापुरुष, उनका एक ही अर्थ होता है कि वे शरीर से ऊपर उठ गये हैं। अब शरीर के मिटने से उनके मिटने की कोई सम्भावना नहीं है।

भारत और दरिद्रता- प्रबुद्ध पाठकों का एक प्रश्न यह भी है कि भारत को गरीबी और दरिद्रता का देश क्यों लोग कहते हैं। भारत एक गरीब देश है, यह प्रायः सुनाई देता है। वैसे देखा जाय तो इस प्रश्न का उत्तर मेरा विषय नहीं है। सम्भवतः इसका उत्तर देता भी नहीं। यदि ''स्लमडागमिलेनियर'' पिक्चर को टी.वी. पर न देखा होता तो? उसकी प्रशंसा न सुनी होती तो? उसको 'एवार्ड' न मिला होता तो और वह एवार्ड भी एक दो नहीं, पूरे आठ। पिक्चर के मूल में दरिद्रता है। भारत की दरिद्रता को खूब बढ़ा चढ़ा कर दर्शाया गया है। दरिद्रता की प्रशंसा की गयी है। दरिद्रता को महत्व दिया गया है पटकथा में। दरिद्रता को इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि दर्शक उसकी प्रशंसा करें, फिल्म की प्रशंसा करें, निर्देशक की प्रशंसा करें, संगीतकार और गीतकार की प्रशंसा करें और बहुत करतल ध्वनि करें निर्माता का नाम लेकर। यदि विचार किया जाय तो इतना एवार्ड फिल्म से सम्बद्ध लोगों को नहीं मिला है, एवार्ड मिला है भारत की दरिद्रता को। फिल्म में महत्व दिया गया भारत की दरिद्रता को। इसलिए एवार्ड मिला है लोगों को। भले ही करोड़ों लोग प्रशंसा करें लेकिन जो बुद्धिजीवि हैं, विचारक हैं और हैं ज्ञानीजन, वे निश्चय ही दुखी होंगे। उनके लिए सबसे बड़ा दुख होगा वह फिल्म इसमें कोई सन्देह नहीं। आपको ज्ञात हो कि **सबसे बड़ा दुख क्या है? दरिद्रता है।** दरिद्रता से बढ़कर कोई दुख नहीं है। लक्ष्मी भगवान विष्णु की अभिन्न शक्ति हैं। वे ऐश्वर्य की देवी हैं। जिस परिवार में लक्ष्मी का निवास नहीं होता वहां दुःख, दरिद्रता, कलह, झगड़ा मारपीट, क्लेश, मनमुटाव, निराशा असन्तोष और भी विभिन्न प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होती रहती हैं। लक्ष्मी का अभाव दुर्भाग्य सूचक है और लक्ष्मी की कृपा सौभाग्य सूचक है। लक्ष्मी का अभाव

पुरुष की मृत्यु है। महर्षि व्यास का कहना है कि **पुरुषाऽधनः वध।** भर्तृहरि के अनुसार धन को ही कुलीन पण्डित, विद्वान, गुणवान वक्ता और रूपवान कहते हैं। लक्ष्मी वैभव और सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी हैं। **लक्ष्यति इति लक्ष्मी** यानि लक्ष्मी स्वयं को लक्षित करती हैं। **'लक्ष्मी सम्पत्ति शोभ्यो'**– शोभा और सम्पत्ति को लक्ष्मी कहते हैं। यह सच है कि सारे कष्टों का मूल दरिद्रता है– **'सर्वकष्टा दरिद्रता।'** भारत में जितने भी पारिवारिक कष्ट, सामाजिक कष्ट, सांसारिक कष्ट और व्यक्तिगत कष्ट हैं– इन सबके मूल में भारत की तथाकथित दरिद्रता ही है। इस प्रसंग में मुझे केसरलिंग की अचानक याद आ गयी। काउण्ट केसर लिंग एक प्रसिद्ध विदेशी पत्रकार था। वह एक बार भारत आया और भारत भ्रमण किया और जब वह अपने देश वापस लौटा तो उसने अपनी डायरी में लिखा– **मैं हिन्दुस्तान गया। वहाँ से लौटा हूँ तो एक अजीब नतीजा लेकर आया हूँ। नतीजा यह कि "इण्डिया इज ए रिच व्हेयर पुअर पीपुल्स लिव"!** मतलब कि हिन्दुस्तान एक धनी देश है जहां गरीब लोग रहते हैं। पढ़कर मैं काफी परेशान हुआ। यदि धनी देश है तो गरीब लोग कैसे रहते होंगे और गरीब लोग रहते हैं तो धनी देश कैसे है? बाद में समझ में आया। देश तो बहुत धनी है लेकिन रहने वाले मूढ़ हैं, बेवकूफ हैं, एक हद तक मूर्ख भी हैं। वे गरीब बने हुए हैं। देश तो काफी धन पैदा कर सकता है लेकिन रहने वाले की जीवन दृष्टि दरिद्र रहने की है इसलिए वे सम्पत्ति पैदा नहीं कर पाते। मेरी दृष्टि में काउण्ट केसरलिंग का विचार बिल्कुल ठीक है।

मैं जानता हूँ कि भारत ने कई भारी भूले की हैं। कई भारी गलतियाँ भी की हैं और उन्हीं भूलों और गलतियों में एक है भारत की गरीबी को और दरिद्रता को महत्व देना। महिमा और गौरव प्रदान करना। हम एक प्रकार से सम्मान और गौरव प्रदान करते रहे हैं दरिद्रता को प्रारम्भ से ही। दरिद्रता के दर्शन को किया है विकसित भी। जिसको फिलासफी ऑफ पुअरिटी कह सकते हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो पांच हजार वर्षों से हम यह स्वीकार करते चले आ रहे हैं कि दरिद्र होना भी गौरव और सम्मान की बात है और इस स्वीकारोक्ति के साथ ही साथ धन सम्पदा ऐश्वर्य समृद्धि वैभव आदि की निन्दा और उनका बहिष्कार

भी बराबर रहा है हमारे मन में। परिग्रह का विरोध अपरिग्रह की स्थापना। समृद्धि का विरोध, इसके विस्तार का विरोध, दरिद्रता की स्वीकृति जैसे पिछले चार हजार वर्षों से हमारे खून में घुल मिल गयी है और प्रविष्ट हो गयी है जैसे आत्मा में। कहने की आवश्यकता नहीं ये सब इसी दरिद्र–दर्शन का है परिणाम। लगभग पाँच हजार वर्षों की लम्बी सभ्यता के पश्चात् भी हम दरिद्र के दरिद्र ही हैं और समृद्ध नहीं हो पाये। इस विचार का अन्तिम परिणाम है यह है कि बीच में एक दुबला पतला अपने आपमें हठी जिद्दी और अपने विचारों का पक्का व्यक्ति आ गया, जिसका नाम था गांधी। गांधी ने दरिद्र दर्शन को महत्व दिया और उसको दिया सहारा भी। इतना ही नहीं, दरिद्र को नारायण का भी रूप दे दिया उन्होंने। दरिद्र नारायण हो गया। 'दरिद्र नारायण' भगवान के पद को संभाल लिया दरिद्र ने। इसे विडम्बना ही कहेंगे न। दरिद्र कभी भी नारायण नहीं हो सकता। भगवान विष्णु नारायण हैं और लक्ष्मी उनकी पत्नी हैं। फिर कैसे दरिद्र नारायण हो सकता है। वास्तव में दरिद्रता पाप है, महापाप है। दरिद्रता भयंकर रोग है। उससे घृणा करनी चाहिए। उसे नष्ट करना होगा। उसके अस्तित्व को नष्ट करना होगा। दरिद्र को हम भगवान की संज्ञा देंगे और पवित्र समझेंगे, महत्व देंगे। महिमामण्डित करेंगे तो हमारे देश की दरिद्रता कभी भी नष्ट न होगी, बराबर बढ़ती ही जायेगी। यदि हम दरिद्रता को बनाए रखेंगे, दरिद्रता पर दया करेंगे, दरिद्र की सेवा करेंगे तो उसे कभी भी समाप्त नहीं कर सकेंगे, सम्भव ही न होगा। दरिद्रता को समूल नष्ट करने के लिए दरिद्र की सेवा करना आवश्यक नहीं है। दरिद्र का गुणगान करना आवश्यक नहीं है। दरिद्र पर दया करना आवश्यक नहीं है। यदि कुछ करना ही है तो भारत से दरिद्रता को नष्ट करना है, समाप्त करना हैं। उसके साथ अछूत रोग का व्यवहार करना है और व्यवहार करना है शत्रु जैसा लेकिन ऐसा सम्भव न हो सकेगा क्योंकि दरिद्रता के प्रति सम्मान का भाव, दया का भाव, अनुकम्पा का भाव, अनजाने में हमारे अचेतन मन में प्रवेश कर गया है। दरिद्रता एक गौरव की बात है– यह भाव क्या कभी निकल सकेगा हमारे अचेतन मन से शायद कभी नहीं।

दरिद्रता के प्रति बड़ी ही खतरनाक दृष्टि है, बहुत आत्मघाती दृष्टि है क्योंकि जब हम दरिद्रता को इस प्रकार स्वीकार करते हैं, सम्मान देते हैं और दरिद्रता में सन्तोष प्राप्त कर लेने को एक धार्मिक गुण मानते हैं तो जरा सोचने की बात है कि फिर समाज समृद्ध कैसे होगा? समाज धन सम्पत्ति का अर्जन कैसे करेगा ? हम भी इसी धरती पर हैं दूसरे देश भी इसी धरती पर हैं। यदि हम पिछले इतिहास पर दृष्टिपात करें तो उनसे अधिक हम समृद्ध थे। जो आज हमें भीख दे रहे हैं। हम कहीं अधिक प्रसन्न, धनवान, समृद्धिवान और ऐश्वर्य, कीर्तिमान थे और आज हमें भीख मांगनी पड़ रही है। सम्भव है भविष्य में भी भीख ही पड़े मांगना। यदि हमने जीवन को जीवन दर्शन को और जीवन की व्यवस्था को रूपान्तरित नहीं किया तो हम इसी प्रकार आगे भी भिक्षा पात्र लेकर भीख ही मांगते रहेंगे और वहीं करते चले जायेंगे जो हमने अब तक किया है।

सम्पत्ति- सम्पत्ति आकाश से नहीं आती, आकाश में पैदा नहीं होती। श्रम से पैदा होती है सम्पत्ति। श्रम भी आकस्मिक नहीं होता। श्रम का जन्म विचार से होता है। विचार, श्रम का जन्मदाता है। यदि हमारे विचार में सम्पत्ति और सम्पदा का विरोध है तो हम कभी भी सम्पत्ति का अर्जन न कर सकेंगे। किसी प्रकार का श्रम भी न कर सकेंगे उसके लिए क्योंकि हम एक प्रकार से अकर्मण्य हैं। न श्रम को महत्व देते हैं और न तो देते हैं महत्व कर्म को ही। यह जो भारत है– वह पूर्णरूप से श्रमशून्य प्रतीत होता है– सुस्त, कर्महीन, उत्साहहीन, काम न करने की प्रवृत्ति और आलसी। ये सब इस विचार से उत्पन्न होता है जो दरिद्रता को सन्तोष मानने की शिक्षा देता है। इस प्रसंग में यह बात तो ध्यान देने योग्य है कि हमारे देश में जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के पुत्र थे। बुद्ध राजा के पुत्र थे। राम और कृष्ण भी राजा के ही पुत्र थे। तात्पर्य यह कि भारत के सभी अवतरित पुरुष, राज पुत्र थे। जो धन ऐश्वर्य भोग विलास और राज महल को छोड़कर दरिद्र बन गये। उनके दरिद्र होने से भारत की दरिद्रता के दर्शन को और अधिक आश्रय मिला, सम्बल मिला और मिला सहारा।

धनी व्यक्ति का दरिद्र होना एक बात है और दरिद्र का दरिद्रता में सन्तुष्ट हो जाना अलग बात है। इन दोनों बातों के मूल में अन्तर है। धनी व्यक्ति जब दरिद्र होता है– तब वह अमीरी को जानकर दरिद्र होता है। उसको अमीरी के प्रत्येक स्वरूप का ज्ञान होता है। अमीरी में जो सुख और आनन्द है उसका उसे अनुभव रहता है। अमीरी का सारा अनुभव लेकर दरिद्र होता है वह। अमीरी उसे नहीं छोड़ती वह स्वयं अमीरी को छोड़ देता है अपनी इच्छा से। अमीरी व्यर्थ है, इसलिए दरिद्रता को स्वीकार करता है। उसकी दरिद्रता और उस आदमी की दरिद्रता जिसने कभी अमीरी देखी नहीं, अमीर होने का सुख और आनन्द नहीं उठाया। जिसने ऐश्वर्य और सम्पदा का दर्शन नहीं किया और उसका सुख प्राप्त नहीं किया। अच्छे भोजन के साथ–साथ अच्छे वस्त्रों को नहीं पहना। इन दोनों की दरिद्रता में कोई संबंध नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि धनी व्यक्ति जब गरीब होता है तो उसे दरिद्रता में भी आनंद और सुख प्राप्त होता है, उसके लिए दरिद्रता स्वतंत्रता के समान हो जाती है। गरीब व्यक्ति दरिद्रता में संतोष का अनुभव करता है। वह सन्तोष केवल उसके दुख को और अभाव को छिपाने का और साथ ही सान्त्वना का उपाय मात्र होता है। सन्तोष बहुत महत्वपूर्ण है अपने आपमें। भारत के सभी महान पुरुष और अवतारी पुरुष राज परिवारों से आये इसलिए कि वे सभी राज घरानों के सुख से ऊबे हुए थे। सम्पत्ति की अपनी समस्या है, अपनी परेशानी है। दरिद्रता की अपनी समस्या है, अपनी है परेशानी। भिखारियों की भी है अपनी समस्या और परेशानी। राजघराने की भी है अपनी समस्याएँ और परेशानियाँ। वे सभी महापुरुष अवतारी पुरुष पीड़ित हो गये थे, परेशानियों से। उनकी अन्तरात्मा दुःखी हो गयी थी। उनको परिवर्तन चाहिए था। स्वतंत्रता चाहिए था। वे अलग जीना चाहते थे। इसके लिए क्या करते? चौराहे पर आकर खड़े हो गये पूर्ण नग्न होकर। उस नग्नता में उनको सुख मिला, शान्ति मिली। आनन्द मिला और मिली स्वतंत्रता एक विशेष प्रकार की मुक्ति का हुआ अनुभव। उस मुक्ति का अनुभव राजघराने में भी हो सकता था, लेकिन अस्थायी। स्थायी अनुभव तभी हो सकता था, जब कोई समृद्धि और धन सम्पदा को लात मारकर

दरिद्रता को स्वीकार कर लेता है। वह दरिद्रता, समृद्धि के आगे का सोपान है समृद्धि के पहले का नहीं। वह दरिद्रता भी एक अर्थ में समृद्धि का वैभव है और है अन्तिम विलास। उसका त्याग करने में एक सुख है उसे लात मारने में भी एक आनन्द है। वह सुख और वह आनन्द गरीब नहीं कर सकता। जब महान पुरुषों ने, अवतारी पुरुषों ने वैभव विलास का त्याग कर दरिद्र हुए तो दरिद्रों को लगा कि जिस चीज का त्याग करना ही पड़ता है तो प्राप्त करने की क्या आवश्यकता। क्या ऐसी सोच वाला दरिद्र महावीर, बुद्ध आदि की दरिद्रता का सुख और आनन्द का अनुभव प्राप्त कर सकेगा? कभी नहीं। महावीर और बुद्ध की दरिद्रता गुणात्मक रूप से भिन्न है लेकिन उसके कारण हमारे देश ने दरिद्रता का जो दर्शन है उसे विकसित कर लिया। दरिद्र ने अपनी दरिद्रता को स्वीकार कर लिया। अपने हाथों से अपने विकास के दरवाजे बन्द कर लिए। दरिद्रों ने जब देखा कि राजमहलों का त्याग कर लोग दरिद्र बनने जा रहे हैं तो फिर ठीक है। उनको राजमहलों की ओर जाने की क्या आवश्यकता? जाने का प्रश्न ही नहीं उठता और जब दरिद्रता एक बार स्वीकृति बन जाती है तो सम्पत्ति के उत्पादन का प्रश्न ही नहीं उठता। वह समाप्त हो जाता है और इसीलिए हमारा देश गरीब है।

भारत की दरिद्रता कभी भी समाप्त नहीं होगी। जब तक हम सम्पत्ति के प्रति एक स्वस्थ दृष्टि रखने के लिए तैयार न होंगे। यदि देखा जाय तो सम्पत्ति के प्रति हमारी रुग्ण दृष्टि है। एक ओर तो हम सम्पत्ति का करते हैं विरोध और दूसरी ओर लालसा भी रखते हैं सम्पत्ति के प्रति। आप जरा विचार करिए पूरा भारत भौतिकवाद को गाली देता है। भौतिकवाद का तिरस्कार करता है। आज के जो साधु–सन्त भी लौकिक सुख के बजाय पारलौकिक सुख को महत्व देते हैं। जिस लोक को देखा नहीं, उसका गुणगान करते हैं। यह भी एक प्रकार से भौतिकवाद का तिरस्कार ही है। क्रोध में हम पश्चिम के भौतिकवाद को गाली देते हैं। अपमान करते हैं उसका जितना अपमान करते हैं उतना ही भौतिकता के प्रति हमारे मन में आकांक्षा उत्पन्न होती है। बड़ी विचित्र बात है। मन के नियम विचित्र हैं। यदि एक व्यक्ति

संन्यास लेकर जंगल में चला जाता है और उसका मन स्त्री से मुक्त न हुआ हो तो वह घूम–घूम कर अपने प्रवचन में यही कहता फिरता कि कामिनी, कंचन से सावधान रहना चाहिए। उनसे बचना चाहिए। स्त्री नर्क का द्वार है। यह बात वह और किसी से नहीं स्वयं अपने से कहता फिरता है। उसकी वासना स्त्री को अपनी ओर आकर्षित कर रही होती है। आमंत्रण दे रही होती है– आओ शीघ्र आओ। उसके भीतर स्त्री का रूप बन रहा होता है लेकिन उसके प्राण हैं कि वह उससे रक्षा करने के लिए तटस्थ हैं। ऊपर संन्यास का आवरण है और भीतर है वासना की ज्वाला। वह धधक रही है बराबर। फिर भी वह प्रवचन दे रहा है, समझा रहा है कि कामिनी कंचन से सतर्क रहिए। दोनों महापाप हैं। नर्क के द्वार हैं। स्त्री से सावधान जबकि उसके अगल बगल शिष्याओं के रूप में तरुणियाँ बैठी मुस्कुरा रही होती हैं। सच तो यह है कि दूसरे के बहाने वह अपनी ही वाणी को जोर से सुनने का प्रयास कर रहा होता है। आप ध्यान दें, सच्चा संन्यासी वही है जो सभी प्रकार की वासनाओं से मुक्त है। उसे कभी भी स्त्री पुरुष में भेद दिखलायी न देगा।

भौतिकवाद– यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो भौतिकवादी सबसे अधिक भारत है क्योंकि दरिद्र व्यक्ति भौतिकवाद से कभी भी ऊपर नहीं उठ सकता। धनी और समृद्धिशाली व्यक्ति ही भौतिकवाद से ऊपर उठ सकता है क्योंकि धन, ऐश्वर्य और समृद्धि प्राप्त करने के बाद उसे ज्ञात होता है कि इन सबमें कुछ भी नहीं है। कोई सार नहीं है और जिस क्षण निस्सारता की यह घटना घटती है, उसी समय व्यक्ति भौतिकवाद से ऊपर उठ जाता है और सार की खोज में निकल पड़ता है। धन सम्पत्ति का एक ही अति महत्वपूर्ण मूल्य है और वह यह कि उससे व्यक्ति मुक्त हो सकता है। यह आध्यात्मिक महत्व की बात है।

भारत दरिद्रता को स्वीकार करने के कारण धनी देश नहीं हो पाया और इसीलिए धन सम्पत्ति से मुक्त भी न हो सका। लेकिन हम हैं कि बेकार व्यर्थ और निरर्थक बातों को अपने ऊपर थोपे चले जाते हैं और उनका बोझ सिर पर लादे तो रहते ही हैं। उसके अतिरिक्त जीवन और मन के विपरीत कार्य भी करते चले जाते हैं। समझने की बात है कि ऊपर से हम कुछ हैं और भीतर से कुछ और ही हैं। हमारा

सारा व्यक्तित्व एक पाखण्ड के सिवाय और कुछ भी नहीं रह गया है। हमारा व्यक्तित्व एक धोखा के अलावा और कुछ नहीं है। यदि हम दरिद्रता की दार्शनिकता को इसी प्रकार बराबर अपनाएं रहेंगे तो भारत धार्मिक देश नहीं हो सकता। धर्म की जो परिभाषा है, उस परिभाषा में वह नहीं, आयेगा कभी भी। धार्मिक होने के लिए भारत को समृद्ध होना आवश्यक है द्ररिद्र व्यक्ति कैसे धार्मिक हो सकता है सम्भव ही नहीं है। जिसकी रोटी दाल की आवश्यकता पूरी न होती हो। वह ईश्वर की आवश्यकता को कैसे कर सकता है पूरा। मनुष्य की अन्तिम आवश्यकता है परमात्मा। जब जीवन की सारी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं तब अन्तिम आवश्यकता की याद आती है लेकिन हम हैं कि गरीब दरिद्र व्यक्ति को धर्म की और परमात्मा की शिक्षा बराबर देते चले जा रहे हैं और देते चले जा रहे हैं प्रवचन भी। सुनाते जा रहे हैं तमाम पुराणों की कथा भी। गरीब दरिद्र व्यक्ति यह सब सुन भी ले तो भला उसको क्या लाभ? वह परमात्मा के मन्दिर में जायेगा भी और प्रार्थना भी करेगा तो यही कहेगा– भगवान रोटी कब मिलेगी? मकान कब तक बनेगा? नौकरी कब मिलेगी? पत्नी बीमार है, कब ठीक होगी, लड़का कब होगा? कर्ज से मुक्ति कब मिलेगी आदि आदि सच पूछा जाय तो मंदिर, मस्जिद में व्यक्ति इन्हीं सब प्रश्नों को लेकर जाता है परमात्मा के लिए नहीं जाता है। मुख्य कारण भौतिक समस्याओं का हल ही होता है आध्यात्म नहीं होता। आध्यात्मिक जीवन की आवश्यकता, जीवन की सामान्य स्थिति और सुविधा उत्पन्न होने पर ही सम्भव हो सकती है। भारत की दरिद्रता का इतिहास काफी लम्बा है। कम से कम दो हजार वर्ष लम्बा। तब भारत समृद्ध था और धार्मिक भी था। धीरे–धीरे बाद में दरिद्र होता चला गया और दरिद्रता की चरम बिन्दु पर खड़ा है। जब जीवन की आवश्यकता और शरीर की आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं और तब पहली बार हमारी आँखे उस तरफ उठती है, जो शरीर के ऊपर है। जो सभी आवश्यकताओं के ऊपर है और जो सबसे है पृथक्। शरीर की झंझट से जैसे ही मनुष्य मुक्त होता है वैसे ही शरीर से आत्मा की ओर हो जाता है उन्मुख। हमारे प्राण हैं जो अटके हैं शरीर की समस्याओं में, परिवार के झंझटों में और नाना प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति में। फिर

हम कैसे समीप पहुँच सकते हैं आत्मा के या परमात्मा के। जबतक हम दरिद्रता के दर्शन को पकड़े रहेंगे तबतक हम कभी भी ऊपर नहीं उठ सकते। आत्मा परमात्मा को कभी हो नहीं सकते उपलब्ध। समृद्ध व्यक्ति कभी भी दरिद्र हो सकता है स्वेच्छा से, लेकिन स्वेच्छा से दरिद्र होना एक अलग बात है। इसका एक उदाहरण है मेरे पास। उन दिनों कलकत्ता में एक बहुत बड़ा आश्रम था और जिनका आश्रम था वे मारवाड़ी समाज के महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। नाम था स्वामी यमुनानन्द। मारवाड़ी समाज उनको एक महासिद्ध पुरुष की दृष्टि से देखता था। उनकी साधना थी स्वयं उपवास करना और अपनी भक्त मण्डली के सदस्यों को भी कराना। महीनों चलता था उपवास। उपवास करने वाले लोग फिर भी प्रसन्न रहते थे। उनके चेहरे पर आध्यात्मिक गरिमा स्पष्ट झलकती थी। उपवास का कोई विपरीत भाव नहीं था उन पर। सभी अपने आपमें ऊर्जावान अनुभव कर रहे थे। घोर आश्चर्य हुआ तीन–तीन महीने चार–चार महीने का उपवास। कोई प्रभाव नहीं उपवास का क्या बात है। उन्हीं दिनों बंगाल में अकाल पड़ा था। सैकड़ों क्या हजारों लोग अकालग्रस्त थे। वहां लोगों को भूख से मरते हुए देखा। जिनको हफ्तों से एक रोटी भी नहीं मिली थी उनके चेहरे को भी देखा। जिन लोगों ने आश्रम में रहकर महीनों रहकर उपवास किया था– उनका भी चेहरे देखा था। एक का चेहरा दीन हीन–सा था याचना से भरा हुआ था। दूसरे का चेहरा गरिमा से भरा था। विचित्र बात थी। एक भूख है और दूसरा है उपवास। उपवास वे लोग करते हैं जो बहुत खाते हैं और रोज उनका पेट भरा रहता है भूखे व्यक्ति को भरपेट कभी खाने को ही नहीं मिला। भूख और उपवास में यही अन्तर है। बुद्ध का पेट जब तक खाली था तब तक उनको बुद्धत्व लाभ नहीं हुआ। जब पेट भर गया तो समाधि लग गयी और बुद्धत्व को उपलब्ध हो गये। महावीर की दरिद्रता में और एक भीख मांगने की दरिद्रता में भी उतना ही अन्तर है जितना एक पेट भरे उपवास करने वाले और एक अकालग्रस्त में है अन्तर। उपवास में आनन्द का अनुभव करता है एक व्यक्ति और दूसरा व्यक्ति करता है कष्ट का अनुभव रोटी के अभाव में देखा जाय तो रोटी का अभाव दोनों ओर है लेकिन एक का अभाव सुखकारक है और दूसरे का अभाव है दुखकारक।

मेरे विचार से गरीब की अवस्था कष्ट की अवस्था है। अमीर की अवस्था दुख की अवस्था है। दुख की अवस्था से कष्ट की अवस्था श्रेष्ठ मानता हूँ मैं क्योंकि वह काफी भीतर का दुख है। तात्पर्य यह कि जिस तल पर हमारा दुख होता है। उसी तल पर हम सुख को भी उपलब्ध हो सकते हैं। यदि किसी गरीब व्यक्ति को कोई सुख उपलब्ध होगा तो उस सुख में सुविधा होती है। गरीब को भूख लगी है और आपने उसे रोटी दे दी। उसने रोटी खा भी लिया लेकिन उसमें सुख नहीं है। केवल थोड़ी देर के लिए दुख मिट जाता है। सुविधा मिल जाती है लेकिन आपके भीतर दुख है और यदि वह दुख समाप्त हो जाए तो आपको सुख प्राप्त हो गया। जितने तल पर हमारा दुख होगा। उतने ही ऊँचे तल पर हमारे सुख की सम्भावना होगी। गरीबी एक कष्ट है और गरीबी में किसी आग्रह का होना अपराध है। हम सभी जिम्मेदार हो जाते हैं उसके। लेकिन दुख में किसी व्यक्ति का दुखी होना उसकी बिल्कुल व्यक्तिगत बात है। दुख के लिए हम जिम्मेदार नहीं रहते। आपके कष्ट के लिए हो सकते हैं हम जिम्मेदार। जीवन का अर्थ क्या है? बुद्ध को यह प्रश्न सदैव परेशान करता रहता था। भूखे व्यक्ति के मन में यह प्रश्न कभी भी नहीं उठ सकता। उसके मन में बराबर यह प्रश्न उठेगा– रोटी, दाल कहाँ है? कैसे मिल सकती है? गरीब, भूखा व्यक्ति का जीवन क्या है और जीवन का अर्थ क्या है? यह जानना आवश्यक नहीं है। वह तो जीवन बचाने की चिन्ता में है। जीवन की रक्षा हो जायेगी। तब जीवन क्या है प्रश्न उभरेगा मन में। कभी कोई गरीब व्यक्ति जीवन दर्शन से संबंधित प्रश्न नहीं कर सकता। वह जब भी प्रश्न करेगा अपने जीवन की रक्षा से संबंधित ही प्रश्न करेगा। जब सारी सुख सुविधा उपलब्ध रहती है, पेट भरा रहता है, शरीर पर वस्त्र रहता है तब जीवन क्या है यह प्रश्न सामने आता है व्यक्ति के।

आपने अपनी जिज्ञासाओं के समाधान के रूप में मेरा इतना सब सुना, इसके लिए धन्यवाद।

आपको आध्यात्मिक जीवन में इतनी शीघ्र सफलता कैसे प्राप्त हो गयी? इस प्रकार और इस प्रकार के अन्य प्रश्न भी प्रायः किए जाते हैं मुझसे। मेरा उत्तर है– समय.....। जीवन से अधिक मूल्यवान समय है। भगवान

श्रीकृष्ण ने कहा है काल यानी समय में 'मैं' क्षण हूँ। आपको जीने के लिए केवल एक क्षण प्राप्त होता है और जब आप एक क्षण जी लेते हैं तब आपको प्राप्त होता है जीने के लिए दूसरा क्षण। अपने जीवन काल में प्रत्येक क्षण का मूल्य समझा है मैंने और इस क्षण को पूर्णरूप से जीया भी है मैंने। अब रही साधना की बात। उपासनाएँ तो जितने देवी–देवता उतनी ही उपासनाएँ। लेकिन जहाँ तक प्रश्न साधना का है, वह दो ही हैं–योग साधना और तंत्र साधना और इन दोनों का जन्म वेदों से हुआ है। दोनों वेदजन्य है। योग मार्ग की साधना और तंत्र मार्ग की साधना योग्यता और संस्कार पर निर्भर है। यदि आपमें योग्यता और संस्कार है तो दोनों साधना का मार्ग खुला है आपके लिए अन्यथा नहीं। जहाँ तक मेरा प्रश्न है। साधना की दृष्टि से न योग को स्वीकार किया और न तो तंत्र को ही। दोनों के मार्ग पर चलना आवश्यक है लेकिन सत्य की खोज में, वास्तविकता की खोज में, तथ्य की खोज में और परिणाम की खोज में जहाँ खोज की वृत्ति है, वहां अनुभव का प्राप्त होना निश्चित है। जो अनुभव साधना से सम्भव नहीं है। वह अनुभव प्राप्त हुआ मुझे खोज वृत्ति से। लेकिन उसमें पूर्ण श्रद्धा विश्वास और पूर्ण समर्पण का भाव होना चाहिए और तभी संकल्प की सिद्धि सम्भव है और खोज के उद्देश्य में प्राप्त होती है सफलता भी। मुझे इस बात का स्वयं आश्चर्य है कि मैं किस प्रेरणा से वशीभूत होकर चल पड़ा सत्यान्वेषण के मार्ग पर ज्ञात नहीं। सम्भव है मेरा पूर्व संस्कार रहा हो और रही हो योग्यता भी। यदि ऐसी बात न होती तो आज मैं जो कुछ भी हूँ, वह कदापि न होता कुछ और ही होता अभी तक। जिन तिमिराच्छन्न और रहस्यमय सत्यों से परिचित हुआ हूँ, अवगत हुआ हूँ और साक्षात्कार किया हूँ उससे हतप्रभ है मेरी आत्मा। संसार के लिए मैं शववत् हूँ और संसार है मेरे लिए श्मशान तुल्य।

अज्ञात पथ पर उस समय रही होगी मेरी आयु 15 या 16 वर्ष के लगभग। श्मशान घाट शुरू से रहा है प्रिय मेरे लिए। श्मशान और श्मशान से जलती हुई चिताओं को देखकर विचित्र सा अनुभव होता था और मिलती थी एक अबूझ सी शान्ति। काशी का हरिश्चन्द्र घाट और

हरिश्चन्द्र घाट का पौराणिक महाश्मशान। हरिश्चन्द्र घाट के बगल वाले लालीघाट की टूटी फूटी और धूल से भरी सीढ़ियों पर पैर लटकाए गालों पर हाथ धरे, मौन साधे देख रहा था मैं धूं–धूं करती जलती हुई चिता को। सांझ की स्याह कालिमा बिखर चुकी थी श्मशान के वातावरण में। चारो ओर घोर सन्नाटा और उस श्मशानी सन्नाटे को चिथड़े–चिथड़े करती हुई कभीकदा गूंज उठती थी, श्मशान के मरियल कुत्तों के समवेत् स्वर में रोने की आवाज। कहीं विलाप भी कर उठता था सियारों का झुण्ड।

चिता की उठती हुई लाल, पीली लपटों को देखते–देखते न जाने क्या हो गया मुझे। शायद अति विह्वल हो उठी थी मेरी आत्मा। निश्चय ही उसी के वशीभूत होकर चल पड़ा मैं और घाट ही घाट में पहुँच गया राजघाट रेलवे स्टेशन। शरीर पर एक कुर्ता और एक मटमैली लुंगी। कुर्ते की दोनों जेबें खाली और शरीर के वे दोनों वस्त्र ही थी मेरी सम्पत्ति। प्लेटफार्म पर खड़ी थी एक गाड़ी। कौन सी गाड़ी थी? कहाँ से आयी थी और कहां जा रही थी? कुछ पता नहीं ऐसा लगा जैसे किसी ने ढकेल कर बिठा दिया हो। गाड़ी में डब्बा थोड़ा खाली था। एक कोने में जाकर बैठ गया मैं सिकुड़कर। अब तक रात हो चुकी थी। बाद में पता चला कि वह अपर इण्डिया थी दिल्ली से स्यालदाह जाने वाली। मैं बैठा रहा, बैठा रहा और पूरी रात बैठा ही रहा। सवेरा हुआ। सफेद पैंट, काला कोट पहने और सिर पर अंग्रेजी टोप लगाये एक व्यक्ति आकार खड़ा हो गया मेरे सामने। कौन था पता नहीं। पहले काफी देर तक घूरता रहा वह मोटा ताजा व्यक्ति मेरी ओर फिर कड़क का बोला–कौन है स्साले.....चोर उच्चक्का या पाकिटमार?..... बोल।

घबड़ा गया मैं। अपने को किसी प्रकार संभाला और फिर थोड़ा हकलाते हुए बोला– पता नहीं! पता नहीं!

कहाँ से बैठा है?..... पता नहीं।

कहाँ जायेगा?..... पता नहीं।

पता नहीं, पता नहीं, चल बाहर निकल और फिर उस व्यक्ति ने मेरा हाथ पकड़ कर खींचा और खींचकर डब्बे के निकाल दिया बाहर।

लड़खड़ाकर जमीन पर गिरते–गिरते बचा मैं। किसी तरह उठकर खड़ा हुआ मैं। स्तब्ध अवाक् सा खड़ा रहा कुछ देर तक और फिर सिर घुमाकर चारो ओर देखा। लम्बा चौड़ा प्लेटफार्म। विधवा की मांग की तरह सूना हो चुका था। दो चार खलासी एक ओर खड़े चुपचाप बीड़ी पी रहे थे। सामने नजर घूम गयी– एक लम्बे चौड़े पत्थर पर लिखा था बंगला में, अंग्रेजी में और हिन्दी में रामपुर हाल्ट। हे भगवान! रामपुर हाल्ट। एक ही रात में कहाँ से कहाँ आ गया मैं। एक अर्धवृद्ध बंगाली सज्जन प्लेटफार्म पर टहल रहे थे। शरीर पर काला कोट और सफेद पैंट। एक हाथ में लाल, हरी झण्डी और दूसरे हाथ में चाय का कुल्लड़। काला रंग और बदरंग चेहरा और उस बदरंग चेहरे पर चिन्ता की कई रेखाएँ। आयु लगभग साठ के आसपास। नाम था चक्रधर गांगुली। स्टेशन मास्टर थे यह समझते देर न लगी थी मुझे और फिर शायद मुझे बंगाली समझ कर बंगला भाषा में कम्पित स्वर में धीरे से पूछा–'कहाँ से आना हुआ है? मैंने भी बंगला भाषा में ही उत्तर दिया– काशी से।

मोटे लेन्स के चश्मे के भीतर से अपनी डबडबाई आँखों से एक बार ध्यान से देखा गांगुली महाशय ने। बंगाली जैसा रूप रंग और बंगला भाषा काम आ गयी। दोनों हाथ बढ़ाकर प्रेम से गले लगा लिया महाशय ने। कौन सा स्नेह उमड़ आया था उनके हृदय में उस समय समझ न सका। कोट की बदबू नाक में भर गयी। गले लगाने के बाद हकलाते हुए बोले– मेरा चारू मिल गया। तुम बिल्कुल मेरे बेटे चारू की ही तरह तो हो। बाद में पता चला एक बेटी है। आयु अधिक हो गयी है। शादी नहीं हुई है अभी तक। एक बेटा, सुन्दर स्मार्ट वाक्पटु आयु यही सत्रह अठारह साल। एक साल पहले रेल से कटकर मर गया वह। चारू नाम था चारू गांगुली। चारू की क्षत विक्षत लाश सफेद कपड़े में लपेट कर घर ले आये गांगुली महाशय हाहाकार मच गया।

जवान बेटी की शादी न होने का गम और जवान बेटे की मृत्यु का आघात! साफ दिखलायी देता था गांगुली महाशय के स्याह चेहरे पर। मुझे देखकर वह घाव और हो गया ताजा। काशी से चलकर कैसे आना हुआ बेटा? स्नेह से मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा गांगुली महाशय ने। क्या उत्तर देता? समझ में नहीं आया। बोला पता नहीं। कैसे आ गया मैं यहाँ।

तारा माँ की कृपा है। उसी ने तुमको यहाँ बुलाया है। चहककर बोले गांगुली महाशय।

आने को तो आ गया, लेकिन अब जाता कहाँ? किसके घर ठहरता? कौन देगा मुझे रोटी! मेरी मानसिक स्थिति को शायद समझ गये गांगुली महाशय। अपने क्वाटर में ठहरने की व्यवस्था कर दी उन्होंने। पत्नी का नाम था शुभंगा। पुत्री का नाम था पल्लवी। शुभंगा को देखकर एकाएक माँ की याद आ गयी। चरण स्पर्श कर एक ओर खड़ा हो गया मैं। छलछला आयी शुभंगा की आँखे। अपलक मेरी ओर देख रही थी पल्लवी। शायद मुझमें खोज रही थी अपने छोटे भाई की छवि। तीस से अधिक आयु, गुलाबी रंग, सुगठित शरीर, बड़ी आँखे झील जैसी गहरी। गोल मटोल चेहरे पर हमेशा स्थिर रहने वाली पीड़ा भरी मुस्कान। समझते देर न लगी मुझे। शायद शादी की पीड़ा थी वह। लगा, जैसे बंगाल का सारा सौन्दर्य सिमट कर भर आया है पल्लवी की गुलाबी काया में।

वह कौन थी? खाना पीना एक ही साथ हुआ। शुभंगा माँ ने प्रेम से खिलाया। सोने के लिए भी हो गयी मेरी व्यवस्था। थका था जल्दी नींद लग गयी। सपने में देखा– एक लम्बी–चौड़ी कदकाठी की स्त्री मेरे सामने खड़ी है। रंग काला था। उसके बाल खुलकर बिखरे हुए थे पीठ पर। गले नरमुण्डों की माला थी। जो पैर तक झूल रही थी। आँखें खून की तरह लाल हो रही थी। लम्बी जीभ बाहर की ओर निकली हुई थी और वह भी लाल थी खून की तरह। निश्चय ही उसके चार हाथ थे, लेकिन मैं एक ही हाथ देख पा रहा था और जिसमें उसने एक भयानक खड्ग पकड़ रखा था और उस भयानक खड्ग से भी चू रहा था जैसे रक्त। बड़ा ही डरावना, भयानक और वीभत्स रूप था उस कृष्णवर्णा स्त्री का लेकिन फिर भी उसके होंठो पर मुस्कुराहट थी और चेहरे पर था करूणा, दया और अनुकम्पा का मिलाजुला भाव। उसकी बड़ी–बड़ी भौराली आँखों में एक अजीब सा सम्मोहन था। उसी सम्मोहन भरी आँखों की ओर देख रहा था अपलक और उसी समय जैसे कोई कह रहा हो मधुर स्वर में 'आ गया तू' तेरी ही तो प्रतीक्षा कर रही थी मैं। चलो, अच्छा हुआ। फिर थोड़ा रूक कर मधुर स्वर में कहा

किसी ने– तुमको जीवन भर रोना ही तो है। तेरे भाग्य में ही यही लिखा है। मैं क्या करूँ? बस तेरा आँसू ही पोंछ सकती हूँ। निश्चय ही वह किसी नारी कण्ठ से निकला हुआ स्वर था इसमें सन्देह नहीं। फिर एकाएक छन्न् से टूट गया सपना। सवेरा होने ही वाला था। अचानक आँखे खुल गयी। क्वाटर के बाहर कोई उच्च स्वर में तारा माँ का स्तुतिगान कर रहा था। स्वर में कोमलता थी और था भाव। कौन है वह जो माँ तारा का स्तुति गान कर रहा है इतने सवेरे और वह भी बड़े मनोयोग से। उठकर बैठ गया मैं बिस्तर पर और तभी पल्लवी आ गयी कमरे में लगभग हाँफती हुई। अटक अटक कर कहने लगी। अरुण भैया, अरुण भैया! देखो तो बाहर आकर! बाबा आये हैं। दर्शन कर लो तारा माँ के साधक हैं। फिर मेरा हाथ खींच कर कमरे के बाहर निकाल ले गयी मुझे वह और बाहर आकर देखा– सामने एक भीमकाया महाशय खड़े थे तन कर। लम्बी चौड़ी कदकाठी का शरीर, श्याम वर्ण, सिर पर जटाजूट, लम्बी घनी दाढ़ी, लम्बे–चौड़े ललाट पर त्रिपुण्ड की रेखाएँ और उसके बीच में लगभग सिन्दूर का बड़ा सा गोल टीका। शिव–शक्ति का प्रतीक। साधना के तेज से दप्–दप् करता चेहरा। बड़े–बड़े रक्ताभ नेत्र जिनसे एक विचित्र सी कोई अज्ञात ज्वाला धधक रही थी उस समय। शरीर पर रेशमी लाल वस्त्र, गले में रंग बिरंगे मनको की मालाएँ, जिनके बीच रूद्राक्ष की भी थी माला, पैरों में खड़ाऊ कुल मिलाकर एक उच्चकोटि के साधक लग रहे थे महाशय। वैसा व्यक्तित्व भी था उनका।

स्वामी सत्यानन्द शाक्त– उस महान साधक का नाम था स्वामी सत्यानन्द शाक्त। तारा के उपासक थे। योग तंत्र में अपना ऊँचा स्थान रखते थे। कई प्रकार की सिद्धियाँ भी प्राप्त थी उनको। वक्रेश्वर महाश्मशान में रहते थे और रहते हुए लगभग तीस वर्ष हो गये थे। कभीकदा अपने भक्तों को आशीर्वाद देने रामपुर आ जाते थे। गांगुली महाशय परम शिष्य थे शाक्त महाशय के। सपरिवार उन्होंने भी उस तंत्र साधक का चरण स्पर्श किया। मैंने भी किया चरण स्पर्श। मेरे संबंध में अभी तक जो कुछ जानते समझते थे– वह सब उस महान साधक को बतला दिया। सुनने के बाद महासाधक ने वक्र दृष्टि से मेरी ओर

देखा एक बार और फिर गम्भीर स्वर में बोले– तेजस्वी और संस्कारी बालक है। कभी मेरी कुटिया में लेकर आना।

तीन–चार दिन का समय निकल गया। रामपुर से वक्रेश्वर थोड़ा दूर था। सुना था बड़ा लम्बा–चौड़ा श्मशान है वहां। माँ तारा का मन्दिर भी है। वक्रेश्वर के श्मशान में बराबर जलती रहती है चिता। सिद्ध श्मशान है। वहाँ बैठने से पूरी हो जाती है मन की मनोकामनाएँ। यह सब बतलाया था मुझे पल्लवी ने। वह स्वयं तारा की उपासिका थी। घंटों बैठकर ध्यान करती थी। जप भी करती थी। उस समय दप्–दप् करने लगता था उसका चेहरा। देखकर लगता था स्वयं माँ तारा ही बैठी हैं आसन पर पल्लवी के रूप में। पीछे खड़ा होकर अपलक निहारा करता था मैं पल्लवी के चमकते चेहरे की ओर। अजीब सी शान्ति का अनुभव होता था।

क्वाटर के बाहर एक बड़ा सा बरगद का पेड़ था। एक दिन सांझ के समय उसके नीचे बैठकर सोचने लगा– ये सब क्या है मेरे जीवन में क्यों और कैसे रामपुर आ गया? सपने में जिस स्त्री को देखा था, वह कौन थी? उसकी वाणी में कौन सा रहस्य छिपा था? फिर सत्यानन्द का मिलना और मेरे प्रति उनकी रहस्यमयी वाणी? जितना सोचता उतना ही उलझ जाता था मन। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। गांगुली महाशय अपनी कभी रात की तो कभी दिन की ड्यूटी में व्यस्त रहते थे। समय ही नहीं मिलता उनको कि मुझको साथ लेकर चले वक्रेश्वर एक दो बार कहा भी तो टाल गये महाशय।

वक्रेश्वर की ओर- एक दिन क्यों और किस प्रेरणा के वशीभूत होकर चल पड़ा पैदल ही वक्रेश्वर की ओर। पूरे तीन घंटे के बाद काफी थक गया मैं। एक बड़े से पीपल के नीचे एक पत्थर पर बैठ गया। देखा पीपल के डालों पर बंधे हुए थे कई यमघंट। समझते देर न लगी महाश्मशान की सीमा में आ गया था और तभी हरी बोल हरि बोल की आवाज सुनायी दी। कोई शव आ रहा था। उठकर खड़ा हो गया। पहली बार आना हुआ था वक्रेश्वर। वहां का वातावरण कुछ विचित्र सा लगा मुझे। शान्ति तो थी लेकिन उस शान्ति में कोई अज्ञात भय भी था मिला हुआ। दुपहरिया ढल चुकी थी। कहां जाऊँ? कहां मिलेंगे कापालिक महाशय। उस समय

तंत्र मंत्र और किसी प्रकार की साधना का कोई ज्ञान नहीं था। इतना विशाल महाश्मशान भी होगा इस धरती पर इसकी कल्पना भी कभी नहीं की थी मैंने। श्मशान के वातावरण में यमलोक की सारी खिन्नता भरी उदासी बिखरी हुई थी। न जाने कैसा हो गया मेरा मन। चारो ओर जल रही थी चिताएँ और उनमें उठने वाली लाल पीली लपटें हाहाकार कर रही थी वायुमण्डल में। चिताओं के आसपास कई साधक साधना कर रहे थे मौन साधे। मेरी आँखें उन ध्यानस्थ साधकों में खोज रही थी कापालिक महाशय को। अन्त में निराश होना पड़ा। थोड़ा आगे बढ़ा चार–पाँच चितासाधक बैठे एक ओर श्मशान में मानव खोपड़ी में मदिरापान कर रहे थे। काफी लम्बा–चौड़ा विशाल मन्दिर था माँ तारा का। पहली बार वैसा मन्दिर देखने को मिला था मुझे। मन्दिर से थोड़ा हट कर पशुबलि हो रही थी कई स्थानों पर चारों ओर जमीन पर खून ही खून। सब कुछ देख कर घबराने लगा मेरा मन। उल्टी–सी आने लगी। सोचा माँ का दर्शन भी कर लूँ। कैसी हैं माँ तारा? सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर गया। सामने था नाट मन्दिर और उसके बाद था माँ का मन्दिर। माँ भवतारिणी की अद्‌भुत मूर्ति अब मेरे सामने थी। सोने से मढ़ी हुई मुक्तकेशी माँ महामाया तारा का मुख बड़ा ही भव्य और आकर्षक प्रतीत हुआ मुझे। लगा जैसे मुझे देख कर हँस रही हो माँ और उस हँसी में एक अद्‌भुत स्नेह झर रहा है। अपलक निहारता रहा माँ की अलौकिक छवि को। एकाएक उस मनोहर छवि में परिवर्तन होने लगा और परिवर्तन के बाद एक ऐसा भयानक रूप मेरे सामने आया– जिसे सपने में देखा था मैंने। सारा शरीर जैसे कांपने लगा मेरा और उसी के साथ आँखों से आँसू निकल कर गालों पर बहने लगे। न जाने क्या हो गया था मुझे उस समय। कण्ठ अवरूद्ध हो गया था जैसे। उस छवि में और सपने में देखी गयी छवि में कहीं कोई अन्तर नहीं था। कैसी लीला थी माँ की? भरे गले से बस इतना ही बोल पाया– माँ...। बस! पैर थर थरा रहे थे। किसी प्रकार सीढ़ियाँ उतर कर नीचे आया और लम्बे–चौड़े दालान के एक कोने में बैठ गया दोनों पैरों के बीच मुँह छिपा कर। रोने का न जाने क्यों मन कर रहा था, लेकिन रो नहीं पा रहा था। कब तक अपने आपको रोक पाता रोने ही लगा हिलक–हिलक

कर। क्या हो गया था मुझे, समझ में नहीं आ रहा था कुछ। थोड़ी देर बाद सिर उठाया। देखा सामने एक महिला खड़ी बड़ी तन्मयता से देख रही थी मेरी ओर। चालीस से अधिक उम्र नहीं थी। रूप रंग से बंगालिन लग रही थी वह। लाल चौड़े पाट की साड़ी, हाथ में लाल चूड़ियाँ और शंख के बलय। माँग में लाल सिन्दूर की लम्बी रेखा और जब मैंने उसकी ओर आँसू भरी आँखों से देखा तो मुस्कुरा दी धीरे से। बड़ी अच्छी लगी मुझे उसकी मुस्कुराहट। नाम था मणिमाला चक्रवर्ती। पति पूजापाठ करते थे। सन्तान कोई नहीं, मुझे देखकर न जाने क्यों खड़ी हो गयी थी– यह उसकी भी समझ में नहीं आ रहा था। पूछने पर अपने विषय में सब कुछ बतला दिया मैंने एक सांस में।

आओ मेरे साथ! सांझ हो आयी है। यहाँ कहाँ भटकोगे महाश्मशान में यह कर मणिमाला आगे बढ़ गयी और मैं भी चल पड़ा उसके पीछे–पीछे मूंक पशु की तरह। श्मशान के बाहर चारो ओर फैला हुआ निर्जन इलाका था। दामोदर नदी की पतली धारा वहाँ से दूसरी दिशा की ओर मुड़ गयी थी। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर एक कच्चा मकान दिखलायी दिया। घास–फूस का छप्पर पड़ा था, मकान के ऊपर। गांव देहात जैसा ही था वह मकान और उसी मकान के टूटे दरवाजे के सामने जाकर खड़ी हो गयी मणिमाला। उसके पीछे मैं खड़ा था। समझ में कुछ नहीं आ रहा था। दरवाजा को उसने धीरे से खोला और भीतर चली गयी वह। हाथ से इशारा कर मुझे भी भीतर बुला लिया उसने। मकान के भीतर का वातावरण किसी रहस्यमय लोक सा लगा मुझे।

स्वामी सत्यानन्द कापालिक से भेंट– रहस्य से भरा लगा वहाँ, मुझे सब कुछ। सामने एक बड़ी सी खिड़की थी। जिसके पीछे से रजनीगंधा की लतरें झांक रही थी। खिड़की के बगल में कच्ची दीवार पर माँ तारा का कोई पुराना चित्र टंगा था। शीशा मटमैला हो चुका था। उस पर पड़ी फूल माला मुरझा कर सूख चुकी थी। खूंटी पर कुछ कपड़े टंगे हुए थे। जमीन पर एक पानी भरी बल्टी और कुछ जूठे बर्तन रखे हुए थे। कमरे में दीवार से लगा एक लम्बा–चौड़ा तख्त था– जिस पर कोई महाशय पद्मासन की मुद्रा में मौन साधे निर्विकार सिर झुकाए बैठे हुए थे। पहचानते देर न लगी आश्चर्यचकित हो उठा एकबारगी।

आँखे फाड़कर देखा– वे [illegible] कापालिक थे। अवाक् रह गया। कैसा संयोग? जिसकी खोज में आया था, वह सहजभाव से इस प्रकार मिल जायेंगे– यह कभी सोचा ही नहीं था मैंने। सामने मदिरा की बोतल थी और था मानव खोपड़ी में पके मांस के टुकड़े। कापालिकों का आवश्यक भोजन।

बाबा की आँखे खुली। मेरी ओर देखा। आ गया तू! आना ही था तुझे! तू क्या है? स्वयं नहीं जानता। कोई भी नहीं जानता अपने आपको। सामने मदिरा मांस देखकर घृणा हो रही होगी न। ऐसा नहीं, दोनों महातत्व है– अग्नि तत्व और वायु तत्व। दोनों का स्वभाव विपरीत है। अनेक नैसर्गिक स्वभाव को साधना द्वारा अनुकूल हो जाने पर और तत्पश्चात् उनका एक साथ सेवन करने के परिणामस्वरूप एक विशेष प्रकार की ऊर्जा उत्पन्न होती है। जो कापालिक सम्प्रदाय के साधकों को समाधि लगाने में तत्काल सहयोगी सिद्ध होती है। तू संस्कारी है। योग्यता रखता है। पिछले जन्मों से इधर–उधर मारा मारा फिर रहा है। अच्छा हुआ कि ब्राह्मण परिवार में हो गया तेरा जन्म। नहीं तो खूब पछताता। माँ को तेरी प्रतीक्षा थी। वह पूरी हो गयी। कृपा प्राप्त हो गयी तुझे। अब बचपना मत करना।

भैरवी का प्रयोजन– मुंह बाये सुनता रहा मैं सब। समझ के बाहर था मेरे लिए। बाद में बहुत सी बातों का पता चला। मणिमाला भैरवी थी कापालिक महाशय की।

भैरवी से क्या लाभ होता है? भैरवी की क्यों आवश्यकता पड़ती है? दोनों प्रश्न मिल कर मथने लगे मेरे मेरे मस्तिष्क को। बाबा ने समाधान किया। स्त्री शब्द के अन्दर पांचों तत्व हैं। पंचतत्वों के योगायोग से 'स्त्री' शब्द का निर्माण हुआ है। माँ महामाया जगदम्बा कहती हैं– स्त्रियाँ समस्ता.....सकला.....यानी 'स्त्री' रुप में सर्वत्र विद्यमान हूँ मैं। स्त्री साकार शक्ति है। विपुल शक्ति का भण्डार है। उसका [illegible] साधक के लिए उस शक्ति के बिना सहयोग प्राप्त किये साधना मार्ग पर चलना दुश्कर है बन्धु! [illegible] आवश्यकता पड़ती है। [illegible] प्रदान कर सर्वप्रथम स्त्री के शरीर को शुद्ध किया जाता है। फिर [illegible] है। तत्पश्चात्

[illegible] दीक्षा देकर उसकी आत्म शुद्धि की जाती है। इन सबसे स्त्री की जो मलिन ऊर्जा होती है– वह शुद्ध होकर योग्य बन जाती है। तत्पश्चात् विशेष रूप से जम्भृणी मुद्रा द्वारा साधक स्त्री की परिशुद्ध ऊर्जा को आवश्यकतानुसार ग्रहण करता है। परिणामस्वरूप दोनों में परमेश्वर तत्व और परमेश्वरी तत्व का उदय होता है। परमेश्वररूप साधक, परमेश्वरीरूपा साधिका को शक्तिपात द्वारा भैरवी दीक्षा प्रदान करता है जैसे परमेश्वर का अस्तित्व परमेश्वरी से है। भगवान का अस्तित्व भगवती से है कृष्ण का अस्तित्व राधा से है उसी प्रकार भैरव रूप साधक का अस्तित्व भैरवी से समझना चाहिए। भैरवी के स्पर्श मात्र से साधक चैतन्य हो उठता है। (पढ़े– तंत्रम्)

भैरवी मणिमाला- मणिमाला भी इसी प्रकार भैरवी बनी होगी कापालिक की। लेकिन मणिमाला थी कौन? इस प्रश्न के उत्तर में मणिमाला ने ही सुनाई अपनी व्यथा कथा। काशी के एक अच्छे ब्राह्मण कुल में मेरा जन्म हुआ था। बचपन बीता युवावस्था में प्रवेश किया। पन्द्रह सोलह वर्ष की थी तब। गेहुंआ रंग, गोलमटोल शरीर, घने काले बाल, सुन्दर चेहरा। सौन्दर्य की जो परिभाषा है, उसका कुछ अंश साकार होता था मुझमें। सामने एक युवा लड़का रहता था। देखने सुनने में अच्छा था। उससे मेरा रोज सामना होता था। वह भी मुझे देखकर मुस्कुरा देता और मैं भी। दोनों को एक दूसरे के प्रति असीम आकर्षण था। जब किसी दिन किसी कारण वह दिखलायी नहीं देता था तो मेरा उदास हो जाता था मन। रात को नींद भी न आती। हर समय उसका रूप सामने थिरकने लगता। बैचेन होकर करवट बदलने लगती। लगभग यही स्थिति उसकी भी थी। सच पूछा जाय तो हम दोनों एक दूसरे के लिए पागल थे। बाद में मौका मिलने पर बाते भी होने लगी थी। शादी करना चाहती थी मैं और वह भी, लेकिन अभी हम दोनों सामाजिक दृष्टि से इस योग्य नहीं थे। वह भी ब्राह्मण था मुझसे उसकी आयु अधिक थी सात आठ साल के लगभग। अब वह शादी के योग्य हो चला था। माँ–बाप ने कर दी उसकी शादी । वह विवश था और मैं भी। मूक दर्शक बनकर देखती रही मैं अपने प्रेम की चिता को जलते हुए। मेरे एक दूर गाँव के चाचा लगते थे जो युवक थे कभीकदा मेरे

यहाँ आते जाते थे। न जाने कैसे उनकी कुदृष्टि मुझ पर पड़ गयी। किसी प्रकार उनसे पीछा छुड़ाया मैंने। बाद में एक युवक से परिचय हुआ। वह भी काफी सुन्दर और सज्जन था प्रेम कर बैठी मैं उससे। वह भी मुझको काफी चाहता था। नाम था दीपक! दोनों एकान्त में मिलते, तरह–तरह की बाते करते, भावी योजना बनाते। गैर जाति का होने पर भी शादी के लिए तैयार थी मैं और तभी फिर ग्रहण लग गया। जन्माष्टमी का पर्व था। मैं प्रसन्न थी। उस दिन मन्दिरों में घूमने और मनौतियाँ मानने का कार्यक्रम बनाया गया था। दालान में बैठी मैं राधा कृष्ण के लिए माला गूंथ रही थी और तभी किसी ने आकर बतलाया कि हत्या कर दी गयी दीपक की। माला हाथ से छूट कर बिखर गयी जमीन पर और उसी के साथ बिखर गये मेरे सारे अरमान सारी आशायें, सारी अभिलाषाएँ और बिखर गये सारे सपने। जीवन शून्य से भर गया। शून्य के सिवाय बचा ही क्या था अब। निराशा ग्लानि और पीड़ा के सागर में जैसे आकण्ठ डूब गयी थी मैं। जीवन में अन्धेरा ही अन्धेरा था अब। कोई भी स्त्री अपने पहले प्रेम को जीवन भर भूल नहीं सकती बेटा। मैं भला कैसे भूल सकती थी। मेरी पीड़ा को और मेरे हृदय के दुख को निश्चित ही समझा था दीपक ने। एक दिन भाव विह्वल होकर मुझे अंक में लेते हुए दीपक ने कहा था– मैं तुमसे प्रेम ही नहीं करूँगा शादी भी करूँगा! कोई भी बाधा बाधक नहीं बन सकती मेरी तुम्हारी शादी में।

यह सुनकर मेरी आँखों में आँसू भर आये थे। तुम्ही सोचो बेटा! दीपक की मृत्यु का समाचार सुनकर क्या स्थिति हुई होगी मेरी। मेरी पीड़ा को परमात्मा के सिवाय भला कौन समझा होगा। उस दारुण बेला में रोने के सिवाय और कुछ नहीं था उस समय मेरे पास। दिन भर रोती रहती खाना–पीना, सोना सब छूट गया था मुझसे। मेरी माँ से मेरी हालत देखी न गयी और एक दिन मुझे अपने साथ लेकर मुहल्ले में रहने वाले एक पण्डित जी के यहाँ ले गयी। शायद वह मेरा ग्रहगोचर समझना चाहती थी। पण्डित जी ज्योतिषी तो थे ही, पूजापाठी भी थे। थोड़ा बहुत तंत्र–मंत्र भी जानते थे। पण्डित जी युवक थे। थोड़ा व्यक्तित्व भी आकर्षक था। मझोले कदकाठी के थे। गेहुआ रंग था।

मुझे सामने बैठा कर पहले काफी देर तक अपलक मेरी आँखों में झांकते रहे और खोजते रहे न जाने क्या? सम्मोहित–सी हो उठी मैं। न जाने क्यों झर–झर कर बहने लगे आँखों से आँसू। संभाल न सकी अपने आपको। पण्डित जी की गोद में सिर रखकर रोने लगी हिलक–हिलक कर मैं। मेरे सिर पर हाथ फेरने लगे वह। बड़ा अच्छा लगा। उनके स्पर्श से थोड़ी शान्ति मिली मुझे। अपनापन सा लगा। फिर पीठ सहलाते हुए कोमल स्वर में प्रेम की परिभाषा समझायी और फिर बोले– कोई किसी से प्रेम नहीं करता। सब वासना का खेल है। अपने आपको संभालो। खूब प्रसन्न रहने का प्रयास करो! थोड़ा रूक कर मेरी माँ की ओर सिर घुमाकर बोले– आपने अच्छा ही किया जो ले आयी इसे नहीं तो पागल हो जाती। आत्महत्या भी कर सकती थी। रोज लाया करो! अनुष्ठान करूँगा इसके लिए। कहने की आवश्यकता नहीं रोज जाने लगी मैं पण्डित जी के यहाँ। पहले तो माँ साथ जाती थी बाद में स्वयं अकेले जाने लगी। महीनों चलता रहा यह क्रम। पण्डित जी मुझे प्रसन्न रखने का तरह–तरह का उपाय करते। वे भी अब बराबर मेरे घर पर आने लगे थे। अपनत्व हो गया था हम दोनों के बीच। बाद में वही अपनत्व, मोह का रूप धारण कर लिया मेरे मन में। वे भी बहुत चाहने लगे थे मुझे। न जाने किस आकर्षण के वशीभूत हो गयी थी मैं। अपनत्व, मोह और आकर्षण ने मिलजुल कर न जाने कब मेरे हृदय में प्रेम का रूप धारण कर लिया था पण्डित जी के प्रति। समझ न सकी मैं? वे भी करने लगे मुझसे प्रेम। आनन्दित थी और प्रफुल्लित भी। दोनों की स्थिति एक जैसी थी। दोनों आकण्ठ डूब गये थे प्रेम के अथाह सागर में। कोई किसी से प्रेम नहीं करता कहने वाला सिद्धान्तवादी स्वयं करने लगा था मुझसे प्रेम। मेरी स्थिति को तो पूछो मत बेटा। मेरी स्थिति कृष्ण की मीरा जैसी हो गयी थी। मैं हर समय अपने कृष्ण को देखना चाहती थी अपने सामने और न जाने कौन सा ऐसा क्षण था– जब मैंने अपने कृष्ण को समर्पित कर दिया अपना तन। आत्मा तो पहले ही समर्पित थी। मन भी था पहले ही समर्पित, अब समर्पित हो गया था तन भी। प्रेम को वासना समझने वाला व्यक्ति स्वयं वासना का खेल खेलने लगा था अब। प्रेम जब वासना का रूप धारण कर लेता है एक

बार तो उस वासना का खेल फिर रूकता नहीं, चलता ही रहता है, चलता ही रहता है और इस प्रकार पूरा एक वर्ष बीत गया और जब कभी मैं शादी की चर्चा करती तो चला जाता मेरा कृष्ण! मौन साध लेता कोई उत्तर न देता। कभी–कभी सोचने लगती अपने भविष्य को लेकर। फिर ग्लानि से भर उठती मेरी आत्मा। क्या सोचा था? क्या समझा था और क्या की थी कल्पना? क्या समय की पुकार थी? क्या आयु की थी आवश्यकता? उत्तर खोजती लेकिन कोई उत्तर न मिलता मुझे। आना–जाना कम हो गया था घंटों उदास बैठी रहती एकान्त में। कभी–कभी उदास क्षणों में काली मन्दिर चली जाती और वहां घंटों बैठी निहारा करती माँ काली की पाषाण प्रतिमा की ओर अपलक। कभी–कभी पुकार बैठती–माँ भवतारिणी! शान्ति दो माँ शान्ति! भवतारिणी शान्ति दो माँ शान्ति! भटक गयी हूँ माँ। मेरी रक्षा करो। रक्षा करो जगतजननी अब रहा नहीं जा रहा है मुझसे। सहन शक्ति समाप्त हो गयी है अब माँ..... लेकिन माँ ने भी नहीं सुनी मेरी करुण पुकार। अब बस एक ही मार्ग था और वह था आत्महत्या का मार्ग।

आधी रात का समय। सन्नाटा पसरा था काशी के घाटों पर। कुछ देर तक घाट की सीढ़ियों पर बैठी रही फिर धीरे–धीरे नीचे उतरने लगी। पानी की ओर बढ़ी। फिर कमर तक चली गयी मैं पानी में। एक बार आकाश की ओर देखा–नीले स्याह, आकाश में शुक्र चमक रहा था उस समय। एक बार देखा मैंने उस शुभ्र नक्षत्र को और पानी में गोता लगा लिया और तभी किसी के बलिष्ठ हाथ ने थाम लिया मुझे। कौन था वह? पानी से निकल कर पलट कर देखा– एक लम्बा–चौड़ा बलिष्ठ युवा संन्यासी था वह। यह संन्यासी इस समय यहाँ कैसे आ गया? आश्चर्य हुआ मुझे। मृत्यु तो एक दिन निश्चित रूप से होगी इसमें सन्देह नहीं। रही बात जीवन की तो जीवन जीने के लिए है अतिमूल्यवान है जीवन और जीवन के प्रत्येक क्षण भी। लेकिन जीने की कला चाहिए। जो कला को जानता है वह सदैव सुखी और प्रसन्न रहता है। मेरे जीवन रक्षक के थे हृदय में उतर जाने वाले ये शब्द जिनका नाम था स्वामी सत्यानन्द कापालिक। उच्चकोटि के योग स्वामी थे सत्यानन्द। उनकी छाया में रह कर तंत्र और योग की अनेक गुह्य और गोपनीय

विद्याओं का अध्ययन किया मैंने। ज्ञान के कपाट खुलते गये। जिसके प्रकाश से उद्भाषित होने लग गयी मेरी आत्मा। अन्त में बाबा ने कई महत्वपूर्ण दीक्षाएँ दी और उसके बाद दी, भैरवी दीक्षा। तब से बाबा की भैरवी हूँ मैं। एक लम्बा अर्सा गुजर गया बेटा। गुरु का चरण नहीं छोड़ा मैंने। सम्भवतः शरीर छूटने पर ही छूटेगा चरण। निश्चय ही माँ महामाया ने सुन ली थी मेरी करूण पुकार इसमें सन्देह नहीं।

एकबारगी मेरा किशोर मन द्रवित और विगलित हो उठा मणिमाला की व्यथा कथा सुनकर। आँसू छलछला आये मेरी आँखों में। अब वह मेरी माँ के समान हो गयी थी। माँ कहकर पुकारने लगा मैं उस दिन से उनको। उसी दिन सपरिवार खोजते हुए आये गांगुली महाशय भी। बाबा ने उनको समझाते हुए कहा– यह बालक पूर्व जन्म का साधक है। माँ ने भेजा है यहाँ। अभी कुछ समय यहाँ रहेगा। आगे माँ जो चाहेगी वही होगा। यह सुनकर सभी का चेहरा उतर गया। मुझसे लिपटकर रोने लगी पल्लवी। छलछला आयी शुभंगा माँ की आँखे भी। गांगुली महाशय भी आँखे मलते हुए आगे बढ़ गये। उन लोगों की स्थिति देखकर काफी क्लेश हुआ मुझे। लेकिन कर ही क्या सकता था मैं। बाबा के स्थान पर आश्रय मिल गया था मुझे। रात्रि में गुरु–शिष्य ध्यानस्थ होकर बैठ जाते। मैं ताकता रहता टुकुर–टुकुर या फिर बाहर निकल जाता अंधेरे में। कभी–कभी श्मशान की ओर भी चला जाता। घंटों बैठा जलती हुई लाशों को देखता रहता। जीवन यात्रा का अन्तिम पड़ाव। सब कुछ समाप्त। चिता की लाल पीली लपटों को देखकर अजीब सा लगता। विचित्र सी शान्ति मिलती आत्मा को। संसार में कोई शान्त और निर्विकार स्थान है तो वह हैं श्मशान। लम्बे–चौड़े जीवन का अन्तःस्थान। जहाँ सब कुछ समाप्त हो जाता है। उस दिन भी बैठा था श्मशान में। रात आधी गुजर चुकी थी। लाशें जल रहीं थीं। परिजन रो रहे थे। अपने लोग विलाप कर रहे थे। न जाने क्यों मेरी आँखों से भी झरने लगे आँसू। तभी एक बारह–तेरह साल की काली कलूटी और भिखारिन सी लड़की आकर खड़ी हो गयी मेरे सामने। शरीर पर मैला कुचैला कपड़ा था। बार–बार नाक पोछ रही थी? चिता की लपटों की रोशनी उसके ऊपर पड़ रही थी। जिससे साफ दिखलायी दे रहा था उसका काला बदरंग चेहरा।

एक बार आँखे उठाकर उसकी ओर देखा और पूछा क्यों खड़ी है? क्या चाहिए तुझे? लड़की हँसी, खूब हँसी हँसते–हँसते पेट फूलने लगा उसका। मैंने सोचा– कोई पागल लड़की तो नहीं है। हँसने के बाद बोली– एक पैसा देगा?

मैंने कहा– नहीं! मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। बस तन पर दो कपड़ा है और पेट में है ज्वार की दो रोटी बस।

क्या वह 'माँ' थी? मेरी बात सुनकर लड़की मौन साध गयी। फिर थोड़ा आगे बढ़ी और बोली जाने दो पैसा नहीं तो कोई बात नहीं। जिन्दगी भर तो देना ही देना है लोगों को। लाओ तुम्हारे आँसू पोंछ दूँ। अब मत रोना कभी। रोओगे तो जानते हो, मुझे घोर कष्ट होगा– यह कह कर अपनी कोमल उँगलियों से पोंछने लगी गालों पर ढुलके हुए मेरे आँसुओ को। स्तब्ध रह गया मैं। आगे न बोला गया और न तो कुछ कहा ही गया मुझसे। पाषाणवत् बैठा रहा अपने स्थान पर। आँखे बन्द थी। अपने आप बन्द हो गयी थी। बन्द करना नहीं पड़ा था। गालों पर झर–झर कर अभी भी आँसू गिर रहे थे। गालों पर पतली–पतली उँगलियाँ थिरक रही थी और मुंख से झरते जा रहे थे हरश्रृंगार के फूल.....। तुझे तो इस दुनिया में पैदा नहीं होना चाहिए था रे। कैसे पैदा हो गया तू ! .....दुनिया का आँसू तो तू पोछेगा। तेरा कौन पोछेगा। दुनिया को तो तू देगा, तुझे कौन देगा? बोल कभी सोचा भी है। घोर कष्ट उठाना ही पड़ेगा तुझे। उठा पायेगा तू बता मुझे; बहुत आघात लगेगा। सह भी पायेगा कि नहीं।

मौन निर्विकार सुन रहा था मैं। क्या बोलता और क्या कहता? धीरे–धीरे शून्य होने लगा मेरा मस्तिष्क। कबतक अविचल बैठा रहा और कबतक शून्य का अनुभव करता रहा, पता नहीं। एकाएक मणिमाला माँ की आवाज कानों में पड़ी अरे! सवेरा होने वाला है और तू यहाँ बैठा है श्मशान में? कितना खोजा तुझे रे चल उठ....।

कौन थी वह श्यामांगी? वह ऐसा सब कुछ क्यों कह रही थी मुझसे? एक के बाद एक रहस्य से अनावृत्त होती जा रही थी मेरी आत्मा। यह सब क्या है मेरे जीवन में? समझ में नहीं आ रहा था कुछ। बाबा को सारी कथा सुनायी मैंने। मेरी ओर आश्चर्य से देखते रहे कुछ देर

तक और फिर गले लगा लिया उन्होंने मुझे। हिलक–हिलक कर बोले– अरे! पगले साक्षात् माँ का दर्शन हुआ है तुझे समझे। कई जन्मों का साधन लाभ एक साथ प्राप्त हो गया तुझे। वह काली कलूटी लड़की और कोई नहीं साक्षात् भवतारिणी माँ महामाया थी पगले।

यह सुनकर अवाक् और स्तब्ध रह गया मैं। क्यों दिया माँ ने दर्शन और वह भी एक चण्डाल कन्या के रूप में? क्या प्रयोजन था इस प्रकार उपदेश देने का? क्या चाहती है जगत्तारिणी? अनेक प्रश्न लेकिन उत्तर किसी का नहीं?

***

बाबा के अबतक के सान्निध्य में उनसे खण्ड–खण्ड रूप में जो कुछ आध्यात्मिक लाभ हुआ उससे आमूल चूल हो गया था परिवर्तन मेरे जीवन में? जो कुछ बोलते उसे तटस्थ होकर सुनता मैं।

जीवन के दो भाग हैं– एक दिन अपने आप बोलने लगे बाबा। एक स्वीकार करने योग्य है और दूसरा है, अस्वीकार करने योग्य! जो दोनों को स्वीकार करता है वह योगी है। तुमको दोनों को सामान रूप से स्वीकार करना होगा। दोनों को स्वीकार करने का अर्थ है 'समग्रता' को स्वीकार लेना। समग्रता यानी समग्र जीवन और जो समग्र जीवन को स्वीकार लेता है उसका जीवन एक लीला के अलावा और कुछ नहीं होता। उसके जीवन का प्रत्येक क्षण लीला होता है। जिसे साधारण लोग कभी भी समझ नहीं पाते। इस संसार में अब तक एक ही ऐसा व्यक्ति हुआ है, जिसने अकेले ही समग्रता को स्वीकार कर लिया था और वह था कृष्ण। जीवन की समग्रता की स्वीकृति कृष्ण के व्यक्तित्व में हुई थी फलित और यही एकमात्र कारण है कि परमात्मा के सभी अवतारों को आंशिक अवतार माना गया है लेकिन कृष्ण को पूर्ण अवतार के रूप में किया गया है स्वीकार। भगवान राम परमात्मा के अंशावतार थे लेकिन कृष्ण पूर्णरूप से हैं परमात्मा इसलिए कि कृष्ण ने सभी कुछ आत्मसात कर लिया था। कृष्ण का मार्ग ही तुम्हारा भी मार्ग होना चाहिए। इस संसार के मरूस्थल में जहां दमन है, घृणा है, द्वेष है, कपट है, क्रोध है, बेईमानी है, असत्य है, अविश्वास है उनके बीच कृष्ण

की तरह रहना होगा और जो रहता है इस प्रकार जल कमलवत् वही योगी है।

वाक् का कहना था। मानव मन द्वन्द में रहता है। शरीर को अस्वीकार करता है। आत्मा को स्वीकार करता है, इस लोक को अस्वीकार करता है परलोक को स्वीकार करता है। मन का यह धर्म है एक दूसरे के विपरीत करना। योगी वही है जो मन के द्वन्द से अपने आपको मुक्त रखता है। धैर्य का कहना है कि काम, क्रोध, मोह आदि का दमन करना चाहिए और तभी आत्मा उपलब्ध होगी लेकिन 'दमन' गलत है। 'दमन' मनुष्य के भीतर आत्महीनता उत्पन्न करता है। जो दमन करने में लगा रहता है वह अपने आपसे लड़ता है और एक दिन ऐसा आता है कि दमन करते–करते अपने जीवन को ही समाप्त कर बैठता है। दमन आत्मघाती बना देता है। दमन, आत्मघाती है। कृष्ण की ओर देखो, मानव जाति में वे एकमात्र हैं अकेले। उनका अकेलापन सार्थक है। कृष्ण दमनवादी नहीं थे। उन्होंने जीवन के सभी रंगों को एक स्वर में किया था स्वीकार। वे प्रेम से भागे नहीं। पुरुष होकर भी स्त्री से पलायित नहीं हुए। वे परमात्मा का अनुभव करते हुए भी युद्ध से विमुख नहीं हुए। वे करुणा, दमन, दया, स्नेह और प्रेम से भरे हुए होते भी युद्ध में लड़ने का सामर्थ्य रखते थे। अहिंसक चित्त था कृष्ण का और फिर भी वे भयंकर युद्ध के दावानल में उतर गये थे। अमृत की स्वीकृति थी उनमें लेकिन विष से भय नहीं था। अमृत की तरह विष भी स्वीकार था उनको। जिसे अमृत का अनुभव हो जाता है वह क्यों भला विष से भयभीत होगा। ऐसे थे कृष्ण और तुमको उन्हीं के मार्ग का अनुशरण करना होगा। ऐसी भी आत्मा क्या, जो शरीर से भयभीत रहती हो, डरती हो। ऐसे परमात्मा से क्या लाभ जो सारे संसार को अपने आलिंगन में न ले सकता हो। कहने का मतलब यह कि कृष्ण छन्दातीत थे और तुमको भी इन्द्रातीत होना होगा। जो योगी है उसे समझना बड़ा ही कठिन है। सरल बात तो यह है कि एकबारगी संसार त्याग कर शान्त हो जाता है। कठिन तो यह है कि संसार के संघर्ष के बीच खड़ा रहकर शान्त रहना। जीवन के सारे उपद्रव के बीच, सारे संघर्ष के बीच और सारे विपत्तियों के बीच जो अडिग और स्थिर है– वह योगी है। योगी

का कहना है कि यदि कोई यह स्वीकार करता है या मानता है कि वह मर सकता है तो आत्मवादी नहीं है वह। उसे यह नहीं मालूम है कि जो उसके भीतर है वह कभी भी मर नहीं सकता। जबतक ठीक से मालूम नहीं हो जाता है यह परम सत्य तबतक वह भौतिकवादी है। भौतिकवादी सदैव भ्रान्त धारणा में जीते हैं।

शरीर और आत्मा- जब तुम योगमार्ग में प्रवेश करोगे, तब तुमको ज्ञात होगा कि शरीर और आत्मा दो अलग–अलग वस्तुएँ नहीं हैं। आत्मा का जो भाग दिखलायी देता है– वह शरीर है और जो भाग दिखलायी नहीं देता है– वह है आत्मा। परमात्मा और संसार भी दो वस्तुएँ नहीं हैं। परमात्मा और प्रकृति जैसा द्वन्द नहीं है कहीं। परमात्मा का जो भाग दृश्यमान हो गया है– वह प्रकृति है और जो अब भी अदृश्य है वह है परमात्मा। कहीं कोई ऐसी सीमा रेखा नहीं है– जहां प्रकृति समाप्त होती है और परमात्मा शुरू होता है। बस, प्रकृति ही लीन होते होते परमात्मा बन जाती है। तंत्र के शब्दों में शक्ति अपने आपमें लीन होते होते शक्तिवान बन जाता है। शक्तिवान भी अपने आप में लीन होते–होते शक्ति बन जाता है। शक्ति और शक्तिवान में कोई भेद नहीं। वह अद्वैत है परमात्मा ही प्रकट होते होते प्रकृति बन जाती है। अद्वैत का यही अर्थ है और इस अद्वैत की धारणा भीतर प्रविष्ट हो जाय तो फिर क्या? द्वन्द से मुक्ति। योगी द्वन्द से मुक्त होता है और यही कारण है कि द्वन्द के जाल में फंसे लोग उसे समझ नहीं पाते और यही कारण है कि कृष्ण को भी समझ न पाये। सामने नारायण खड़े हैं लेकिन द्वन्द के फलस्वरूप उन्हें कोई भी न समझ सका सिवाय अकूर और भीष्म के। बाबा ने कहा– इस प्रसंग में एक बात और समझ ले तू! काफी लम्बे संघर्ष और काफी लम्बे ज्ञान की खोज के बाद ज्ञात हो सका कि जिन शक्तियों से हम लड़ते हैं। वे शक्तियाँ हमारी ही हैं, मतलब हम ही हैं। उससे लड़ना पागलपन के सिवाय और कुछ भी नहीं है। जिससे हम लड़ते हैं। हम सदैव उसके चक्कर में फंस जाते हैं और घिर जाते हैं। काम को लो। ब्रह्मचर्य को लो। जो व्यक्ति काम से लड़ेगा। काम का दमन करेगा। उसके जीवन में ब्रह्मचर्य कभी भी घटित नहीं होगा। ब्रह्मचर्य का पालन वह कभी भी नहीं कर सकेगा।

यदि जीवन में ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होना हो तो बस एक ही उपाय है। उससे लड़िए मत। उसका दमन मत करिए। अपनी काम ऊर्जा को रूपान्तरित करिए। काम ऊर्जा से सहयोग लीजिए। शत्रुता मत करिये। मैत्री साधिए। जिसके हम शत्रु हो जाते हैं। उसको हम कभी भी बदल नहीं सकते। समझ भी नहीं सकते। जिससे हमारी मैत्री है। योगी काम से मैत्री करता है। उसकी ऊर्जा को रूपान्तरित करता है और साधना में उस काम ऊर्जा का उपयोग करता है। जिसके परिणामस्वरूप वह सदैव ऊर्जावान तेजस्वी और यौवन सम्पन्न बना रहता है।

परमात्मा बाबा ने कहा– शरीर और आत्मा के बाद परमात्मा है। परमात्मा के प्रति अति भ्रान्त धारणा है। एक योगी का विचार परमात्मा के प्रति क्या होता है? यह समझ लेना चाहिए।

परमात्मा की परिभाषा क्या है?

परमात्मा की परिभाषा! परमात्मा तो उसी का नाम है जिसकी कोई परिभाषा नहीं। परमात्मा अर्थात् अपरिभाष्य! परमात्मा की परिभाषा करने वाले दूर हो जाते हैं परमात्मा से। वास्तव में समग्रता का नाम है परमात्मा। सभी वस्तुओं की परिभाषा सम्भव है समग्रता के संबंध में लेकिन समग्रता की परिभाषा किसके सन्दर्भ में होगी? इस संसार में बहुत कुछ ऐसा भी है जो असम्भव है। सच बात तो यह है कि जो असम्भव है वही पाने योग्य है। परमात्मा को कहना असम्भव है। वह अपरिभाष्य है इसलिए पाने योग्य है। परमात्मा का अर्थ है जिसमें सब कुछ है जिसके बाहर कुछ भी नहीं है। जिसमें बाहर का आकाश भी है और भीतर का भी आकाश। जिसमें पदार्थ भी है और चैतन्य भी है। जिसमें जीवन भी है और मृत्यु भी है। दिन–रात, सुख–दुख, पतझड़ बसन्त– जिसमें सब समाहित है। परमात्मा सारे अस्तित्व का सन्दर्भ है। उसकी पृष्ठभूमि है और यही एकमात्र कारण है कि परमात्मा की नहीं हो सकती परिभाषा। परमात्मा भी एक शब्द है लेकिन परमात्मा शब्दातीत है। भावातीत है सोने को कसा जा सकता है कसौटी पत्थर पर लेकिन हीरे को कैसे कसोगे सोने की कसौटी पर। कसौटी टूट जाएगी और तुम पागल हो जाओगे। शब्द का निर्माण हुआ है जगत की अभिव्यक्ति के लिए। शब्द बने हैं सामाजिक आदान–प्रदान के लिए।

शब्द बने हैं दो मनुष्यों के बीच संवाद हो सके। मनुष्य और परमात्मा के बीच कोई भाषा नहीं है। संसार में तीन हजार भाषायें हैं। हर भाषा का व्यक्ति यही समझता है कि जो उसकी भाषा है– वही परमात्मा की भी भाषा है। जैसा उसका रूप रंग और आकार प्रकार है वैसा ही उसके परमात्मा का भी है। सच तो यह है कि हम मनुष्य अपने स्वभाव, अपने विचार, अपने अनुरूप और अपनी इच्छानुसार प्रतिमा बना लेते हैं परमेश्वर की। वह मनुष्य ऋषि भी हो सकता है और उसकी भाषा परमात्मा की भाषा हो जाती है। उसका जीवन परमात्मा का जीवन हो जाता है। उसकी जीवन शैली परमात्मा की जीवन शैली हो जाती है उसका आचरण परमात्मा का आचरण हो जाता है। उसका शास्त्र परमात्मा का दिया हुआ शास्त्र हो जाता है। समझो कितना विरोधाभास है मानव के इस सोच में और विचार में। परमात्मा किसी भी भाषा में कदापि समा नहीं सकता। अनुभव में वह अवश्य आ सकता है, भाषा में नहीं।

क्या वह मेरा कोई पिछला जन्म था? बरसात का मौसम शुरू हो गया था। नीले आकाश में उमड़ने–घुमड़ने लगे थे काले भूरे बादल! वक्रेश्वर का धीरे–धीरे बदलने लगा था प्राकृतिक परिवेश। अशान्त नहीं था अब मेरा मन पहले की तरह रम गया था मैं बाबा के साथ। पुत्रवत् स्नेह प्राप्त हो रहा था मुझे मणिमाला से, इसमें सन्देह नहीं। अभी भी बन्द नहीं हुआ था मेरा जाना श्मशान की ओर। सांझ होते ही अपने आप उठ जाते मेरे पैर और चल पड़ता था मैं और पेड़ के नीचे पड़े पत्थर पर बैठ जाता था जाकर और फिर खोजने लगती थी मेरी आँखे उस श्यांमागी बाला को। मन ही मन सोचने लगता था– जब भी वह मिलेगी, पैर थाम लूँगा उसका और रो–रो कर पूछूँगा– बोल सच–सच बोल! कौन है तू! बतलाना पड़ेगा तुझे लेकिन फिर वह मिली नहीं। मेरी कामना अधूरी ही रह गयी एकबारगी। उस दिन पानी बरसने लगा था। इसलिए थोड़ा रूकना पड़ा और जब बाबा की कुटिया में पहुँचा तो लगा जैसे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। देखते ही बोल पड़े– आ... आ.... मेरे पास बैठ जरा। तुरन्त आज्ञा का पालन किया मैंने। अपने सामने तख्त पर बैठा कर गम्भीर स्वर में आदेश दिया– नेत्र बन्द कर! तुरन्त बन्द कर ली मैंने आखें। तनकर बैठा था मैं। अपने आप कैसे बैठ गया था मैं

तनकर। समझ में नहीं आया और तभी भ्रू–मध्य पर बाबा की तर्जनी उंगली के स्पर्श का अनुभव किया मैंने। सनसना–सा गया पूरा शरीर और उसी अनुभव के साथ लगा, जैसे मेरे मेरूदण्ड के भीतर कुछ रेंग रहा है चींटी की तरह। अचानक रेंगना बन्द हो गया लेकिन उसके बाद एक नया अनुभव शुरू हो गया। सारे शरीर में कम्पन होने लगा और सिर लगा चकराने। कुछ समझ में नहीं आ रहा था– क्या हो रहा है मेरे साथ ये सब? मैं कुछ सोचूँ समझूँ कि अचानक अपने आपको एक निर्जन और सुनसान स्थान पर पाया। सिर घुमा कर चारो ओर देखा बड़ा ही बीहड़ और धूल–धूसरित इलाका था वह। चारो ओर घोर सन्नाटा पसरा हुआ था। हरी–भरी घास का लम्बा–चौड़ा मैदान! ऊँचे–ऊँचे जंगली पेड़। जिन पर पक्षी चहचहा रहे थे। एक विचित्र सी उदासी भरी शान्ति बिखरी हुई थी उस जंगली इलाके में। जिस स्थान पर मैं बैठा था वह ऊँचा टीला था। वहाँ से बड़ी सरलता से देखा जा सकता था दूर–दूर तक। कैसे इस बीहड़ और सुनसान स्थान पर पहुँच गया मैं? आश्चर्य हो रहा था मुझे और तभी काफी दूर से एक महात्मा को अपनी ओर आते हुए देखा मैंने और कुछ देर बाद महात्मा मेरे बिल्कुल समीप आ गये तो स्पष्ट हो गया उनका व्यक्तित्व। अवस्था साठ के आसपास रही होगी और गौर वर्ण लम्बी–चौड़ी कदकाठी और साधकों जैसा आकर्षक दिव्य व्यक्तित्व। कोई उच्चकोटि के योगी प्रतीत हो रहे थे वह। बड़ी–बड़ी आँखों में तेज था और चेहरे पर थी अलौकिक आभा। महात्मा ने ध्यान से मेरी ओर देखा और फिर एकबारगी चौक कर बोले– तुम..... तुम..... पूर्णानन्द सरस्वती हो न?

यह सुनकर आश्चर्य हुआ मुझे! सोचा भ्रम हो गया है महात्मा को। बोला– नहीं महाशय मेरा नाम पूर्णानन्द सरस्वती नहीं कुछ और ही है। आपको समझने में कहीं गलती हो गयी है। 'नहीं' नहीं ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मैं और गलती ऐसा सम्भव नहीं। मुझसे पहचानने में कभी भी गलती नहीं हो सकती। पूरे दस वर्षो से इधर–उधर भटक रहा हूँ पूर्णानन्द तुम्हारी खोज में। चलो, उठो, आश्रम में चलो। महात्मा की बातें सुनकर किंकर्तव्यविमूढ़–सा हो गया था मैं उस समय। कैसे समझाऊँ उस मतिभ्रष्ट महात्मा को और कैसे बतलाऊँ उस भ्रमित

व्यक्ति को कि मेरा नाम अरुण कुमार शर्मा है। काशी में रहता हूँ। मेरा अपना परिवार.....। मैं कुछ कहूँ और कुछ बोलूँ कि उसके पहले ही उस विक्षिप्त महात्मा ने मेरा हाथ थाम कर उठाते हुए कहा– जरा अपनी ओर तो देखो, तब सब समझ में आ जायेगा।

उसी क्षण देखा अपनी ओर मैंने। आश्चर्यचकित रह गया मैं। न जाने कैसे मेरा स्वरूप और वेशभूषा आदि सब कुछ संन्यासी जैसा हो गया था। यह कैसा परिवर्तन? मुण्डित सिर, शरीर पर रेशमी कषाय वस्त्र, गले में रूद्राक्ष और स्फटिक मालाएँ, मस्तक पर त्रिपुण्ड की गहरी रेखायें, बगल में कमण्डल और मृगचर्म। हे भगवान! कैसे हो गया ये सब? समझ में नहीं आ रहा था। कैसे बन गया एक युवा ब्राह्मण पुत्र संन्यासी? अपने आपको देख रहा था मैं बार–बार! विश्वास ही नहीं हो रहा था मुझे एकाएक हुए एक अविश्वसनीय और विलक्षण परिवर्तन को देखकर और तभी हँसकर महात्मा बोले– 'हुआ न अब तुमको विश्वास? अब चलो मेरे साथ। देर हो रही है। आश्रम के लोग प्रतीक्षा कर रहे होंगे....। विवश था मैं। ऐसी विकट और अविश्वसनीय स्थिति में भला मैं क्या कर सकता था। चल पड़ा महात्मा के पीछे–पीछे एक सम्मोहित व्यक्ति की तरह! निश्चय ही सम्मोहित हो गया था मैं इसमें सन्देह नहीं। घंटों पैदल चलने के बाद एक हरी भरी घाटी मिली सुनसान और अपने–आपमें उदास। जिसके एक ओर स्याह पहाड़ियों का सिलसिला था और दूसरी ओर था घना जंगल। किसी अज्ञात नदी की पतली सी धारा इठलाती बलखाती हुई पहाड़ियों की तलहटी से निकल कर जंगल की ओर चली गयी थी और समा गयी थी न जाने कहाँ? मैंने आँखे उठा कर देखा चारो ओर उसी अज्ञात नदी के तट पर मध्यम आकार प्रकार का कोई पुराना आश्रम था। एक प्रकार से मठ भी कहा जा सकता था उसे। इस निर्जन स्थान में मठ? आश्चर्य हुआ मुझे। मठ के चारो ओर घोर निस्तब्धता बिखरी हुई थी और चारो ओर पसरी हुई थी प्रकृति की मनोरम छटा। फिर भी व्याप्त थी वहाँ एक अबूझ सी खिन्नता।

महात्मा का नाम था त्र्यम्बकेश्वरानन्द सरस्वती 70–75 के बीच के होंगे लेकिन बलिष्ठ था शरीर। व्यक्तित्व भी था आकर्षक। मठ के भण्डारी थे महाशय। उन्हीं के अधिकार में था पूरा मठ। मठ का वही

करते थे संचालन। मठ के भीतर प्रवेश करते ही एकबारगी चौंक पड़ा मैं। वहाँ का सब कुछ जाना पहचाना सा लगा मुझे और यह भी लगा कि मठ की प्रत्येक वस्तु से जुड़ा हुआ है मेरा अतीत। कौतूहल मिश्रित चकित भाव से सिर घुमाकर चारो ओर देख रहा था मैं। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सालों साल गुजर चुका है मेरा जीवन इस मठ में। आंगन में एक सुन्दर कापिला गाय बंधी हुई थी। चकित रह गया मैं उस कपिला गाय को देख कर। उस मूंक पशु ने भी मेरी ओर देखकर अपना सिर हिलाया और आँसू भरी आँखों से देखा। करूणा में डूबे हुए आद्र भाव से मेरी ओर ऐसे देख रही थी जैसे बहुत दिनों तक उसका अमृततुल्य दूध पीया हूँ मैं। उसी समय चार–पाँच युवा संन्यासी वहाँ आ गये। सभी के चेहरे पर थी, शान्ति और थी विनम्रता। उन युवा संन्यासियों ने श्रद्धा से झुक कर मेरे चरणों का स्पर्श किया और फिर दोनों हाथ जोड़कर और सिर झुका कर विनम्र भाव से एक स्वर में बोले– गुरुदेव प्रणाम! मेरे मुख से अपने आप निकल गया सर्वे भवन्तु सुखिनः..... महात्मा ने मुस्कुराते हुए कहा– ये सब परम शिष्य हैं आपके पूर्णानन्द। आपके अज्ञातवास से बेचारे दुखी थे सभी। शिष्य की पीड़ा गुरु ही समझ सकता है। आप अवश्य समझ गये होंगे उनकी मानसिक पीड़ा। पीड़ा सहते हुए इसी मठ में प्रतीक्षा कर रहे थे आपकी। अब सभी प्रसन्न हैं। ध्यान से देखा मैंने शिष्यों को। सभी परिचित से लगे और सभी लगे आत्मीय। एक–एक कर गले मिले सभी। गले मिलते समय ऐसा लगा बहुत दिनों के बिछुड़े हम सब अब मिल रहे हैं। बड़ा ही अच्छा लगा मुझे उस समय।

***

मठ से लगा हुआ काफी लम्बा–चौड़ा बागीचा था। जिसमें कदम्ब, परिजात, गुलमोहर और हरश्रृंगार के पेड़ तो थे ही, उनके अलावा और तरह–तरह के सुगन्धित फूलों के छोटे–बड़े पौधे लगे हुए थे। एक छोटा–सा कुण्ड भी था बाग के बीच में। जिनमें कमल खिले हुए थे। एक मन्दिर भी था, कुण्ड के थोड़ा आगे और उस मन्दिर में स्थापित थी भगवती महामाया कालरात्रि की भव्य और विशाल आदमकद मूर्ति। धीरे से मन्दिर का पट खोल कर झांका मैंने भीतर। माँ महामाया के

ऊपर दृष्टि पड़ते ही रोमाञ्चित हो उठा मैं एकबारगी। नरबलि द्वारा सिद्ध पंचमुण्डी आसन पर आरूढ़ जगततारणी माँ महामाया का आक्रोश, क्रोध, दया, कृपा अनुकम्पा के मिले जुले भाव स्पष्ट दिखलायी दे रहे थे, उनके मुखमण्डल पर। उनके स्थिर नेत्रों में दावानल धधक रहा था, वहीं लहरा रहे थे करुणा के सागर भी। काफी देर तक निहारता रहा मैं अपलक त्रिभुवनजननी के नेत्रों की ओर? एक विचित्र सी शान्ति का अनुभव हो रहा था उस समय, जिसमें थोड़ा भय भी था और थोड़ा उद्वेलन भी? अन्त में प्रणाम कर धीरे–धीरे चल कर बाहर निकल आया मैं मन्दिर के। बाहर से तो आश्रमनुमा मठ छोटा–सा लग रहा था। लेकिन भीतर काफी लम्बा चौड़ा था। बीच में बहुत बड़ा आंगन था और उसके चारो ओर नक्काशीदार ऊँचे–ऊँचे खम्भे थे और उसके बाद था दालान और दालान से लगकर छोटे–छोटे कई कमरे बने थे। जिनमें संन्यासी साधक निवास करते थे। सभी विभिन्न रंगों के कीमती मारवल के पत्थरों के बने थे। मठ के छत पर एक काफी लम्बा–चौड़ा मारवल का बना हॉलनुमा कमरा था। जिसके चारो ओर ऊँची–ऊँची खिड़कियाँ थीं। जिन पर रंग बिरंगे शीशम के थे कीमती लकड़ी के दरवाजे। कीमती झाड़ फानूश भी टगें थे छत पर। जमीन पर ईरानी कालीन बिछा हुआ था। कमरे की दीवारें पीले रंग की थी। जिन पर लम्बे–चौड़े कीमती फ्रेमों में सिद्ध महात्माओं और योगी साधकों के प्रभावशाली चित्र टंगे हुए थे। कमरे के एक ओर दीवार से थोड़ा हटकर काफी बड़ा सिंहासननुमा चांदी का तख्त था और उस तख्त पर मखमल का मोटा सा बिछा हुआ था गद्दा। जिसके अगल–बगल मखमली गोल तकिए रखे हुए थे। तख्तरूपी उस मूल्यवान रत्नजड़ित सिंहासन के चारो ओर चांदी के डण्डे लगे थे। जिनके सहारे ऊपर चदवां टँगा था लाल रेशमी कपड़े का।

महात्मा त्र्यम्बकेश्वरानन्द मेरा दाहिना हाथ थामकर बोले– आपका स्थान है। जिसे त्याग कर आप चले गये अज्ञातवास के लिए। क्या कारण था अज्ञातवास का यह समझ न सका मैं। जाने दीजिए कोई बात नहीं। अब आप पुनः आसन ग्रहण करिए अपना इसी में पूरे आश्रम का हित समाया हुआ है।

थोड़ा संकोच हुआ मुझे। चारो ओर एक बार देखा और फिर न जाने किस अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत होकर बैठ गया मैं उस दिव्य और मूल्यवान सिंहासन पर। विचित्र अनुभव हुआ आत्मा को। वह अनुभव निश्चय ही आध्यात्मिक रहा होगा इसमें सन्देह नहीं और तभी शिष्य समुदाय में जय जयकार की ध्वनि गूंज उठी– महाराज पूर्णानन्द जी की जय....।

***

अब मैं अरुण कुमार शर्मा से 108 स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती बन गया था और बन गया था मठाधीश भी। मेरा पूरा अधिकार था मठ पर अब। भण्डारी महाशय बराबर लगे रहते थे मेरी सेवा में। पूजा पाठ, भजन पूजन प्रवचन ध्यान आदि ही मेरा रोज का काम था। मेरी जीवन चर्या नियमित हो गयी थी अबतक। धीरे–धीरे वातावरण का ऐसा प्रभाव पड़ा कि भूल ही गया मैं अपने आप को और अपने पिछले जीवन को भी। अब मैं पूर्णरूप से पूर्णानन्द सरस्वती था। वास्तव में कौन थे पूर्णानन्द सरस्वती और उन्होंने क्यों ले लिया था अज्ञातवास? इन सबसे मेरा कोई मतलब नहीं था। मैं तो था अपने आपमें मग्न। मठ में अपना विशाल पुस्तकालय था। जिसमें सभी विषयों की पुस्तकें थी। समय मिलता तो पुस्तकालय में जाकर अध्ययन करता मैं।

कौन था पूर्णानन्द? एक दिन पुस्तकालय में कोई पुस्तक खोज रहा था पढ़ने के लिए और तभी मेरे हाथ लग गयी एक 'नोट बुक'। ऊपर का कवर काफी मटमैला था और थोड़ा फटा भी था। पृष्ठ भी पीले पड़ गये थे। काफी पुराना लगा मुझे वह नोट बुक। जिस पर लिखा था सन् 1823 ई0। किसी नवयुवक का था वह नोट बुक! पृष्ठों पर जो कुछ लिखा था उसे पढ़कर दंग रह गया मैं। नोट बुक काफी मोटा था इसलिए उसमें दिये गये विवरण पूरा न लिख सकूँगा स्थानाभाव के कारण। नोट बुक के प्रारम्भ में लिखा था– मैं कौन हूँ? उनके इस प्रश्न का उत्तर न किसी ने दिया और न तो आपसे ही मिला मुझे कभी। भरा पूरा परिवार था लेकिन मेरे लिए किसी सदस्य के हृदय में प्रेम, स्नेह और अपनापन नहीं था। मेरा जीवन सारहीन था एक प्रकार से। आकर्षणहीन थी मेरी आत्मा। मन अशान्त था, कहीं स्थित होता ही नहीं था। भटकता रहता था इधर–उधर। घंटों गंगा के किनारे बैठा गालों

पर हाथ धरे न जाने क्या–क्या सोचता विचरता रहता। उस दिन सांझ का समय था। घाट पर बैठा जलती हुई चिताओं को देख रहा था अपलक। वहीं भेंट हुई मुझसे नीतिका से। दुबली–पतली काया, स्याहवर्ण, हँसमुख चेहरा, व्यवहारकुशल, किसी के भी मन को जीत ले, ऐसी वाणी। उसने मेरे मन को जीत लिया। मेरे आन्तर की भावना को समझा उसने। मेरी आन्तर की पीड़ा और वेदना को भी समझते देर न लगी उसे। मेरे हृदय का सारा दुख और कष्ट स्पष्ट हो गया था उसके सामने। आखों में आँसू छलछला आये, तुरन्त अपनी पतली–पतली उँगलियों से पोंछते हुए बोली– क्यों रो रहे हैं आप? पागल हो गये हो क्या? भले ही कोई अपना न हो! मैं तो हूँ न? मुझे देखिए न जाने कितनी पीड़ाओं, व्यथाओं और न जाने कितने कष्टों, दुखों और न जाने कितनी विपदाओं से ग्रसित हूँ मैं और फिर भी हँसती रहती हूँ। चलो! यहाँ बैठने से क्या लाभ ? मन को और उदास बना देता है श्मशान!

पूरे आठ साल मेरे जीवन में नीतिका का ! इतने लम्बे अर्से में हम दोनों के बीच कितना मोह हो गया था? कितना अपनत्व हो गया था? कितना स्नेह हो गया था? कितना नैसर्गिक प्रेम हो गया था? कितना हम दोनों का हृदय नजदीक आ गया था? बतलाया नहीं जा सकता। बस समझ लें हम दोनों हर समय और हर क्षण एक दूसरे के निकट चाहते थे रहना लेकिन ऐसा सम्भव नहीं था। सच कहता हूँ हम दोनों के बीच वासना की गन्दगी नहीं थी। हाँ कामना अवश्य थी और वह कामना थी एक दूसरे के निकट रहना.....।

इसके आगे के पृष्ठों में काफी लम्बी कथा थी दोनों के नैसर्गिक और आत्मिक प्रेम की। जिसे पढ़ा न गया मुझसे। बार–बार मेरी आँखों में छलछला आते आँसू?

अतीत के पृष्ठों पर मर्मर्स्पशी शब्दों में लिखा था– नीतिका पर इन आठ वर्षों में जितना विश्वास किया, जितना चाहा और जितना अपना समझा, वह सब एक झटके में ही टूट गया छन्न् से कांच की तरह और टूट कर बिखर गया एकबारगी। इसका कारण क्या था? अपने आपमें अति महत्वपूर्ण कारण था वह। जिसे बतलाना ठीक न होगा। उचित नहीं समझता मैं। लेकिन उस कारण से जो चोट मेरे हृदय को लगी

और जो आघात लगा मेरी आत्मा को, वह असहनीय था मेरे लिए। उसके व्यवहार विचार आदि सब कुछ बदलते गये धीरे–धीरे और उसी के साथ दूर भी होती गयी धीरे–धीरे वह मुझसे। एक प्रकार से पागलों जैसी हो गयी मेरी स्थिति। पहले से अधिक हो गयी मेरे मन की दुर्गति। विक्षिप्त सा हो गया मैं एकबारगी और उसी अवस्था में एक दिन चला गया ऋषिकेश। वहां का हिमाच्छादित शान्त वातावरण और प्रकृति की मनोरमा छटा ने अत्यधिक प्रभावित किया मेरी आत्मा को। एक अद्‌भुत शान्ति मिली मेरे मन को भी।

ऋषिकेश में साधु–सन्त और महात्माओं का अभाव नहीं था। उन्हीं की एक मण्डली में रहने लगा मैं। भौतिक वातावरण से दूर वहां के आध्यात्मिक वातावरण ने मेरी मानसिक पीड़ा का हरण कर लिया कुछ ही दिनों में। फिर भी नीतिका का चेहरा उभर ही आता मानसपटल पर। कभी–कभी सचमुच मेरे अन्तराल में प्रवेश कर जाती एकबारगी नीतिका। एक दिन जब उदास सा घूम रहा था गंगा के किनारे उसी समय मेरी भेंट हुई एक महात्मा से। दिव्य पुरुष थे वह। चेहरे पर साधना का तेज था। आँखों में चमक थी। महात्मा का नाम था ज्ञानेश्वरनन्द सरस्वती। वे काफी प्रभावित हुए मुझसे, अपने साथ रखने लगे वह मुझे। पहले उन्होंने मुझे योग की दीक्षा दी और फिर आन्तरिक योगाभ्यास कराया। पाँच–छः वर्ष में ही योग के विभिन्न अंगों की साधना करते हुए अन्त में निर्विकल्प अवस्था को उपलब्ध हो गया मैं। पूर्ण योगी की अवस्था को प्राप्त होने के कारण गुरुदेव योगेश्वरानन्द ने मेरा नाम रखा पूर्णानन्द सरस्वती। कई वर्षों तक मैं गुरुदेव के साथ हिमालय की यात्रा करता रहा और उसी के साथ–साथ बढ़ता रहा ज्ञानात्मक अनुभव भी। अन्त में अपने आश्रम में ले आये गुरुदेव और अपना स्थान देते हुए गम्भीर स्वर में बोले– मेरी समाधि का समय अब निकट आ गया है। मेरे पश्चात् सब कुछ तुमको ही संभालना पड़ेगा और फिर एक दिन महासमाधि ले ली गुरुदेव ने आश्रम में ही। उस रात बहुत रोया मैं गुरु के वियोग में। उदासी और अशान्ति फिर छाने लगी मेरे मन में। मन लगता नहीं था कहीं। प्रायः बाबा की समाधि के निकट बने पत्थर की बेदी पर ही बैठा रहता मैं। समाधि के पास कदम्ब और हरश्रृंगार के पेड़ थे। उन दोनों के

फूल झरते और बिखर जाते बाबा की समाधि के चारों ओर। सुगन्धमय हो जाता वहाँ का वातावरण।

संन्यासिनी विमल कीर्ति- कार्तिक का महीना पूरा मास भागवत कथा सुनाने वाला था मैं परम्परा और नियम के अनुसार! श्रोताओं में मठ के लोग तो थे ही बाहर गांव के भी कुछ भक्तगण थे। शरदपूर्णिमा से प्रारम्भ हुई कथा। उस दिन भगवान श्रीकृष्ण की महारास लीला की कथा थी। लीला के वर्णन में श्रृंगार माधुर्य और प्रेम का सम्मिश्रण था। लीला का वर्णन करने में इतना तन्मय हो गया था कि अपनी ही सुधि नहीं थी मुझे उस समय। एकाएक किसी के स्पर्श से भंग हो गयी मेरी तन्मयता। देखा, मेरे पैरों को अपने दोनों हाथों से थामे हिलक–हिलक कर रो रही थी एक युवा संन्यासिनी। उसके आँसुओं से भींग रहे थे मेरे चरण।

आश्चर्य हुआ मुझे। कौन है यह युवा संन्यासिनी। पहले तो उसे कभी देखा नहीं था मैंने मठ में। फिर चरण थाम कर रो क्यों रही है? कौन सा कष्ट है? कौन सी पीड़ा है? कौन–सी वेदना है? कौन सी है व्यथा इस युवती को संन्यास ले लेने के बाद तो फिर कोई समस्या रह ही नहीं जाती है। तो फिर.....।

अब रोना और सिसकना बन्द हो गया था, शायद नियन्त्रित कर लिया था अपने आपको। वह उठी और हाथ जोड़कर बैठ गयी मेरे सामने। तीस से अधिक आयु की नहीं थी संन्यासिनी। चांद सा सुन्दर चेहरा, गुलाबी रंग, काले घने बाल, शरीर पर कषाय वस्त्र और गले में रूद्राक्ष की माला। हे भगवान! एक नारी में इतना अगाध सौन्दर्य..... कमल के पत्ते पर भोर के समय बिखरी ओस की मोती जैसे चमकती बूँदों को बड़ी सावधानी से एकत्र कर हरे पन्ने की गिलास में रख दिया गया हो– ऐसा लगा उस समय। उस परम सुन्दरी संन्यासिनी का सौन्दर्य। वह हाथ जोड़े सजल नेत्रों से निहार रही थी मुझे और मैं भी अपलक उसकी आँखों में खोज रहा था न जाने क्या–क्या? कौन है यह देवकन्या और कहाँ से आयी है इस धरती पर? किस शाप के कारण जन्म लेना पड़ा इसकी आत्मा को? तभी निकट खड़े एक संन्यासी ने कहा– महाराज! यह विमल कीर्ति है। आपकी अनन्य भक्त और सेविका है। आपके अज्ञातवास पर चले जाने के बाद इसकी आत्मा व्याकुल हो

उठी थी महाराज ! आपके वियोग और विरह में आँखों में आँसू लिए इधर–उधर खोजती और भटकती रही दर–दर। एक प्रकार से अर्ध विक्षिप्त सी हो गयी थी वह भिक्षुणी महाराज। पुनः आगमन का समाचार सुन कर आपके शरण में आयी है। स्वीकार करें और प्रदान करें इसे शान्ति। अपना वाक्य पूरा किया संन्यासी ने।

यह सब सुनकर रहा मौन देखता कुछ देर तक मैं संन्यासिनी की ओर। अचानक कुछ कौंध सा गया मेरे मस्तिष्क में। उस समय नदी के किनारे टहल रहा था मैं। सायंकाल का समय था। टहलते हुए श्मशान की ओर बढ़ गया था। वहाँ एक चिता जल रही थी। उसकी लाल पीली लपटें आकाश को छूने का कर रही थी प्रयास। वातावरण में घोर सन्नाटा पसरा था। श्मशान के कुछ मरियल कुत्ते कभी–कभी भौंकने लगते थे। जिससे कभी–कभी भंग हो जाता था वह सन्नाटा। मैंने देखा, चिता के निकट एक युवती खड़ी सजल आँखों से देख रही थी सामने जलती हुई चिता को। उसकी आयु सोलह–सत्रह साल से अधिक नहीं थी। उसका गोरा शरीर लिपटा हुआ था सफेद साड़ी से। घने बाल खुलकर बिखरे हुए थे पीठ पर। सुन्दर कोमल चेहरे पर करूणा, दुख और पीड़ा के मिले–जुले भाव थे। अकेले खड़ी थी वह अबला और कोई भी था वहाँ। किसकी जल रही थी चिता, कौन था उस युवती का वह? जो चिता की आग में जलकर कर धीरे–धीरे बदलता जा रहा था राख में? आगे बढ़ा मैं और आगे बढ़कर युवती से पूछा– किसकी चिता है? कौन है भस्मीभूत होने वाला। मेरी बात सुनकर युवती ने सिर घुमाकर मेरी ओर देखा–सूनी और उदास नजरों से। झील जैसी गहरी नीली आँखों में अथाह करूणा और अथाह व्यथा और साथ ही अथाह पीड़ा का सागर कर रहा था अट्टहास। अचानक झरझर बरसने लगे आँसू, रहा न गया मुझसे। दया उमड़ आयी हृदय में। संन्यासी जो ठहरा उसके और निकट जाकर उसके गालों पर ढुलक आये आँसुओं को अपनी उंगलियों से पोंछते हुए कोमल स्वर में पूछा– कुछ बोलो न, कुछ कहो न! कौन सा दुख और कौन सी पीड़ा है तुम्हारे हृदय में। किस आग में जल रही है तुम्हारी आत्मा?

मेरी बात सुनकर युवती ने पलट कर अपना चेहरा छिपा लिया मेरे सीने में और छिपाकर रोने लगी। हिलक–हिलक कर रोने के कारण हिल रहा था उसका सारा शरीर एकबारगी। बाद में सारी कथा सुनायी सरला ने। हाँ, उस युवती का नाम था सरला। सरल हृदय, सरल स्वभाव और सरल व्यवहार। सब कुछ सरल ही सरल। बालकाल में ही माता–पिता नहीं हीं रहे। सास श्वसुर अतिवृद्ध थे। एक ही पुत्र था। नाम था श्यामलाल। उसी की पत्नी थी सरला। एक ही साल पहले हुआ था विवाह, टी.वी. हो गयी श्यामलाल को। अभावग्रस्त परिवार। दवा दारू न हो सकी ठीक से। जो होना था वही हुआ अन्त में। श्यामलाल की इहलीला समाप्त हो गयी। मरते समय पत्नी के उदास चेहरे को देखता रहा अपलक। उसकी भरभरायी आँखों में न जाने क्या खोजता रहा अपलक। फिर झुक गयी उसकी गर्दन एक ओर। मांग का सिन्दूर पोछ दिया गया। कलाई की लाल चूड़ियाँ तोड़ दी गयी पत्थर से। उसी क्षण से पत्थर बन गयी सरला भी। छोटी जात की होने के कारण लाश उठाकर श्मशान लाने वाला कोई नहीं था। विवश और लाचार सरला स्वयं अपने पति की लाश ले आयी श्मशान में और अपने कांपते हाथों से ही पति को मुखाग्नि दी। गांव के लोग सवर्ण थे, कैसे आते। घर पर भी झांकने नहीं आये। श्मशान में भी नहीं। अकेले आयी और अकेले ही वापस लौटने भी वाली थी लेकिन क्या वह लौट सकी घर। नहीं, घर जाने के बजाय आ गयी वह मठ में।

एक–एक कर सब कुछ याद आ गया मुझे। सोलह वर्ष की अवस्था में आयी थी विमल कीर्ति। मैंने ही उसे योग दीक्षा प्रदान की थी। मैंने सफेद वस्त्र के स्थान पर गैरिक वस्त्र दिया था उसे। मैंने ही नाम रखा था विमल कीर्ति। यही नाम अच्छा लगा था उस गौरांग वर्णा तन्वंगी के लिए मुझे और फिर हो गयी मेरी प्रिया विमल कीर्ति। नित्य गुरु भाव से मेरी सेवा करती और फिर करती योग साधना। कुछ ही समय में लगने लगी थी उसकी समाधि। समाधि की अवस्था में हम दोनों लोक–लोकान्तरों में करते भ्रमण और ज्ञान एकत्र करते। हे परमात्मा! कितने अच्छे दिन थे वे। आकण्ठ डूब गये थे हम दोनों आत्म प्रेम के सागर में। मैंने विमल कीर्ति का हाथ थामकर उठाया और अपने

निकट लाकर सरल और कोमल स्वर में बोला विमल कीर्ति! अब कौन सा दुख है? अब कौन सी पीड़ा है? अब कौन सी व्यथा है और अब कौन सी है वेदना? मैं आ गया न! न जाने क्यों और किस वैराग्य के क्षणों में सर्वस्व त्याग कर यहाँ तक की तुमको भी छोड़कर अज्ञातवास के लिये चला गया था मैं। स्वयं मुझे भी ज्ञात नहीं विमल कीर्ति! आज फिर अपने गुरु की सेवा करने का मिलेगा अवसर साधना मार्ग में और आगे बढ़ने का मिलेगा निर्देशन।

मेरी बात सुनकर गला भर आया विमल कीर्ति का। गालों पर ढुलक आये अश्रुकणों को पोछते हुए गीले स्वर में कहने लगी विमल कीर्ति। वियोग के दीर्घ अन्तराल में दर दर भटकती रही मैं संसार के अन्धकार में कहाँ नहीं गयी मैं– काशी, हरिद्वार, बद्रीनाथ, केदारनाथ। कहाँ नहीं खोजा आपको मैंने? क्या इस वियोग से आपकी आत्मा से मेरी आत्मा का नाता रिश्ता या संबंध टूट सका गुरुदेव। नहीं कभी नहीं टूट सकता और यही कारण है कि आपके चरणों का स्पर्श करने का पुनः अवसर प्राप्त हुआ मुझे।

सब सुन रहा था मैं। कुछ बोला नहीं जा रहा था मुझसे। बोलता भी तो क्या? बस, देखता रहा विमल कीर्ति की ओर।

मैं जानती हूँ गुरुदेव, विमल कीर्ति आगे कहने लगी– पाँच वर्षों में आपने कितनी पीड़ा सही होगी, कितनी व्यथा सही होगी? कितने कष्ट उठाये होंगे? इनके अलावा आप पर क्या बीती होगी? यह भी मैं जानती हूँ अच्छी तरह। जब–जब मैंने आपको असहाय पाया, निर्बल पाया, एकांकी पाया। तो सच पूछिए गुरुदेव। आँसू रोक न पाती मैं। हिलक–हिलक बस, रोने ही लगती थी। कितना रूलाया है, गुरुदेव! आपने मुझे। आपसे बिछुड़ कर आज तक रो रही हूँ। कभी किसी क्षण आँसू थमे नहीं। क्या आप इसी तरह रूलाते ही रहेंगे मुझे गुरुदेव, बोलिए कुछ तो बोलिए। कुछ तो कहिए! मगर मुझसे कुछ बोला न गया और न तो कुछ कहा ही गया। कैसे बतलाता कि क्यों, कैसे बैराग्य हो गया था मुझे? क्यों चला गया था मैं एकान्तवास के लिए हिमालय की ओर और कैसे वापस लौट कर आ गया मैं? निश्चय ही विमल कीर्ति की आत्मा की करुण पुकार सुनकर लौट आयी थी मेरी आत्मा इसमें

सन्देह नहीं। अभी तक करुण क्रन्दन थमा नहीं था विमल कीर्ति का। जो लोग वहाँ उस समय उपस्थित थे। उन लोगों की आँखे भी छलछला आती थी। बड़ा ही करुणामय हो उठा था वातावरण। गुरु शिष्य की श्रद्धा भक्ति और उनके अद्वैत प्रेम के मिलेजुले रस में पगे पवित्र संबंध को देखकर सभी का हृदय द्रवित हो उठा था एकबारगी।

***

आपको याद है न गुरुदेव। शरदपूर्णिमा की रात थी वह। छत की फुलवारी के बीच अर्ध लेटे से बैठे थे आप। आँखे बन्द किये समाधिस्थ। रातरानी की सुगन्ध बिखरी हुई थी वातावरण में। पूर्णिमा का रूपहला चांद बहुत ऊपर आ गया था, नीले आकाश में। जिसकी चांदनी में आकण्ठ डूबा हुआ था सारा प्रान्त। आपकी गोद में सिर रखे निहार रही थी मैं चांद को उस समय खोयी–खोयी सी। आपके सान्निध्य में रहते हुए पूरे आठ वर्ष हो गये थे। उन आठ वर्षों के अतीत के क्षणों को फिर से जी रही थी शायद मैं। कैसे बीत गये वे आठ वर्ष पता ही न चला। सपना–सपना सा लगता था सब कुछ। एकाएक टूटे हुए धनुष की तरह आप तड़ाक से उठे और सीढ़ियाँ उतरकर मठ के आंगन में पहुँचे। क्या हो गया था आपको! समझ न पायी मैं और आप कुछ क्षण रूके आँगन में और फिर तीव्र गति से निकल गये मठ के बाहर। मैं भौचक्की सी अवाक् देखती रह गयी आपको जाते हुए।

चीख पड़ा मैं एकबारगी– विमलकीर्ति.....। नहीं, नहीं, ऐसा कुछ नहीं। फिर शान्त किया मैंने अपने मन को और गम्भीर स्वर में कहने लगा गुरु और शिष्य का आत्मिक धरातल पर होता है प्रेम। न मन के धरातल पर होता है और न तो होता है प्रेम तन के ही धरातल पर। लेकिन जिस दिन तुमको पहली बार मैंने देखा था और जिस दिन तुमको मैंने दी थी दीक्षा उसी दिन तुम्हारी लावण्यमयी सुन्दर दैवी छवि देखकर एकबारगी मोहित हो गयी थी मेरी आत्मा तुम्हारे प्रति, वशीभूत सी हो गयी जैसे वह। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर प्रेम करने लगा था मैं तुमसे। सच, विमल कीर्ति सच। जब तुम्हारी गौरवर्णीया सुगठित देह वल्लरी को देखता तो देखता ही रह जाता। उस समय मेरे अन्तराल में प्रबल वासना और प्रबल कामना का झंझावात खड़ा हो

जाता था। विचलित और व्याकुल हो उठती थी मेरी आत्मा। अन्तर्द्वन्द मच जाता मन में। सचमुच दयनीय हो गयी थी मेरी मनोदशा। कभी–कभी पूरी रात सो न पाता था मैं। बार–बार तुम्हारी मनोहारिणी छवि उभर आती मेरे मानसपटल पर। बार–बार कौंध सी जाती तुम्हारी रूप शिखा मेरी आँखों के सामने। तुम तो पूरी तरह अनभिज्ञ थी मेरी मनोदशा से। तुम तो मुझे गुरु के रूप में देख रही थी, लेकिन मैं..... मैं..... तुम्हे देख रहा हृदयेश्वरी के रूप में। सच कहता हूँ विमल कीर्ति शाक्त साधना का मार्ग अत्यन्त कठिन है। सभी नहीं चल पाते उसके मार्ग पर। साधना के कठोर मार्ग के नियमों का पालन नहीं हो पा रहा था मुझसे विमल कीर्ति। लेकिन तुम तो दृढ़ थी अपने साधना मार्ग पर। एक परम गुरु, परम साधक और उच्चकोटि की दिव्य आत्मा के रूप में मुझे देखती थी तुम। शिष्य का प्रेम आत्मजन्य और गुरु का प्रेम वासनाजन्य कितना वैषम्य था। तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति जरा–सी भी कलुषित भावना नहीं थी और न तो था किसी भी प्रकार का वासनाजन्य भाव ही। तुम तो थी गंगाजल की तरह पवित्र और निर्मल। यह सब कुछ जानता समझता था विमल कीर्ति परन्तु लाचार था विवश था मैं अपने आपसे। नीतिका ने जो धोखा दिया था। उसका आघात पूरी तरह सहन नहीं कर पाया था मेरा हृदय शायद। तभी वासना का वेग उठने लगा था मेरे मन में। क्या भगवती कालरात्रि मेरी परीक्षा तो नहीं ले रही थी? सम्भव है, ऐसा ही हो रहा होगा। मगर मेरी तो मति मारी ही गयी थी उस समय।

भोर के समय तन्मय होकर मैं कालरात्रि की आरती किया करता था। पर मैं किसकी करता था आरती? कलिरात्रि की विकराल पाषाण मूर्ति नहीं होती थी वह। वहाँ तो तुम्हारी। आँखें मल कर मैं महामाया की ओर देखता और बार–बार आ जाती सामने तुम्हारी छवि। न जाने क्या हो गया था मुझे? स्वयं समझ में नहीं आता था कुछ। रात की आरती पूजा समाप्त कर चला जाता था मैं नदी की ओर। वहाँ एकान्त में बैठकर चुपचाप रोता मैं फूट–फूट कर। क्या हो गया था मुझे? माँ महामाया मेरी परीक्षा ले रही थी या छल रही थी मुझे। आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले महान योग सिद्ध और तंत्र साधक स्वामी ज्ञानेश्वरानन्द सरस्वती का एकमात्र शिष्य था मैं। यह कैसा हो रहा था मेरा मानसिक

पतन? क्यों अधःपतन की ओर बढ़ रहे थे डगमगाते हुए मेरे कदम? बहुत प्रयत्न करने पर भी संभालने में असमर्थ रहा मैं अपने आपको। प्रायश्चित के अतिरिक्त और कोई मार्ग अब नहीं रह गया था मेरे लिए और चल पड़ा मैं अज्ञातवास के लिए।

मेरे चरणों को थामे मौन अपने आपमें लीन सुनती रही मेरी कथा विमल कीर्ति। पश्चिम के नीले आकाश में शुक्र चमक रहा था और अब मैं उसी की ओर सिर उठाकर निहारने लगा था और अनुभव करने लगा था मैं अपने आपमें हल्कापन। क्षण पर क्षण बीतता जा रहा था। धीरे–धीरे बहुत समय निकल गया। अरे यह क्या? अभी तक पूर्ववत् बैठी थी विमल कीर्ति मेरे चरणों को थामे। उठाने का प्रयास किया मैंने लेकिन उठी नहीं वह। उसी अवस्था में बनी रही वह। क्या हो गया विमल कीर्ति को? अपने आसन से उठकर खड़ा हो गया है और मेरे खड़े होते ही एक ओर लुढ़क गयी विमल कीर्ति की काया। हे परमात्मा! हे भगवान! क्यां हो गया विमल कीर्ति को? क्या समाधि में चली गयी थी वह? नहीं, नहीं समाधि की अवस्था वह नहीं थी चिरनिद्रा थी वह अवस्था। छोड़ कर चली गयी थी विमल कीर्ति अपने शरीर को, मुझे और इस संसार को हमेशा–हमेशा के लिए। मेरी कथा सुनकर सहन न कर सकी उसकी निर्मल आत्मा और चीख पड़ा मैं एकबारगी विमल कीर्ति.....।

एकाएक झटका सा लगा मेरे शरीर को और उसी के साथ अपने आप खुल गयी मेरी आँखे और देखा मैरे सामने निर्विकार भाव से बैठे हुए थे स्वामी सत्यानन्द कापालिक। क्या मेरे सामने दिव्य पुरुष बैठे हुए थे। वे सत्यानन्द कापालिक थे। नहीं, नहीं, वे वह नहीं थे। वे थे स्वामी ज्ञानेश्वरानन्द सरस्वती। उनको पहचानने में कहीं कोई त्रुटि नहीं हुई थी मुझसे। किसी भी प्रकार का भ्रम भी नहीं हुआ था मुझे। बिलकुल साम्य था। क्या दोनों महापुरुष एक ही व्यक्ति थे? किसी ने मेरे भीतर हौले से कहा– हाँ! दोनों एक ही हैं। स्वामी ज्ञानेश्वरानन्द ही स्वामी सत्यानन्द कापालिक के रूप में अवतरित हुए हैं। फिर तो रहा न गया मुझसे! बाबा के चरणों को दोनों हाथों से थामकर रोने लगा मैं हिलक–हिलक कर। नियति की इतनी रहस्यमयी लीला घट रही थी मेरे जीवन में? कभी सोचा भी नहीं था मैंने! कभी कल्पना भी नहीं की थी। कुल चार

घण्टे और उस अल्पकाल में कौन सा जीवन जीया था मैंने? क्या–क्या देखा था मैंने? क्या वह सब सत्य था या कोई लम्बा सपना?

रूधें हुए कण्ठ से पूछा– क्या सच है बाबा? यह जीवन कि वह जीवन, जिसे जीया है मैंने पूरे चार घण्टे। इस रहस्य से तो मैंने भलीभांति परिचित हो चुका हूँ कि आप ज्ञानेश्वरानन्द जी हैं।

मेरी बात सुनकर गम्भीर स्वर में कहने लगे बाबा– हाँ! पिछले जन्म में जैसे तुम पूर्णानन्द थे उसी प्रकार मैं भी था ज्ञानेश्वरानन्द। जीवन सत्य है और मृत्यु है असत्य। दोनों जीवन सत्य है अपने आपमें। इस समय जिस जीवन को जी रहे हो, वह तो सत्य है ही अपने आपमें इसके अतिरिक्त अपने आपमें सत्य था वह जीवन भी।

वह कैसे? व्यग्र हो उठा मैं। तीन सौ वर्ष पूर्व जिस जीवन को पहले एक असफल प्रेमी के और बाद में एक असफल संन्यासी के रूप में जीया था तुमने, उसका एक महत्वपूर्ण अंश था वह जो आवश्यक था इसलिए कि अपनी आध्यात्मिक योग्यता से थोड़ा परिचित हो सको तुम।

भूत भविष्य, दोनों वर्तमान में हैं लेकिन बाबा एक बात समझ में नहीं आ रही है और वह यह कि जो अतीत बन गया, वह सम्भव कैसे है, वर्तमान में। मेरे विचार से भविष्य वर्तमान बनता है और फिर वही वर्तमान अतीत बन जाता है यानि भूतकाल और अतीत जिसका अस्तित्व नष्ट हो गया होता है, वह कैसे फिर बन सकता है वर्तमान।

तुम्हारा विचार अथवा तुम्हारी धारणा अपने स्थान पर पूर्ण रूप से ठीक है इसमें सन्देह नहीं लेकिन जिसे तुम वर्तमान समझते हो, वह है कहाँ? उसके अस्तित्व का कहाँ होता है बोध तुमको जरा सोचो। काल का प्रवाह इतना तीव्र है कि भविष्य प्रति क्षण बनता जा रहा है अतीत। वर्तमान के जिस बिन्दु पर भविष्य काल भूतकाल में परिवर्तित होता है, उस बिन्दु को योग कहता है तीसरा नेत्र! जिसका अस्तित्व जवाकार नील ज्योति के रूप में स्थित आज्ञाचक्र के मध्य में है। षष्ट्चक्रों में आज्ञाचक्र अत्यन्त रहस्यमय है। इस रहस्यमय चक्र का सीधा संबंध मस्तिष्क की तीन अरब अस्सी लाख कोशिकाओं से है। जिनमें पिछले सोलह जन्मों की और अगले तीन जन्मों की सम्पूर्ण जीवन गाथा विद्यमान रहती है। कहने की आवश्यकता नहीं उसी नील ज्योति का

आश्रय लेकर योगीगण तीनों काल का दर्शन कर लेते हैं इच्छानुसार। तुमने भी नील ज्योति के ही माध्यम से अपने अतीत को देखा था। केवल मैंने कुछ समय के लिए अपनी शक्ति से जागृत कर दिया था तुम्हारे आज्ञा चक्र को। ऐं! ऐसा किया था आपने? हाँ बेटा! इसलिए किया था कि तुम पिछले जन्म में क्या थे और इस जन्म में क्या हो और पिछले जन्म की तरह इस जन्म में भी तुमको दीक्षा देना चाहता हूँ मैं। इसलिए कि साधना मार्ग में आगे बढ़ो। मैं जानता हूँ कि तुमने जो कुछ देखा सुना और अनुभव किया, वह सब स्वप्न जैसा लग रहा होगा तुम्हे।

हाँ! बाबा ऐसा ही समझिए।

देखो! आत्मा की कई अवस्थाएँ हैं लेकिन मनुष्य से संबंधित केवल मुख्य रूप से तीन ही अवस्थाएँ हैं– **जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति** और तीनों अवस्थाओं के बाद आत्मा की जो अवस्थाएँ हैं वे योग बल से मनुष्य को प्राप्त होती है। उन तीनों अवस्थाओं का संबंध क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपूरक चक्र में समझना चाहिए। ये चक्र बराबर और हर क्षण सक्रिय रहते हैं। जागृत अवस्था में मूलाधार चक्र सक्रिय रहता है और इसी प्रकार स्वप्नावस्था में स्वाधिष्ठान तथा सुषुप्ति अवस्था में मणिपूरक रहता है सक्रिय! मन की भी तीन अवस्थाएँ हैं– ठोस, तरल और ऊर्जा। जागृत में मन पहली अवस्था में, स्वप्न में दूसरी अवस्था में और सुषुप्ति में रहता है अपनी तीसरी अवस्था में। इस प्रसंग में यह भी समझ लेना चाहिए कि आत्मा की तीनों अवस्थाएँ तीनों चक्र और मन की तीनों अवस्थाएँ त्रिकाल की सीमा में बंधी हुई हैं।

त्रिकाल क्या है? खण्डकाल, काल और महाकाल– इसे त्रिकाल कहते हैं? इसकी चर्चा हम आगे करेंगे? पहले तुमको यह समझ लेना चाहिए कि जागृत सुषुप्ति से अधिक सत्य है स्वप्नावस्था।

आत्मा जागृत अवस्था में तुम केवल अनुभव करते हो वर्तमान का। भविष्य के प्रति अज्ञात रहते हो। अतीत को भूल जाते हो। विसरा देते हो। लेकिन स्वप्नावस्था एक ऐसी अवस्था है जो अपने आपमें सत्य तो है ही, इसके अतिरिक्त उसकी अवस्था में तीनों काल का एक साथ आभास होता है। बस, उसे समझने की योग्यता होनी चाहिए और वह योग्यता उपलब्ध होती है मात्र योगी को। सच तो यह है कि तीनों काल

और उनसे संबंधित तीनों जगत और तीनों अवस्थाएँ और उनसे संबंधित तीनों जीवन एक दीर्घ स्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यदि कोई सत्य है तो वह है आत्मा। इस संबंध में कहा भी गया है– **ब्रह्मं सत्यं जगन्मिथ्याः।** ब्रह्म का अर्थ है आत्मा! जो परब्रह्म का एक अंश है। जिसका अस्तित्व प्रत्येक काल में, प्रत्येक अवस्था में और प्रत्येक स्थिति में एक–सा रहता है। किञ्चित मात्र परिवर्तन नहीं होता। वह अनादि और अनन्त है, अविनाशी है। जीवन का सत्य समझ लेना ही माया है और वही समझ जीवभाव है। जीवभाव के कारण ही आत्मा को कहते हैं जीवात्मा। जीवात्मा यानी मायाग्रस्त आत्मा। जीवात्मभाव नष्ट हो और उसके स्थान पर आत्मभाव का उदय हो– 'योग' का परम लक्ष्य हैं और इसी को उपलब्ध होना, योग साधना मार्ग का एकमात्र है उद्देश्य और इस उद्देश्य को साकार करना चाहिए तुम्हे। उस समय तुमको सब कुछ स्वप्नवत् प्रतीत होगा। वर्तमान जीवन भी और भूतकाल में जो संन्यासी का जीवन जीया था वह भी। लेकिन अभी तुमको सब सत्य सा प्रतीत होगा।

हाँ! बाबा! आप ठीक कहते हैं ऐसा ही लग रहा है मुझे। यह कहकर मैं उठा और महाश्मशान की ओर चल पड़ा अपने प्रश्नों के उत्तर की खोज में। सांझ की स्याहवेला, गहरा सन्नाटा, बगल में विशाल पीपल की डालों पर टंगे यमघंट टकरा रहे थे आपस में हवा की लय पर। कई चिताएँ जल रही थी उस समय वक्रेश्वर के महाश्मशान में। पीपल के नीचे बैठ गया मैं एक पत्थर पर। जब वहाँ जाता तो उसी पत्थर पर बैठता था। बड़ी शान्ति मिलती थी मुझे वहाँ। मेरी आदत बन गयी थी गालों पर हाथ रखकर सोचने की। उस समय भी उसी आदत के अनुसार गालों पर हाथ धरे सोचने लगा– सौम्य, शान्त और निर्विकार चेहरा उभर आया था मेरे मानसपटल पर विमल कीर्ति का उस समय और फिर लीन हो गया मैं उस सौन्दर्यमयी संन्यासिनी के सान्निध्य के क्षणों में। कहाँ होगी इस समय उसकी आत्मा? किस लोक में भटक रही होगी वह? क्या उसे स्मरण होगा मेरे साथ बीते हुए क्षणों का? कहीं जन्म तो नहीं ले लिया है विमल कीर्ति ने ? यदि ले लिया है तो कहाँ है वह इस समय? ऐसे और इस प्रकार के और भी प्रश्न

उभर रहे थे मेरे मन में इस समय। एक शव आ रहा था श्मशान में। राम–राम सत्य है..... बोल हरि.....हरि बोल.....। किसी भले घर परिवार का था शायद शव। बड़ी भीड़ थी उसके साथ एकाएक मेरी दृष्टि घूम गयी भीड़ की ओर। घोर आश्चर्य हुआ। इस भीड़ में वह काली–कलूटी लड़की भी थी। शायद उसने भी देख लिया था मुझे। दौड़ कर आ गयी मेरे सामने। लपक कर उसके दोनों चरण थाम लिया मैंने। न जाने क्यों आँखों से झरने लगे आँसू। फिर उस दिन की तरह रोने लगा तू! बोल पगले क्यों रो रहा है? विमल कीर्ति की याद आ रही है न। आयेगी ही याद! अच्छा, बस, बहुत हो गया मेरा पैर छोड़ अब।

तू! माँ है न। जब सब कुछ जानती हो तो क्यों रखेगी मुझे अतीत के अन्धकार में। चरण छोड़कर आँसू पोछते हुए मैंने कहा।'

माँ! कैसी रे! लड़की हँस कर कहने लगी– तेरी माँ लगती हूँ मैं? पागल हो गया है तू, सच में! मैं तो एक लड़की हूँ। श्मशान में इधर–उधर घूमती रहती हूँ। फेंका हुआ पत्तल का जूठा मिल जाता है वही खाकर भर लेती हूँ अपना पेट।

नहीं माँ नहीं, ऐसी बात नहीं। तू साक्षात् माँ है, महामाया है। तू ही बतला सकती है– विमल कीर्ति के संबंध में। तू ही बतला सकती है– नीतिका का प्रेमी कौन था? जो पूर्णानन्द बना बाद में और फिर नीतिका कहाँ है और किस स्थिति में है? ये सब माँ तू ही बतला सकती है....बोलते–बोलते गला भर आया मेरा। फिर झरने लगे आँसू।

मेरे नजदीक आ गयी लड़की। अचानक उसके शरीर से कोई सुगन्ध निकली और फैल गयी मेरे चारों तरफ। अनर्वचनीय सुगन्ध थी वह। तन, मन दोनों प्रफुल्ल हो उठा एकबारगी। महामाया भवतारिणी को **गन्धाष्यां सुमनोहराम् और दिव्यगन्धा नुलेपनाम्** कहा गया है। अब कोई सन्देह नहीं रह गया था मेरे मन में। निश्चय ही वह कन्या और कोई नहीं साक्षात् कन्या के परिवेश में माँ महामाया जगदम्बा थी। मेरे गालों पर ढुलक आये आँसुओं को जैतून की तरह अपनी कोमल उँगलियों से पोछती हुई मधुर और सरस स्वर में कहने लगी लड़की– तू तो योगी है न! योगी को कैसी मोहमाया?

नहीं, माँ! ऐसा मत बोल तू। विमल कीर्ति से मेरा आत्मिक संबंध है। उसकी आत्मा से कोई भी अलग नहीं कर सकता है मुझे माँ! कोई नहीं। मृत्यु सत्य नहीं है माँ, सत्य तो है जीवन। जीवन के प्रवाह को कौन भला रोक सकता है। मृत्यु तो जीवन से थकी हुई आत्मा की निद्रा है उसका है विश्राम। अभी भी कहीं न कहीं अस्तित्व होगा किसी न किसी रूप में विमल कीर्ति का, इसमें सन्देह ही नहीं मुझे पूर्ण विश्वास है।

अभी तू बालक है। इतना विह्वल और व्याकुल नहीं होना चाहिए तुझे। संन्यास धर्म का ठीक से पालन नहीं किया है तुमने। इसलिए इस जीवन के अन्त में लेना होगा तुझे संन्यास। अभी तो तुम्हे बहुत दिन रहना है इस संसार में। कम से कम साठ सत्तर वर्ष और इस दीर्घकाल में संसार का भिन्न–भिन्न रूप देखना होगा। न जाने कितने प्रकार के लोगों का सामना करना पड़ेगा। न जाने कितनी पीड़ाएँ सहनी होगी। न जाने कितनी वेदनाएँ सहनी होगी। न जाने कितने दुख और कष्ट झेलने होंगे। कितना आघात सहना होगा और न जाने कितने वियोगजन्य कष्टों को भी होगा सहना। रही बात नीतिका और विमल कीर्ति की तो दोनों की आत्माओं का अस्तित्व पारलौकिक जगत में अभी तक बना हुआ है। यथासमय दोनों अपने–अपने संस्कार कर्म के अनुसार छः जन्म लेगी इस संसार में और भेंट होगी दोनों से लेकिन अलग–अलग समय में और अलग–अलग परिवेश में। लेकिन इसके लिए पूरे साठ वर्ष प्रतीक्षा करनी होगी तुझे समझे। लेकिन 'माँ' दोनों को पहचानूँगा कैसे मैं? कैसे समझूँगा कि कौन है नीतिका और कौन है विमल कीर्ति?

मेरी बात सुनकर एकबारगी हँसने लगी लड़की खिलखिलाकर और उसी मुद्रा में कहने लगी बड़ा पागल है तू! पहचानने में देर न लगेगी तुझे। अपने योग बल से पहचान भी लेगा और जान भी लेगा उन दोनों की कथा को भी। लेकिन पीड़ा तो इस बात की है कि न नीतिका ही जान समझ सकेगी और न तो जान समझ सकेगी विमल कीर्ति ही तुमको। इसे अज्ञानता ही कहना पड़ेगा और वह अज्ञानता तेरे लिए अति कष्टदायक और अति दुखदायी होगी। सम्भवतः उसी कारण संन्यास भी ले लेगा तू! संन्यास के लिए तो कोई न कोई कारण होना ही चाहिए न!

थोड़ा रूककर न जाने क्या सोचने लगी वह कृष्णावर्णा और फिर मेरी आँखों से झांकते हुए आद्र स्वर में बोली– नीतिका और विमल कीर्ति की बात छोड़ो । संसार में कोई नहीं समझेगा पगले तेरे मूल्य को और तेरे महत्व को। तू है कौन? यह जानना लोगों के लिए बड़ी दूर की बात होगी.... छोड़ो इन सब बातों को, चल, जरा अपने सामने तो देख। तुरन्त सिर उठाकर देखने लगा सामने धू.... धू.... कर जलती हुई चिताओं की लाल पीली लपटों के धुन्ध में समाया आकाश की ओर और आकाश के स्याहपटल पर। हे भगवान! क्या देख रहा था मैं। क्या मेरा अतीत उभर आया था आकाश के स्याहपटल पर। हाँ! ऐसा ही लगा मुझे उस समय। मेरी आँखों के सामने था– कभी आन, बान, शान से खड़े उस मठ का धूल धूसरित जीर्ण शीर्ण और विवर्ण खण्डहर। जिसमें कभी संन्यासी के रूप में रहा था और मेरे प्रेम की सुगन्ध बिखरी हुई थी। पूरे तीन शताब्दियों से काल के थपेड़े झेलते हुए। अब बचा ही क्या था वहां उस खण्डहर में? जिस कालरात्रि की पाषाण प्रतिमा की तन्मय होकर किया करता था आरती और जिस महामाया भवतारिणी के सम्मुख घंटों ध्यानस्थ बैठा रहा करता था मैं, वह विखण्डित और धूलधूसरित होने पर भी सजीव लगी मुझे उस समय और न जाने कब तक अपलक निहारता रहा मैं महामाया की ओर। कब तक देखता रहा है बता नहीं सकता। ध्यानस्थ हो गया था मैं शायद उस समय और तभी किसी की आवाज सुनाई दी– अरे इतनी रात हो गयी अभी तक तू यहाँ बैठा है। चल उठ..... वह मणिमाला की आवाज थी। किस अवस्था में था मेरा अस्तित्व? कहाँ गयी वह रहस्यमयी लड़की ? थोड़ी देर बाद देखा– सामने बस, चिताएँ जल रही थी पहले की तरह! सिर भारी हो रहा था। किसी प्रकार मणिमाला का सहारा लेकर लड़खड़ाते हुए चल पड़ा मैं।

❑

षष्टम् आवाहन

हम क्या-क्या हैं और क्या-क्या नहीं हैं

जिज्ञासु पाठकगण प्रायः मुझसे यह प्रश्न करते हैं कि आपकी आध्यात्मिक खोज वृत्ति से क्या लाभ हुआ आपको?

इस प्रश्न के उत्तर में इतना ही बतला सकता हूँ कि मुझे कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। हाँ ! एक बात अवश्य है और वह यह कि जो मेरे भीतर था, वह प्रगट हो गया है, जो मेरे पास था वह ज्ञात हो गया है मुझे। जो मैं था और जिसके प्रति मैं सोया हुआ था, उसके प्रति जाग गया हूँ मैं। सच बात तो यह है कि बन्धु! जो अज्ञान था और जो नासमझी थी, वह खो गयी। अब मैं यह कंह सकता हूँ कि वह मेरे पास था ही, लेकिन उससे अपरिचित था मैं। और अब आगे.....।

बाबा कहते हैं, जब हम योगतांत्रिक साधना भूमि में प्रवेश करते हैं तो उस समय हमारे सामने दो महत्वपूर्ण प्रश्न होते हैं। पहला है– **हम क्या क्या हैं और हम क्या क्या नहीं हैं?** इन दोनों जीवन से गुजरना पड़ता है या यह कहें कि हम गुजरते हैं तो अच्छा रहेगा। समान रूप से हमारा अस्तित्व है दोनों जीवन में।

योगतांत्रिक साधना के दो भाग हैं। एक भाग वह है, जिसमें जो असार है, उसको त्यागना पड़ता है और तोड़ना पड़ता है उससे तादात्म्य और दूसरा भाग वह है जिसमें सार है उसके साथ एकात्म और उसके साथ तादात्म्य स्थापित करना पड़ता है। पहला भाग है निषेध और दूसरा भाग है विधेय। असत्य को असत्य की ही तरह जानना पड़ेगा साधक को। तभी वह सत्य को जान पायेगा सत्य की तरह। प्रकाश को जानने के लिए पहले अन्धकार को जानना पड़ेगा। तभी हम जान पायेंगे प्रकाश के मूल्य को। जीवन को पहचानने के लिए मृत्यु को आवश्यक है जानना। तभी जीवन के मूल्य और महत्व को समझ सकेंगे हम, क्योंकि जो भी

हमारे विचार में आता है उसे आने के लिए उसके विपरीत के प्रति भी होनी चाहिए हमारी दृष्टि। जिन वस्तुओं को हम विपरीत कहते हैं वे विपरीत कहने से हो जाती है सहयोगी उनसे स्थापित हो जाती है आन्तरिक मैत्री। फिर तो मृत्यु भी दुश्मन नहीं है जीवनी। फिर तो जीवन का मित्र है मृत्यु। इसलिए जीवन कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकता मृत्यु के बिना। यदि हम विचार करें तो यह समझ में आ जायेगा कि जिसे हम शत्रु समझते हैं वह भी हमारी मूर्खता ही है, नासमझी है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस संसार में जो भी विपरीत है वह अन्त में सहयोगी होता है सिद्ध। जैसे राम बिना रावण नहीं और रावण बिना राम नहीं। क्योंकि जो रावण है वह राम नहीं है और राम है वह रावण नहीं है।

अब मनुष्य की अन्तरात्मा की बात लें। मनुष्य का आन्तरिक यथार्थ क्या–क्या है और क्या–क्या नहीं है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों में से कोई भी नहीं है वह। जो माया है और है जो प्रपञ्च वह भी वह नहीं है। यहां तक निषेध की प्रक्रिया की चर्चा की है हमने और अब करेंगे विधायक की चर्चा 'वह क्या है'?

जितना पाप गहरा नहीं होता, जितना पुण्य गहरा नहीं होता और जितना गहरा नहीं होता अज्ञान। उससे गहरा होता है आत्यंतिक रूप से न होने का संबंध। क्या–क्या हम नहीं हैं यह सर्वाधिक गहरा है। योग की गहनतम् प्रक्रियाएँ और धर्म की आधारभूत प्रक्रियाएँ उसी गहरायी से संबंधित है जो–जो हम नहीं हैं।

क्या–क्या हम नहीं है। इस संबंध में योग का कहना है कि जाग्रत अवस्था में हमारे जीवन में जो कुछ भी हो रहा है जो कुछ भी घटित हो रहा है वह सब हम नहीं हैं और जो हम नहीं हैं उसके विस्तार में जाने की क्या आवश्यकता। योग ने एक शब्द में सब कुछ कह दिया। जाग्रत अवस्था में हमारे जीवन में जो–जो होता है, हम जो कुछ भी करते हैं। जो कुछ भी होता है अच्छा या बुरा। जो–जो संबंध बनाते हैं। शत्रु बनाते हैं, मित्र बनाते हैं, सुख मिलता है, दुख मिलता है, पद प्राप्त कर लेते हैं, धन वैभव प्राप्त कर लेते हैं, व्यापार करते हैं, मकान बनवा लेते हैं, विवाह कर लेते हैं, बच्चों को जन्म दे देते हैं, जो कुछ भी हम करते हैं जाग्रत अवस्था में वह सब हम नहीं हैं। उन सबसे हमारा कोई

संबंध नहीं। कोई नाता, रिश्ता नहीं लेकिन फिर भी हमारे होने की कोई सम्पत्ति नहीं है। इस तथ्य को और स्पष्ट करते हुए इस प्रकार कहा जा सकता है कि जाग्रत अवस्था में हमारे जीवन में हर क्षण कुछ न कुछ होता ही रहता है, होता रहा है और भविष्य में बराबर होता भी रहेगा। लेकिन वह **'हम नहीं हैं'** धन, वैभव, ऐश्वर्य, पद, ख्याति, प्रतिष्ठा, सुख, सम्पत्ति, राग, द्वेष ईर्ष्या, क्रोध संबंध रिश्ता, नाता आदि नहीं है हमारी जाग्रत अवस्था की सम्पत्ति लेकिन वे सम्पत्ति और वे भौतिक सम्पदा में हम नहीं हैं। तात्पर्य यह कि जितनी भौतिक वस्तुओं को हमने एकत्र कर रखा है; वे 'हम नहीं हैं। वे सब के सब हमसे अलग है। उन पर हमारा अधिकार नहीं है। जब अपने श्वास पर, अपने शरीर पर और अपने धड़कते हुए हृदय पर कोई अधिकार नहीं है तो उन जड़ वस्तुओं पर कैसे होगा अधिकार? समझने की बात है। बहुत दूर की छोड़ दें हम! सपने को ही लें लें! सपने में भी हम जाग्रत अवस्था की ही तरह सब कुछ करते हैं। निर्माण करते हैं, संग्रह करते हैं। जो–जो बनाते हैं और जो–जो भी होते हैं वे सब भी तो हम नहीं रह जाते। जीवन में भिखारी थे। सपने में बन गये सम्राट। जब हम सम्राट बने हुए होते हैं सपने में उस समय हम यह एक क्षण के लिए भी नहीं सोचते हैं कि अरे! हम तो एक भिखारी थे। भीख मांगते थे कटोरा लेकर, सम्राट कैसे बन गये? जागने पर फिर बन जाते हैं भिखारी! क्या लीला है? क्या खेल है प्रकृति का? समझने की बात है विचारणीय भी है। सपने में कितनी शक्ति है कि वह एकबारगी मिटा देती है। एकबारगी पोंछ देती है जाग्रत अवस्था के सम्पूर्ण जीवन को। एक के अस्तित्व से दूसरे का अस्तित्व मिट जाय, समाप्त हो जाय। उसका किञ्चित मात्र स्मरण भी न रहे तो क्या हम उसे सत्य कहेंगे और क्या कहेंगे यथार्थ। सोचने समझने की बात है हम सबके लिए। जिसे जगाने की अवस्थाओं को सपना पोंछ दे, मिटा दें, उसके अस्तित्व को कर दे समाप्त उस जगने की अवस्था में जो–जो कर्म किए गये हैं, जो–जो जाने समझे हैं हम और जो–जो घटनाएँ जीवन में घटी है, जैसा जीया है हमने जीवन और उस जीवन में जो–जो उपलब्ध हुआ है हमको। क्या वह यथार्थ है? क्या वह सत्य है और है वास्तविक? यही कारण है कि योग–तंत्र जाग्रत से

अधिक महत्व देता है सपने को। लेकिन हम हैं कि जाग्रत को और जाग्रत जीवन को ही सब कुछ समझते हैं, यथार्थ समझते हैं और देते हैं महत्व और मानकर चलते हैं उसे सत्य। सपनों से गहरा भी समझते हैं उसे।

यथार्थ कौन है? इसका कारण है और वह यह कि 'योग' सपने को जाग्रत से अधिक गहरा इसलिए स्वीकार करता है कि हम जागने पर सपनों में घटी घटनाओं को थोड़ा बहुत याद तो करते हैं उनका स्मरण तो रहता है। उनकी थोड़ी बहुत स्मृति तो बनी ही रहती है कुछ न कुछ। लेकिन इसके ठीक विपरीत स्वप्नावस्था में तो जाग्रतावस्था की किञ्चित मात्र स्मृति नहीं रहती है। स्वप्नावस्था ही हमारे लिए हो जाता है सब कुछ। अब आप ही बतलाइये गहरा कौन है? सत्य कौन है? यथार्थ कौन है यह समझने वाली बात है।

प्रातः सोकर उठने पर यह तो याद रहता ही है कि सपने में क्या–क्या देखा और क्या–क्या किया अनुभव। लेकिन रात में सोने के बाद सपने में क्या जाग्रत अवस्था में किये गये कार्यों का स्मरण रहता है और बातों को छोड़िये अपने स्वयं के शरीर की स्मृति रहती है। हमारा शरीर सोया हुआ है बिस्तर पर। क्या यह याद आता है और एकमात्र यही कारण है कि 'योग' ने स्वप्न को सत्य स्वीकार किया और रखा परम गहरायी में जो अपने आपमें है अति रहस्यमय। जिसकी स्मृति सपने में ठहर नहीं पाती– उसे हम कैसे मानें सत्य?

जीवन और स्वरूप- जाग्रत अवस्था हमारा जीवन है और स्वप्न हमारा स्वरूप है। हम दो जीवन एक साथ जीते हैं। एक है जाग्रत अवस्था का जीवन और दूसरा है स्वप्नावस्था का जीवन। दो जीवन एक साथ जीने के कारण ही हम परेशान हैं अपने आप में। हम बेचैने हैं अपने आप में और हैं अपने आप में व्याकुल। अज्ञानता के कारण जिसे समझ नहीं पाते हम और यही कारण है कि पूर्णरूप से तृप्त भी नहीं हो पाते हम। क्योंकि हम अपने विषय में जो भी समझते हैं वह हमारी होती है प्रतिमा यानी हमारा स्वरूप।

इसी प्रकार हम किसी और व्यक्ति के विषय में जो समझते हैं वह उस व्यक्ति का होता है जाग्रत अवस्था का स्वरूप। इसी प्रकार कोई भी हमारे विषय में जो जानता समझता है– वह होता है हमारा जाग्रत

स्वरूप। जैसे हम अपने आपको बहुत अच्छा व्यक्ति समझते हैं लेकिन हमारी अच्छाई को कोई अन्य व्यक्ति समझता ही नहीं, स्वीकार ही नहीं करता। तब हम यह कहते हैं कि वह व्यक्ति नासमझ है, अज्ञानी है, मूर्ख है, समझ न सका हमें, कभी अवसर आयेगा जब वह हमारे मूल्य और महत्व को समझेगा। कहने की आवश्यकता नहीं सभी व्यक्ति के सामने यही परेशानी है, यही समस्या है कि उसे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला जो उसे और उसके मूल्य और महत्व को समझ सके। ठीक से जान सके, जो वह है। सभी हमको गलत समझते हैं हम कितने योग्य व्यक्ति हैं। प्रेम के अथाह सागर हैं, करुणा, दया से भरे हुए हैं हम। लेकिन हमें कोई छोटा–सा तालाब भी नहीं समझा बल्कि इन सबके ठीक विपरीत समझते हैं ईर्ष्यालु, क्रोधी कपटी, मूर्ख और न जाने क्या–क्या? जो हम नहीं हैं। सच पूछा जाय तो हम ही बनाते हैं अपना स्वरूप या प्रतिमा जिसका ज्ञान दूसरे किसी व्यक्ति को नहीं होता, होगा भी तो कैसे वह तो हमारी जाग्रत अवस्था की प्रतिमा को ही सब कुछ समझता है। हम एक शान्त व्यक्ति हैं यह जो हमारे शान्त होने की प्रतिमा है वह है हमारे स्वप्नावस्था का स्वरूप और जब हम क्रोध करते हैं तो वह है हमारे जाग्रत अवस्था का स्वरूप या प्रतिमा। हमारी शान्ति से कोई परिचित नहीं होता है यदि होता है तो हमारे क्रोध से। जो उसे दिखलायी देता है। योग का यह अति गम्भीर विषय है। इसके लिए हमें अन्तर्मुखी होना होगा। अपनी आत्मा की गहरायी में उतरना होगा। यह अति कठोर प्रयास है यदि हम इस प्रयास में सफल हो गये तो जो–जो अपने आपको समझ रखा है। पायेंगे कि हम वह नहीं हैं। इस सन्दर्भ में योग कहता है कि सपने की अवस्था में भी हमने जो–जो कार्य किया है। जो–जो देखा सुना और अनुभव किया है। वह सब भी हंम नहीं हैं। जब हम जाग्रत अवस्था में नहीं हो सकते तो स्वप्नावस्था में क्या हो सकेंगे? समझने वाली बात है।

तीसरी अवस्था है सुषुप्ति! आत्मा की यह अत्यन्त महत्वपूर्ण अवस्था मानी जाती है और इसलिए कि जन्म–जन्मान्तर की संस्कार जन्य जितनी भी वासनाएँ हैं वे सब बीज रूप में सुषुप्ति अवस्था में ही विद्यमान रहती है। संस्कारजन्य वासना के तीन रूप हैं **ऊर्जा, रूप, तरल रूप और ठोस रूप।** इन तीनों रूपों के साथ मन की भी तीन अवस्थाएँ हैं– **ऊर्जावस्था,**

तरलावस्था और ठोस अवस्था। इन तीनों रूपों और इन तीनों अवस्थाओं का संबंध आत्मा की तीनों अवस्थाओं से समझना चाहिए। वासना के बीजजन्य ऊर्जा के साथ सुषुप्ति अवस्था में मन भी अपने ऊर्जा रूप में विद्यमान रहता है। वासना के तरल रूप के साथ स्वप्नावस्था में मन भी अपनी तरलावस्था में रहता है और यही कारण है कि सपने अस्थिर होते हैं। उनमें कोई तारतम्य भी नहीं होता। इसी प्रकार जाग्रत अवस्था में वासना के ठोस रूप के साथ मन भी रहता है अपने ठोस रूप में। योग का उद्देश्य है कि आत्मा की तीनों अवस्थाएँ, वासना के तीनों रूप और मन की तीनों अवस्थाएँ एक दूसरे में विलीन हो जानी चाहिए। लेकिन यह कैसे सम्भव है? ज्ञान और कर्म के मिश्रण से ज्ञान, **सांख्य** है और कर्म है **योग**।

जैसे हम जाग्रत में नहीं हैं वैसे स्वप्न में भी नहीं हैं। उसी प्रकार सुषुप्ति में भी नहीं हैं। जब ज्ञान–कर्म योग से आत्मा की तीनों अवस्थाएँ वासना के तीनों रूप और मन की तीनों अवस्थाएँ अपना–अपना अस्तित्व खो बैठती है तो शेष क्या रह जाता है हमारे पास? इसके उत्तर में योग कहता है 'परम शून्य'। हम परम शून्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रह जाते हैं। योग के अनुसार आत्मा की यह है परमावस्था। जाग्रत में आत्मा रहती है अपनी परावस्था में। स्वप्न में आत्मा रहती है अपनी अपरावस्था में। इसी प्रकार सुषुप्ति में रहती है अपनी परमावस्था में। सबसे उच्च अवस्था है आत्मा की परमावस्था। इस अवस्था में आत्मा अपने निज शरीर में यानी आत्म शरीर में रहती है। यह आत्मा का पाँचवा शरीर है। योग की सर्वोपरि उपलब्धि है परमावस्था और इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए साधक को दीर्घकालीन यात्रा करनी पड़ती है। कई जन्म बीत जाते हैं। न जाने कितने मानसिक, वैचारिक और आत्मिक करने पड़ते हैं संघर्ष। साधना के क्रम को आगे बढ़ाने के लिए योग्य गर्भ का भी होना अति आवश्यक है। योग्य गर्भ न उपलब्ध होने के कारण साधना क्रम के टूट जाने की संभावना बना रहती है। फिर तो इधर–उधर भटकना पड़ता है साधक को जाने कबतक और यह भी निश्चित नहीं है कि कब और किस जन्म में आत्मा को परमावस्था प्राप्त होगी? किस जन्म में होगी आत्मोपलब्धि? किस जन्म में होगा आत्म साक्षात्कार।

***

'परमावस्था' आत्मा की अद्वैत अवस्था मानी जाती है। इसी अवस्था में आत्मा को अपने निजस्वरूप का ज्ञान होता है। जिसे आत्म साक्षात्कार कहते हैं। बाबा का कहना था– परमावस्था, परम शून्य की अवस्था है जो अद्वैत अवस्था भी है इसी परम अवस्था में और इसी अद्वैत की अवस्था में आत्मा के सामने प्रकट होता है एक दिव्य ज्योतिर्मय प्रकाश। जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। क्योंकि वर्णन–योग्य शब्द ही नहीं है क्योंकि वह शब्दातीत, भावातीत और वर्णनातीत है। आखिर ऐसा कौन है वह? जो सबसे अतीत है। कहने की आवश्यकता नहीं, वेदों ने, उपनिषदों ने, दर्शन शास्त्रों ने और पुराणों ने, उसी दिव्य ज्योतिर्मय प्रकाश को परब्रह्म परमात्मा कहा है। वह मूल अस्तित्व है सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड का। जिसकी उपस्थित सदैव से रही है और बराबर रहेगी भी। जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम् है। जिसका न निर्माण होता है और न तो नाश ही। वह आदि अन्तहीन है। जो साकार भी है और निराकार भी। जो संसार के समस्त कारण कार्य का आधार है। जो समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का मूल है।

जो समस्त चराचर जगत में समान रूप से है व्याप्त। जिसका अंश मानव रूप में राम है, कृष्ण है, रावण है और है कंस भी? जिसका अंश समय–समय पर सिद्ध महात्माओं और सिद्ध योगियों के रूप में भी होता है संसार में प्रगट। उसी का अंश समस्त प्राणियों में स्थित है। आत्मा के रूप में और वही हैं **'हम'**। आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं हम। आत्मानुभव और परमात्मानुभव तो कह देते हैं लेकिन वह अनुभव भी 'हम' नहीं हैं।

अनुभव और अनुभोक्ता– कोई भी अनुभव नहीं है हमारा। स्वयं के अस्तित्व का भी अनुभव नहीं है हमको। शेष संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं वे सब के सब हमारे अनुभव हैं। जहाँ तक अनुभव है– वहाँ तक उसका पता नहीं चलेगा– जिसको अनुभव हो रहा है। अनुभव और अनुभोक्ता अलग–अलग हैं एक दूसरे से। इसे ठीक से समझ लेना चाहिए क्योंकि यह योग का परम विषय है। हम सुख दुख को जानते हैं। हम पाप–पुण्य को जानते हैं। वैभव ऐश्वर्य को जानते हैं। धन सम्पत्ति को जानते हैं लेकिन जिनको–जिनको हम जानते है वे सबके सब हमसे

अलग है। उनका अनुभव हम नहीं हैं। जो कुछ भी हैं वह सब बाहर है हमसे। सुख दुख बाहर था हमें मिला। पाप पुण्य बाहर था, हमें मिला। धन सम्पत्ति बाहर थी हमें मिली। किसी ने हमें रूपया दे दिया हाथ में। किसी ने हाथ में भिक्षा पात्र थमा दिया। कभी सुख है हमारे हाथ में और कभी हाथ में है दुःख। हम तो वह हैं जिसके हाथ में रुपया है और है भिक्षा पात्र। कभी सफलता तो कभी असफलता। कभी जागृत तो कभी स्वप्न लेकिन हम कोई भी नहीं हैं हमारा अस्तित्व अलग है और है भिन्न। हम अनुभव नहीं हैं। हम कोई भी अनुभव नहीं हैं। यदि परमात्मा का भी अनुभव है तो वह भी हम नहीं हैं। हम परमात्मा से अलग हैं। हमारे और परमात्मा के बीच फासला है, जहाँ फासला है। वहाँ हम नहीं हैं। योग कहता है कि जो सभी अनुभवों का कारण भूत है। जो सभी अनुभवों का साक्षीभूत है और जो सभी अनुभवों का अनुभोक्ता है वही आत्म रूप में स्थित परब्रह्म हैं **'हम'**। परब्रह्म का सरल अर्थ है जो सभी के 'पार' है। सदा से पार सभी प्राणियों में और समस्त चराचरा जगत में रहते हुए भी अलग है, पार है।

'योग' भारतीय मनीषा का अनुभवगम्य तत्व ज्ञान है। उसे आप सरल और सहज न समझे। आसन प्राणायाम आदि योग नहीं है। 'योग' है ध्यान, 'योग' है मन और 'योग' है आत्मा और अन्त में 'योग' है परमात्मा। आपको यह जान लेना चाहिए कि हम अपनी पुस्तकों में शब्दों का प्रयोग सोच समझ कर करते हैं। यदि ध्यान से हमारी पुस्तकें पढ़ेंगे व उनके विषयों का चिन्तन मनन करेंगे और तभी उनसे प्राप्त करेंगे वह वस्तु जो आपकी आत्मा चाहती है और जिसके लिए जन्म–जन्मान्तर से भूखी प्यासी है।

परब्रह्म वह है जो हमारा है अनुभव। परब्रह्म वह है जो हम हैं और हैं आप। यदि कोई व्यक्ति अपने आपको ब्रह्मवादी कहता है तो समझ लेना चाहिए कि वह अभी केवल वादी है। वह अभी विचार के पार गया नहीं है। वह अभी सूक्ष्म विचार में है। अति गहन विचार में है लेकिन उसके पार नहीं गया हैं अभी।

'योग' ने दो शब्द का प्रयोग किया है– परमात्मा तुम हो। इस शब्द में परमात्मा की स्वीकृति है तुम्हारी नहीं। लेकिन 'योग' जब दूसरे शब्द का प्रयोग करता है कि तुम परमात्मा हो तब तुम्हारी भी पूर्ण स्वीकृति

होती है। परमात्मा सबके भीतर है यह तो कहना सरल है लेकिन यह कहना अति कठिन है कि तुम परमात्मा हो। इन शब्दों के आयाम अलग अलग हैं समझने की आवश्यकता है। जब हम कहते हैं कि परमात्मा सभी के भीतर विराजमान है तब किसी को भी इस पर आपत्ति नहीं होती। न समाज को, न देश को, न जाति को और न तो धर्म को ही। लेकिन जब हम यह कहते हैं ईसा की तरह कि हम 'परमात्मा' हैं और जब कहते हैं कृष्ण की तरह हम स्वयं 'भगवान' हैं। तब आपत्ति शुरू हो जाती है, सम्प्रदायवाद खड़ा हो जाता है। जातिवाद सामने आ जाता है। लोगों की दृष्टि में परमात्मा अलग हो जाता है और अपने को परमात्मा कहने वाला व्यक्ति हो जाता है अलग। जितनी अच्छाईयाँ और भलाइयाँ हैं वह सब परमात्मा पर डाल दिया जाता है और जब आत्म तत्व का ज्ञान होता है। जब आत्म साक्षात्कार का अनुभव होता है– तबतक हम परमात्म स्वरूप नहीं हैं क्योंकि आत्मा और परमात्मा दोनों अभी अलग हैं लेकिन जब आत्म स्वरूप और परमात्म स्वरूप की भिन्नता समाप्त हो जाती है। तब हम परमात्मा हो जाते हैं। हमारी आत्मा का अस्तित्व परमात्म स्वरूप में विलीन होकर एकाकार हो जाता है। ईसा को जब सूली पर चढ़ाने का उपक्रम हो रहा था तब उस समय ईसा ने कहा– प्रभु यह सब क्या हो रहा है तुम्हारे रहते और तबतक ईसा एक बढ़ई के पुत्र थे और जब सूली पर चढ़ने के बाद उनके मुख से निकला 'प्रभु! तुम्हारी इच्छा। उस समय वे हो गये परमात्मा।

सांख्य और योग- सांख्य और योग की चर्चा की गयी थी इसी प्रसंग में पीछे। सांख्य क्या है और योग क्या है? दोनों योगपरक दर्शन है। सत्य को जानने के लिए सांख्य और योग दो निष्ठाएँ हैं। सांख्य का अर्थ है– जो सत्य को जान लेता है और योग का अर्थ है जो उस सत्य में प्रवेश कर पाता है। सांख्य कहता है– करना कुछ भी नहीं है केवल जानना है। योग कहता है– करना बहुत कुछ है और तभी जानने का फल मिलेगा। अपने–अपने स्थान पर दोनों 'सत्य' हैं और 'गलत' भी हो सकते हैं यह निर्भर करता है साधक पर। किसी साधक की ज्ञानाग्नि इतनी प्रज्जवलित हो कि उसमें साधक का अहंकार नष्ट हो जाय समूल और मात्र बोध रह जाय और रह जाय मात्र ज्ञान। जो ज्ञात न रहे उसका

अस्तित्व ही हो जाय समाप्त सदैव के लिए। चैतन्य भी रह जाय बस जानने की चेष्टा ही काफी है। जानने की स्थिति को ही बढ़ाना काफी है। जानने के मार्ग पर हर क्षण अग्रसर होना काफी है लेकिन करोड़ों में कोई एक ऐसा साधक होता है, जिसकी साधना भूमि में इस प्रकार की घटना घटती है। योग का कहना है कि 'ज्ञान' बिना कर्म के व्यर्थ है। ज्ञान का उपयोग कर्म में है। **ज्ञानं भार क्रियां बिना**– ज्ञान भार है बिना क्रिया के। ज्ञान को कर्म में आयत करना अति कठिन कार्य है। बाघ बकरी को एक घाट पर पानी पिलाने के समान है। जो पिला देता है, वह सच्चे अर्थों में ज्ञान योगी है।

तंत्र में ज्ञान को अत्यधिक महत्व दिया गया है। उसका कहना है कि इष्ट साक्षात्कार, आत्म साक्षात्कार और आत्म स्वरूप की उपलब्धि हृदयाकाश में होती है। ये सब ज्ञान योग से ही सम्भव है। तंत्र ज्ञान और भोग को अभिन्न मानता है। योग बिना ज्ञान नहीं और ज्ञान बिना योग नहीं।

'तंत्र' ज्ञान को बढ़ाने पर अत्यधिक बल देता है। उसकी दृष्टि में ज्ञान को बढ़ाने का एक ही उपाय है और वह यह है कि हम, जीवन की प्रत्येक क्रिया को वह छोटी हो या बड़ी अत्यन्त सजगतापूर्वक करें यानी होश में करें, ज्ञानपूर्वक करें। प्रायः हम ज्ञान को बढ़ाने का उपाय शास्त्र, सिद्धान्त और शब्द समझते हैं। ये सब ज्ञान को नहीं बढ़ाते बल्कि स्मृति बढ़ाते हैं। ये सब स्मृति को बढ़ाने के साधन हैं। स्मृति और ज्ञान में अन्तर है। समृति का अर्थ है– दूसरे का जाना हुआ उधार। ज्ञान का अर्थ है– अपना जाना हुआ– निजी यानि व्यक्तिगत। जिसे हम ज्ञान की वृद्धि कहते हैं।

स्मृति और ज्ञान– एक व्यक्ति के पास अथाह ज्ञान है। वह महाज्ञानी पुरुष है। तो हमारा तात्पर्य होता है कि उसके पास बहुत जानकारी है, बहुत गहरी और बड़ी स्मृति है। शास्त्र कण्ठस्थ है। वेद मुख में है वास्तव में यह ज्ञान नहीं स्मृति है और स्मृति कोई बहुमूल्य वस्तु नहीं है, यांत्रिक है। यंत्र भी स्मृति रख सकते हैं। वर्तमान समय का कम्प्यूटर क्या है– यंत्र स्मृति ही तो है।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो–ज्ञान, सीधा आत्म साक्षात्कार है। जिसके बीच में न वेद है, न पुराण है, न उपनिषद् है न तो है दर्शन शास्त्र।

ज्ञान वृद्धि के लिए अध्ययन का भी मार्ग नहीं है। सच तो यह है कि ज्ञान वृद्धि का एकमात्र मार्ग है– 'जागरण'।

हम अपने जीवन में जितना सतर्क रहेंगे, सजग रहेंगे और जागरूक रहेंगे अपनी क्रियाओं के प्रति उतना ही बढ़ेगा हमारा ज्ञान। जागने का अर्थ है–जो कुछ भी हम करें, वह इतनी तीव्रता से ध्यानपूर्वक हो कि उसमें किञ्चित मात्र मूर्च्छा न रहे बराबर होश बना रहे क्रिया के प्रति।

कर्म के प्रति मूर्च्छित हैं हम– जीवन में सचमुच जो कार्य करते हैं उसके प्रति हम मूर्च्छित होते हैं। आप कितना बेहोश हैं। उसे आप इस एक उदाहरण से ही समझ जायेंगे। एक घड़ी को सामने रखकर उसके सेकेण्ड के काँटे को देखें। यह निश्चित कर लें कि ध्यान से और पूरे होश में उस काँटे को देखेंगे। एक मिनट तक काटें को पूरी घड़ी का चक्कर लगाते हुए देखेंगे। भूलेंगे नहीं एक मिनट तक। याद रखेंगे– सेकेण्ड का काँटा जा रहा है– जा रहा है– जा रहा है। वह काँटा एक मिनट को साठ सेकेण्ड में पूरा करेगा। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि साठ सेकेण्ड में कम से कम तीन चार बार आप चूक जायेंगे और भूल जायेंगे कि क्या देख रहे हैं? बीच में और कोई विचार आ जायेगा और भूल जायेंगे काँटे को देखना और काँटा आगे बढ़ जायेगा। घड़ी का एक क्षण आपके हाथ से निकल जायेगा। सोचिए आप जीवन में कितने क्षण गंवा बैठते हैं अनजाने में। कितना समय इस प्रकार आप गवाँ बैठते हैं व्यर्थ का अपने जीवन में सोचिए जरा। एक मिनट भी खींचना कठिन है आपके लिए जीवन में। जब काँटे पर से ध्यान हट जायेगा तब आप कहेंगे कि अरे! मैं भूल गया ध्यान रखना और तबतक काँटा दो चार सेकेण्ड आगे जा चुका होता है। उतने अन्तराल में आप और कहीं चले गये थे। होश नहीं था आपको। इसी प्रकार आपका पूरा का पूरा जीवन बेहोशी में कट जाता है और जब मृत्यु सामने आकर खड़ी हो जाती है तो आपके पास पछताने के सिवाय और कुछ भी नहीं रहता।

सांख्य आन्तक्रिया है और योग है बहिर्क्रिया इसे ठीक से समझ लेना चाहिए जो भी काम करें उसे होशपूर्वक करें, अलग से समय देने की आवश्यकता नहीं। भोजन कर रहे हैं तो होश में करें। स्नान कर रहें तो होश में करें। बातें कर रहे हैं तो होश में करें। मतलब यह कि सारे

काम होश में करें। आप श्वास भी लें तो उस पर बराबर ध्यान रखें। यह सबसे बड़ी साधना है। आप किसी साधना में लगे हैं– इसका पता किसी को भी न लगना चाहिए। केवल आप जानें कि आप कुछ कर रहे हैं यह है सांख्य का मार्ग। इस मार्ग की साधना आन्तर्क्रिया है। योग साधना का पता सभी को चल जाता है क्योंकि उसमें बहिर्क्रिया का प्रयोग करना पड़ता है। योग बर्हिसाधना है।

श्वास की साधना योग की सर्वोत्तम साधना है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो सांख्य मार्ग की मूलभित्ति मानी गयी है इसे। सांख्य का कहना है कि जबतक जीवन है तबतक शरीर में एक चीज निरन्तर बराबर और हर क्षण चल रही है और वह चीज है श्वास। होशपूर्वक लें जायें श्वास को। इसी प्रकार होशपूर्वक निकाले श्वास को। कहने का मतलब यह है कि श्वास, प्रश्वास की सतत् क्रिया आपके होश में होना चाहिए। इसका यह परिणाम होगा कि आपका 'ज्ञान, निरन्तर लगेगा बढ़ने, श्वास प्रश्वास पर जितना आपका ध्यान, सजग होगा, निष्ठापूर्वक होगा और होगा होश में उसी के अनुसार आपके भीतर बढ़ने लगेगा ज्ञान। यदि श्वास की साधना इस प्रकार केवल एक घंटे सूर्योदय के समय नित्य आप करें तो निश्चय ही सांख्य का मार्ग अपने आप खुल जायेगा आपके लिए इसमें सन्देह नहीं।

***

दिन ढल गया था। मणिमाला माँ ने उठकर लालटेन जलाया और बाबा के लिए चाय की व्यवस्था करने चली गयी। इतना सब बोल कर मौन हो गये थे बाबा अब। पूरे एक साल रहते हो गया था बाबा के सान्निध्य में मुझे और इस अवधि में जो कुछ बाबा से प्राप्त हुआ वह मेरे आध्यात्मिक जीवन की मूलभित्ति बन चुकी थी इसमें सन्देह नहीं। आश्चर्य की बात तो यह थी कि एक साल में एक बार भी घर परिवार की याद नहीं आयी मुझे। जैसे सब कुछ भूल–सा गया था मैं। अब आगे की चर्चा आपको ज्ञात होनी चाहिए। बौद्ध योग एक प्रकार से सांख्य पर आधारित है। अनापान सती योग जो श्वास प्रश्वास से संबंधित स्मृति योग है। उसी पर भगवान तथागत की सारी दृष्टि टिकी हुई है।

स्मृतियोग क्या है? श्वास प्रश्वास की क्रिया की बराबर स्मृति बनी रहे यही स्मृति योग है। स्मृति योग ही बहुत है और कुछ करने की

आवश्यकता नहीं। आगे का मार्ग स्वयं अपने आप खुलता जायेगा। प्रयास करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। जीवन के चौबीस घण्टे में केवल एक घंटे से बढ़ाकर चार घंटा। बस 'स्मृति योग' के लिए काफी है इतना समय। जो प्रारम्भ होता है, उसका होता है अन्त भी। प्रारम्भ करेंगे तो कभी न कभी उसकी प्राप्ति भी होगी। यह आन्तक्रिया है। किसी मंत्र का जप करना राम राम जपना आदि से कठिन है यह साधना लेकिन साधेंगे तो अवश्य सध जायेगा क्योंकि इसमें होश रखना है होश रखना कठिन है। अन्य जन्मों में आप होश नहीं रखते। होश खो बैठते हैं आप। जप, पूजा, भजन, ध्यान आदि होश में नहीं यंत्रवत् करते हैं आप और यही कारण है कि जो भी आप चाहते हैं वह होता नहीं है उपलब्ध। होश नहीं है तो सब कुछ बेकार है और है व्यर्थ। यदि आप एक गाली का भी जप होशपूर्वक करें तो वह गाली भी हो जायेगी सिद्ध और वह गाली भी किसी को आप देंगे तो अगले के लिए शुभ ही होगा। तात्पर्य यह कि चैतन्य में, होश में न किया गया कोई भी जप, कोई भी उपासना, साधना, पूजापाठ आदि व्यर्थ है। इससे बुद्धि मन्द पड़ जाती है प्रखर नहीं होती बुद्धि। ज्ञान बढ़ता नहीं, घटता है और यही एकमात्र कारण है कि भारतीय संस्कृति और साधना का ह्रास हो रहा है एवं उपेक्षा हो रही है।

स्मृति साधना में प्रारम्भ में असफलता मिल सकती है एक बार दो बार, तीन बार..... कोई चिन्ता नहीं। असफलता के गर्भ में से सफलता का जन्म होता है। एक दिन आपको ऐसा प्रतीत होगा कि आप अपनी क्रिया में समग्र रूप से हो गये सफल और तब आप जान सकेंगे अपने भीतर बैठे साक्षी रूप आत्मा को। जैसे–जैसे होश बढ़ता जायेगा जागरण बढ़ता जायेगा, वैसे ही वैसे साक्षी रूप आत्मा का अस्तित्व भी होता जायेगा स्पष्ट।

इस सन्दर्भ में आप यह भी जान लें कि जितनी गहरी बेहोशी होगी उतना बड़ा होगा आपका अहंकार। आपमें जो अहंकार है वह आपकी बेहोशी के कारण है। चैतन्य नहीं हैं आप। आप जितना रहेंगे जाग्रत उतना ही आप होंगे साक्षी यानी आत्मा के समीप। आत्मा और अहंकार में कोई सम्बन्ध नहीं। जब किसी कर्म के प्रति जागकर उसका साक्षी बन पायेंगे

तो उसी क्षण अपने आपको पायेंगे कि 'आप नहीं हैं' आप मात्र केवल साक्षी हैं। 'मैं' ही अहंकार है। 'मैं' का मिटना और साक्षी भाव का जन्म होना एक ही अवस्था में होता है। सांख्य कहता है कि हर कर्म के प्रति चैतन्य रहिए, होश में रहिए। चाहे वह अध्यात्म हो या हो भौतिक कर्म।

अब योग में आइए। योग आपको जागने के लिए नहीं कहता। चैतन्य होने के लिए नहीं कहता। वह ऐसी क्रियाओं की ओर संकेत करता है जिससे जागरण अपने आप हो जाता है उपलब्ध। योग आपसे सीधा नहीं कहता है कि चैतन्य हो जाइए जाग जाइए, होश में आ जाइए कर्म के प्रति, लेकिन वे क्रियाएँ ही ऐसी हैं कि आप कर्म के प्रति चैतन्य हो जाते हैं। सांख्य कहता है– श्वास पर ध्यान दें। योग कहता है कि ध्यान को छोड़े पहले श्वास को व्यवस्थित करें। प्राणायाम द्वारा ध्यान की चिन्ता मत करिए। गहरी श्वास लें, आप यह भी समझ लें कि जितनी श्वास की गति तीव्र होगी उतना ही उस पर ध्यान रखना कठिन होगा। जितनी श्वास की गति गहरी होगी, उतना ही उस पर ध्यान रखना सरल और सहज होगा। श्वास की गति इतनी गहरी होनी चाहिए कि उसके आघात से आप चैतन्य हो जायें। आपकी मूर्च्छा भंग हो जाए। इतना..... इतना कि आप सो न सकें। इतना प्रबल आघात होना चाहिए।

योग कहता है कि श्वास पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। श्वास की तीव्रता होनी चाहिए। आपके भीतर श्वास की तीव्रता का आघात पहुँचना चाहिए। जितना बड़ा आघात होगा। जितनी गहरी चोट लगेगी उतनी ही मूर्च्छा टूटेगी और चेतना का जागरण होगा और अपनी क्रियाओं के प्रति आप उतना ही होंगे सजग इतना ही नहीं, कम हो जायेगी आपकी नींद भी और एक ऐसा भी समय आयेगा कि नींद पूरी तरह समाप्त हो जायेगी। आप यह समझ लें कि पूरी रात नींद नहीं लगती है। उठने पर आलस्य और थकावट का अनुभव नहीं होता है, ताजगी बनी रहती है। स्फूर्ति बनी रहती है। अनिद्रा का कोई भी प्रभाव मन मस्तिष्क पर नहीं पड़ता है तो समझ लें आपका प्राणायाम पूर्ण सफल है।

योग का पहला उद्देश्य यही है कि प्राणायाम के द्वारा प्राणों को पूरी तरह शुद्ध कर लेना आवश्यक है। प्राण–ऊर्जा ऐसी है– जिससे

आपकी मूर्च्छा को बल मिलता है और मिलता है सहयोग भी। ताकि आप अपनी क्रियाओं के प्रति सजग न हो सकें। बराबर कर्म के प्रति मूर्च्छाग्रस्त रहें। योग, सर्वप्रथम प्राण और उसकी ऊर्जा को भारी महत्व देता है। योग की यावत् साधना 'ऊर्जा' की साधना है। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

प्राणायाम सध जाने पर नींद समाप्त हो जाती है और उसका स्थान ले लेता है सहज समाधि। सोलह प्रकार की समाधियों में प्रथम सहज समाधि है और अन्तिम है चिर समाधि यानि मृत्यु। जिसे आप मृत्यु कहते हैं, उसे योग कहता है महासमाधि अथवा चिरसमाधि। प्रचलित भाषा में कहते हैं चिरनिद्रा। आपको ज्ञात होना चाहिए कि सहज समाधि को उपलब्ध योगी कभी भी नहीं सोता। वह सोना ही भूल जाता है एक प्रकार से। आपको उसके सोने का भ्रम भी हो जाय तो समझ लेना चाहिए कि वह सहज समाधि की अवस्था में है। इसकी पहँचान यह है कि योगी को परिस्थिति और वातावरण का किञ्चित मात्र ज्ञान नहीं रहता। नगाड़ा भी बजे, शोर गुल भी हो, झगड़ा लड़ाई या मारपीट भी हो, उसके पास लेकिन भंग नहीं होगी उन सबसे उसकी समाधि।

प्राणायाम और काम ऊर्जा- योग ने प्राणायाम (सोलह प्रकार के प्राणायाम है) को सर्वप्रथम इसलिए महत्व दिया है कि प्राण ऊर्जा में सर्वाधिक विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा होती है। एक प्रकार से जहाँ वह जीवन है। वहीं वह सूक्ष्म शरीर का निर्माण भी करती है। इसकी स्वाभाविक गति अधोन्मुखी है। अपने केन्द्र से वह नीचे की यात्रा करती है। इससे ही नींद प्रमाद, आलस्य, मूर्च्छा और क्रियाओं के प्रति असहजता, जागरूकता का अभाव उत्पन्न होता है। नाभि के नीचे पहुँचकर वही प्राण ऊर्जा, काम ऊर्जा के रूप में हो जाती है परिवर्तित। एक विशेष योगासन है। जिसका उपयोग प्राणायाम के समय करने पर प्राण ऊर्जा, काम ऊर्जा में परिवर्तित नहीं हो पाती। लेकिन वह विशेष आसन सद्गुरु ही बतला पाता है साधारण योगी साधक नहीं।

उर्ध्व गति, प्राण ऊर्जा का प्रभाव अति विलक्षण है। जहाँ एक ओर समाधि ऊर्ध्वगामी होकर भूख, प्यास, निद्रा आदि को समाप्त कर देती है और भौतिक वस्तुओं के प्रति उत्पन्न कर देती उपेक्षा की भावना।

वहीं दूसरी ओर चक्रों का स्पर्श करती हुई अन्तिम सहस्रार चक्र तक की भी यात्रा पूर्ण है करती। जिसके फलस्वरूप साधक के लिए नये–नये आयाम खुलते जाते हैं विश्व ब्रह्माण्ड के और जब वही प्राण ऊर्जा, काम ऊर्जा में परिवर्तित होकर अधोन्मुख होती है और मूलाधार चक्र का स्पर्श करती है तो उससे वासना का जन्म होता है। तंत्र कहता हैं कि उसी कामवासना से ही मनुष्य में सारी विकृति उत्पन्न होती है– नींद, प्रमाद, आलस्य, शिथिलता, कमजोरी, मानसिक रोग, चिड़चिड़ापन, कर्म के प्रति अज्ञानता, मूर्च्छा आदि सब कुछ। तंत्र तो यह भी कहता है कि प्राण ऊर्जा का क्षय काम ऊर्जा के रूप में सम्भोग काल में होता है सर्वाधिक। सम्भोग के बाद इसी कारण नींद आने लगती है। सब कुछ व्यर्थ लगता है। प्रिय वस्तु भी अप्रिय लगने लगती है कुछ समय के लिए। शरीर की शक्ति तो क्षीण होती ही है वह अलग से। एक बात इस संबंध में अवश्य महत्वपूर्ण है और वह यह कि मैथुनी सृष्टि का यह कारण भी है। स्त्री–पुरुष के मन के सामरस्य भाव से सृष्टि भी हो जाती है लेकिन तभी जब वह वासना वेग से प्राण ऊर्जा काम ऊर्जा में परिवर्तित होकर अधोगति की ओर उन्मुख होती है। इस संबंध में हम आगे चर्चा करेंगे।

प्राण ऊर्जा का केन्द्र नाभि है। योग का तात्विक स्वरूप ब्रह्मचर्य है इसलिए कि 'ब्रह्मचर्य' से प्राण ऊर्जा की वृद्धि होती है और प्राण ऊर्जा योग और तंत्र दोनों साधनाओं का मूलाधार है। नाभि पर ध्यान केन्द्रित करने से प्राण ऊर्जा की वृद्धि होती है। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि व्यक्तित्व में आकर्षण उत्पन्न होता है। नेत्र की ज्योति बढ़ती है। उसमें प्रखरता आती है, तेज भी आता है। प्रभामण्डल भी बनता है। चेहरे पर आभा उत्पन्न होती है, कान्ति आती है। इस प्रकार एकमात्र प्राण ऊर्जा ही विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती है मनुष्य में। जिसके प्रभाव से उसमें एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण होता है जो हजारों, लाखों लोगों में से उसे कर देता है अलग। नाभि ज्ञान का भी केन्द्र है। इसी कारण ब्रह्मा की उत्पत्ति विष्णु की नाभि से बतलायी गयी है। ज्ञान के प्रतीक हैं ब्रह्मा। सूर्योदय के पूर्व, पूर्व मुख बैठकर नाभि पर ध्यान लगाने से ज्ञान की वृद्धि होती है। स्मृति की भी होती है वृद्धि। स्मरण शक्ति की भी होती है वृद्धि।

नाभि, कामकेन्द्र भी है। वासना के वेग से प्राण ऊर्जा ही काम ऊर्जा में परिवर्तित होकर वासनाजन्य क्षोभ उत्पन्न करती है और वह क्षोभ उत्पन्न होता है मन में और उससे जो आकर्षण उत्पन्न होता है वह है मिथुनजन्य।

मनसा, वाचा, कर्मणा– इन तीनों प्रकार से ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला योग साधक नाभि केन्द्र में ध्यानस्थ होकर प्राण को और फिर अपान को खींचकर ऊपर भ्रूमध्य में ले जाता है। इससे पहला लाभ यह होता है कि कामवासना का वेग न उत्पन्न होता है और न तो मन में क्षोभ ही होता है उत्पन्न। ऐसे क्षोभ रहित मन को 'योग' कहता है शुद्ध मन अथवा निर्मल मन और ऐसे ही मन का एकाग्र होना सम्भव है और साधक का ऐसा एकाग्र मन जब काम केन्द्र पर स्थित होता है तो समाधि का लग जाना स्वाभाविक है और इस अवस्था में साधक को जिस परम सुख और परम आनन्द की अनुभूति होती है उसे 'योग' परमानन्द कहता है। कालान्तर में जब वही परमानन्द और अधिक प्रगाढ़ हो जाता है तो उसे कहते हैं विरजानन्द और विरजानन्द जब सहज भाव में बिना किसी प्रभाव के उपलब्ध होने लग जाता है तो उसे कहते है सहजानन्द।

योगीगण कहते हैं कि परमानन्द की अनुभूति सम्भोगानन्द की अनुभूति से हजारों लाखों गुना होती है अधिक और उसमें इच्छानुसार स्थायित्व भी होता है।

वेदान्त दर्शन ने इसी परमानन्द को ब्रह्मानन्द के बराबर माना है। उसे सहोदर भी कहा है– **ब्रह्मानन्द सहोदरः**। आत्मा परमात्मा के मिलन के समय जो अनुभूति होती है, उसी अनुभूति को ब्रह्मानन्द की संज्ञा दी गयी है लेकिन यहां यह समझ लेना आवश्यक है कि परमानन्द और सम्भोगानन्द के परिणाम में जमीन और आसमान का है अन्तर। एक आध्यात्मिकता की ओर ले जाता है और दूसरा ले जाता है भौतिकता की ओर। एक है मुक्ति का मार्ग और दूसरा है भुक्ति का मार्ग। एक का परिणाम है मुक्ति, तो दूसरें का परिणाम है भुक्ति। एक का परिणाम है निवृत्ति और दूसरे का है परिणाम प्रवृत्ति। एक सुख और जीवन का कारण है तो दूसरा है दुख और मरण का कारण, एक से आध्यात्मिक

लाभ है तो दूसरे से है भौतिक लाभ, यानि सृष्टि। मन सृष्टि करता है। सम्भोगानन्द के अन्तिम परिणाम के समय स्त्री, पुरुष का मन जब एकाकार हो जाता है एक दूसरे में लीन हो जाता है और दोनों में हो जाता है सामञ्जस्य तो संतान के रूप में सृष्टि का होना स्वाभाविक है।

***

योग जिसे काम ऊर्जा कहता है, तंत्र उसी को कहता है बिन्दु। जिसका जागतिक अर्थ है शुक्राणु। इस संबंध में तंत्र कहता है– **मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात्।** योग तंत्र में प्रस्थान भेद अवश्य हैं किन्तु उपर्युक्त साधना भूमि में दोनों का लक्ष्य और उद्देश्य एक ही है। यह वही स्थान है जहां योग तंत्र एक दूसरे के पूरक होते हैं और होते हैं एक दूसरे पर आश्रित। तंत्र का विषय योग हो जाता है और योग का विषय को जाता है तंत्र। (इस विषय पर तंत्रम् पुस्तक में विस्तार से प्रकाश डाला गया है।) अस्तु!

बाबा ने कहा– योग कामवासना का विरोध नहीं करता। कुछ भी लेना–देना नहीं है उससे उसको। उसका केवल यही कहना है कि प्राण ऊर्जा को काम ऊर्जा में परिवर्तित होने दें लेकिन उससे प्राप्त भौतिक सुख को आध्यात्मिक सुख में कर लें परिवर्तित। उससे प्राप्त आनन्द को बना लें परमानन्द। यह ठीक से समझ लेना चाहिए कि योग और तंत्र में किञ्चित मात्र भेद नहीं है। जो योग के बिना तंत्र की साधना करता है वह साधक कालान्तर में भ्रष्ट और पतित हो जाता है। शक्ति उसे क्षमा नहीं करती क्योंकि तंत्र की साधना एकमात्र शक्ति की है साधना। बिना शक्ति के योग भी फलित नहीं होता। प्राण शक्ति, मनःशक्ति और आत्मशक्ति–ये तीनों शक्तियाँ योग और तंत्र दोनों की साधना का आधार है। दोनों की साधना भूमि में इन तीनों शक्तियों का महत्व और मूल्य है।

योग का कहना है कि वे तीनों शक्तियाँ मानव शरीर के भीतर ही हैं। तंत्र का कहना है कि वे तीनों शक्तियाँ भीतर तो हैं ही बाहर भी हैं। उनका बाहरी रूप समष्टि रूप है और भीतरी रूप है व्यष्टि रूप। व्यष्टि रूप से समष्टि रूप को मिलाना 'योग' है और इसी प्रकार समष्टि रूप से व्यष्टि रूप को मिलाना है तंत्र। दोनों की साधना में यही भेद है। किन्तु दोनों की साधना अपने–अपने स्थान पर है अति कठिन। बाबा

थोड़ा रूककर आगे बोले– इस प्रसंग के अन्त में यह जान लेना आवश्यक है कि प्राण ऊर्जा की साधना, योग का विषय है। काम ऊर्जा की साधना तंत्र का है विषय। यदि प्राण को साधना राज्य की विद्युत शक्ति कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। संक्षेप में यह समझ लेना चाहिए कि योग हो या तंत्र दोनों का एक ही लक्ष्य है– परम निर्वाण यानि मोक्ष।

केवल ब्रह्मचर्य घातक है– 'योग' ब्रह्मचर्य को अधिक महत्व नहीं देता क्योंकि उसके मूल में केवल प्राण ऊर्जा है लेकिन तंत्र के मूल में काम ऊर्जा होने के कारण ब्रह्मचर्य को वह महत्व देता है। तंत्र का कहना है कि आप केवल मनसा वाचा कर्मणा ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और उसका आध्यात्मिक भूमि में उपयोग नहीं करते हैं अथवा करना नहीं जानते हैं तो ऐसे ब्रह्मचर्य से क्या लाभ? होना और न होना बराबर है। लाभ के बजाय हानि ही अधिक सम्भव है। काम ऊर्जा आप में नाना प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न कर देगी। आप विक्षिप्त हो जायेंगे उन्मादग्रस्त हो जायेंगे। आप कोई भी कार्य सही और उचित ढंग से न कर सकेंगे, तनावग्रस्त रहेंगे। आप सोचेंगे कुछ और करेंगे कुछ। इन सबसे तो आप ब्रह्मचर्य का पालन ही न करें। काम ऊर्जा को जाने दें अधोगति की ओर। करे काम सृष्टि। आप यदि केवल कर्मणा यानि शरीर से ही ब्रह्मचारी हैं मनसा, वाचा नहीं, तब भी घातक है ब्रह्मचर्य आपके लिए। पूर्ण पौरुष होते हुए भी जो व्यक्ति मन से, तन से, वाणी से, ब्रह्मचर्य का सम्यक पालन करता है– वह वास्तव में है ब्रह्मचारी। यदि तीनों में से एक भी नहीं हैं तो उसे हम ब्रह्मचारी नहीं मानेंगे।

हर क्षण प्राण ऊर्जा का क्षय– योग और तंत्र दोनों की साधना सभी दृष्टि से प्राण और उसकी ऊर्जा पर अवलम्बित है इसलिए दोनों के साधना मार्ग में प्राण ऊर्जा का किसी भी प्रकार से क्षय न हो इस पर सर्वाधिक बल दिया जाता है। दोनों एक स्वर में कहते हैं कि शुक्र द्वारा जितनी ऊर्जा का क्षय होता है उतना अन्य किसी मार्ग अथवा साधना से नहीं। इसके बाद यदि कोई मार्ग अथवा साधन है तो वह है आपकी इन्द्रियाँ सम्भवतः आपको ज्ञात नहीं है कि आपकी प्राण ऊर्जा का क्षय बराबर और हर क्षण आपकी इन्द्रियों के द्वारा होता रहता है। अधिक क्षय न हो इसके लिए आपको अपनी इन्द्रियों पर विशेष ध्यान

रखना होगा। उनको नियन्त्रित करना होगा और अन्य किसी भी प्रकार से ऊर्जा व्यर्थ नष्ट न हो इस पर भी बराबर रखना होगा ध्यान। आपके मस्तिष्क में अरबों कोशिकाएँ हैं। शुक्राणुओं के बाद अधिक से अधिक उन कोशिकाओं से क्षय होती है प्राण ऊर्जा। उस समय जब आप क्रोध करते हैं, मारपीट करते हैं, गाली गलौज करते हैं, ईर्ष्या करते हैं। द्वेष करते हैं किसी प्रकार से तनावग्रस्त होते हैं। व्यर्थ की बाते सोचते हैं। आप जानते हैं इसका क्या परिणाम होगा? अनिद्रा से पीड़ित हो जायेंगे मतिभ्रम हो जायेगा। किसी काम में मन नहीं लगेगा। इच्छा शक्ति और विचार शक्ति कमजोर हो जायेगी। भूख कम लगेगी, पढ़ने लिखने में मन नहीं लगेगा। चिड़चिड़ापन बना रहेगा, बुरे सपने आयेंगे। इन सबसे यदि बचना चाहते हैं तो उन सब कार्यों से बचें, जिनसे ऊर्जा का क्षय होता है। योगीगण और साधकगण अपने मस्तिष्क कोशिकाओं में विद्यमान प्राण ऊर्जा की रक्षा, दया, कृपा, करूणा, अनुकम्पा आदि के द्वारा करते हैं। सदैव प्रसन्न और प्रफुल्ल रहते हैं। इस दिशा में उनका सबसे बड़ा शस्त्र होता है– निरपेक्षता। निरपेक्ष भाव और अलिप्त भाव ये दो भाव ऐसे हैं– जो मस्तिष्क में किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न होने नहीं देते और ऊर्जाओं को व्यर्थ में नष्ट भी नहीं होने देते। यदि आप योग मार्ग पर चलना चाहते हैं और चलना चाहते हैं किसी भी साधना मार्ग पर तो आपको उपुर्यक्त बातों को निष्ठापूर्वक स्वीकार करना होगा, तभी सफलता मिलेगी आपको मार्ग में। इनके साथ–साथ यदि मन को किसी भी प्रकार के क्षोभ से बचाना है तो सुखी प्रफुल्लचित्त और प्रसन्न रहने वाले व्यक्ति के साथ रहिए और मित्रता करिए उनसे। जो दुखी हैं दरिद्र हैं और हीनदीन हैं उनके प्रति करूणा का भाव रखिए। शुभ में हर्षित होइए, अशुभ के प्रति उपेक्षा करिए।

योग और तंत्र, प्राण के बाद मनोनिग्रह को महत्व देता है। मनोनिग्रह में सबसे बड़ी बाधा है कल्पना। वैसे कल्पना की अपनी शक्ति है। निराकार को साकार करने की दिशा में अत्यधिक सिद्ध होती है कल्पना शक्ति। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि कल्पना को केवल तबतक कल्पना ही समझना होगा। जबतक उसमें संकल्प शक्ति प्रयुक्त न होगी। संकल्प की शक्ति, कल्पना से जब जुड़ जाती है तब उसे कहते हैं कल्पना शक्ति।

कल्पना तभी साकार होती है जब उसमें संकल्प शक्ति भी रहती है। भौतिक विज्ञान ने जो अभीतक उन्नति की है। इसके मूल में कल्पना शक्ति ही तो है। केवल मात्र कल्पना से कोई लाभ नहीं हानि ही है। मानसिक शक्ति का क्षय करना है तो निराधार कल्पना करिए। व्यर्थ की कल्पना आपके मस्तिष्क को कुण्ठित कर देगी। कोई वस्तु साकार होने वाली हो, तभी उसकी कल्पना करिए, अन्यथा नहीं। कल्पना जब साकार नहीं होती है तो बड़ी मानसिक पीड़ा होती है। भावुक और सरल चित्त व्यक्ति तो अन्त में पागल हो जाता है या फिर कर लेता है आत्महत्या।

मनुष्य को प्रकृति प्रदत्त है कल्पना शक्ति, लेकिन उसका दुरुपयोग ही अधिक होता है इसीलिए मनोनिग्रह की दिशा में बहुत सारी बाधाएँ आती हैं और अनेक प्रकार के कष्टों का सामना भी करना पड़ता है साधक को। अधिकांश लोग भावनाओं की असंगति, दिवा स्वप्न तथा नाना प्रकार के अनुमान में मानसिक रूप से रहते हैं व्यस्त। हमारी आशा अपेक्षाएँ भले ही काल्पनिक हों परन्तु उनसे हमें यथार्थ में निराशा ही होती है उपलब्ध। अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा हम असत्य को भी अपने लिए बना लेते हैं सत्य और इस प्रकार ऐसी दुश्चिन्ताओं के हो जाते हैं शिकार जिनका कोई वास्तविक बुनियाद होता ही नहीं और जब हमारी यह आदत मजबूत और दृढ़ हो जाती है तो मनोनिग्रह अत्यन्त कठिन हो जाता है। कभी–कभी तो हमें यह भी ज्ञात नहीं हो पाता कि दिन का एक बड़ा भाग हम स्वप्नराज्य और भ्रम के संसार में बिताया करते हैं सत्य और वास्तविकता के संसार में नहीं। जबतक हम अपनी इस आदत को दूर नहीं करते, तबतक मनोनिग्रह असम्भव ही है लेकिन तभी जब आप गलत और भ्रामक कल्पना को काटने के लिए सही और वास्तविक कल्पना को स्वीकार करेंगे। कल्पना शक्ति हमारी परम हितैषिणी है लेकिन तभी जब हम उसका सदुपयोग करेंगे। वह युक्ति से परे जा सकती है और वही एक ऐसी ज्योति है जो हमें सर्वत्र ले जा सकती है। कल्पनाओं में सबसे पवित्र कल्पना ईश्वर का विचार है। हम जितना ही ईश्वर के विचारों को आत्मसात करेंगे, उतना ही मन के साथ हमारे संघर्ष कम होंगे और अन्त में पूर्ण मनोनिग्रह को हो जायेंगे उपलब्ध।

योग-तंत्र और कल्पना- इधर चार पांच दशक से योग तंत्र में भी प्रवेश कर गयी है कल्पना। प्रवेश में सहयोग देने वाले हैं आज के धर्माचार्य और योगी गुरु। उनकी कृपा से कल्पना में ही कुण्डलिनी जागरण होने लगा है, शक्तिपात होने लगा है। षट्चक्र भेदन भी होने लगा है। कल्पना में ही नाना प्रकार की दीक्षाओं का प्रभाव भी दिखने लगा है। नाना प्रकार के चमत्कार भी होने लगे हैं। इष्ट दर्शन, आत्म साक्षात्कार, आत्मानुभूति आदि तो अति सहज और अति सरल हो गया है कल्पना के आकर्षक और लुभावने राज्य में इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। आपको ज्ञात होना चाहिए कि जब से पश्चिम के भौतिकवाद से घबड़ायें परेशान तनावग्रस्त और ऊबे हुए महापुरुषों का वास्तविक सुख शान्ति की खोज में भारत आना अधिक हो गया है और तभी से भारत में साधु सन्यासियों योगी साधकों और सिद्ध योगियों की जमात भी द्रुतगति से बढ़ने लगी है। जिनकी अपनी–अपनी प्रभावशाली मण्डलियाँ हैं। जिनके सदस्य अधिकांश पश्चिमी देशों के पलायनवादी लोग हैं जो वास्तविक सुख शान्ति की खोज में भटकते हुए भारत आते हैं। अब प्रश्न यह है कि देश के हों या विदेश के हों लोग क्या उनको उपलब्ध होता है सच्चे अर्थों में सुख और शान्ति? विचारणीय है यह प्रश्न। प्रायः मेरा सामना ऐसे लोगों से बराबर पड़ता रहता है जो मण्डलियों से भटक कर आ जाते हैं मेरे पास कुछ आध्यात्मिक प्रश्न लेकर और लेकर जिज्ञासाएँ। अभी कुछ दिन पहले ऋषिकेश से एक साध्वी महिला आयी थी। नाम था शाम्भवी प्रिया। यह तो उनका गुरु प्रदत्त नाम था। वैसे नाम था शान्ति तनेजा। शरीर से स्वस्थ, सुन्दर और आकर्षक महिला थी शाम्भवी प्रिया। आयु भी यही रही होगी 35–36 के लगभग। मेरे पास परामर्श के लिए आयी थी शाम्भवी प्रिया। पहले तो उन्होंने अपने आपको संयत किया और फिर गंभीर स्वर में कहना शुरू किया– मेरी कुण्डलिनी जागृत हो गयी है। सारा शरीर बराबर तपता रहता है कुण्डलिनी शक्ति के उत्ताप से। अट्ठारह वर्ष की अवस्था में मुझे शक्तिपात दीक्षा दी गुरुदेव ने। रोमाञ्चित हो उठा मेरा सारा शरीर। प्रफुल्लित हो उठा मेरा मन भी। अनर्वचनीय आनन्द के सागर में डूब गयी एकबारगी मेरी आत्मा। उस क्षण के सुख और आनन्द का वर्णन नहीं कर सकती मैं शब्दों में। इतना कहकर क्षण भर

के लिए आँखे बन्द कर ली साध्वी ने। लगा जैसे उस आनन्द की स्मृति सजीव हो उठी हो उनके मानसपटल पर। उसी अवस्था में आगे बोली पूरे दस वर्ष के अन्तर्गत न जाने कितनी बार शक्तिपात दीक्षा दी गुरुदेव ने। उनका कहना था कि जबतक कुण्डलिनी का जागरण न हो जाय, तब तक दीक्षा का चलता रहेगा इसी प्रकार क्रम। अब गुरुदेव अस्वस्थ रहने लगे थे। अवस्था भी हो गयी थी उनकी पचपन साठ के लगभग। एक दिन मुझे बुलाकर मेरे सिर पर हाथ रखते हुए गुरुदेव बोले– तेरी कुण्डलिनी जागृत हो गयी है। अब तू एक सिद्ध साधिका है विवाह कदापि मत करना। अब केवल गुरु का चिन्तन करते हुए जीवन व्यतीत करना है तुझे। यह सब सुनकर स्तब्ध रह गया मैं एकबारगी। शक्तिपात दीक्षा योग तंत्र की अत्यन्त रहस्यमयी और अत्यन्त गम्भीर गहन सर्वोच्च दीक्षा है जिसके प्रभाव से तत्काल आमूलचूल परिवर्तन हो जाता है। मन का भी, प्राण का भी और अन्त में आत्मा का भी, जिससे सारे कर्म विपाक नष्ट हो जाते हैं। जिससे नष्ट हो जाते हैं और आणव मल।.....वह शक्तिपात दीक्षा इतनी सरल और इतनी सहज.....जिसको देने–लेने वाले दोनों दुर्लभ होते हैं, गुरु भी और शिष्य भी।.....हे भगवान ! और वह भी एक बार नहीं न जाने कितनी बार। सब कुछ समझते देर न लगी मुझे।

अब बतलाइये, मुझसे क्या चाहती हैं आप–सहज भाव से पूछा मैंने।

बड़ी ही विकट है मेरी समस्या? उसी का हल आपसे चाहती हूँ मैं।

स्पष्ट करिए, सम्भव होगा तो हो जायेगा समाधान? गुरुदेव अब नहीं रहे। समाधि ले ली उन्होंने लेकिन कबतक उनका चिन्तन करती रहूँगी मैं? मेरी उम्र भी अब अधिक हो गयी है। परिवार में माता–पिता हैं नही। बड़ा भाई है वह सपरिवार दुबई में रहता है। माँ ने जो मेरी शादी की रकम रखी थी और जो जेवर बनवाया था। उन सबको अर्पित कर दिया था गुरु के चरणों में। एक प्रकार से निराश्रित समझिए आप मुझे। थोड़ा रूक कर साध्वी आगे बोली–एक युवक से प्रेम करने लगी हूँ मैं। उससे शादी भी करना चाहती हूँ। वह भी तैयार है। क्या शादी कर सकती हूँ मैं? गुरु की आत्मा रूष्ट तो नहीं होगी यह सुनकर तरस आ गया मुझे साध्वी पर। मन ही मन सोचने लगा– कितनी सरल और

निश्छल है यह महिला। अध्यात्म के नाम पर किस प्रकार छली गयी है, स्वयं उसे ज्ञात नहीं। यदि स्पष्ट रूप से सब कुछ बतला देता तो सम्भवतः उसका अर्थ कुछ और लेती वह। इसलिए मैंने हँसकर कहा– आप विवाह करिए। रही गुरु की बात। उनकी आत्मा निर्वाण को ही गयी है उपलब्ध इसलिए रूष्ट होने का प्रश्न ही नहीं है। कुण्डलिनी का क्या होगा– थोड़ा व्यग्र भाव से बोली साध्वी।

हँसे बिना रह न सका मैं। मैंने कहा– आपका भ्रम है। कुण्डलिनी जागृत हुई ही कहाँ आपकी। यदि जागृत हुई होती तो आप मेरे पास आती ही क्यों? कहीं बैठी होती आप समाधि में मग्न। कहने की आवश्यकता नहीं विवाह कर लिया शाम्भवी प्रिया ने। उसी व्यक्ति से जिससे प्रेम करती थी वह। गुरु का दिया हुआ नाम और उसी के साथ ही माता–पिता का भी रखा हुआ नाम टांग दिया उन्होंने खूंटी पर और उनके स्थान पर पति का दिया हुआ नाम रखा पुष्पा सिहोरिया।

कहने की आवश्यकता नहीं पुष्पा सिहोरिया पति के साथ आनन्दमय गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रही है। अब तो एक सुन्दर पुत्र की माँ भी बन गयी है वह। लेकिन अभी भी भूली नहीं है कभीकदा फोन आता ही रहता है उनका। कहने की आवश्यकता नहीं, ऐसे और इस प्रकार के कई उदाहरण हैं मेरे पास। लिखना चाहूँ तो अलग से एक मोटी पुस्तक बन जायेगी।

***

प्राण ऊर्जा के क्षय का माध्यम इन्द्रियाँ भी हैं– सम्भवतः आपको ज्ञात नहीं है कि आपकी प्राण ऊर्जा का क्षय उपर्युक्त माध्यमों से होता ही है। उनके अतिरिक्त आपकी इन्द्रियों के द्वारा भी बराबर होता रहता है क्षय। इसके लिए आपको नियंत्रण रखना होगा अपनी इन्द्रियों पर व्यर्थ नष्ट होने से बचाना होगा आपको। जिन इन्द्रियों द्वारा प्राण ऊर्जा का व्यर्थ का क्षय बराबर हो रहा है और हो रहा है उसका दुरुपयोग। उन्हीं इन्द्रियों के द्वारा प्राण ऊर्जा को अपने भीतर समाविष्ट करने का प्रत्यत्न करना होगा। आसन से, प्राणायाम से, प्रत्याहार से, ध्यान से और अन्त में समाधि से। योग के ये पांच अंग हैं। जिनमें से तंत्र ने केवल

तीन अंगों को ही स्वीकार किया– अपनी साधना भूमि में प्रत्याहार, ध्यान और समाधि को।

प्रत्याहार का सबसे प्रथम नियम यह है कि हम शक्ति को व्यर्थ और निरर्थक व्यय न करें और जहाँ–जहाँ से शक्ति हमें उपलब्ध हो सकती है वहां–वहाँ से ग्रहण करें। आपकी समस्त इन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ और महत्वपूर्ण इन्द्रिय है नेत्र। इसका महत्व इसी में निहित है कि जैसे वह बहिर्जगत में खुलता है, वैसे ही आन्तरजगत में भी है खुलता। ईश्वर न करे कोई जन्मजात अन्धा हो। लेकिन हम उसे ईश्वर के वरदान के अलावा और कुछ नहीं समझते। जन्मजात अन्धा होना अति सुन्दर है। बहुत अच्छा है इसलिए कि जो एक तपस्वी को, एक योगी को और एक दिव्य पुरुष को उपलब्ध होता है अत्यधिक प्रयास से वह सहज ही प्राप्त हो जाता है एक जन्मजात अन्धे व्यक्ति को। भले ही बहिर्जगत के लिए उसके नेत्र सदैव के लिए बन्द हो गये हों, लेकिन आन्तरजगत के लिए खुल जाते हैं सदैव के लिए। अन्धे व्यक्ति की बुद्धि अति प्रखर होती है। अति प्रबल होती है ग्राह्य शक्ति भी। स्मृति शक्ति के संबंध में तो पूछिए ही मत। हजारों गुनी बढ़ जाती है स्मृतिशक्ति। अति प्रबल होती है सोचने समझने और परखने की भी शक्ति। स्पर्श मात्र से ही बहुत कुछ जान समझ जाते हैं वह। काशी में एक वैद्यजी रहते थे। वे स्पर्श से रोगों का करते थे निदान। जन्मजात अन्धे थे वह। स्पर्श से ही औषधियों के गुण धर्म बतला दिया करते थे महाशय।

जन्मजात अन्धे व्यक्ति में ज्ञान को ग्रहण करने की अद्‌भुत क्षमता होती है। ज्ञान को तत्काल ग्रहण कर उसे सदैव के लिए कर लेते हैं अपनी स्मृति में सुरक्षित। ऐसे ही एक महाशय थे, जिनको रामायण, गीता आदि धर्म ग्रन्थ कण्ठस्थ थे। यहीं काशी में रहते थे। जन्मजात अन्धे थे वह। ऐसे और इस प्रकार के अन्य विशेष गुण उनमें होते हैं। जिनको ईश्वर प्रदत्त भी कहा जा सकता है और इसीलिए जन्मजात व्यक्ति को प्रज्ञाचक्षु भी कहते हैं।

इसीलिए योग–तंत्र कहता है कि देखने की आवश्यकता हो, तभी देखें। तभी आँखे खोलें, नहीं तो अर्ध मिलित अवस्था में ही रखे आँखों

को, चिन्तन मनन करें, अध्ययन करें, सुनना भी अति आवश्यक हो तो तभी सुनें। सुनने योग्य बाते ही सुनें व्यर्थ की बातों को नहीं। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय तो आप अपने मन को उधर से हटा लें और लगा दें किसी और ओर, जो आपके लिए शुभ हो। कान बन्द करने की आवश्यकता नहीं, सुनना अपने आप बन्द हो जायेगा। किसी व्यक्ति से मिलना आवश्यक हो तभी मिले। यदि कोई बात करना चाहे और आप न चाहें तो बस, मौन धारण कर लें। अगला व्यक्ति अपने आप बात करना बन्द कर देगा। मौन के समय किसी शुभत्व का चिन्तन करें। अधिक बोलने और अधिक बातचीत करने से प्राण ऊर्जा अधिक नष्ट होती है। कम से कम बात करें। आवश्यक समझ कर ही बोलें। इसे समझ लें आप ठीक से। आवश्यक कार्य ही करें। अनावश्यक कार्य न करें। इससे शारीरिक ऊर्जा का क्षय होता है। आवश्यक कार्य करते समय भी कम से कम बोलें। कार्य पर ही ध्यान रखें। जो वस्तु या जो कार्य आपके प्राप्य के बाहर है– उसके विषय में कदापि सोच विचार न करें। नहीं तो हो जायेंगे आप तनावग्रस्त। सोच समझ कर बोलें। ऐसा ही बोले– जिससे कोई झंझट भविष्य में खड़ा न हो जाय। किसी भी प्रकार की परेशानी न हो जाय उत्पन्न। छोटी जाति के लोगों को अपने निकट न बैठायें। हीन–दीन और दरिद्र, अपाहिज व्यक्ति को अपने शरीर का किसी भी रूप में स्पर्श न करने दें। इससे शारीरिक ऊर्जा का तो क्षय होता ही है इसके अतिरिक्त उनके कुसंस्कार भी आपको प्रभावित करने लग जाते हैं। किसी से हाथ मिलाने, किसी के शरीर से लिपटने और किसी के सिर पर हाथ रखने से तत्काल प्राण ऊर्जा का क्षय निश्चित समझिए। मन अस्थिर हो जाता है। व्याकुलता भी बढ़ जाती है। केवल तीन व्यक्ति को प्रणाम करें देवता, इष्ट और ब्राह्मण। केवल तीन व्यक्ति का ही चरण स्पर्श करें– गुरु और माता–पिता का। इससे तत्काल प्राण ऊर्जा की होती है वृद्धि और बुद्धि भी हो जाती है शुद्ध। अस्तु

अबतक प्राण ऊर्जा के संबंध जो कुछ बतलाया गया है– यदि उनके अनुसार चलेंगे तो तभी योग–तंत्र का मार्ग आपको स्वीकार करेगा अन्यथा नहीं समझ लें आप। यदि आप ऐसा करेंगे तो स्वयं आपको घोर आश्चर्य होगा। आपको लगने लगेगा कि आपके नब्बे प्र0श0 कार्य व्यर्थ थे जिसके

कारण आपकी जीवनदायिनी मूल्यवान ऊर्जा व्यर्थ की नष्ट हो गयी जो वापस लौटने वाली नहीं। जिनको करने की कोई आवश्यकता नहीं थी आपको और जिस समय ऐसा आपको लगेगा उसी समय आप अपने प्रति जाग जायेंगे, प्रत्याहार का उद्देश्य है आपको जगाना, सचेत करना।

प्रत्याहार के दो नियम- पहला नियम तो यह है कि आप अपनी शक्ति को बिना कारण व्यर्थ का नष्ट न करें सावधान रहें, सतर्क रहे, सचेत रहें हर क्षण और हर पल। इसी प्रकार दूसरा नियम यह है कि जहाँ–जहाँ आपको प्राण ऊर्जा के रूप में शक्ति प्राप्त हो सकती है वहाँ–वहाँ से ग्रहण करें आप शक्ति। हरे भरे वृक्ष की ओर बराबर देखें आपको उससे प्राप्त होगी ऊर्जा। बहते हुए जल की ओर एकटक देखें, गिरते हुए झरने की ओर देखें, नीलाभ आकाश की ओर शून्य में देखें– आपको ऊर्जा प्राप्त होगी, इसमें सन्देह नहीं। ऊषाकाल के समय पूरब की ओर आँखे खोल कर बैठें। एकान्त में ध्यानस्थ होंगे तो आपको असीम ऊर्जा प्राप्त होगी। कच्ची जमीन पर नंगे शरीर लेटें– आपको ऊर्जा मिलेगी। बहते हुए पानी में कुछ देर तक दोनों पैर लटका कर बैठें ऊर्जा प्राप्त होगी आपको। इस प्रकार कहने की आवश्यकता नहीं, आपमें शक्ति का भण्डार बढ़ता जायेगा। तब आपके भीतर जागरण के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रह जायेगा। आप स्वयं जागृत हो जायेंगे अपने प्रति। अबतक जो बेहोश थे आप होश में आ जायेंगे– अपने प्रति, अपने कार्यों के प्रति और विचारों व भावों के प्रति भी। यह जागरण आपको वहाँ पहुँचा देगा, जहाँ पहुँचाता है आपको सांख्य यानि आपके अन्तराल में। वह जागरण उस ज्ञानाग्नि को प्रज्जवलित कर देगा जिसमें आपकी सारी अज्ञानता भस्म हो जायेगी एकबारगी।

प्रत्याहार के बाद ध्यान को महत्व दिया गया है योगतांत्रिक साधना भूमि में इसलिए अब ध्यान पर चर्चा की जायेगी। ध्यान वास्तव में है क्या? इस प्रश्न का सही–सही उत्तर आज भी किसी के पास नहीं है।

जैसा मैं बतला चुका हूँ कि मेरा उद्देश्य एकमात्र सत्यान्वेषण है। खोजी वृत्ति है मेरी किसी भी प्रकार की योग सिद्धि अथवा तंत्र की सिद्धि प्राप्त करने की भावना कभी भी मेरे मन में नहीं उठी। लेकिन

एक बात अवश्य है और वह यह कि अपने उद्देश्य, अपनी वृत्ति के वशीभूत होकर योगतांत्रिक साधनाओं के विभिन्न रहस्यमय और गोपनीय अंगों की गहरायी में प्रवेश करने का अवश्य साहस किया है मैंने और उसी साहस के कारण बाबा के सान्निध्य में रहकर मैंने ध्यान योग का कठिनतम् अभ्यास किया वक्रेश्वर के महाश्मशान में। उस अवधि में जो भी विकट अनुभव हुए और जिन–जिन अवर्णनीय दृश्यों को देखा और जिन–जिन मानवेतर शक्ति सम्पन्न लोगों से सम्पर्क हुआ वह अपने आप में अति विलक्षण है– जिनका उल्लेख करना अभी आवश्यक नहीं समझता हूँ मैं, इस प्रसंग में।

अभी तो आपको यह बतलाना चाहता हूँ कि मुझे प्राप्त हुआ कुछ भी नहीं। सच तो यह है कि जो कुछ भी मेरे भीतर पहले से ही विद्यमान था। वह धीरे–धीरे प्रगट हो गया बाहर और उसका ज्ञान हो गया मुझे। समझिए सोया हुआ था, बस जाग गया मैं। लेकिन यह सम्भव हुआ कैसे? ध्यान से, ध्यान आपको देता कुछ भी नहीं बस, आपके भीतर जो कुछ भी है उसे बाहर निकाल कर उससे परिचित भर करा देता है वह। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। ध्यान की प्रक्रिया आपको किसी नए जगत में नहीं ले जाती है। केवल उस जगत से आपको परिचित करा देती है जहाँ आप जन्म–जन्मान्तरों से रहते आये हैं। ध्यान की प्रक्रिया आपमें कुछ जोड़ती भी नहीं। जो गलत है, जो व्यर्थ है, जिसमें कोई तत्व भी नहीं है उसे बाहर निकाल कर सदैव के लिए कर देती है नष्ट।

आपको ज्ञात होना चाहिए कि आपके भीतर अदृश्य रूप से जो कुछ भी है। उसमें बहुत कुछ व्यर्थ की चीज को सदैव के लिए नष्ट कर देती है ध्यान की प्रक्रिया और नष्ट होते ही आपके भीतर वह सत्य प्रकाशित हो जाता है जिसे परमात्मा कहते हैं लेकिन ध्यान का मार्ग आपके लिए तभी खुलेगा, जब आप प्रत्याहार का सही–सही पालन करेंगे। परमात्मा से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। परमात्मा क्या है? आत्मा का विशाल और सर्वव्यापक रूप। वह ऊर्जा का विशाल भण्डार है, एनर्जी है इसके अलावा और कुछ नहीं।

ध्यान के सोपान- यह आपको ज्ञात होना चाहिए कि समस्त साधना उपासनाओं के मूल में एकमात्र 'ध्यान' है। ध्यान के बिना सब

कुछ व्यर्थ इसलिए ध्यान के संबंध में मुझे बहुत लिखना है क्योंकि ध्यान ही एक ऐसी वस्तु है जो हमें बाहर से भीतर की ओर ले जाती है और आन्तरजगत से कराती परिचित। यह जान लेना आवश्यक है कि ध्यान के विकास के अन्तिम क्षणों में जो भी कुछ होंगे आप, वह आप इस समय और इस क्षण में भी हैं। ध्यान आपमें कुछ अलग से जोड़ेगा नहीं। अलग से देगा भी कुछ नहीं बस, जो निरर्थक और व्यर्थ है, उसको आपसे अलग कर देगा और जो सार्थक और महत्वपूर्ण है और है आवश्यक, उसे कर देगा आपके भीतर प्रकाशित। इसके लिए हम आपको प्राणवान और मूल्यवान प्रयोग बतला रहे हैं। जिनका परिणाम सुनिश्चित है लेकिन तभी जब आप पूर्ण विश्वास और श्रद्धा के साथ बतलाये हुए का करेंगे प्रयोग अन्यथा नहीं। इस बात को आप अच्छी तरह समझ लें कि कोई भी साधना हो और कोई भी उपासना हो उसके लिए पूर्ण ईमानदारी, पूर्ण तन्मयता, पूर्ण विश्वास, पूर्ण जागरूकता और पूर्ण चैतन्यता अति आवश्यक है। यदि आप वास्तव में करेंगे तो उसका परिणाम वही होगा जो मुझे उपलब्ध हुआ है साधना काल में।

आपसे किसी भी प्रकार की पात्रता अथवा योग्यता की बात नहीं कर रहा हूँ मैं। बस इतना ही कहूँगा कि जो मैं बतला रहा हूँ उसे अवश्य करेंगे आप। यही मेरे लिए 'पात्रता' है। मेरा बतलाया हुआ मार्ग कठिन नहीं है अति सरल है। तत्काल आपकी आत्मा ग्रहण कर लेगी उसे। आपको ज्ञात होना चाहिए कि सभी मूल्यवान और महत्वपूर्ण चीजें सरल और सहज होती हैं। इसी प्रकार जो असत्य हैं महत्वपूर्ण नहीं होते। जटिल, दुरुह और कठिन भी होते हैं। यहाँ यह भी जान लेना आवश्यक है कि असत्य अति मोहक और अति आकर्षक भी होता है लेकिन सत्य नहीं। लेकिन साधारण लोगों की धारणा यह है कि जो चीज जितनी जटिल, दुरूह और कठिन होती है उसमें निश्चय ही कोई अति गहन और गम्भीर रहस्य छिपा हुआ होता है लेकिन यह धारणा भ्रामक है। जहाँ आडम्बर होगा, पाखण्ड होगा– वहाँ सत्य का अस्तित्व कदापि न होगा। सत्य सरल है और असत्य है जटिल। सरल होने के कारण सत्य पकड़ में आ जाता है लेकिन असत्य को कठिन होना पड़ता है। उसे आडम्बर और पाखण्ड के बीच में रहना पड़ता है ताकि यह पता न चले कि वह असत्य है। सत्य सीधा, सरल और नग्न है। वह

जैसा होता है वैसा ही होता है उसका परिणाम भी और यही कारण है कि आज तक संसार में जितनी भी कठिन बातें हैं। वे प्रायः असत्य हैं। इसी प्रकार जितनी भी सत्य बातें हैं वे सरल हैं, सहज हैं और निश्चित रूप से है सत्य। चाहे रामायण भागवत हो या हो गीता कुरान और या हो बाइबिल।

***

अब मैं ध्यान के पहले सोपान की चर्चा करूँगा। समय उषाकाल, एकान्त स्थान, शरीर भी स्वच्छ और वस्त्र भी पवित्र, कम्बल का आसन, तन कर बैठे पूर्व दिशा की ओर मुख कर, पूरे बीस मिनट तक तीव्र श्वास प्रश्वास का प्रयोग करें। श्वास इस प्रकार लें जैसे लोहार की धौकनी चलती है। जितनी जोर हो, ताकत हो, उतनी जोर और ताकत से श्वास लेकर भीतर चोट करें। जितनी जोर से श्वास भीतर जाकर चोट पहुँचायेगा, प्रहार करेगा, उसी के अनुसार भीतर छिपी हुई प्राण ऊर्जा जागृत होगी। उद्देश्य है प्राण ऊर्जा का जागरण और जागरण के लिए यही क्रिया है श्वास का भीतर प्रहार। आपके भीतर प्राण ऊर्जा का विपुल भण्डार भरा है लेकिन आप उससे अपरिचित हैं। उसमें से उतना ही अंश क्रियाशील है जितना आपके शरीर को जीवित रखने के लिए आवश्यक है।

जैव विद्युत आपको ज्ञात होना चाहिए कि आपके शरीर में ही नहीं, बल्कि जीवन के समस्त रूपों में जो ऊर्जा छिपी हुई है– वह विद्युत का ही एक अति सूक्ष्म रूप है। आपका शरीर जिस शक्ति से क्रियाशील, चैतन्य और गतिशील है– वह विद्युत का ही एक अति सूक्ष्म रूप है उसे वैज्ञानिक जैव विद्युत कहते हैं। उसको श्वास के प्रखर प्रहार से जितना ऑक्सीजन मिलेगा। उतना अधिक भीतर आपकी ऊर्जा जगेगी, क्रियाशील होगी और होगी चैतन्य। इतना ही नहीं उत्तरोत्तर उसकी मात्रा भी बढ़ती जायेगी। जीवन और जीवन के अन्य सभी क्षेत्रों में आपके शरीर में तीन महत्वपूर्ण केन्द्र हैं– **मस्तिष्क, हृदय और नाभि,** इन तीनों केन्द्र को सर्वाधिक ऊर्जा मिलेगी और उससे मिलेगी जीवनी शक्ति भी। जिसे वैज्ञानिक, ऑक्सीजन कहते हैं– वह 'जैव विद्युत' ही तो है। शरीर विज्ञान

का कहना है कि जैसे–जैसे उसकी मात्रा कम होती जाती है वैसे ही वैसे मनुष्य मृत्यु के निकट पहुँचता जाता है। यदि जीवन चाहते हैं और आयु भी चाहते हैं और साथ ही अपने आपको भीतर से स्वच्छ निर्मल प्रसन्न प्रफुल्ल होना चाहते हैं तो आप को अपने भीतर श्वास का प्रहार खूब करना पड़ेगा। अधिक से अधिक पहुँचाइये चोट। अधिक से अधिक मात्रा में। कम से कम बीस मिनट, यहाँ रूकिए नहीं, क्रमशः समय बढ़ाते जायें। परिणामस्वरूप आपके भीतर जो ऑक्सीजन है उसका अनुपात बढ़ता जायेगा। जिससे उपलब्ध होगा आपको नया जीवन, नयी स्फूर्ति और अधिक से अधिक मानसिक शक्ति लेकिन यह स्मरण रखिये यह ध्यान योग के अन्तर्गत एक विशेष प्राण क्रिया है। इसे वही व्यक्ति कर सकता है **जिसकी आयु 20 वर्ष से 40 वर्ष के अन्दर है। जिसे कोई रोग हो, यक्ष्मा हो, दमा हो और श्वास रोग हो उसे यह अभ्यास कदापि न करना चाहिए।**

***

बराबर अभ्यास यदि आप करेंगे तो कुछ समय बाद आपके सारे शरीर में एक प्रकार का कम्पन होने लगेगा। कम्पन होने दीजिए 20 से 45 तक हो सकता है कम्पन। वह कम्पन उस समय तक बराबर होता रहेगा, जब आपको यह अनुभव होगा कि मूलाधार के निकट कोई प्रखर और ज्वलनशील कोई वस्तु द्रुत गति से अपने स्थान पर चक्कर काटते हुए ऊपर की ओर उठने का कर रही है प्रयास। वैज्ञानिक उस रहस्यमयी वस्तु को **सर्पेन्ट पावर** कहते हैं। जो जैव विद्युत का घनीभूत रूप है। योग तंत्र की भाषा में उसी की भाषा में उसी को कहते हैं कुण्डलिनी शक्ति। जिसके प्रभाव से सर्वप्रथम पूरा शरीर एक नवीन अपरिचित शक्ति से भरता हुआ होता है प्रतीत। आपका ध्यान बिना किसी प्रयास के लगने लगेगा। आप कहीं भी हों, किसी भी स्थिति में हों और कोई भी काम करते हों– अपने आप उस समय ध्यानस्थ हो जायेंगे आप। कम्पन भी होने लगेगा कभी–कभी। ऐसे साधक को बराबर सतर्क रहना चाहिए हर अवस्था में और हर समय। कब कैसी स्थिति उत्पन हो जायेगी, बतलाया नहीं जा सकता और यही कारण है इस मार्ग के साधक कम

से कम लोगों से मिलते हैं। कम से कम बातें भी करते हैं और बिना किसी विशेष कारणवश कहीं जाते भी नहीं। यह कुण्डलिनी का उन्मेष काल है।

ध्यान का दूसरा सोपान- कुण्डलिनी के संबंध में आज के युग में अनेक प्रकार की भ्रान्त धारणा है। मूलाधार चक्र में अपने स्थान पर सर्प की तरह कुण्डली के रूप में एक विशेष नाड़ी है। उस नाड़ी के भीतर विपुल ऊर्जा का भण्डार भरा हुआ है इसके अलावा और कुछ नहीं। उसकी अवस्थाएँ हैं– उन्मेष अवस्था, चैतन्य अवस्था, क्रियाशील अवस्था और उत्थान अवस्था। साधक की जिस स्थिति का उल्लेख किया गया है– वह कुण्डलिनी की उन्मेष अवस्था है। यह भी ज्ञात होना चाहिए कि कुण्डलिनी से संबंधित किसी भी प्रकार की दीक्षा नहीं है। केवल श्वासाघात आवश्यक है। श्वास का अधिक से अधिक निर्मल और स्वच्छ होना चाहिए। इसके लिए सात्विक और अल्प भोजन और फल, घी, दूध की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

शरीर में अपने अधिक से अधिक कम्पन का होना अति महत्वपूर्ण है यह कुण्डलिनी का उन्मेष काल है। इस अवस्था में आप अपने आप झूमने लगेंगे, नाचने लगेंगे, हँसने लगेंगे, रोने भी लगेंगे, अपने भीतर एक विशेष प्रकार के उल्लास, स्फूर्ति और आनन्द का भी करने लगेंगे अनुभव। उस समय आप अपने शरीर को बिल्कुल शिथिल कर देंगे। शरीर और शरीर के अंगों को अनियन्त्रित हो जाने देंगे। पूरी छूट दे देंगे अपने शरीर को। आपको ज्ञात नहीं है कि आपने अपने शरीर को और अंगों को कई प्रकार से दमित कर रखा है। अपने मन में भी न जाने कितने नकारात्मक विचार भरे हुए हैं जरा सोचकर कर देखें। आपके मस्तिष्क में कितने नकारात्मक भाव, विचार और कामनाएँ कूड़े करकट की तरह भरी हुई है उन सबको हटाइये और उनके स्थान पर सकारात्मक भाव विचार आदि को आने दीजिए। तभी आप ध्यान में प्रवेश कर सकेंगे अन्यथा नहीं।

जबतक आप क्रोध, लोभ, मोह, घृणा, द्वेष आदि का दमन करते रहेंगे। वासना का दमन करते रहेंगे, बेकार की इच्छाओं और आवश्यकता

का दमन करते रहेंगे। जो कुछ कहना चाहते हैं अथवा बतलाना चाहते हैं– उसका दमन करते रहेंगे। अपने भावों और विचारों का दमन करते रहेंगे और करते रहेंगे दमन संशय और सन्देह का। ये दोनों प्रबल मानसिक विकार हैं। ये दोनों विकार मानव जीवन को नष्ट कर देते हैं। जब भी सफलता की ओर बढ़ना चाहेंगे तो वे बढ़ने ही न देंगे आपको। वास्तव में ये दो शब्द ऐसे हैं। जिसमें मनुष्य जीवन जीता अवश्य है लेकिन घुटन से। कहा भी गया है। **संशयात्मा विनश्यति,** यदि आप साधनामार्ग पर हैं तो इन दो विष भरे शब्दों का त्याग करना पड़ेगा। इसके लिए सबसे अच्छा साधन बराबर मन को प्रफुल्ल रखना, सद्चिन्तन करना और अच्छे कार्यों में मन लगाना है।

जैसाकि ऊपर मैं बतला चुका हूँ, दमन करना नाना प्रकार के विकारों को उत्पन्न करना है। ध्यान की प्राण क्रिया से आपके भीतर जितनी नकारात्मक चीजें हैं वे सब बाहर निकल आयेगी और सकारात्मकता से भर उठेगी आपकी अन्तरात्मा। आपको ज्ञात नहीं है कि आपके भीतर कितनी भावनात्मक गन्दगी भरी हुई है। आपके मन ने कितना कुछ दमित कर रखा है? आप यह बात ठीक से समझ लें कि ध्यान के लिए शरीर का प्रफुल्ल और हल्का रहना आवश्यक है। मन का भी निर्मल और स्वच्छ रहना आवश्यक है, प्रसन्न रहना तो अति आवश्यक है और यह तभी सम्भव है जब पूर्णरूप से 'दमन' समाप्त हो जायेगा। सभी प्रकार से तन, मन स्वच्छ हो जाने पर शरीर और मन दोनों निर्जरा हो जाते हैं। निर्जरा को उपलब्ध हो जाने पर शरीर और मन दोनों प्रफुल्ल–निर्मल और शुद्ध हो जाते हैं। पहले सोपान की साधना से शरीर किसी अदृश्य शक्ति से भरा हुआ लगता है। दूसरे सोपान की साधना से मन भी प्रफुल्ल निर्मल हो जाता है। मस्तिष्क की प्राण ऊर्जा बढ़ जाती है। जिसके परिणामस्वरूप आपकी स्मृति शक्ति, विचार शक्ति, इच्छा शक्ति और संकल्प शक्ति दृढ़ और प्रखर हो जायेगी। आपकी इच्छा साकार होने लगेगी। सबसे बड़ा अनुभव तो आपको यह होगा कि आप अपने शरीर को शरीर नहीं समझेंगे। समझेंगे असीम नैसर्गिक ऊर्जा का भण्डार। पहली बार यह भी अनुभव होगा कि आप अलग हैं और आपका शरीर आपसे हैं अलग। ध्यान योग की प्राण क्रिया की सबसे बड़ी उपलब्धि

यह हैं कि आप अपने शरीर के ही नहीं शरीर के क्रियाकलापों के भी हो जायेंगे साक्षी।

मैं कौन हूँ? और जब साक्षी बन जायेंगे और अपने शरीर को अलग समझने लगेंगे तो उस अवस्था में स्वाभाविक रूप से आपके मन में यह प्रश्न उठना शुरू हो जायेगा–"मैं कौन हूँ? जब शरीर नहीं है तो फिर 'मैं कौन हूँ" यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। आप इस प्रश्न को कम से कम पच्चीस बार अपने भीतर दुहराये एकान्त में और शान्ति के क्षणों में। फिर पच्चीस मिनट तक तीव्र श्वास लें। फिर कुछ मिनट तक शान्त बैठे रहें।

ध्यान का तीसरा सोपान– फिर पूछना शुरू करें अपने आपसे वही प्रश्न 'मैं कौन हूँ, इतनी गहरायी से पूछें कि उसकी चोट का अनुभव हो आपको अपने भीतर। श्वास की चोट और प्रश्न शब्द का चोट जितना अधिक होगा उतनी अधिक ऊर्जा सक्रिय होगी।

भीतर प्रश्न करते–करते घबराहट होने लगे और बोल कर अथवा चिल्लाकर प्रश्न करने की इच्छा हो तो रोकिए मत अपने आपको। जोर–जोर से बोल कर प्रश्न करिए– मैं कौन हूँ? मैं कौन हूँ?..... मैं कौन हूँ। लेकिन उस समय आपको एक बात का खयाल रखना होगा कि दो प्रश्न शब्द के बीच अन्तराल न हो। अन्तराल एक सेकेण्ड का भी होगा तो ऊर्जा का तारतम्य टूट सकता है उससे। जिसका परिणाम है असफलता। शब्दों की भी अपनी ऊर्जा होती है। 'मैं कौन हूँ' शब्द की ऊर्जा पुनः 'मैं कौन हूँ' की ऊर्जा एक ही है। लेकिन दोनों के उच्चारण के बीच किञ्चित मात्र स्थान बना तो ऊर्जा का क्रम टूट जायेगा। इसलिए लगातार बोलते ही जाइये, बोलते ही जाइये और जब बोलते–बोलते थक जायें तो मौन साध लें और नेत्र बन्दकर लें। इस प्रकार लगातार प्रत्येक दिन तक करना होगा जबतक नाभि प्रदेश लाल होकर तपने न लगे और मूलाधार में कीड़े की तरह कोई वस्तु रेंगने न लगे।

उस विशेष अवस्था में अब कुछ भी नहीं करना होगा आपको। बस एकान्त में जहाँ जरा–सी आवाज न हो, वातावरण शान्त और प्राकृतिक हो। ऊषाकाल में बैठ जायें और रेंगने वाली वस्तु पर मन को केन्द्रित करने का प्रयास करें। प्रयास तबतक करें जबतक पूर्ण रूप से मन स्थिर

न हो जाय। आप यह जानना चाहेंगे कि वह रेंगने वाली वस्तु क्या है। वह कास्मिक ऊर्जा है। नैसर्गिक ऊर्जा का विपुल भण्डार– जिसे लोग कुण्डलिनी कहते हैं जिसकी चर्चा अल्प में ऊपर की जा चुकी है। मन के स्थिर होते ही– मैं का भाव समाप्त हो जायेगा और मैं कौन हूँ का उत्तर भी आपको मिलना शुरू हो जायेगा। साधना जीवन की बहुत बड़ी क्रान्ति समझें इसे आप। साधारण बात नहीं है। जबतक आप अपने अन्तिम स्थान पर नहीं पहुँचेंगे तबतक सार्थक सिद्ध नहीं होगी आपकी साधना। किसी कारण नहीं पहुँचे तो समझ लें कि आप नीचे–गिर जायेंगे और परिश्रम व्यर्थ जायेगा। उसका कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। इसलिए मैंने जो कुछ अबतक लिखा है, वह सब अपने स्वानुभव के आधार पर लिखा है। पुस्तकें पढ़कर या साधु संन्यासियों के प्रवचनों को सुनकर नहीं पुस्तकों में केवल उधार के विचार होते हैं। प्रवचनों में सुनी सुनाई हुई बातें ही तो होती है इसके अलावा और कुछ भी नहीं। इसलिए जो कुछ मैंने लिखा है उसके अनुसार पूर्व निष्ठा के साथ करें। देखे लें, इससे क्या–क्या हो सकता है? आप स्वयं हो जायेंगे श्रद्धा को उपलब्ध। श्रद्धा पहले आवश्यक नहीं है। आपको पहले विश्वास करने की भी आवश्यकता नहीं है। जो कुछ मैंने कहा है वह तो निश्चित रूप से होगा ही। जो क्रिया मैंने बतलाई है उसे करके देख लें। यदि हो तो ठीक, न हो तो गलत। लेकिन गलत तभी होगा जब आप सही ढंग से न किए होंगे। पानी को लें, पानी सौ डिग्री पर गरम होता है। विश्वास की आवश्यकता नहीं। विश्वास से पानी गरम नहीं होता। श्रद्धा से पानी का भाप नहीं बनता। समझे न बन्धु! आप चाहें अविश्वासी हों, नास्तिक हों और अधार्मिक हों इन सबसे कोई अन्तर नहीं पड़ता। जैसे पानी सौ डिग्री पर गरम होता है। उसी प्रकार श्वास की चोट से, आघात से आपके भीतर सौ डिग्री गरमी उत्पन्न होनी ही चाहिए। तभी कुण्डलिनी का उन्मेष होगा एवं उसमें आयेगी क्रियाशीलता भी। मैंने जिस अभ्यास की चर्चा की है वह पूर्णरूप से वैज्ञानिक है। सपने की बात नहीं है। आप नास्तिक हों ईश्वर की सत्ता भी न मानते हों और धर्म को भी न स्वीकार करते हों। इन सबसे मेरा कोई मतलब नहीं। आप बस, प्रयोग करें। आप यह अनुभव करने लगेंगे कि आपके भीतर एक अनवर्चनीय परिवर्तन का होना शुरू हो गया है।

योग के संबंध में मुझसे प्रायः सुविज्ञगण अपनी जिज्ञासा प्रकट करते रहते हैं। उनके समाधान में इतना ही कहना सार्थक होगा कि योग, इस्लाम, हिन्दू, जैन या अन्य किसी धर्म से संबंध नहीं रखता है। लेकिन बुद्ध, जीसस, मुहम्मद, जरथुस या महावीर जैसा कोई भी व्यक्ति जो सत्य को हुआ है उपलब्ध। वह बिना 'योग' के उपलब्ध नहीं हुआ है। सत्य की उपलब्धि बिना योग के सम्भव ही नहीं है। मानव जीवन की सर्वोच्चता को प्राप्त करने का एकमात्र है साधन 'योग'। जिनको हम धर्म कहते हैं वह विश्वासी व्यक्ति का सम्बल है और है साथी। आपको समझ लेना चाहिए कि योग एक सर्वोच्च उत्कृष्ट विज्ञान है, विश्वास नहीं विश्वास तो अन्धा होता है। श्रद्धा भी अन्धी होती है बिना ज्ञान के योग मार्ग पर चलने के लिए और योगानुभूति के लिए न विश्वास की आवश्यकता है, न श्रद्धा की आवश्यकता है। वह आस्तिक नास्तिक दोनों के लिए है। योग एक प्रकृष्ट विज्ञान है। वह आप से किसी भी प्रकार की मान्यता की अपेक्षा नहीं रखता। योग एक वास्तविक सत्य है। उसके लिए श्रद्धा विश्वास की आवश्यकता नहीं। योग, मान्यता से शुरू नहीं होता। खोज, जिज्ञासा और अन्वेषण से होता है शुरू। इसलिए योग के लिए केवल प्रयोग करने की शक्ति की है आवश्यकता। योग का कहना है कि जीवन ऊर्जा है, जीवन शक्ति है भौतिक विज्ञान जब परमाणु को तोड़कर आगे बढ़ा तो उसे ज्ञात हुआ कि परमाणु के बाद पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। केवल ऊर्जा के कण हैं यानी इलेक्ट्रॉन। इलेक्ट्रॉन क्या है? विद्युत कण है। विज्ञान ने सोचा– 'कण' भी कहना ठीक नहीं है। कण कहने से पदार्थ का रूप सामने आ जाता है इसलिए उसका नाम रखा गया 'क्वान्टा'। क्वान्टा का अर्थ है– कण है भी और नहीं भी है। कण भी और लहरें भी, एक साथ। वास्तव में कण कहना भूल है वह ऊर्जा है। विज्ञान की दृष्टि से जगत 'ऊर्जा' है। विद्युत ऊर्जा का विस्तार और उसी का व्यष्टि रूप कुण्डलिनी है जो एक ऊर्जा के अलावा और कुछ भी नहीं।

वह ऊर्जा क्या है? वह ऊर्जा है आत्मा। जो आपके शरीर में तीन रूपों में सक्रिय है– शारीरिक ऊर्जा के रूप में, प्राण ऊर्जा के रूप में और मनो ऊर्जा के रूप में। मृत्यु के समय वे तीनों ऊर्जाएँ एक के बाद एक समाहित हो जाती हैं आत्म ऊर्जा में।

आत्मा आध्यात्मिक जगत का एक 'भौतिक' तत्व है और उस तत्व की जो ऊर्जा है वह है आत्मा की क्रियाशील शक्ति। वह शक्ति सारे शरीर में समान रूप में फैली हुई होती है। कहने की आवश्यकता नहीं उसी ऊर्जा को और उसी शक्ति का एक नाम और है और वह है चेतना। कहीं–कहीं प्रसंगवश उसे आत्म चेतना भी कहा गया है। शक्ति की क्रियाशीलता के ही कारण आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश करती है।

आध्यात्मिक जगत में, भौतिक जगत में आत्मा का संक्रमण करना भी अपने आपमें अत्यन्त रहस्यमय है। इसकी पृष्ठभूमि में परमात्मा की आन्तर प्रेरणा ही समझना होगा। जिसके वशीभूत होकर आत्मा में भोगवृत्ति जागृत होती है और भोग को साकार करने के लिए कठोर मानव जीवन को स्वीकार करती है और अपने आप फंस जाती है जन्म मृत्यु और जरा, व्याधि के चक्र में। यह एक आत्मा का अस्वाभाविक जीवन है और इस जीवन से तभी मुक्ति मिलती है और तभी आत्मा अपने शाश्वत आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करती है– जब परमात्मा का होता है उस पर अनुग्रह। यह बात और है वह यह कि आत्मा न बुरी होती है और न तो अच्छी ही होती है। जैसा गर्भ रहता है वैसी ही वृत्ति भी हो जाती है। गर्भ निर्माण में माता–पिता का या स्त्री–पुरुष का संस्कार होता है। वही संस्कार आत्मा ग्रहण कर लेती है और वैसी ही बन जाती है। मृत्योपरान्त वही संस्कार लेकर अन्य शरीर में प्रवेश करती है वह। (इस संबंध में विस्तार से पढ़े– 'मरणोत्तर जीवन का रहस्य)

❐

सप्तम आवाहन

सद्गुरु-साक्षात्कार और इष्ट दर्शन

ध्यान का इतिहास कितना प्राचीन है? इस संबंध में प्रामाणिक रूप से कुछ भी नहीं बतलाया जा सकता। ध्यान, वैदिक युग में रहा है। पौराणिक युग में रहा है। ब्राह्मण युग में रहा है। उपनिषदों के युग में भी रहा है। वर्तमान युग में तो है ही लेकिन एक बात समझ लेना चाहिए कि लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व ध्यान का स्वरूप जो था और अपने विकास की जितनी ऊँचाइयों पर था। वह उस समय के लोगों के लिए था। वैसे लोग इस समय नहीं हैं। उनके कोई चिन्ह भी अब नहीं हैं। देश काल पात्र को देखते हुए ध्यान का जो मौलिक स्वरूप अब एक सीमा तक काफी विकृत हो चुका है। इसका कारण है हजारों वर्ष पूर्व के लोग अति सरल थे। प्राकृतिक वातावरण के समीप थे। प्रदूषण मुक्त थे। तन से स्वच्छ थे। मन से निर्मल थे। चित्त से सरल थे। आत्मा से थे शुद्ध इसलिए ध्यान में प्रवेश करना उनके लिए सहज था। केवल एक क्षण के ध्यान मात्र से अपने लक्ष्य को सिद्ध कर लेते थे। महाभारत के युद्ध को ले लीजिए। एक बाण हाथ में लिए और एक क्षण में मन को एकाग्र किया और ध्यानस्थ हुए और उसी अवस्था में मंत्र का भी आवाहन किया और फिर चला दिया बाण और सफल हो गये। कुल मिला कर अधिक से अधिक दो या तीन मिनट बस।

अब कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो तनावग्रस्त न हो, उलझनों से भरा न हो, समस्याओं से ग्रस्त न हो, कोई न कोई परेशानी में न हो, व्यर्थ और सारहीन बातों में न पड़ा हो, अशान्त न हो। अपने लिए कम दूसरों के लिए अधिक से अधिक न सोचता हो, कामुक न हो और व्यर्थ की ऊर्जाओं का क्षय न करता हो। बतलाइये! क्या ऐसी स्थिति में ध्यान में प्रवेश कर सकेगा कोई? आन्तरिक शान्ति का कर सकेगा अनुभव, कदापि नहीं।

आपको ज्ञात होना चाहिए कि योग हो या हो तंत्र। उनकी साधना में पारंगत वही व्यक्ति हो सकता है जो पूर्ण निष्ठा, पूर्ण विश्वास और पूर्ण श्रद्धा से प्रत्याहार, ध्यान और समाधि को उपलब्ध होगा। वर्तमान परिवेश में समाधि साधारण लोगों के लिए "आकाश कुसुमवत्" है। प्रत्याहार में पूर्ण पारंगत हुए बिना ध्यान योग में साधारण सी साधारण सफलता भी सन्दिग्ध ही है। इसका कारण क्या है? यह आप समझ ही गये होंगे। पूर्णरूप से नहीं तो कम से कम अपनी जटिलता दूर करिए। तनाव कम करिए। उलझनों से बचिए और समस्याओं से दूर रहिए। थोड़ा सा भी समय अपने लिए दीजिए और तभी आप ध्यान की दिशा में मुड़ सकते हैं अन्यथा नहीं और तभी आप यह भी समझ सकते हैं कि ध्यान क्या है और ध्यान की आवश्यकता क्यों है? मानव जीवन में सम्भवतः आपको यह ज्ञात नहीं है कि कई प्रकार की उच्चकोटि की साधना पद्धतियाँ ध्यान के अभाव से लुप्त हो गयी है और सिद्ध हो गयी है व्यर्थ। हजारों लाखों में कोई एक ऐसा व्यक्ति होगा– जो ध्यान की प्राचीन पद्धति को जानता हो और उसके अनुसार साधनाओं की पुरानी पद्धतियों को साकार करता हो। वर्तमान समय में भी साधना करता हो। वर्तमान समय में भी साधना की पुरानी पद्धतियाँ हैं लेकिन ध्यान की पुरानी पद्धति नहीं है। इसका एकमात्र कारण यही है कि आज का मानव नया है और ध्यान की पद्धतियाँ जिन लोगों के द्वारा विकसित की गयी थी, वे लोग काल के अन्धकार में विलीन हो गये। अतीत लील गयी उन्हें।

ध्यान विज्ञान है। विशेष विज्ञान, सारी साधनाओं, सारी पूजा पद्धतियों, सारी धार्मिक क्रियाओं, सारे दैनिक पैतृक कर्मों और सारे धर्मों के मूल में ध्यान है। ध्यान यदि नहीं है तो समझिए सब व्यर्थ। आज सभी प्रकार के अनुष्ठान और सभी प्रकार यज्ञ यज्ञादि क्यों नहीं अपने–अपने फल संकल्पानुसार दे रहे हैं? क्या कारण है असफलता का जरा सोचिए! कारण क्या है? कारण है– मन की अस्थिरता और चित्त की चंचलता और ये दोनों तभी ठीक हो सकते हैं, जब आप ध्यान योग के मार्ग को स्वीकार करेंगे।

हम अपने विषय को 'शब्द' से शुरू कर रहे हैं। शब्द हमारे बाहर प्रकट होता है। यह सभी जानते हैं। शब्द जब बाहर निकलता है तभी हमें ज्ञात होता है कि हमारे भीतर क्या था? ध्यान विज्ञान के अनुसार चित्त की सबसे ऊपरी अवस्था है। उच्चारित शब्द चित्त की पहली अवस्था का परिचायक है। हम यदि शब्द का उच्चारण न भी करें। तभी हमारे भीतर शब्द से संबंधित विचारों की आंधी चलती रहती है। यदि न चले तो हम बोलेंगे कैसे और कैसे निकलेंगे बाहर शब्द। कोई भी शब्द बाहर निकलने के पहले विचार के रूप में हमारे भीतर उत्पन्न हुआ रहता है। उसका मंथन बराबर होता रहता है। यदि ऐसा न हो तो शब्द कदापि बाहर नहीं निकल सकते। ध्यान रखिए इस बात का इसे एक उदाहरण से हम आपको समझा रहे हैं। यदि आंप कहते हैं 'राम' तो इसके पूर्व ही आपके भीतर किसी कोने से विचार के रूप में 'राम' शब्द का निर्माण हो जाता है। ध्यान विज्ञान इसे कहता है– चित्त की दूसरी अवस्था। यह अवस्था आपके व्यक्तित्व की गहरायी है, ऐसा समझिए आप। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो साधारण लोग चित्त की ऊपरी अवस्था यानी पहली अवस्था में ही जीते हैं। दूसरी अवस्था का ज्ञान होता ही नहीं उनको। आपके बोलने का जो जगत है यानी ध्वनि का जो जगत है। उसके नीचे एक दूसरा जगत भी है और वह है विचार का जगत सोचने का जगत और चिन्तन–मनन का जगत। जिसमें आप पूर्णरूप से अपरिचित हैं। आपको उसका जरा सा भी ज्ञान नहीं है। यदि किसी कारण से आप परिचित हो जायें और ज्ञान हो जाय तो आप एकबारगी आश्चर्यचकित हो उठेगें इसमें सन्देह नहीं। आप जितना विचार करते हैं, जितना सोचते हैं और जितना आप चिन्तन करते हैं, उसका एक साधारण सा भाग शब्दों के रूप में होंठों के माध्यम से बाहर प्रकट होता है। सच तो यह है कि आपके जीवन का नब्बे प्रतिशत हिस्सा विचार सागर में डूबा हुआ रहता है और केवल दस प्रतिशत हिस्सा बाहर दिखलायी देता है। इतना अन्तर है समझ लें आप।

इस संसार में अकारण कुछ भी नहीं है। आपके जीवन में भी अकारण कुछ भी नहीं है। आप क्रोध करते हैं, घृणा करते हैं, गाली गलौज करते हैं, मारपीट करते हैं और हत्या भी करते हैं लेकिन बाद

में आप सोचते हैं कि यह सम्भव कैसे हुआ। पश्चाताप क्यों होता है आपको? पछताते क्यों हैं आप? कैसे सम्भव हुआ कि हत्या हो गयी आपसे? आप कहते हैं कि मेरे न चाहने के बावजूद कैसे हो गयी हत्या? कैसे आ गया क्रोध? कैसे हो गया मारपीट? कैसे चल गयी गोली? कैसे हो गया खून! आपने तो ऐसा करना चाहा भी नहीं था कभी, चाहते भी नहीं थे। लेकिन हो कैसे गया? आपके द्वारा जो कुछ भी होता है, समझ लें, आकस्मिक नहीं होता है। आपके भीतर किसी कोने में पहले से ही निर्मित हुआ रहता है वह क्रोध भी, घृणा भी, हत्या भी, मारपीट भी और लड़ाई झगड़ा भी। लेकिन चित्त की वह अवस्था अथवा उसका वह तल अति गहरा है और यही कारण है कि आप या हम उसे समझ नहीं पाते। उतनी गहरायी में उतर भी नहीं पाये। संबंध रखना तो दूर की बात है उससे।

चित्त के तीन तल– मन, बुद्धि और अहंकार ये तीनों प्रकृति के मूल तत्व हैं। इनमें 'मन' मुख्य है। 'मन' जब वासना कामना के वशीभूत होकर चंचल होता है तो उसी चंचल मन को 'चित्त' कहते हैं। 'मन' के अहम् भाव यानी 'मैं' का बोध उत्पन्न होता है तो उस मन को अहंकार कहते हैं। मन में जब चिन्तन मनन उत्पन्न होता है तो उस मन को कहते हैं बुद्धि। तात्पर्य यह कि 'मन' सर्वेसर्वा है। मन के एक ओर शरीर है तो दूसरी ओर है आत्मा। मन के दो भाग हैं। पहला भाग चंचल है और दूसरा भाग है स्थिर। इन्हीं दोनों भागों को चेतन मन और अवचेतन मन कहते हैं। मृत्यु के बाद अवचेतन मन आत्मा के साथ तो संयुक्त हो जाता है लेकिन चेतन मन, वासना शरीर अथवा सूक्ष्म शरीर के माध्यम से क्रियाशील रहता है इधर–उधर भटकता रहता है। किसी के स्थूल शरीर का आश्रय लेकर अपनी वासना आदि की पूर्ति करता रहता है। तबतक जबतक कि वह अपने अवचेतन भाग से मिलकर आत्मा में लीन नहीं हो जाता और जब यह अवस्था उसे प्राप्त होती है तभी 'आत्मा' का पुनर्जन्म होता है, अन्यथा नहीं। (पढ़ें– 'मरणोत्तर जीवन का रहस्य' ले0–अरुण कुमार शर्मा)।

ध्यान विज्ञान पहले तल को कहता है **'वैखरी'**! दूसरे तल को कहता है **'मध्यमा'**। तीसरे तल को कहता है **'पश्यन्ति'** और चौथे तल को कहता है **'परा'**। इन चार तलों के बाद एक और तल है जो अपने

आपमें अति महत्वपूर्ण है और वह तल है **आत्मतल** यानि आत्मा की ऊर्जा, उसी का नाम है **चेतना**। एकमात्र चेतना ही परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी के रूप में चित्त के तल पर प्रकट होती है। साधारणतया हम पहले ही तल से हैं परिचित। तीन तल तो हमारे लिए अन्धकार में डूबे हुए हैं। पता ही नहीं है हमें उनका। ध्यान विज्ञान का कहना है कि पहला तल होंठों द्वारा उच्चारित शब्दों का है। दूसरा तल, सोच विचार का है। तीसरा तल देखने का है। पश्यन्ति का अर्थ ही है 'देखना'। जहाँ शब्द रूप में प्रकट होता है और उस रूप का प्रत्यक्ष दर्शन होता है आत्मा के ज्योतिर्मय प्रकाश में। कोई भी शब्द किसी पदार्थ या वस्तु के समान देखें जाते हैं। चित्र की तरह जहाँ होते हैं प्रकट। पश्यन्ति का तल इसलिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि उस तल पर किसी भी वस्तु या किसी भी देवी या देवता का एकाग्रचित्त से ध्यानपूर्वक नामोच्चारण करने पर उनका सजीव और साकार रूप प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ता है। कहने की आवश्यकता नहीं सूरदास, रामदास, तुलसीदास जैसे परम भगवद्भक्तों को आत्मा के प्रकाश में पश्यन्ति तल पर ही इसी प्रकार परमात्मा ने मानव रूप में दिया था दर्शन। इस प्रसंग में यहां यह भी बतला देना आवश्यक है कि वेदों के ऋषियों ने कहा है– हमने वेदों को लिखा नहीं और सुना भी नहीं, वेदों के ज्ञान को साकार देखा है। मुहम्मद भी कहते हैं– मैंने कुरान देखी, सुनी नहीं। मूसा का भी यही कहना है कि मैंने टेन कमाण्डेन्ट्स को सुना नहीं। सामने प्रकट होते हुए देखा है। यह 'पश्यन्ति' का तल शब्द चित्र का तल है। शब्द यहां सुनायी नहीं देता। चित्र के रूप में दिखलायी देता है। पश्यन्ति के बाद एक और तल है और वह तल है 'परा' का तल'। ध्यान का विज्ञान कहता है उस तल को 'परा'। पहले दूसरे और तीसरे तल को पार करने के बाद साधक को चौथे तल का होता है अनुभव। वास्तव में परा का तल ध्यान का है जगत। ये चार आवरण हैं आत्मा के ऊपर। उनका क्रमशः भेदन करने पर ही ध्यान योगी को आत्मतल के अस्तित्व की होती है अनुभूति।

ध्यान की पांच भूमियाँ– योग जिसे तल कहता है। तंत्र 'भूमि' कहता है उसे। तंत्र की दृष्टि में ध्यान की पाँच भूमियाँ हैं– पराभूमि, पश्यन्ति

भूमि, मध्यमा भूमि और वैखरी भूमि। इन चार भूमियाँ के बाद अन्तिम भूमि है आत्म भूमि।

तांत्रिक साधना भूमि में प्रथम तीन वस्तुओं का सर्वाधिक महत्व है– मंत्र, माला और आसन। मंत्र के अनुसार माला और माला के अनुसार आसन। सभी प्रकार के बीजाक्षरों में कोई न कोई तत्व प्रधान रूप में विद्यमान रहता है। चौबीस घंटों में पांचों तत्व अपने–अपने समय के अनुसार वायुमण्डल में विद्यमान रहते हैं। जिस समय जो तत्व रहता है। यदि उस समय उस तत्व से संबंधित बीजाक्षर का जप, अनुकूल माला और आसन का आश्रय ले किया जाय तो निश्चित रूप से प्राप्त होती है सफलता। इसका कारण यह है कि साधक चित्त को एकाग्र कर और साथ ही ध्यानस्थ होकर जिस बीजाक्षर का जप करता है। जब संख्या के आधार पर मध्यमा भूमि में उस बीजाक्षर की ऊर्जा घनीभूत होती रहती है और समयानुसार वही घनीभूत ऊर्जा पश्यन्ति भूमि में बीजाक्षर की शक्ति अपने साकार रूप में प्रकट होती है। यदि वह रूप प्रसन्न दिखलायी दे तो बीजाक्षर को सिद्ध समझना चाहिए, वह निश्चित रूप से कार्य सफल करेगा अन्यथा नहीं।

पश्यन्ति भूमि की एक और विशेषता है और वह यह कि साधक को अपने इष्ट का दर्शन भी इसी भूमि में होता है। दूसरी विशेषता यह है कि ध्यान की अन्तिम सीमा है पश्यन्ति भूमि। 'ध्यान' अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर जहाँ समाधि में परिवर्तित हो जाता है पराभूमि में। वहीं दूसरी ओर पराभूमि में ध्यान का समाधि में परिवर्तित होते ही 'मन' अपने चेतन रूप को त्याग कर अवचेतन रूप धारण कर लेता है। अवचेतन मन ज्ञान विज्ञान का असीम भण्डार है। समाधिस्थ साधक अपने अवचेतन के द्वारा उस ज्ञान विज्ञान को उपलब्ध होता है जो लोकोत्तर है और जो पारलौकिक जगत से है संबंधित। योग–तंत्र के अनुसार पराभूमि समाधि और अवचेतन 'मन' की महत्वूपर्ण भूमि है। जैसाकि संकेत किया जा चुका है। उसके अनुसार ध्यान जब समाधि में परिवर्तित हो जाता है तो उस अवस्था में साधक का संबंध स्थापित हो जाता है आत्मशक्ति से और उस अनर्वचनीय आत्मशक्ति का आश्रय लेकर अवचेतन मन के द्वारा साधक लोक–लोकान्तरों में भ्रमण करता है। वहाँ के प्राणियों से

यानि दिव्य आत्माओं से सम्पर्क स्थापित करता है और जिस ज्ञान विज्ञान से भौतिक जगत अपरिचित है और उसके लिए है अत्यन्त रहस्यमय। उसको होता है उपलब्ध। अभी तक इस संसार के प्रत्येक क्षेत्र में जिस ज्ञान–विज्ञान का अवतरण हुआ है। वह समाधि के मार्ग से ही हुआ है। आज आप जो वैज्ञानिक उन्नति देख रहे हैं। वह भी एक प्रकार से उच्चकोटि के वैज्ञानिकों की चरम मानसिक स्थिति में ही हुई है। वह स्थिति भी तो समाधि की है यह नहीं भूलना चाहिए। पराभूमि और समाधि पर हम आगे चर्चा करेंगे।

साधिका देवयानी– बाबा के आश्रम में प्रायः अच्छे साधक आते ही रहते थे। कभी आसाम से और कभी बंगाल से तो कभी अरुणाचल से, कभीकदा कहीं और से भी। उन्हीं आने वाले साधकों में एक थी साधिका देवयानी भी। आयु तो उनकी बहुत थी लेकिन यौवन ने उनका साथ अभी नहीं छोड़ा था। शरीर बंगदेशीय था। व्यक्तित्व काफी आकर्षक था। खुले उन्मुक्त केश, लाल सिन्दूर का गोल टीका। गले में भिन्न–भिन्न प्रकार की मालाएँ। गौरवर्ण और गौरवर्णीय शरीर पर लाल रंग का रेशमी वस्त्र। तेजोमय मुखमण्डल और होठों पर सदैव स्थिर रहने वाली मुस्कुराहट, मजबूत कदकाठी। देखने में लगती थी, बस चालीस से अधिक नहीं।

अपलक और स्थिर दृष्टि से न जाने कबतक देखती रही वह तंत्र साधिका मेरी ओर। न जाने क्या खोज रही थी वह मुझमें। फिर मेरे सिर पर अपना दाहिना हाथ रखती हुई मृदु स्वर में पूछने लगी, क्या नाम है? कहां के रहने वाले हो? यहां कैसे आना हुआ? इतनी कम आयु में तो चेहरा खिला हुआ होना चाहिए फूल की तरह लेकिन तुम्हारा चेहरा क्यों मुरझाया हुआ है? क्यों बिखरी हुई है उदासी तुम्हारे चेहरे पर कुछ बतलाओगे नहीं? कौन सी पीड़ा है? कौन सी है वेदना? क्या मुझे नहीं बतलाओगे तुम?

यह सब सुनकर भावुक हो उठा मैं एकबारगी। झरझर कर गिरने लगे आँसू गालों पर। रहा न गया मुझसे। बतलाना ही पड़ा। धीरे–धीरे बतला दिया सब कुछ और अन्त में कुछ दूर पर जलती हुई चिता की ओर देखते हुए बोला– उस धधकती हुआ चिता में क्या जल रहा है माँ!

एक परम सत्य ही न? माँ उसी सत्य का साक्षात्कार करना चाहता हूँ मैं। मेरा आशय समझते देर न लगी उस महातंत्र साधिका को। मेरी बात सुनकर बस, हल्के से मुस्कुरा दी वह। जैसे अपने आपसे बोली, लगता है तुम्हारे लिए ही आयी हूँ मैं..... माँ की जैसी इच्छा।

इष्टदीक्षा– अमावस्या की काली अन्धेरी रात। सुधबुध खोकर सोया हुआ था मैं गहरी नींद में। न जाने कैसे आँखे खुल गयी मेरी। देखा सामने देवयानी माँ खड़ी थी। मुस्कुरा रही थी वह। बड़ी रहस्यमयी लगी मुझे वह मुस्कुराहट। अबतक उठकर बैठ गया था मैं।

सत्य से आत्मसात करना चाहते हो न। सत्य की खोज में निकले हो न। सत्य का दर्शन करना चाहते हो न। है तो सरल और सम्भव भी लेकिन बेटा इन सबके लिए तुम्हे लेनी होगी इष्टदीक्षा। बिना इष्ट दीक्षा के मार्ग प्रशस्त नहीं होता। इष्टदीक्षा के बाद गुरु दीक्षा है। गुरु दीक्षा प्राप्त होने पर उस प्रशस्त मार्ग पर चलना सरल और सुगम होता है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि मार्ग में इष्ट रक्षा करता है और सद्गुरु मार्ग निर्देशक होता है। इष्टभाव और गुरुभाव दोनों भाव मिलकर लक्ष्य सिद्ध करते हैं। थोड़ा रूक कर देवयानी माँ आगे बोली– तुमको इष्टदीक्षा देने की प्रेरणा मिल चुकी है मुझे। लेकिन गुरु दीक्षा कौन देगा? सद्गुरु कौन होगा तुम्हारा? यह तो माँ महामाया ही जान समझ सकती हैं। फिर अपने गले से शुद्ध स्फटिक की माला उतार कर मुझे देती हुई गम्भीर स्वर में बोली– चल उठ और जाकर बैठ जा कदम्ब के नीचे पद्मासन की मुद्रा में।

तत्काल आदेश का पालन किया मैंने। अति मूल्यवान सिद्ध हुई अमावस्या की वह घोर रात्रि मेरे लिए। नियति के पटल पर एक अबूझ सी आध्यात्मिक क्रान्ति घटित हुई थी उस महारात्रि में। कुटिया से अलग थोड़ी दूर पर कदम्ब, सेमल और कचनार के आपस में गुथे हुए कई वृक्ष थे। एक कदम्ब के नीचे बड़ा सा पत्थर था। वहीं बन गया मेरा आसन और उसी पर जाकर बैठ गया मैं पद्मासन की मुद्रा में। देवयानी माँ मेरे साथ थी। उनकी मुखमुद्रा अति गम्भीर थी उस समय। माला तो मिल गयी थी। आसन हो गया था प्राप्त लेकिन मंत्र.....।

शायद मेरा आशय समझ गयी देवयानी माँ। सहज लेकिन गम्भीर स्वर में बोली– नेत्र बन्द करो, स्वयं प्रादुर्भूत हो जायेगा मंत्र तुम्हारे मानसपटल पर और जैसे ही मैंने आँखे बन्द की उसी समय देवयानी माँ के करतल के स्पर्श का अनुभव हुआ मुझे अपने सिर पर। हे भगवान! कितनी सुखद अनुभूति थी और कितना विलक्षण आनन्द था वह। जिसको व्यक्त नहीं किया जा सकता है शब्दों में और उसी अवस्था में मेरी पश्यन्ति भूमि में एक साथ कई बीजाक्षर चित्र के रूप में उभर आये और कहने की आवश्यकता नहीं, वही था "इष्टमंत्र" और फिर किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं जपने लगा उस इष्टमंत्र को बतला नहीं सकता। उंगलियों में फँसे माला के दाने अपने आप सरकने लगे थे और उसी के साथ ही साथ बढ़ने लगी थी मंत्र की संख्या भी और उसी स्थिति में न जाने कब और किस क्षण मेरी बाह्य चेतना लुप्त हो गयी और कब लुप्त हो गयी, इसका पता ही न चला मुझे लेकिन उस अवस्था में भी मेरी आन्तर चेतना जागृत थी। अब शायद मेरे सामने था आन्तर जगत और उस जगत में मैंने देखा एक विलक्षण अत्यन्त भयानक दृश्य। मेरे सामने धधक रहा था पूरा वक्रेश्वर का महाश्मशान। दर्जनों चिताओं की आकाश को छूती हुई लाल पीली लपटों के बीच एकाएक सैकड़ों की संख्या में धरती को फोड़ कर नरकंकाल बाहर निकल आये और करने लगे नृत्य। बड़ा ही वीभत्स और भयानक था वह नृत्य। कभी–कभी नृत्य करते हुए सामूहिक रूप से विलाप करने लगते, रोने लगते और कभी सामूहिक रूप से हँसने भी लगते। एकाएक उन नरकंकालों के बीच एक लम्बी चौड़ी औरत प्रकट हुई। काफी मजबूत कदकाठी की थी वह। रंग काला था उसका बड़े–बड़े पीले दांत बाहर निकले हुए थे। सिर के बाल हद से ज्यादा घने थे और काफी लम्बे भी थे। जो काले घने बादलों की तरह पीठ पर बिखरे हुए थे। पूरा शरीर नग्न था। केवल गले में हड्डियों की गन्दी–सी एक माला काफी नीचे तक झूल रही थी। उसका जबड़ा नीचे की ओर लटका हुआ था। हे भगवान! उसकी आँखे....मनुष्य की नहीं, किसी हिंसक पशु जैसी थी। मोटे–मोटे भौहों के नीचे बड़ी–बड़ी गोल आखें जिनमें क्रूरता, हिंसा और आक्रोश का मिलाजुला भरा हुआ था भाव। पुतलियाँ अपनी जगह जैसे स्थिर थी।

अब वह धीरे–धीरे चलकर कर जलती हुई चिताओं को अपने लम्बे–लम्बे पैरो से लांघकर मेरी ओर अपने दोनों हाथों को फैलाए बढ़ रही थी वह। लगा जैसे वह मुझे खाने के लिए आ रही हो। लेकिन सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि मुझे न डर लग रहा था और न तो किसी प्रकार का भय ही। अबतक वह चाण्डालिनी आकर मेरे सामने खड़ी हो गयी थी। निश्चय ही वह रहस्यमयी औरत आतंकित करना चाहती थी मुझे इसमें सन्देह नहीं लेकिन मैं तटस्थ था अपने स्थान पर एकाएक खिलखिला कर हँसने लगी वह और उसी वीभत्स हँसी की मुद्रा में बोली– जानता है मैं कौन हूँ? नहीं जानता.....कैसे जानेगा भला, मनुष्य जाति के हो न। अच्छा, कोई बात नहीं। मैं बतलाती हूँ। वक्रेश्वर महाश्मशान की महाभैरवी हूँ! महाश्मशान भैरवी समझ में आया।

यह सुनकर थोड़ा भयभीत हुआ मैं। उस पिशाचिणी के प्रत्येक शब्द में घृणा, क्रोध और हिंसा का मिलाजुला भाव था। सोचा कहीं मारेगी वारेगी तो नहीं। ....और फिर मेरे करीब आकर कर्कश स्वर में कहने लगी..... यह तो बतला– कर क्या रहा है तू यहाँ बैठ कर? महाश्मशान पर तो मेरा अधिकार है। मेरी सीमा में आने का साहस कैसे कर बैठा तू? बोल! जप, तप या और कुछ? चल छोड़ ये सब भाग जा यहाँ से। ये सब तेरे वश की बात नहीं समझे। किसी के चक्कर में मत पड़। घर परिवार में जा और पढ़–लिख, माता–पिता की सेवा कर।

मैं बैठा रहा, मौन साधे किसी बात का उत्तर नहीं दिया। देता भी कैसे! भय जो समाया था मेरे भीतर।

कुछ देर तक मुझे घूरती रही महाश्मशान भैरवी और फिर आक्रोश भरे स्वर में बोली– तेरे हाथ में क्या है रे!.....माला.....माला है.....अच्छा जप वप कर रहा है तू तभी बोल नहीं पा रहा है। इतना कहकर हँसने लगी पागलों की तरह वह। खूब हँस लेने के बाद कर्कश स्वर में कहने लगी– तू! त्रिकालदर्शी बनना चाहता है मूर्ख लोगों के भीतर की बात जानना चाहता है। लोगों के मन में कौन सी खिचड़ी पक रही है और क्या करना चाहते हैं वे। ये सब भी जानना समझना चाहता है तू! बड़ी ऊँची चीज तुझे मिलने वाली है माला के जरिए। लेकिन मैं लेने दूँगी तुझे? यह कह कर वह विकराल मानवीय शक्ति श्मशान की एक जलती

हुई लकड़ी उठाकर मेरी ओर लपकी माला छीनने के लिए। भय और आतंक से कांपने लगा मैं। हे भगवान! अब क्या होगा। यह चाण्डालिन छोड़ेगी नहीं मुझे अब हे माँ! रक्षा कर, रक्षा कर माँ.....।

अचानक वातावरण में एक मर्मस्पर्शी चींख गूंजी और गूंज कर चिथड़े–चिथड़े हो गयी एकबारगी और उसी करुण चींख के साथ ही परिवर्तित हो गया वातावरण। लगा जैसे सारा नारकीय वीभत्स दृश्य समा गया हो उस वातावरण में। अपूर्व शान्ति का साम्राज्य छा गया वहाँ।

एक दिव्य महात्मा का दर्शन- अब मेरे सामने था नीला निरभ्र आकाश का असीम विस्तार। अबूझ सी और मन की गहरायी में उतर जाने वाली शान्ति का साम्राज्य। एक विचित्र सी सुगन्ध भी बिखरी हुई थी चारो ओर के वातावरण में। अब मैं प्रसन्न था। मेरे सामने लम्बा–चौड़ा हरा भरा बाग था। जिसमें रंग बिरंगे सुगन्धित फूल खिले हुए थे चारो ओर। बाग के बीच में एक बड़ा सा फौव्वारा भी था। जिसमें सुगन्धित पानी भरा हुआ था और वह पानी फौव्वारे के रूप में पत्थर के बने हंस के मुख से निकल कर बिखर रहा था चारो ओर बाग में। सचमुच बड़ा ही सुन्दर शान्त और तन–मन को स्पर्श करने वाला था सामने का दृश्य।

और तभी न जाने कैसे मेरी दृष्टि उठ गयी सामने क्षितिज की ओर! देखा, एक महात्मा मेरी ओर चले आ रहे थे आकाश मार्ग से। उनके चारो ओर सुनहले रंग का आभा मण्डल था जिसमें से विभिन्न रंगो की किरणें फूट रही थीं। कुछ ही क्षणों के बाद मेरे सामने आकर खड़े हो गये वे दिव्य पुरुष। लम्बी–चौड़ी कदकाठी। स्वस्थ सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व।

कितनी आयु थी यह मैं बतला नहीं सकता लेकिन हाँ! वे इस धरती के प्राणी नहीं लग रहे थे किसी और ही लोक के थे इसमें सन्देह नहीं। घुंघराले स्याह घने बाल–जो कन्धों तक झूल रहे थे। हल्की स्याह दाढ़ी, मूँछ। लम्बे–चौड़े ललाट पर चन्दन का प्रलेप। कान में स्वर्ण कुण्डल, गले में रूद्राक्ष की मालाएँ। गौरवर्ण शरीर पर श्वेत रेशमी वस्त्र, पैरों में खड़ाऊँ, साधना के तेज से दप्–दप् करता सौम्य और शान्त मुखमण्डल। प्रखर तेजोमय बड़े–बड़े नेत्र, होठों पर मुस्कुराहट।

काफी देर तक मेरी ओर देखते रहे वे दिव्य पुरुष। फिर कोमल और स्निग्ध स्वर में बोले– मेरा स्थान सिद्ध मण्डल के अन्तर्गत है। तुम्हारे लिए आना पड़ा है मुझे स्थूल शरीर में। यदि काल के प्रवाह को अखण्ड माने और जन्म मृत्यु को व्यवधान के रूप में स्वीकार न करें तो लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व तुमसे मैं मिला था। उस समय काशी में एक दिव्य पुरुष पंचगंगाघाट पर निवास करते थे। उन्हीं के आदेश पर तुमको योग–तंत्र मार्ग का निर्देश दिया था मैंने। शरीर परिवर्तन के कारण उसकी स्मृति नहीं है तुम्हे। चलो कोई बात नहीं मैं चाहता हूँ कि इस जीवन का लाभ उठाओ। समय का आध्यात्मिक उपयोग करो। अपने आपको सार्थक बनाओ। फिर ऐसा अवसर कब प्राप्त होगा? यह कोई नहीं बतला सकता मैं भी नहीं। इस संसार में तीन मोह अति भयंकर हैं– नारी मोह, पुत्र मोह और धन मोह। इन तीनों मोह के माया जाल में कभी मत फंसना। फंसे की सर्वस्व नाश। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि भौतिक जगत में लक्ष्मी का ही सर्वाधिक महत्व है। धन सर्वोपरि है। जिसके पास धन है उसी के सब मित्र हैं। उसी के सब बन्धु हैं। लक्ष्मी की यही भौतिक परिभाषा है कि जिसके पास जितना धन है उतना ही वह पुरुष महान और पण्डित होता है। जिसका कोई सच्चा मित्र न हो, जिसके पुत्र न हो उसका जीवन शून्य है। मूर्ख का जीवन तो शून्य से भरा रहता है सदैव। अपनी मूर्खता के कारण कहीं भी आदर नहीं पाता। दरिद्रता को तो सभी प्रकार के सूनापन का घर ही समझना चाहिए यानि सभी प्रकार के सुखों से वंचित। दरिद्रता और मृत्यु दोनों में दरिद्रता सबसे बुरी है क्योंकि मृत्यु का दुःख तो क्षणिक होता है लेकिन दरिद्रता सदैव दुःख देती है। धन में इतनी उष्णता होती है कि क्षण मात्र में मनुष्य आश्चर्यजनक ढंग से बदल जाता है।

महात्मा समझाते हुए आगे बोले– धन हानि, मन का सन्ताप, परिवार का दुराचार, ठगा जाना और अपमान किसी के सामने प्रकट नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार आयु, धन, घर का भेद, गुप्त बात, मैथुन, औषधि, तप, दान और अपमान इन नौ बातों को सदैव गुप्त रखने का प्रयास करना चाहिए। मधुर वाणी सहित दान, अहंकार रहित ज्ञान, क्षमा युक्त शूरता, दान युक्त धन– ये चारों बात इस संसार में दुर्लभ हैं।

जैसे हाथ पर रखा दीपक अन्धे को कुछ नहीं दिखाता है वैसे ही बिना पराक्रम के ज्ञान भी लाभ नहीं देता।

उन्नति के मार्ग में ये बातें सदा बाधा उपस्थित करती हैं– जिनमें आलस्य, स्त्री की सेवा, रोग जन्मभूमि का स्नेह, भय और सन्तोष मुख्य है। नारी मोह की बात कही थी। समझ लो जो शास्त्र शुक्राचार्य और बृहस्पति भी जानते हैं वह शास्त्र स्त्री की बुद्धि में स्वाभाविक रूप से रहता है और यह भी जान लो कि अचानक युवा स्त्री किसी वृद्ध का आलिंगन करने लगे तो समझ लेना चाहिए कि इसके पीछे कोई भारी कारण है। जिस स्त्री का परपुरुष में रम जाता है मन। वह वृद्ध पति के लिए औषधि के समान होती है। स्त्रियों का कोई न प्रिय होता है और न तो होता कोई अप्रिय। दूसरों को उपदेश देना सभी के लिए आसान है लेकिन स्वयं उसका पालन करना कठिन है। तुमको संसार में रहना है और रहकर अपने मार्ग पर चलना भी है इसलिए मेरे उपदेशों और मेरी बातों को अवश्य जीवन में व्यवहृत करोगे। इसी कारण मुझे आना पड़ा है।

जिस परिवार में जिस स्थान में भाई, मित्र और सगा संबंधी न हो, जीविका का साधन न हो, विद्या का उपयोग न हो, लज्जा न हो, सम्मान न हो, उदारता न हो, अपनत्व न हो, कुत्सित विचार हो– ऐसे परिवार और स्थान का त्याग कर देना चाहिए। संसार में सज्जन पुरुष नारियल के समान होते हैं– ऊपर से कठोर लेकिन भीतर से कोमल और सुस्वादु जबकि दुष्टजन बेर की तरह ऊपर से कोमल और भीतर से गुठली की तरह कठोर होते हैं। जिस प्रकार कमल का नाल टूट जाने पर भी उसके तन्तु अन्तःनलिका से जुड़े रहते हैं– उसी प्रकार स्नेह न रहने पर भी सज्जनों के गुणों में पवित्रता, दानशीलता, शूरवीरता, अनुकूलता, सुख–दुःख में समानता, अनुराग और सत्यवादिता का समावेश होता है। मैं देख रहा हूँ कि तुममें ये सारे गुण हैं। निश्चय ही इन गुणों के कारण तुम अपने मार्ग पर अविछिन्न गति से चल सकोगे।

जिस मनुष्य की वाणी सुनकर धूप में तपने के बाद शीतल जल से स्नान करने से, मोतियों की माला पहनने से और अंगों पर चन्दन का प्रलेप करने से जो शीतलता प्राप्त नहीं होती उससे अधिक शीतलता

प्राप्त होती है। जिस मनुष्य में गुप्त बात प्रकट करना, मांगना, याचना करना, निष्ठुरता, चित्त की अस्थिरता, क्रोध, झूठ, जुआ खेलना, मदिरापान करना– जैसे दोष हों, उसे कदापि मित्र नहीं बनाना चाहिए। दुर्जनों के मन में कुछ और वचन में कुछ और काम में कुछ होता है जबकि सज्जन, मन, वचन और कर्म में एक समान व्यवहार करते हैं। विपत्ति में माता–पिता और मित्र ही काम आते हैं। सहयोगी सिद्ध होते हैं। शेष का संबंध स्वार्थ सिद्धि के लिए ही होता है। नदी का, शस्त्रधारी का, नख और सींग वाले प्राणियों का, स्त्रियों का तथा राजकुल का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि इनका 'मन' अपने वश में नहीं रहता। ऐसे लोगों का प्रत्येक कार्य हाथी के स्नान के समान होता है।

ध्यान रखो बिना सोच–विचार के कोई भी काम न करना चाहिए। यह अच्छी तरह से जान लो कि अच्छी रीति से पका हुआ भोजन, विद्या प्राप्त किया हुआ विद्वान पुत्र, सुशिक्षित अनुकूल स्त्री, सेवाभाव से प्रसन्न राजा, सोच समझ कर दिया हुआ वचन, सोच विचार कर किया गया कार्य दीर्घ काल तक नहीं बिगड़ते। दुष्ट और कपटी के हृदय परिवर्तन में वेद और धर्मशास्त्र भी सहायक सिद्ध नहीं होते क्योंकि मानव स्वभाव ही प्रबल होता है। जैसे अनेक पदार्थ खाने वाली गौ का दूध स्वभावतः ही मीठा होता है और स्वास्थ्यवर्धक भी।

धर्म के आठ मार्ग हैं– यज्ञ करना, शास्त्रों को पढ़ना, दान देना, तप करना, सत्य बोलना, धैर्य धारण करना, क्षमा करना और लोभ न करना। इनमें प्रथम चार मार्गों को केवल दिखाने के लिए पाखण्डी लोग ही अपनाते हैं। जबकि अन्तिम चार मार्गों के पथिक केवल महात्मा सन्त और साधकगण ही होते हैं। थोड़ा रूककर वे दिव्य महापुरुष आगे बोले– ये सब तो संसार में रहने की कला का है संक्षिप्त विवरण।

जिसे तुम जीवन समझते हो, मृत्यु समझते हो। दोनों वास्तव में एक भ्रम है। जीवन तो शाश्वत है। उसकी धारा अबाध है। मृत्यु तो एक घटना है। शाश्वत जीवन के प्रवाह में न जाने कितनी बार मृत्यु घटित होती है। उसका कोई लेखा–जोखा नहीं। सत्य की खोज आत्मा की खोज है। सत्य की उपलब्धि आत्मा की उपलब्धि है। आत्मा का

जीवन ही शाश्वत जीवन है। ये सब कैसे सम्भव है–हठात् मेरे मुख से निकल गया ?

समाधि द्वारा और समाधि उपलब्ध होगी ध्यान की चरमसीमा पर पहुँच कर। अट्ठारह प्रकार के योग में 'ध्यान योग' सर्वोत्तम है। ध्यान योग में पारंगत हुए बिना सारी साधनाएँ व्यर्थ हैं। समाधि की उपलब्धि तो बड़ी दूर की बात है लेकिन ध्यान योग पर चलने के लिए योग के दो महत्वपूर्ण भावों को जीवन में स्वीकार करना अति आवश्यक है। पहला भाव है– जगत के प्रति निरपेक्ष भाव और दूसरा है– जीवन के प्रति अनाशक्त भाव। यदि साधक इन दोनों भावों को स्वीकार नहीं करता है तो सब कुछ व्यर्थ है। जप, तप पूजा पाठ, ध्यान, धारणा आदि सब कुछ सारहीन और व्यर्थ है और समय को व्यर्थ नष्ट करना है।

इतना कहकर महात्मा रूके, कुछ सोचे और फिर आगे बोले– मैं जब संसार में था उस समय मेरे शरीर का नाम तो कुछ और था लेकिन मण्डली में प्रवेश किया तो महामण्डलेश्वर ने मेरा नाम रखा **योगेश्वर कल्प**। तुम मुझे सांसारिक भ्रम के कारण नहीं जानते लेकिन तुमको जानता हूँ मैं। जैसाकि बतला चुका हूँ प्रारम्भ में। मैंने तुम्हे दीक्षा दी थी और तभी से दीक्षा गुरु हूँ मैं तुम्हारा। इस आधार पर सद्गुरु भी हूँ। एकमात्र सद्गुरु ही दीक्षा गुरु हो सकता है। तीन सौ वर्षों की कालावधि में तुमने मेरी छाया में चार बार जन्म लिया है। यह पाँचवां जन्म है। इस जन्म में भी तुमको देनी पड़ेगी मुझे दीक्षा लेकिन अभी समय है। प्रतीक्षा करना पड़ेगा।

लेकिन आपको पहचानूँगा मैं कैसे? मेरे पास भला इतनी योग्यता कहाँ है कि आप जैसे दिव्य पुरुष को पहचान सकूँ।

मेरे स्वरूप को ध्यान से देख लो इसी स्वरूप में तुम्हारे सामने आऊँगा मैं यथा समय। लेकिन कब.....? मेरे इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला। मेरे शब्द हवा में गूंजकर बिखर गये। मेरे सामने वे महादिव्य पुरुष नहीं थे। मेरे सामने था नीले आकाश का दीर्घ विस्तार।

क्या वह इष्ट देवी थी मैं मुंह बाये भौंचक्का सा चारो ओर देखने लगा था और तभी मेरी दृष्टि आकाश के विस्तार के क्षितिज पर पड़ी। देखा वहाँ एक ज्योतिपुंज उभर कर मेरी ही ओर आ रहा था धीरे–धीरे।

बड़ा ही विलक्षण था वह ज्योतिपुंज। जिसमें भिन्न–भिन्न प्रकाश की किरणें निकल कर गोलाकार रूप में बाहर छिटक रही थीं। बड़ा ही मनोहर दृश्य था वह। अब उसकी गति तीव्र हो गयी थी और उसी तीव्र गति से बढ़ रही थी मेरी ओर। अब मुझसे कुछ ही दूरी पर ठहर गया था वह रहस्यमय ज्योतिपुंज। स्पष्ट होते देर न लगीं। वह रहस्यमय ज्योतिपुंज एक विशाल सोने के रत्नजड़ित सिंहासन का रूप लेने लगा था। अत्यधिक सुन्दर और आकर्षक था वह दिव्य सिंहासन इसमें सन्देह नहीं। उसके ऊपर रत्नजड़ित लाल रंग के मखमल का बड़ा सा छत्र था जिसके चारो ओर मोतियों और विभिन्न रंगों की मणियों की मालाएँ झूल रही थी। पूरे सिंहासन से आँखों को चौधियाँ देने वाला हल्के पीले रंग का प्रकाश निकल रहा था। वह प्रकाश अत्यधिक तीव्र था। आँखे ठहर नहीं पाती थी। मैंने अब ध्यान से देखा उस स्व–प्रकाशित सिंहासन में एक किशोरी कन्या बैठी हुई थी पद्मासन की मुद्रा में। मंद–मंद मुस्कुरा रही थी वह उस समय। हे भगवान! सुन्दर और कमनीय थी वह षोडशी? शब्दों में वर्णन करना असम्भव है उसके अनर्वचनीय सौन्दर्य का। वह देवकन्या रूप और सौन्दर्य की जलती हुई शिखा थी, यह कहना अतिशयोक्ति न होगी। निश्चय ही किसी दिव्य लोक से हुआ था उसका अवतरण, इसमें सन्देह नहीं। सिंहासन के दोनों ओर खड़ी दोनों युवतियाँ चंवर डुला रही थी उस देवी पर। अभौतिक तेज से दप्–द्प करता मुखमण्डल और उस मुखमण्डल के चारो ओर स्वर्णिम वलय। झील जैसी गहरी और नीली भौंराली आँखें। घनी काली भौंहे। ऊँचा–चौड़ा ललाट और उस ललाट पर ध्रुवतारों जैसी चमकती बिंदिया। कानो में रत्नजड़ित कुण्डल। गले में रत्नजड़ित स्वर्णाहार और उसके साथ विभिन्न रंगों की मणियों की कई मालाएँ। हाथों की उँगलियों में विभिन्न रत्नों की अँगूठियाँ। कलाईयों में शंख के वलय और सोने की चूड़ियाँ। शरीर पर हल्के गुलाबी रंग की साड़ी।

अबतक मेरे बिल्कुल सामने आ गया था, वह विलक्षण और स्वप्रकाशवान सिंहासन। इस दिव्यरूप देवी का चेहरा बिल्कुल स्पष्ट देख रहा था मैं। मेरी ओर देख कर मन्द–मन्द मुस्कुरा रही थी वह देवी। जिसे देखकर पुलकित हो उठी मेरी आत्मा एकबारगी। मैंने देखा,

देवी की भौंराली और झील जैसी गहरी आँखों में मेरे प्रति असीम करूणा, दया, अनुकम्पा और साथ ही स्नेह का मिलाजुला भाव तैर रहा था जैसे, इसमें सन्देह नहीं। हत्प्रभ सा अवाक् और स्तब्ध सा अपलक निहारता रहा मैं उस महिमामयी के मुखमण्डल की ओर। न जाने कब तक समय का पता ही न चला और तभी रस में डूबी अमृतमयी वाणी सुनाई दी मुझे जानते हो। अभी बालक हो कैसे जानोगे भला मुझे। स्वयं बतलाती हूँ मैं। दस महाविद्याओं में सर्वश्रेष्ठ महाकाल की महाशक्ति महाकाली हूँ। प्राणशक्ति भी हूँ। जीवमात्र में पंच प्राणों के रूप में अभिव्यक्त है मेरी प्राणशक्ति। प्राण का नाम ही जीवन है। प्रत्येक प्राणी प्राणवान होकर ही जीवन धारण करता है। सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में चेतना के रूप में ही व्याप्त हूँ। चेतना के रूप में मनुष्य के हृदय में ही निवास करती हूँ। देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, गण, गुह्यक, मनुष्य आदि की मैं क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति, विचारशक्ति, भावशक्ति एकमात्र मैं ही हूँ। मैं 'स्वाहा' हूँ और 'स्वधा' भी हूँ। स्वाहा द्वारा देवगण और स्वधा के रूप में पित्रगण हविष्यान्न ग्रहण करते हैं। सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड की जननी मुझे ही समझना चाहिए।

***

उस रहस्यमयी देवी की कोमल सरस और मधुर वाणी अमृत की तरह समाती जा रही थीं बन्धु! मेरे प्राणों में, मेरे मन में और मेरी आत्मा में भी। अपलक देख रहा था मैं। मौन साधे देवी के सजल नेत्रों की ओर जिनमें करुणा, दया, अनुकम्पा, ममता, प्रेम और स्नेह के सागर लहरा रहे थे एक साथ। स्थिर दृष्टि से मेरी ओर करुण भाव से देखती हुई देवी, अमृतवाणी में आगे कहने लगी। जिस सत्य की खोज में व्याकुल होकर भटक रहे हो इस जन्म में भी, वह सत्य क्या है? वह सत्य है– आत्मा। इस माया और भ्रम के संसार में कोई सत्य है तो वह है आत्मा शेष सब मिथ्या है।

आत्मा क्या है? कम्पित स्वर में साहस कर पूछ बैठा मैं उस महादिव्य रूपा से? परमात्मा का लघु संस्करण है। देवी बोली– परमात्मा अपने स्थान पर स्थिर रहते हुए भी सर्वव्यापक है। कहाँ है वह? सर्वत्र है वह। कण–कण में है वह लेकिन आत्मा भ्रमणशील है। तुमको नहीं मालूम है

पुत्र इस विश्व ब्रह्माण्ड में अनन्त लोक–लोकान्तर हैं और हैं अनन्त जगत। उन्हीं में एक पृथ्वी भी है जिसको भू–लोक कहते हैं। आत्मा अपने आत्म शरीर द्वारा समस्त जगत और समस्त लोक–लोकान्तरों की यात्रा करते–करते जब थक जाती है और हो जाती है क्लान्त और तब वह अन्तहीन विश्राम की कामना करती है। जानते हो पुत्र! वह अन्तहीन विश्राम क्या है? वह है परमात्म तत्व में विलीनीकरण। आत्मा समा जाना चाहती है परमात्मा की गोद में हमेशा–हमेशा के लिए। यही विश्राम है आत्मा का।

मानव शरीर की विशेषता लेकिन यह तभी सम्भव होता है जब वह मानव शरीर ग्रहण करता है। मानव शरीर, आत्मा की अनन्त यात्रा का अन्तिम सोपान है इसीलिए मानव शरीर को अति मूल्यवान और अति महत्वपूर्ण माना गया है विश्व ब्रह्माण्ड में। मानवयोनि वास्तव में एक ऐसा चौराहा हैं। जहाँ से एक मार्ग संसार की ओर, दूसरा मार्ग स्वर्ग की ओर, तीसरा मार्ग नर्क की ओर और चौथा मार्ग जाता है मोक्ष की ओर। आत्मा मोक्ष की कामना लेकर ही मानव शरीर को स्वीकार करती है। मोक्ष का ही अर्थ है आत्म विश्राम, परमात्म तत्व में सदैव के लिए विलीनींकरण। लेकिन एक आश्चर्य की बात है और वह यह कि शरीर को स्वीकार करने के पूर्व नैसर्गिक रूप से आत्मा अपने आप दो खण्डों में हो जाती है विभाजित। एक खण्ड होता है पुरुष तत्व प्रधान और दूसरा खण्ड होता है स्त्री तत्व प्रधान और काल के अन्तहीन प्रवाह में पड़कर संसार में पहला खण्ड पुरुष योनि में और दूसरा खण्ड स्त्री योनि में लेता है जन्म और यहीं से शुरू हो जाती है स्त्री–पुरुष के रूप में दोनों खण्डों की अन्तहीन संसार यात्रा और यहीं से शुरू हो जाती है बार–बार जन्म और बार–बार मृत्यु का क्रम भी। दोनों खण्डों का आत्मजन्य वियोग अत्यन्त असहनीय होता है। वास्तव में वह वियोग' नैसर्गिक होता है और नैसर्गिक होते हुए भी अत्यन्त पीड़ादायक और कष्टदायक होता है। वे दोनों साथी वियोग की पीड़ा, वेदना और दुःख को अपने साथ लिए बार–बार इसलिए जन्म लेते हैं कि कभी तो मिलेंगे। कभी तो पुनः एक होंगे। लेकिन उनकी आशा कब साकार होगी? यह निश्चित रूप से बतलाया नहीं जा सकता। लेकिन दोनों का

मिलन आवश्यक है इसलिए कि बिना दोनों खण्डों के संयुक्त हुए सम्भव नहीं है मोक्ष की कामना का पूर्ण होना।

***

मानवयोनि को छोड़कर किसी भी अन्य योनि द्वारा भले ही वह देव योनि हो, यक्षयोनि हो, गन्धर्वयोनि हो या हो अन्य कोई उच्चयोनि मोक्ष सम्भव नहीं। यह मानव शरीर की पहली महत्वपूर्ण विशेषता है। इसी प्रकार दूसरी विशेषता यह है कि परब्रह्म परमेश्वर को भी जब कभी विश्व कल्याण करना होता है तो उन्हें भी मानव शरीर का ही आश्रय लेना पड़ता है और उन्हें भी आत्मा की तरह अपने आपको दो खण्डों में करना पड़ता है विभाजित। एक खण्ड होता है पुरुष तत्व प्रधान और दूसरा खण्ड होता है स्त्री तत्व प्रधान। हमारे शास्त्रों में, हमारे पुराणों में और हमारे वेदों में इन्हीं दोनों परमात्म खण्डों को परमेश्वर और परमेश्वरी की संज्ञा दी गयी है। शिव और पार्वती उन्हीं का सर्वगुण रूप है। कहने की आवश्यकता नहीं वे दोनों परमात्म तत्व ही स्त्री और पुरुष के रूप में अवतरित होकर मानवीय लीला करते हैं और लीला के द्वारा होता है विश्व कल्याण। सीता–राम, राधा–कृष्ण आदि इसके उदाहरण हैं।

***

कामना रहित, वासना रहित केवल भाव प्रधान प्रेम ही वास्तविक प्रेम है जो परमेश्वर का अभिव्यक्त स्वरूप है। वह प्रेम नैसर्गिक होता है। राधा का प्रेम, मीरा का प्रेम, सूरदास का प्रेम, तुलसीदास का प्रेम, रामकृष्ण का प्रेम ऐसा ही है। जब दोनों आत्म खण्ड स्त्री–पुरुष के रूप में दीर्घ अन्तराल के बाद आपस में मिलते हैं तो वह 'मिलन' अपूर्व होता है और उस स्मरणीय मिलन से जो प्रेम उत्पन्न होता है वह आत्मतल का होता है प्रेम जोकि वासना रहित, कामना रहित, विकार रहित, शुद्ध निर्मल और भावमय होता है। रामकृष्ण परमहंस और माँ शारदा, इसके साकार और ज्वलन्त उदाहरण हैं।

यह असम्भव नहीं है कि काल के प्रवाह में दोनों आत्म खण्ड आपस में मिलते न हों। मिलते हैं लेकिन कई जन्म–जन्मान्तरों के बाद। दीर्घ

प्रतीक्षा करनी पड़ती है। प्रच्छन्न और अप्रच्छन्न रूप से ऐसे सिद्ध साधक योगी और सन्त महात्मा हैं जो अपने आत्म खण्ड को उपलब्ध होकर मोक्ष की प्रतीक्षा में सैकेड़ों वर्ष से एक ही मानव शरीर में विद्यमान हैं।

तुम व्याकुल होकर जिस सत्य की खोज में इधर–उधर भटक रहे हो वह आत्म खण्ड की ही खोज है। तुम्हारे भीतर जो पीड़ा है वह पीड़ा उसी को पाने की पीड़ा है और कुछ नहीं। मन को शान्त रखो। अभी तो दो जन्म और लेना है तुम्हे और तभी उपलब्ध हो सकोगे अपने प्राप्तव्य को। अन्तिम शब्द के साथ अपने स्थान से लुप्त हो गयी वह रहस्यमयी। अब मेरी बाह्य चेतना लौट आयी थी। सब कुछ सपना–सपना लग रहा था। अचानक माला की याद आयी, देखा, गले में झूल रही थी देवयानी माँ की दी हुई माला। आश्चर्य चकित होना पड़ा। माला पर जप कर रहा था मैं। गले में कैसे आ गयी वह। सिर घुमा कर मैंने चारो ओर देखा। पूरे दस दिन तक एक स्थान पर, एक आसन पर और एक ही मुद्रा में बैठा रहा मेरा शरीर। मेरे चारों ओर ढेर सारा कूड़ा कर्कट और सूखे मुरझाए पत्ते हो गये थे एकत्र।

दस दिन की अवधि में जो कुछ देखा था, जो कुछ सुना था और समझा था और इसके अलावा जो कुछ किया था अनुभव। वह सब निश्चय ही इस संसार के परे का था। श्मशान में नरकंकालों का वीभत्स दृश्य, श्मशान भैरवी का विकृत रूप और उस रहस्यमय दिव्य पुरुष का सौम्य और शान्त व्यक्तित्व और अन्त में देखी गयी देवी का मनोहारिणी छवि अभी भी अंकित थी मेरे मानसपटल पर। सारा शरीर पत्थर की तरह हो गया था। किसी प्रकार धीरे–धीरे चलकर बाबा की कुटिया पर पहुँचा। प्रातःकाल का समय था। बाबा अपने आसन पर विचार मग्न बैठे हुए थे। मणिमाला माँ पूजा कर रही थी। उस समय मेरे सारे शरीर से न जाने कैसी निकल रही थी सुगन्ध, स्वयं यह रहस्य मेरी समझ में नहीं आ रहा था। शायद उसी सुगन्ध के कारण चैतन्य हुए थे बाबा। धीरे–धीरे आँखे खोलकर देखा मेरी ओर उन्होंने। हल्के से मुस्कुराये। बैठने का संकेत किया उंगली तिरछी कर। नीबू का शर्बत लेकर आयी मणिमाला माँ। पीकर चुपचाप बैठा रहा। सर्वत्र मौन शायद किसी को बोलने की

इच्छा नहीं हो रही थी मुझको भी नहीं। थोड़ी देर बाद बाबा ने मेरी ओर फिर आँखे उठाकर देखा। लगा, अपनी आँखों की भाषा से पूछ रहे हों मुझसे कुछ। रहा न गया, धीरे–धीरे शुरू से लेकर अन्त तक की सारी कथा सुना दी मैंने बाबा को और अन्त में गले से निकाल कर माला रख दी उनके सामने। उस समय किसी अदृश्य शक्ति की आभा प्रस्फुटित हो रही थी माला में। वह आभा अवर्णनीय थी। आश्चर्य हो रहा था मुझे माला उठाकर उसे देखते रहे बाबा काफी देर तक। फिर गम्भीर स्वर में बोले– अद्भुत सब कुछ अद्भुत। दैवी शक्ति सम्पन्न है यह माला। सत्यासत्य को प्रकाशित करने की अद्भुत और अलौकिक क्षमता है इस अपूर्व माला में। नित्य ब्रह्म बेला में एक बार इस माला पर इष्ट मंत्र का जप कर लेने से इसकी दिव्य अलौकिक शक्ति की क्षमता बराबर बनी रहेगी। फिर बाबा ने माला के उपयोग की गोपनीय विधि बतलायी मुझे। किसी भी रहस्यमयी और गुह्य साधना मार्ग पर अपदेवता विघ्न उपस्थिति करते हैं। नाना रूप धारण कर भयभीत करते है। श्मशान का दृश्य, नरकंकालों का नृत्य, महाश्मशान भैरवी की भयभीत और मन को विचलित करने वाली बातें। अपदेवताओं की ही लीला थी। थोड़ा रूक कर बाबा ने आगे कहना शुरू किया– दिव्य पुरुष सद्गुरु थे। सद्गुरु शरीरधारी अपने शिष्यों की खोज में बराबर रहते है। मिलने पर दर्शन देकर शिष्य को कृतार्थ करते हैं और उपदेश देते हैं और करते हैं मार्गदर्शन भी। जिस देवी का दर्शन लाभ हुआ था। वह इष्ट देवी थी। उन्हीं का बीजाक्षर मंत्र प्रदान किया था तुमको देवयानी माँ ने और मंत्र प्रदान कर उसी दिन आसाम चली गयी अपने आश्रम।

यह सुनकर स्तब्ध रह गया मैं एकबारगी। अब कब दर्शन होगा उस कल्याणमयी, करुणामयी साधिका का? एकबारगी घूम गया मेरे मानसपटल पर उस महिमामयी का दिव्य रूप।

बाबा आगे बोले– सद्गुरु और इष्ट सूक्ष्म रूप से सदैव साधक के साथ रहते हैं जन्म–जन्मान्तर तक। कोई विरला ही साधक अपने सद्गुरु के अस्तित्व का बोध अपने समीप कर पाता है। वैसे अपरोक्ष रूप से सदैव अपने शिष्य के साथ रहते हैं। अपने इष्ट को जानना समझना अत्यन्त कठिन है। कौन किसका इष्ट है? यह एक विकट

समस्या है? जिसका निदान कोई सिद्ध योगी ही कर पाता है। तुमको तो पूर्व संस्कारवश अनायास दोनों उपलब्ध हो गये और दर्शन लाभ भी हो गया दोनों का सद्गुरु का भी और इष्ट का भी।

ये दुर्लभ बाते सुनकर रोमाञ्चित हो उठा मेरा पूरा शरीर। भीतर न जाने कैसा लगने लगा। स्तब्ध अवाक् देखता रहा मैं बाबा की ओर।

बाबा कह रहे थे– स्त्री पुरुष में, पति–पत्नी में और प्रेमी प्रेमिका में कौन किसका आत्मखण्ड है? यह बतला पाना कठिन ही नहीं दुष्कर कार्य है। किसी के आत्मखण्ड से किसी का भी आत्मखण्ड मिल जाता है ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण जीवन वासनामय और कामनामय बन जाता है। भाव का, भावना का और सहानुभूति के दर्शन नहीं होते। प्रेम तो दुर्लभ ही समझिए ऐसे जीवन में। कौन किसका पति है? कौन किसकी पत्नी है और इसी प्रकार कौन किसका प्रेमी है और कौन किसकी प्रेमिका है? यह समझना भी दुष्कर कार्य है। हम सदैव एक दूसरे के प्रति अनजाने हैं लेकिन वासना ऐसी माया है कि इस पर भी स्त्री–पुरुष एक दूसरे को अपना समझते हैं। जबकि हैं नहीं।

सद्गुरु और इष्ट– इसी प्रकार सद्गुरु और इष्ट को भी समझना चाहिए। साधारण व्यक्ति को आध्यात्मिक संस्कार सम्पन्न होने में न जाने कितने वर्ष लग जाते हैं। न जाने कितनी बार जन्म लेने पड़ते हैं। जब पूर्णरूप से व्यक्ति आध्यात्मिक संस्कार से सम्पन्न हो जाता है– जिसे योग्यता लाभ कहते हैं–तब सद्गुरु उसके जीवन में किसी न किसी रूप में अवतरित होते हैं। सद्गुरु विशेष पुरुष होते हैं। जन्म–मरण से रहित कालञ्जयी होते हैं। एक प्रकार से वे ईश्वर के आध्यात्मिक प्रतिनिधि होते हैं। जिस महापुरुष का तुम्हे हुआ था दर्शनलाभ वे निश्चय ही उस समय तुम्हारे जीवन में अवतरित हुए होंगे जब तुम्हे योग्यता लाभ हुआ होगा। कई बार दीक्षा भी दी थी उन्होंने। इस जन्म में भी देंगे। अवसर के अनुसार अब इष्ट की बात लो। पूरा मण्डल 27 भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग का एक सौर प्रतिनिधि है– जिसे 'नक्षत्र' कहते हैं। नक्षत्र स्वयं एक भौतिक स्तर पर पाषाण पिण्ड है। जिसमें आकर्षक शक्ति अति प्रबल होती है और उसकी दुगुनी होती है विकर्षण

शक्ति। प्रत्येक नक्षत्र अपनी आकर्षण शक्ति के बल पर सूर्य की ऊर्जा को बराबर ग्रहण करता रहता है और उसी के अनुसार अपनी विकर्षण शक्ति के द्वारा उस ऊर्जा को पृथ्वी पर प्रेषित करता रहता है बराबर। जिसमें नक्षत्र पिण्ड के गुण और दुर्गुण भी विद्यमान रहते हैं। जिसका प्रभाव कुप्रभाव मनुष्य पर ही नहीं, सम्पूर्ण चराचर जगत पर पड़ता है। सम्पूर्ण सौर मण्डल शिव रूप महाकाल की सीमा के अन्तर्गत है। भगवान शिव, महाकाल कपाल हैं। सौर विज्ञान के महाकाल को भी नौ खण्डों में विभाजित किया है। महाकाल की शक्ति उन्हीं नौ खण्डों में विभाजित है– जिसे नौ चण्डी, नौ महाविद्या और नौ दुर्गा का रूप दिया गया है तांत्रिक साधना भूमि में। समझ गये न। बाबा थोड़ा हँस कर बोले– बेटा बड़ा ही गम्भीर विषय है। बहुत ही कम लोग परिचित हैं इस विषय से। अब आगे बतलाता हूँ इस प्रकार नौ खण्डों में से प्रत्येक खण्ड के एक अधिपति होते हैं और उसी अधिपति को कहते हैं ग्रह। नौ खण्ड और ग्रह रूप के नौ अधिपति। ग्रहों के पास अपनी स्वऊर्जा नहीं है। सूर्य से वे प्रकाशित होते हैं और अपने से संबंधित नक्षत्रों से ग्रहण करते हैं ऊर्जा। जिस व्यक्ति का जो नक्षत्र होता है और वह नक्षत्र जिस काल खण्ड से होता है संबंधित। उसी खण्ड की काल शक्ति उस व्यक्ति की होती है इष्ट देवी। जिस देवी ने तुम्हे दिया था दर्शन वह थी महाकाल की महाशक्ति काली। काली को समझो तुम अपना इष्ट।

यह सुनकर सोचने लगा मैं। जिस देवी ने स्वप्न में दर्शन दिया था और कन्या के रूप में मुझे जो श्मशान में मिलती थी और बाल सुलभ भाव से समझाती थी मुझे निश्चय ही वह सब माँ काली का ही रूप रहा होगा। इसमें सन्देह नहीं।

उस दिन पूरी रात नींद नहीं आयी। 'माँ' और सद्गुरु के दिव्य रूप चक्कर काटते रहे बराबर मानसपटल पर। भोर में हल्की सी झपकी लगी और उसी अवस्था में माँ महामाया कालरात्रि को उसी श्मशान बालिका के रूप में देखा। हे भगवान! कितनी अद्भुत छवि थी बालिका के रूप में 'माँ' की। इस पंक्ति के लिखते समय भी ऐसा लग रहा है

मानो वह छवि मेरे सामने खड़ी मुस्कुरा रही हो जैसे। समझ में नहीं आ रहा है कैसे वर्णन करूँ? कैसे लिखूँ और कैसे अभिव्यक्त करूँ माँ की छवि को, माँ के दैवी सौन्दर्य को और 'माँ' के करूणामय रूप को। एक अन्तर्यामी ही जान सकता है 'माँ' के रूप सौन्दर्य और अद्भुत दैवी रूप को। उनके रत्नजड़ित स्वर्ण मुकुट, बड़ी–बड़ी आँखें और उन बड़ी–बड़ी आँखों में लहराते हुए करूणा, दया अनुकम्पा के अथाह सागर, कानों में रत्नजड़ित कुण्डल और गले में रत्नजड़ित स्वर्णाहार पीठ पर लहराते हुए घनी, स्याह केश राशि और मुस्कुराते हुए होंठ। भला आप ही बतलाइये। कोई भुला सकता है माँ के उस दिव्य रूप को?

एकाएक बाबा की नित्य की भाँति शंख ध्वनि सुनायी दी और मेरी भंग हो गयी तन्द्रा। सवेरा हो चुका था। बिस्तर पर उठकर बैठा ही था तन्द्रिल अवस्था में जो कुछ देखा था वह सत्य था उस अवस्था में माँ ने दर्शन दिया था। इसमें सन्देह नहीं, बाबा को यह बात नहीं बतलायी मैंने। किस कारण से? यह स्वयं समझ नहीं पाया मैं उस समय।

तंत्र साधक चैतन्य देव ब्रह्मचारी– उसी दिन एक तंत्र साधक का आगमन हुआ आश्रम में, नाम था चैतन्य देव ब्रह्मचारी। तंत्र साधक थे। योग में भी गति थी। वक्रेश्वर महाश्मशान में आये थे गिरिनार से चलकर। नौ मुण्डी महाआसन पर बैठकर किसी यंत्र को सिद्ध करना था उन्हे। गम्भीर व्यक्तित्व के थे। युवक थे चेहरे पर साधना की चमक थी। मुझे देखकर मुस्कुराये ब्रह्मचारी जी। मुझे अपने निकट बुलाकर परिचय जानना चाहा। जैसा जो था वैसा बतला दिया मैंने अपने विषय में इतनी कम अवस्था में ज्ञान की इतनी भूख, मेरे शरीर का स्पर्श किया उन्होने। बोले– वाणी में मधुरता, भाषा में यौगिकता और सदाचार और उच्च विचार। ये शुभ लक्षण हैं तुम्हारे। यशस्वी भव.....। फिर मेरे शरीर का स्पर्श किया ब्रह्मचारी जी ने और स्पर्श करने के बाद कहने लगे– तुम्हारे शरीर और तुम्हारी इन्द्रियों से अल्पमात्रा में तरंगे हो रही हैं उत्पन्न। इसका अर्थ है कि तुम्हारी आत्मा में धीरे–धीरे धर्म समाहित हो रहा है। धर्म ही के कारण उन्नति करती है आत्मा ज्ञान के क्षेत्र में।

तरंग की बात मेरी समझ में नहीं आयी थी। सम्भवतः समझ गये

मेरे भाव को। बोले– धार्मिक प्रवृत्ति वाले, सद्विचार रखने वाले, शुद्ध मन वाले और जिसकी आत्मा पवित्र और निर्मल होती है। उसके शरीर से और उसकी इन्द्रियों से अल्प मात्रा में तरंगे निकलती हैं। साधकगण ही उन तरंगों को समझ सकते हैं और समझ कर उस व्यक्ति के प्रति अपना विचार निर्धारित करते हैं। पुत्र की कामना लेकर जब पति–पत्नी शारीरिक संबंध स्थापित करते हैं। उस अवस्था में दोनों के शरीरों से एक पल में लगभग एक हजार तरंगे उत्पन्न होती हैं। वे तंरगे ही जन्म लेने वाली आत्मा को आकर्षित करती हैं। इसी प्रकार शारीरिक और मानसिक रूप से ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी का जब शारीरिक मिलन होता है तो उस समय दोनों के शरीर से एक पल में तीन हजार तरंगे निकलती हैं। इसी प्रकार परपुरुष और परस्त्री का मिलन होता है तो उस समय उन दोनों के शरीरों से लगभग चार हजार तरंगे निकलती हैं। किसी अन्य पुरुष और किसी अन्य स्त्री कामवासना से प्रेरित होकर शारीरिक संबंध स्थापित करते हैं तो उनके शरीर से चार हजार से भी अधिक तरंगे विकीर्ण होती है। इस अवस्था में की गयी वचनबद्धता को स्त्री–पुरुष साकार नहीं करते हैं तो वे दोनों भयंकर पाप के भागी होते हैं। उनका कभी भी संकल्प पूर्ण नहीं होता। स्वजातीय स्त्री–पुरुष के संयोग से सर्वाधिक तरंगे निकलती है दोनों के शरीर से और उससे भी अधिक तरंगे निकलती परजातीय स्त्री–पुरुष के योग से। इस प्रकार के स्त्री पुरुष के संयोग को कोई व्यक्ति छिपकर अथवा अन्य किसी प्रकार से देख लेता है तो उस व्यक्ति के शरीर से भी एक पल में पांच हजार तरंगे निकलती हैं। जो उस व्यक्ति के पुण्य को क्षय करती है। कम से कम तरंगों का विकीर्ण होना शुभ है। शुद्ध आत्मा पवित्र–विचार पुण्यात्मा और सद्वृत्ति का सूचक है। पति–पत्नी के संबंध को छोड़कर अन्य स्त्री पुरुष कामवासना के वशीभूत होकर शारीरिक संबंध किसी न किसी कारणवश स्थापित करते हैं तो उसका परिणाम अति भयंकर होता है। अधिक से अधिक पुण्य और सद्विचारों का क्षय होता है। जितनी अधिक तरंगे विकीर्ण होगी उतना अधिक धर्म पुण्य सद्कर्मों और सद्विचारों का नाश होगा। ऐसे व्यक्तियों का धर्म–कर्म, उपासना, साधना, जप

ध्यान आदि में कदापि मन भी नहीं लगेगा। वह अपने आपमें लीन रहने लगेगा। चित्त उद्भ्रान्त सा रहेगा। ऐसे संबंध को ही शास्त्रों ने दुष्कर्म कहा है। इसे चरित्र का हनन भी बतलाया गया है। ऐसे दुष्कर्म से जो आत्मा जन्म लेती है। वह पुण्यवान और धर्मात्मा होती है। इसका अपवाद भी हो सकता है। दुष्कर्मो, चरित्रहीन, महापापी, देश, समय और धर्म संस्कृति को नष्ट करने वाली भी हो सकती है जन्म लेने वाली आत्मा। अन्त में ब्रह्मचारी जी बोले ये तंत्र का अत्यन्त गूढ़ रहस्य है। सभी के समझ के बाहर है। सचमुच ब्रह्मचारी जी उच्चकोटि के साधक तो थे ही योग और तंत्र के निष्णात् विद्वान भी थे महाशय! उनका कहना था कि शिष्य हो या हो शिष्या। वह साधना मार्ग पर चलने योग्य है या नहीं। उसमें साधना संस्कार है या नहीं। उसमें आत्मबल, मनोबल और प्राणबल उचित मात्रा में है या नहीं। उसका ब्रह्मचर्य खण्डित तो नहीं है। इन सबका ज्ञान केवल स्पर्श मात्र से सद्गुरु कर लेते हैं और उसी के आधार पर निर्णय भी कर लेते हैं। निर्णय अनुकूल होने पर ही शिष्य को शिष्य के रूप में स्वीकार करते हैं वे। अन्यथा नहीं।

समस्त साधनाओं के मूल में संकल्प शक्ति- ब्रह्मचारी जी ने कहा– दस वर्ष की अवस्था में मुझे मेरे गुरुदेव ने शक्तिपात दीक्षा दी। मैं पिछले ग्यारह जन्मों से लगातार साधना मार्ग पर चल रहा हूँ। इस बारहवें जन्म में शक्तिपात दीक्षा का अधिकारी बना मैं और सद्गुरु ने यथा समय दीक्षा दी मुझे एक जन्म की साधना, दूसरे जन्म की साधना का बनता गया आधार।

क्या जन्म और मृत्यु पूर्व स्मृति में बाधक नहीं बनी– मैंने प्रश्न किया।

उत्तर में ब्रह्मचारी जी बाले– नहीं! जन्म हो या हो मृत्यु दोनों घटनाएँ हैं। दोनों घटनाओं के घटते समय व्यक्ति मूर्च्छित रहता है। गहन निद्रा में कर जाता है प्रवेश। इसी कारण पिछले जन्म की स्मृति सदैव के लिए हो जाती है लुप्त लेकिन जो साधक है। साधना मार्ग पर है और पूर्ण संकल्पित है। वे दोनों घटनाओं के समय सजग और चैतन्य रहते हैं। घटनाएँ घटती हैं और घटे बिना अपना प्रभाव छोड़े गुजर जाती है। जिसके फलस्वरूप पिछले जन्मों की स्मृति लुप्त नहीं होती,

शाश्वत जीवन का शाश्वत प्रवाह, काल की गति से बराबर प्रवाहित होता रहता है। जिस जीवन से लोग परिचित हैं और जिस जीवन को जी रहे होते हैं वह वास्तव में एक भ्रम है और है स्वप्नवत्। वास्तविक जीवन तो शाश्वत है। उस शाश्वत जीवन में न जन्म है और न तो है मृत्यु ही। बस पार्थिव शरीर बदलता रहता है लेकिन पिछले जन्मों की स्मृतियाँ बराबर बनी रहती हैं। जिससे पिछले जन्मों का जीवन एक सा प्रतीत होता है। इस दृष्टि से साधक अपनी आयु को सैकड़ों वर्ष की समझता है। ब्रह्मचारी जी बोले–स्मृतियाँ बनी रहने के कारण ही जन्म मृत्यु की घटनाएँ घटने के पश्चात् भी साधना में व्यतिक्रम उत्पन्न नहीं होता। साधना की बराबर प्रवाहित रहती है सतत्धारा। मृत्यु के समय साधना जहाँ रूकी थी वहीं से अगले जन्म में तत्काल शुरू हो जाती है। उसी समय मणिमाला माँ आ गयीं। उनके हाथ में बेल का शर्बत था। ब्रह्मचारी जी के साथ मुझे भी माँ के हाथ से पीने को मिला शर्बत। अब कहना शुरू किया उस तेजस्वी तंत्र साधक ने भौतिक स्थिति हो या हो आध्यात्मिक स्थिति दोनों स्थितियों में संकल्प की आवश्यकता है। बिना संकल्प के ध्यान, बिना संकल्प के मंत्र जप और बिना संकल्प के समाधि, सफल और सम्भव नहीं। संकल्प शक्ति विलक्षण और अमोघ होती है। मनः शक्ति, विचार शक्ति और इच्छा शक्ति इन तीनों शक्तियों के साथ संकल्प शक्ति भी है तो कार्य की सफलता में कोई भी सन्देह नहीं। तत्काल फल प्रदान होता है।

ब्रह्मचारी जी बोले– मनुष्य का कई अर्थों में उसके मन का ही जीवन है। जिसे हम शारीरिक घटना समझते हैं। वह भी गहरे में मानसिक घटना ही होती है। शरीर के तल पर जो भी रोग व्याधि आदि प्रकट होता है। उसका जन्म मन के तल पर काफी समय पहले ही हो चुका रहता है।

आपको ज्ञात होना चाहिए कि आज से सौ वर्ष पूर्व तक जितने भी रोग थे। वे शारीरिक थे शरीरजन्य थे। इस दीर्घकाल में रोगों के सम्बन्ध में जो खोजें हुई हैं और उन खोजों के आधार पर जो समझ और जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उतना ही रोगों का अनुपात, शारीरिक कम

होता गया और होता गया मानसिक अधिक। आज के शरीरवादी भी इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि चालीस प्रतिशत से अधिक रोग मानसिक हैं। जो रोग शारीरिक भी हैं। वह भी अधिक से अधिक मन से होते हैं प्रभावित। समझ लें कि एकमात्र 'मन' ही हमारे व्यक्तित्व का आधार बिन्दु है। उसी बिन्दु से हम जीते हैं उसी बिन्दु से हम मरते हैं और उसी बिन्दु से पड़ते हैं बीमार भी और इसीलिए संकल्प का बड़ा भारी मूल्य है। **सम्मोहन** तंत्र के अन्तर्गत कुछ अभिचार कर्म भी हैं। जिनमें एक सम्मोहन विद्या भी है। सम्मोहन दो प्रकार का होता है– मंत्रात्मक और ध्यानात्मक। अपने–अपने स्थान पर दोनों श्रम साध्य है। मंत्रात्मक सम्मोहन का संबंध दस महाविद्याओं में पीताम्बरा से समझना चाहिए। पीताम्बरा महाविद्या है। उनके बीजाक्षर को सिद्ध कर लेने के पश्चात् उस बीजाक्षर के साथ जिस नर–नारी का नाम संयुक्त कर अन्त में फट् स्वाहा का प्रयोग करता है और जप करता है तो निश्चय ही वह नर हो या नारी सम्मोहित होकर कर्ता के मनोनुकूल कार्य करने लगेगा वह। लेकिन सम्मोहित व्यक्ति या स्त्री को यह ज्ञात नहीं होगा कि वह सम्मोहित है। उससे कितना भी कहा जायेगा कि वह सम्मोहित होकर कार्य कर रहा है लेकिन वह मानेगा नहीं। क्योंकि वह एक प्रकार से अचेतन अवस्था में रहता है यानि अर्ध मूर्च्छित।

ध्यानात्मक सम्मोहन में मंत्र की नहीं केवल 'मन' की आवश्यकता पड़ती है। मन को त्राटक द्वारा एकाग्र करने का अभ्यास सम्मोहन को जन्म देता है। ऐसा व्यक्ति, जिस स्त्री या पुरुष को सम्मोहित करना होता है उसे लेटाकर उसके पूरे शरीर पर दोनों हाथ फेरता है और अपनी आँखों को उसकी आँखों पर स्थिर कर देता है। परिणामस्वरूप उस स्त्री या पुरुष का चेतन मन धीरे–धीरे निश्चेष्ट होने लग जाता है। सम्मोहित व्यक्ति का अर्थ केवल इतना ही है कि जिसका चेतन मन सो गया है और अचेतन मन जाग गया है। जितने सन्देह हैं। जितने भ्रम हैं और जितने अविश्वास हैं वे सब चेतन मन तक ही सीमित हैं। जिसका चेतन मन सो जाता है, वह सन्देह करना बन्द कर देता है। भ्रम और अविश्वास भी उत्पन्न नहीं होता है।

हम यदि मन को दस खण्डों में विभाजित करें तो एक खण्ड चेतन है और नौ खण्ड अचेतन है। हमारे मन के नौ हिस्से गहन अन्धकार में डूबे हुए होते हैं। एक हिस्सा जागृत है– चेतना का वही चेतन मन सन्देह करता है भ्रम करता है। अविश्वास करता है। विचार भी करता है और सोचता समझता भी है। क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, कपट आदि भी चेतन मन में ही उत्पन्न होते हैं। यदि चेतन मन सो जाय तो नौ खण्ड शेष रह जाते हैं जो अचेतन हैं। अचेतन मन में चेतन मन के कोई गुण, दोष नहीं हैं। वह केवल स्वीकार करता है सन्देह नहीं करता। वह पूर्णरूप से सकारात्मक है। सम्मोहन अवस्था का बस इतना ही अर्थ है कि चेतन मन सो गया और अचेतन मन सक्रिय हो गया। जो सन्देह करने वाला था वह निष्क्रिय हो गया। अब आपका निःसन्दिग्ध रूप से भाव करने वाला मन ही शेष रह गया है। इस तथ्य को ठीक से समझ लेना चाहिए कि शरीर के पास मन को अस्वीकार करने का कोई उपाय नहीं है। अगर मन ने किसी वस्तु को पूर्णरूप से स्वीकार कर लिया तो शरीर को उसका निश्चित रूप से अनुगमन करना ही पड़ेगा। इसके विपरीत भी हो सकता है और हो भी जाता है। वह इससे भी अधिक चमत्कार पूर्ण है कि सम्मोहित व्यक्ति के हाथ पर अंगारा आप रखें और कहें कि ठण्डा कंकड़ रखा है तो वह सम्मोहित व्यक्ति अंगारे को पकड़े बैठा रहेगा। न उसका हाथ जलेगा और न तो फफोला ही पड़ेगा। क्योंकि मन की स्वीकृति के बिना शरीर कुछ भी कर सकने में असमर्थ है। यह निश्चित है कि सम्मोहन का प्रयोग मन के संबंध में बड़े गहरे सत्यों को प्रकट कर देता है।

ब्रह्मचारी बोले– इसी रहस्यमय तथ्यगत सिद्धान्तों के आधार पर तंत्र ने तीन महत्वपूर्ण विद्याओं को दिया है जन्म। पहली है **आत्माकर्षणी विद्या,** दूसरी है **प्राणाकर्षणी विद्या** तीसरी है **मनोआकर्षणी विद्या।** आत्माकर्षणी विद्या के द्वारा अपनी आत्मा से उसके संस्कार के अनुकूल किसी भी व्यक्ति की आत्मा से स्थायी, अस्थायी रूप से संबंध स्थापित किया जा सकता है। सद्गुरु, योग्य शिष्य की आत्मा से संबंध बनाकर अपनी आत्मा के अनुकूल कर लेते हैं और उनकी आत्मा में जो भी

आध्यात्मिक ज्ञान का भण्डार भरा रहता है उसे शिष्य की आत्मा तत्काल स्वीकार कर लेती है। उस संबंध के माध्यम से प्राचीन आत्म ज्ञान, अध्यात्म ज्ञान, वेद, पुराण ज्ञान, शास्त्र ज्ञान आदि को इस आत्माकर्षणी विद्या द्वारा संस्कार सम्पन्न और योग्य व्यक्ति प्राप्त करते थे दिव्यपुरुषों से।

प्राणाकर्षणी भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। योग्य साधक जो पंच प्राणों से इच्छित को एक दूसरे में आयोजित करने की कला जानता है, वह अपने प्राण से इच्छित व्यक्ति के प्राण को प्रभावित कर उससे संबंध स्थापित कर लेता है और दोनों प्राण आपस में सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं तो उसके द्वारा साधक उस इच्छित व्यक्ति की मति–गति और गतिविधि को तत्काल जान लेता है। इतना ही नहीं वह व्यक्ति क्या कर चुका है। क्या कर रहा है और क्या करने वाला है? इनकी भी जानकारी तत्काल प्राप्त कर लेता है।

मनोआकर्षणी विद्या भी अपने आपमें श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण है। इस परम गुह्य विद्या के द्वारा साधक किसी के मन में क्या है? यह तत्काल जान लेता है। वह क्या करना चाहता है और आगे क्या करेगा। यह जान समझ लेता है। उसका चरित्र कैसा है? उसके जीवन में कौन–कौन सी घटनाएँ घटी हैं या भविष्य में घटने वाली हैं? इन सबका भी हो जाता है तत्काल ज्ञान। वर्तमान समय में वह व्यक्ति किस स्थिति में है? क्या कर रहा है और उसके मन में कौन सा विचार है और क्या भाव है? ये सब भी तत्काल जान समझ लेता है।

लगता है आप इन तीनों विद्याओं में पारंगत हैं यह सुनकर खूब हँसे ब्रह्मचारी जी और फिर बोले ऐसा ही समझो।

क्या उनके क्रियापक्ष का ज्ञान करा सकते हैं मुझे.....यदि योग्य समझे.....।

मेरा अनुरोध सुनकर मौन रहे कुछ क्षण तक ब्रह्मचारी जी फिर बोले– तुम अधिकारी तो हो लेकिन केवल दूसरी और तीसरी विद्या के..... और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। यथा समय हो जायेगी तुम्हे उपलब्ध विद्या।

क्या वे दोनों रहस्यमयी और महत्वपूर्ण विद्याएं मुझे उपलब्ध हुई? इस संबंध मौन रहना ही उचित है मेरा।

***

मैं इतना अवश्य कहूँगा कि वे तीनों विद्याएँ गहरे सम्मोहन पर ही आधारित है। सम्मोहन का प्रयोग मन के संबंध में बड़े–बड़े रहस्यमय सत्यों को प्रकट करता है। यह निश्चित है। मन में बारह वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं– इच्छा, कामना, वासना, ईर्ष्या, द्वेष, कपट, असत्यवाणी, अभिलाषा और आकांक्षा, मनोरथ, भावना और अन्त में संकल्प। संकल्प का उत्पन्न होना महत्वपूर्ण है। मन के संकल्प की बड़ी अद्‌भुत क्षमताएँ हैं। जो लोग जीवन में हारते हैं। उसमें परिस्थितियाँ कम होती है। उनके मन के हारने की स्वीकृति अधिक होती है। जो लोग जीवन में बराबर सफल होते जाते हैं। उन्नति करते जाते हैं और बढ़ते जाते हैं आगे उनकी असफलता में समाज संसार बहुत ही कम देता है सहयोग। सौ में से नब्बे अंश वे स्वयं ही जिम्मेदार होते हैं। ब्रह्मचारी जी बोले– जब कोई व्यक्ति नब्बे प्रतिशत हारने के लिए तैयार है तो दस प्रतिशत समाज व संसार उसको सहयोग न दे तो ज्यादती होगी। दस प्रतिशत समाज संसार उसका साथ देता है। इस संसार में जो लोग सफल होते चले जाते हैं। उनका भी नियम वही है। जो लोग हारते चले जाते हैं। उनका भी नियम वही है। जो लोग स्वस्थ हैं उनका भी नियम वही है। जो लोग अस्वस्थ हैं। उनका भी नियम वही है। इस जीवन में जो शान्त है। उनका भी नियम वही है। जो अशान्त है..... उनका भी नियम वही है।

साधक जीवन के सतत् प्रवाह से तभी परिचित होता है जब वह जन्म और मृत्यु को एक घटना के रूप में स्वीकार कर लेता है लेकिन यह तभी सम्भव है जब वह होशपूर्वक दोनों घटनाओं के बीच से गुजर जाय। यह होशपूर्वक कैसे सम्भव है।

मेरी इस जिज्ञासा के समाधान में ब्रह्मचारी जी ने कहा– आप क्या होना चाहते हैं? बहुत गहरे में आप वही हो जाते हैं। विचार वस्तुएँ बन

जाती हैं। विचार घटना बन जाती है। विचार व्यक्तित्व बन जाता है। तात्पर्य यह कि हम जहाँ जीते हैं, उस जीने में हम स्वयं ही बहुत गहरे में आधारभूत हैं। सारी बुनियादें हम ही रखते हैं। यदि यह सत्य विचार ग्रहण कर ले तो आपने जो पूछा है। वह आपकी समझ में आ जायेगा।

सबसे पहलीं बात तो यह है कि जबतक व्यक्ति मृत्यु के भय से मुक्त नहीं हो जाता और जबतक वह स्वेच्छा से मृत्यु में प्रवेश नहीं कर जाता। तबतक मृत्यु से भय बना रहेगा और मृत्यु के समय होश नहीं रहेगा उसे। एक बार मृत्यु आयेगी, लेकिन स्वेच्छा से नहीं होगी वह। स्वेच्छा के बिना आयेगी तो आपको बेहोशी की स्थिति में करना पड़ेगा प्रवेश मृत्यु में। वह आपकी विवशता होगी। जिस स्थान पर आपको विवश होकर जाना पड़ रहा है। उस समय आपकी आँखे बन्द हो जाती है और आप बेहोश हो जाते हैं तो उसमें आश्चर्य की बात क्या? लेकिन यह अनिवार्यता का बन्धन आवश्यक नहीं है। व्यक्ति जीवित रहते हुए पूरे होश में और बिना आँखे बन्द किए अपने आपको स्वेच्छा से मरते हुए देख सकता है। परिजनों स्वजनों को रोते कलपते भी देख सकता है। अपने शरीर को निश्चेष्ट और मृत पड़ा हुआ देख सकता है। पहली बार उसे इस बात का बोध होता है कि वह अलग है और शरीर उससे पूर्णरूप से अलग है। फिर यहीं से वह प्रश्न उठता है कि वह फिर कौन है? शरीर में रहते हुए यह प्रश्न कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकता। यदि उत्पन्न होता भी है तो उसका सटीक और सप्रमाण उत्तर नहीं प्राप्त हो सकता। समाधि क्या है? अपने आपको मृत अनुभव करना। अपने शरीर को अपने से अलग देखना। अपने अस्तित्व का सूक्ष्म शरीर में अनुभव करना।

वास्तव में सजग और स्वेच्छा मृत्यु बहुत अद्‌भुत है। बड़ी विचित्र है। एक ऐसा अनुभव होता है– जो शरीर में रहते हुए कदापि नहीं हो सकता। लोग जीने की इच्छा रखते हैं मरने की नहीं। कोई मरना नहीं चाहता। सभी जीना चाहते हैं। मरना तो लोगों की विवशता है। अनिवार्यता है। प्राकृतिक है। नियति है। लोग यह जानते हैं कि मरने के बाद लौटना तो असम्भव है। इसी कारण मरना नहीं चाहते। जीना चाहते हैं लेकिन योगी जीना भी चाहता है और मरना भी चाहता है। दोनों में यह स्वेच्छाचारी है। स्वेच्छा से जीता है और स्वेच्छा से मरता भी है और

स्वेच्छा से पुनः शरीर में वापस भी आता है। उसके स्वेच्छा के मूल में उसकी संकल्प शक्ति होती है। अपने संकल्प के बल पर स्वेच्छा से जबतक चाहे जी सकता है लेकिन मृत्यु अनिवार्य है। प्राकृतिक है नियति है इसलिए मृत्यु को वह स्वीकार करता है लेकिन होशपूर्वक सजग रहकर और पूर्ण चैतन्य अवस्था में। वह बराबर यह अनुभव करता रहता है कि शरीर छूट रहा है उससे और अब शरीर से हो रहा है अलग। फिर देखता है सामने पड़े हुए अपने मृत शरीर को। न वह प्रकृति के नियम का उल्लंघन करता है। न नियति के विपरीत जाता है और न तो मृत्यु की मर्यादा का ही करता है अपमान।

क्या मैं स्वेच्छा से शरीर छोड़कर उसे मृत देख सकता हूँ और स्वेच्छा से पुनः अपने पार्थिव शरीर में वापस लौट सकता हूँ? ब्रह्मचारी जी हँसे और बोले– स्वेच्छा की बात मत करिए। संकल्प की बात करिए। जबतक संकल्प शक्ति उपलब्ध नहीं हो। तबतक स्वेच्छा का प्रश्न ही नहीं उठता। मैं अपनी संकल्प शक्ति के बल पर अपनी स्वेच्छा से यह रहस्यमय अनुभव करा सकता हूँ आपको। लेकिन यह जान लेना आवश्यक है कि यह प्रयोग–योग के सर्वोत्तम प्रयोगों में से एक है। इसलिए उसके तथ्यगत सिद्धान्त को सर्वप्रथम समझ लेना आवश्यक है।

पहले आपको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि आपके शरीर में एक विलक्षण और रहस्यमय यंत्र है और इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं और उस यंत्र को संचालित करता है एकमात्र प्राण। शारीरिक विद्युत है। शरीर यंत्र के दो भाग हैं स्वतंत्र भाग और परतंत्र भाग। आयुर्वेद में इनको कहते है– स्वतंत्र तत्रिंका तंत्र और परतंत्र तत्रिंका तंत्र। स्वतंत्र भाग प्रकृति के अधीन है। .....और परतंत्र भाग आपके स्वेच्छा पर है निर्भर। उदाहरण के रूप में इसे इस प्रकार समझा जा सकता है। आप अपना हाथ पैर आदि अंगों को अपनी स्वेच्छा से हिलाते डुलाते हैं। स्वेच्छा से उनसे काम भी लेते हैं लेकिन उन अंगों के भीतर नसों में जो रक्त का प्रवाह निरन्तर हो रहा है, वह आपकी स्वेच्छा से नहीं हो रहा है। वह बाहर है आपकी स्वेच्छा से नहीं हो रहा है। वह बाहर है आपकी स्वेच्छा के। वह स्वतंत्र है अपने आपमें। आप अपनी स्वेच्छा से रोक नहीं सकते। हृदय की धड़कन भी अपने आपमें स्वतंत्र है। स्वयं धड़क रहा

है। आप अपनी स्वेच्छा से रोक सकते है। नहीं, कभी नहीं। आपके पेट में पाचन क्रिया भी स्वतंत्र है वह भी अपने आप हो रही है। उस पर भी आपका नियंत्रण नहीं है। आप स्वेच्छा से रोक नहीं सकते उसकी क्रिया को। शरीर में प्राण का आवागमन भी अपने आपमें स्वतंत्र है। उस पर भी आपका अधिकार नहीं। आप अपनी स्वेच्छा से न उसे रोक सकते हैं और न तो संचालित कर सकते हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो शरीर पर एक प्रकार से आपका कोई अधिकर नहीं है। यदि अधिकार होता तो शरीर को हमेशा युवा रखते वृद्ध न होने देते। सोचिए, जन्म और मृत्यु पर फिर कैसे अधिकार हो सकता है आपका। स्वेच्छा से क्या आप जन्म ले सकते हैं? स्वेच्छा से क्या आप मर सकते हैं? जब आप स्वेच्छा से अपने जीवन को जी भी नहीं सकते तो अन्य बातें कैसे है सम्भव आपके लिए। योग की जितनी भी आन्तरिक क्रियापरक साधना है। उनमें एक यह भी है कि संकल्प द्वारा स्वेच्छा से प्रकृति द्वारा संचालित स्वतंत्र तत्रिंका तंत्र पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना। इस प्रसंग में यहां यह बतला देना आवश्यक है कि तंत्र में तीन भाव हैं– पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव। पशुभाव वाले वे लोग हैं जो पूर्णरूप से भौतिकता के सागर में आकण्ठ डूबे हुए है। जिनके लिए केवल शरीर ही महत्वपूर्ण है। वीरभाव से तात्पर्य है– जिसने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लिया है। इसी प्रकार दिव्यभाव का तात्पर्य है कि जिसने अपने जन्म और अपनी मृत्यु पर अधिकार प्राप्त कर लिया है। जब इच्छा होगी जन्म लेंगे और जब इच्छा होगी मरेंगे।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि जन्म के लिए हम साधारणतः निर्णायक नहीं होते। यदि निर्णायक होते भी हैं तो उस अवस्था में जब हमारा अस्तित्व अचेतन रहता है। तात्पर्य यह कि हमारा अचेतन निर्णय होता है और यही कारण है कि हमें इस बात का पता ही नहीं रहता कि हमने जन्म क्यों लिया? किसलिए जन्म लिया और कहाँ जन्म लिया लेकिन एक अर्थ में मृत्यु एक ऐसा अवसर है जो अपने आपमें कौतूहल पूर्ण, आश्चर्यजनक और विलक्षण है। एक अभूतपूर्व घटना है मृत्यु और अद्भुत भी।

लेकिन हम मृत्यु का निर्णय कर सकते हैं कि हम कैसे मरे? कहाँ मरे? क्यों मरे? मृत्यु का ढंग तो हम निश्चित ही कर सकते हैं। योग

का कहना है कि जो साधक मृत्यु का प्रयोग करेगा। वह अपने अगले जन्म का भी निर्णायक हो जायेगा। कहाँ और कब जन्म लेना होगा उसे? किस जाति में, किस समाज में और किस धर्म में? क्योंकि जिसने स्वेच्छा से मृत्यु की व्यवस्था कर ली, उसके लिए प्रकृति उसके जन्म को स्वेच्छा से चुनने का भी अवसर देती है। ये उसी के लिए सम्भव है जो योग की उच्च सिद्धावस्था को उपलब्ध है। वह शान से होशपूर्वक और पूर्ण चैतन्य अवस्था में मृत्यु में प्रवेश करता है और उसी शान से होशपूर्वक पूर्ण चैतन्य अवस्था में अपनी स्वेच्छा से जन्म भी लेता है। जन्म और मृत्यु दोनों उसके लिए सहज होती है। स्वाभाविक रूप से दोनों घटनाओं को स्वीकार कर लेता है और आगे की यात्रा पर पड़ता है निकल। यहाँ इस प्रसंग में यह भी समझ लेना चाहिए कि अपने अगले जन्म का निर्णय वही व्यक्ति कर सकता है। जिसने स्वेच्छा से मृत्यु का वरण किया है और जिसने जीते जी मृत्यु का अनुभव कर पुनः शरीर में वापस लौट आया है। स्वेच्छा से आत्महत्या करने वाले स्वेच्छा से आत्मघात करने वाले साधारण लोगों को प्रकृति स्वेच्छा से जन्म लेने का अवसर नहीं देती है। आत्महत्या करने वाला व्यक्ति स्वेच्छा से आत्मघात तो कर लेता है लेकिन मरता है बेहोश होकर। यहाँ इस प्रसंग में यह भी समझ लेना चाहिए कि अपने अगले जन्म का निर्णय वही व्यक्ति कर सकता है जिसने स्वेच्छा से संकल्प के साथ मृत्यु का वरण किया है और जिसने जीते जी मृत्यु का अनुभव कर पुनः अपने शरीर में वापस लौट आया है। स्वेच्छा से आत्महत्या करने वाले और स्वेच्छा से आत्मघात करने वाले साधारण लोगों को प्रकृति स्वेच्छा से जन्म लेने का अवसर नहीं देती। आत्महत्या करने वाला व्यक्ति स्वेच्छा से आत्मघात तो कर लेता है लेकिन मरता है बेहोश होकर जानते हैं आप स्वेच्छा तो है लेकिन दृढ़ संकल्प शक्ति नहीं है उसके पास।

मैंने कहा– स्वेच्छा तो ठीक है लेकिन संकल्प का जहाँ तक प्रश्न है। वह कैसे हो सिद्ध? ब्रह्मचारी जी समाधान करते हुए बोले– पहले स्वेच्छा पर विचार करिये। आत्महत्या करने वाले व्यक्ति की जो स्वेच्छा होती है उसके पीछे कोई न कोई कारण होता है। दुःख, कष्ट, पीड़ा अथवा कोई दुरूह और जटिल समस्या और वह समस्या कोई भी हो

सकती है इसलिए उसे 'स्वेच्छा' भी कहना एक दृष्टि से उचित न होगा 'प्रेरणा' अवश्य कह सकते हैं आप। असीम शारीरिक या मानसिक कष्ट, अभावग्रस्तता, कोई आन्तरिक वेदना या दुःख से प्रेरित होकर व्यक्ति प्रायः आत्महत्या करता है। जिसे कायरता भी आप कह सकते हैं। कोई कारण या कोई प्रेरणा अवश्य होता है आत्महत्या की पृष्ठभूमि में।

योगी की स्वेच्छा की पृष्ठभूमि में भी एक कारण विद्यमान रहता है और वह कारण होता है जीते जी मृत्यु का अनुभव करना। ऐसी मृत्यु को योग कहता है, आयोजित मृत्यु! लेकिन आयोजित मृत्यु तभी सम्भव है जब योगी ध्यान की चरमसीमा पर पहुँच शरीर से अलग होने का संकल्प करता है और संकल्प करते ही स्थूल शरीर से उसकी आत्मा सूक्ष्म शरीर के माध्यम से बाहर निकल आती है। उस अवस्था में एक चांदी जैसे तार से पार्थिव शरीर का संबंध सूक्ष्म शरीर से बराबर बना रहता है। वह रजत सूत्र स्थूल शरीर की नाभि से निकली हुई होती है। सूक्ष्म शरीरधारी योगी कहीं भी इच्छानुसार विचरण कर सकता है। देश–देशान्तरों की तीर्थो की भी यात्रा कर सकता है। किसी भी व्यक्ति के सूक्ष्म शरीर से सम्पर्क स्थापित कर उसके गुण, दोष, भाव विचार आदि को तत्काल जान समझ लेता है। उसका आन्तरिक व्यक्तित्व कैसा है। यह समझते देर नहीं लगती उसे। इन्हीं सब कारणों से योगीगण मानव समाज से प्रायः अलग ही रहने का प्रयास करते हैं। जल्दी किसी व्यक्ति से संबंध नहीं बनाते इसीलिए कि उनकी आध्यात्मिक ऊर्जा का क्षय होने की आशंका रहती है। ऊर्जा का क्षय न हो, इसके लिए योगीगण अत्यधिक सतर्क रहते हैं। एकान्त में रहते हैं या किसी पर्वतीय स्थान पर चले जाते हैं और वहाँ निवास करते हैं।

क्या आपने आयोजित मृत्यु का अनुभव किया है? मेरा इस प्रकार एकाएक प्रश्न सुनकर चकित भाव से मेरी ओर देखा ब्रह्मचारी जी ने और फिर मुस्कुराते हुए बोले– हाँ! किया है अनुभव मैंने। एक बार नहीं कई बार। क्या इस संबंध में कुछ जानने समझने की योग्यता रखता हूँ मैं?

क्यों नहीं। योग्य न होते तो इतनी बातें क्यों करता मैं तुमसे! फिर हम दोनों एक साथ हँस पड़े। हँस लेने के बाद ब्रह्मचारी जी ने कहना

शुरू किया– स्पर्श दीक्षा देने के बाद गुरुदेव ने मुझे प्राणतोषिणी दीक्षा प्रदान की। कुछ समय के पश्चात् उसके प्रभाव से मेरा मन और मेरा प्राण सध गये और दोनों में सामञ्जस्य स्थापित हो गया। जिसके परिणामस्वरूप ध्यान की गहन अवस्था में प्रवेश कर गयी मेरी आत्मा। निश्चय ही वह समाधि की कोई उच्च अवस्था थी। गुरुदेव के आदेशानुसार उस समय मैंने शरीर से अलग होने का संकल्प किया और संकल्प करते ही मैं अपने पार्थिव शरीर से तत्काल अलग हो गया। अब मैं अपने सूक्ष्म शरीर में था। बड़ा ही विचित्र और अद्‌भुत अनुभव हो रहा था मुझे उस समय। उस समय मुझे घोर आश्चर्य हुआ– जब मैंने अपने पार्थिव शरीर के भीतर हल्का सा प्रकाश देखा। मतलब कि मेरा पूरा शरीर प्रकाशमय था और उसी प्रकाश में मैंने अपने हृदय को धड़कते हुए श्वास प्रश्वास को बाहर निकलते, भीतर जाते हुए, नाड़ियों में रक्त को प्रभावित होते हुए, फेफड़े को अपना काम करते हुए, लीवर और आंत को अपने–अपने स्थान पर घूमते हुए देखा। यहाँ तक कि मस्तिष्क कोशिकाओं को जुगुनुओं की तरह जलते बुझते हुए भी देखा मैंने। इतना ही नहीं बन्धु! मैंने उन रहस्यमयी कोशिकाओं में से विद्युत चुम्बकीय तरंगों को विकीर्ण होते हुए देखा और इतना ही नहीं उसी प्रकार ब्रह्माण्डीय विद्युत चुम्बकीय तरंगों को ग्रहण करते हुए भी देखा। मानव शरीर से उन तरंगों द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संबंध है। यह समझते देर न लगी मुझे। निश्चय ही योगीगण उन्हीं रहस्यमयी तरंगों के माध्यम से लोक–लोकान्तरों से सूक्ष्म शरीर द्वारा संबंध स्थापित करते हैं इसमें सन्देह नहीं। लोग शरीर को बाहर से जानते हैं भीतर से नहीं। मैंने तो शरीर की भीतरी अवस्था देखी थी। आश्चर्य हो रहा था मुझे उस समय अपने पार्थिव शरीर की भीतरी क्रियाकलापों को देखकर। सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि शरीर के प्रति जो मोह था और था आकर्षण वह एक प्रकार से समाप्त हो चुका था। शरीर के भीतर पुनः प्रवेश करने पर ऐसा लगा कि जिस स्वतंत्रता का और जिस उन्मुक्तता की अनुभूति मेरी आत्मा अबतक कर रही थी, वह अब नहीं है। ब्रह्मचारी जी ने कहा, आपको इस प्रसंग में एक अपना विचित्र और अद्‌भुत अनुभव सुनाता हूँ मैं। पहाड़ों पर, ऊँचाईयों पर और हिमालय की गुफाओं, कन्दराओं में क्यों

जाते हैं योगी और साधकगण साधना के लिए। इसका रहस्यमय वैज्ञानिक कारण है और वह यह कि भूमि पर बैठकर ध्यान करने से शरीर की शक्ति प्रबल हो जाती है इसलिए कि शरीर का निर्माण पृथ्वी तत्व से होता है। उसमें अत्यधिक चुम्बकीय गुरुत्वाकर्षण शक्ति होती है। जितनी पृथ्वी से दूरी बढ़ती है शरीर की, उतना ही शरीर तत्व का प्रभाव भीतर कम होता चला जाता है इसलिए मैं नित्य रात्रि में एक ऊँचे वृक्ष की डाल पर बैठकर ध्यान करता था। डाल पर बैठने की व्यवस्था कर ली थी मैंने। एक रात ध्यान की अत्यन्त प्रगाढ़ावस्था में चला गया मैं। मुझे इस बात का पता ही न चला कि कब और किस समय नीचे जमीन पर गिर पड़ा और जब जमीन पर गिर पड़ा शरीर। तब ये एक बार चौंक–सा पड़ा। देखा अरे! यह क्या हो गया ?

मैं तो डाल पर ही था और शरीर जमीन पर पड़ा था। अन्धेरे में भी बिल्कुल स्पष्ट रूप से अपने शरीर को नीचे जमीन पर गिरा हुआ देख रहा था मैं। घोर आश्चर्य हो रहा था मुझे उस समय। मैं ऊपर और शरीर नीचे? ध्यान से देखा। एक अत्यन्त चमकदार शुभ्र रेखा मेरे शरीर की नाभि से निकल कर जुड़ी हुई थी मुझसे। बाद में पता चला कि योग की भाषा में उसे रजतरज्जु कहते हैं। सब कुछ समझ के बाहर था। हत्प्रभ सा था मैं। अब क्या होगा? शरीर में कैसे वापस लौटूँगा मैं। उस अवस्था में अपने मस्तिष्क का बोध अपने सूक्ष्म शरीर में कर रहा था पहली बार सूक्ष्म शरीर का अनुभव हुआ था मुझे साधना काल में यह अवस्था कितनी देर तक रही होगी यह बतलाना सम्भव नहीं। लेकिन बन्धु! बाद में एक अपूर्व अनुभव हुआ मुझे। पहली बार अपने शरीर को बाहर से देखने पर उसके प्रति जो मोह था और था आकर्षण वह समाप्त हो गया एकबारगी। उसी समय और उसी क्षण। इतना ही नहीं, मृत्यु भी समाप्त हो गयी उसी के साथ ही साथ। क्योंकि उस अवस्था में एक और शरीर का बोध कर रहा था मैं। जो पार्थिव शरीर से भिन्न था और जिस शरीर का बोध मेरी आत्मा कर रही थी वह था मेरा सूक्ष्म शरीर। पार्थिव शरीर से अलग रहकर कितने समय तक मैं रहा सूक्ष्म शरीर में बतलाया नहीं जा सकता। लेकिन जितने समय तक रहा उतने समय तक एक विशेष प्रकार की स्वतन्त्रता का और साथ ही एक विशेष

प्रकार के अनर्वचनीय आनन्द का सुखद अनुभव कर रहा था मैं इसमें सन्देह नहीं।

सच कहता हूँ बन्धु! ब्रह्मचारी जी थोड़ा विह्वल होकर बोले– मनुष्य को एक बार भी अपने स्थूल शरीर से अलग होकर अपने सूक्ष्म शरीर में कुछ समय तक रहने का अनुभव हो जाय और उसमें रहकर मेरी तरह अपने पार्थिव शरीर को अपने से अलग देखने का अवसर मिल जाय तो निश्चय ही उसका अपने शरीर के प्रति मोह माया और आकर्षण हमेशा–हमेशा के लिए समाप्त हो जायेगा और इतना ही नहीं, उसके लिए मृत्यु भी नगण्य हो जायेगी। कोई अर्थ नहीं रखेगी वह। यह निश्चित है। सवेरा हो गया था अबतक। चारो ओर फैल रहा था उजाला। अभी तक पेड़ पर ही बैठा था और नीचे जमीन पर पड़े निश्चेष्ट अपने शरीर को विषण्ण भाव से देख रहा था मैं। जिस शरीर को लेकर मैं अपने व्यक्तित्व का बोध कर रहा था और समझ रहा था कि शरीर ही सब कुछ है और शरीर ही 'मैं' हूँ उस शरीर को अपने से अलग देख कर आश्चर्यचकित था मैं। वैराग्य और अनाशक्त भाव से भर उठा था मेरा आन्तर और तभी एक अद्‌भुत घटना का अनुभव हुआ मुझे। दो स्त्रियाँ बाल्टी में दूध लेकर वहाँ से निकली। उनकी दृष्टि मेरे शरीर पर पड़ी। फिर दोनों बैठकर मेरे शरीर को टटोला और पूरी तरह टटोलने के बाद एक साथ दोनों औरतें बोली– बेचारा मर गया है। जिस समय वे दोनों औरते मेरे शरीर को छू कर देख रही थी। उसी समय मुझे एक बड़ा सा झटका लगा। बिजली जैसा था वह झटका। उसी क्षण किसी तीव्र आकर्षण के वशीभूत होकर अपने पार्थिव शरीर में लौट आया मैं।

योग–तांत्रिक साधना भूमि में 'स्त्री' की आवश्यकता क्यों? ब्रह्मचारी जी बोले–उस रहस्यमयी घटना के पश्चात् गुरुदेव ने प्राणतोषिणी दीक्षा दी मुझे।

स्त्री के स्पर्श मात्र से आप वापस लौट आये इसका रहस्य समझ में नहीं आया। मेरी इस जिज्ञासा के समाधान में ब्रह्मचारी जी ने महत्वपूर्ण बातें बतलायी। उन्होंने कहा– स्त्री और पुरुष के शरीर में एक विशेष प्रकार का रासायनिक द्रव होता है। जब स्त्री पुरुष एक दूसरे को स्पर्श विशेष

रूप से करते हैं, उस समय दोनों के सूक्ष्म शरीर में उस रासायनिक द्रव में कम्पन और कम्पन के साथ परिवर्तन होने लगता है। जिसके फलस्वरूप सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर में और अधिक सामञ्जस्य स्थापित हो जाता है। एक और महत्वपूर्ण बात है और वह यह कि किसी कारणवश स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर अलग हो गया होता है अथवा कहीं दूर चला गया होता है तो उस अवस्था में यदि स्त्री, पुरुष का विशेष रूप से स्पर्श कर दे तो पुरुष का सूक्ष्म शरीर तत्काल स्थूल शरीर से सामञ्जस्य स्थापित कर लेगा। इसी प्रकार किसी स्त्री का सूक्ष्म शरीर अलग हो गया हो तो पुरुष के स्पर्श से उसका सूक्ष्म शरीर पार्थिव शरीर से तत्काल संबंध स्थापित कर लेगा। अनजाने में यदि वह स्त्री मेरे शरीर का स्पर्श न करती तो न जाने कबतक रहता मैं उस स्थिति में बतलाया नहीं जा सकता। सूक्ष्म शरीर के वापस लौटने की एक निश्चित अवधि होती है। यदि वह अवधि समाप्त हो जाती तो न जाने कहाँ–कहाँ भटकता मैं सूक्ष्म शरीर में, बतलाया नहीं जा सकता और यह भी बतलाया नहीं जा सकता कि कब और कहाँ जन्म लेती मेरी आत्मा।

समाधि : सूक्ष्म शरीर : मृत्यु के पार– योग तंत्र के अनुभवी विद्वान थे ब्रह्मचारी जी इसमें सन्देह नहीं। मेरी अवस्था तो उस समय अल्प थी, लेकिन पूर्व जन्म के संस्कार के उदय होने के कारण वे जो कुछ भी बतलाते थे, उसे समझने और हृदयंगम करने में देर न लगती थी मुझे।

ब्रह्मचारी जी बोले– योगतांत्रिक साधना भूमि में शुरू से ही स्त्री का सहयोग किसी न किसी रूप में अनिवार्य रहा है पत्नी रूप में या अन्य किसी रूप में। वैदिक युग में ऋषि पत्नियों का सर्वाधिक महत्व था। इसलिए कि ऋषि तपस्या करते थे और उसी अवस्था में कभी–कभी गहन समाधि में भी प्रवेश कर जाते थे। समयानुसार जब उनका सूक्ष्म शरीर वापस लौट कर नहीं आता था तो उनकी पत्नी या अन्य कोई योग दीक्षित स्त्री उनके किसी विशेष अंग का स्पर्श करती थी। जिसका तत्काल परिणाम यह होता था कि ऋषि का सूक्ष्म शरीर वापस लौट कर स्थूल शरीर से अपना सामञ्जस्य स्थापित कर लेता था। इससे स्पष्ट होता है कि उस काल में कोई रहस्यमयी यौगिक क्रिया का ज्ञान था। जिसकी सहायता से लौट आता था सूक्ष्म शरीर। इस प्रसंग में यह

बतला देना आवश्यक है कि महाभारत की युद्धाग्नि में भारत की प्राचीन विद्यायें, साधना पद्धतियाँ, प्राचीन सभ्यता संस्कृति, कला और साहित्य जलकर भस्म हो गयी। सम्भवतः वह रहस्यमयी यौगिक क्रिया के सिद्धान्त भी भस्म हो गये हों। इस संबंध में कहा नहीं जा सकता। लेकिन यह तो निश्चित है कि आज भी उच्चकोटि के गुप्त रूप से निवास करने वाले परमसिद्ध योगियों के पास सुरक्षित है वह रहस्यमयी यौगिक क्रिया इसमें सन्देह नहीं।

महाभारत काल के पश्चात् जो युग आया। निश्चय ही वह आध्यात्मिक क्रान्ति का युग था, उसी स्मरणीय युग में योग और तंत्र से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण और उपादेय ग्रन्थों की रचना हुई। सभी प्रकार के देवी–देवताओं से संबंधित उपासना पद्धतियों की भी हुई रचना। योग और तंत्र की गुह्य गोपनीय साधनाओं के आधार पर अनेक सम्प्रदायों का भी हुआ जन्म। इतना ही नहीं, नाना प्रकार की मानवेतर शक्ति सम्पन्न दुर्लभ योगतांत्रिक सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए सात्विक, राजसी और तामसिक क्रियाओं, अनुष्ठानों और साथ ही विभिन्न प्रकार के विधि–विधानों का भी हुआ आविर्भाव। मानेवत्तर शक्ति प्राप्त करने के लिए नरबलि, पशुबलि आदि बलियों का भी सूत्रपात हुआ उसी कालावधि में।

जैसे तंत्र साधना अपने उच्च शिखर पर थी उसी प्रकार योग साधना भी थी उस समय उच्च शिखर पर। 'समाधि' योग की एक उच्चतम् उपलब्धि है। उस काल में योगीगण समाधि की अवस्था में संकल्प के अनुसार अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा इच्छानुसार विचरण करते थे। कभी–कभी भौतिक जगत के अतिरिक्त लोक–लोकान्तरों में भी कर जाते थे प्रवेश। उद्देश्य होता था ज्ञानार्जन। कुछ ऐसे भी योगी होते थे– जिनका सूक्ष्म शरीर मर्यादा भंग कर किसी ऐसे लोक में भी चला जाता था। जहाँ से वापस लौटना एक प्रकार से असम्भव ही होता था। यदि संयोगवश कभी लौट भी आया तो उस समय तक उस योगी की पार्थिव काया इस योग्य नहीं रह जाती थी कि उसमें पुनः सूक्ष्म शरीर प्रवेश कर सके। विवश होकर सूक्ष्म शरीरधारी योगात्मा अपने लिए योग्य गर्भ की खोज

में भटकने लगती थी। उस विकट अवस्था में सद्गुरु का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त होता था। उसे सद्गुरु अपने शिष्य के लिए योग्य गर्भ का चुनाव करते थे और जब शिष्य का पुनर्जन्म हो जाता था तो उसके शिशु काल में अगोचर रूप से शक्तिपात दीक्षा प्रदान करते थे सद्गुरु। जिसके परिणामस्वरूप शिष्य की पूर्व आध्यात्मिक जीवन की स्मृति तत्काल जागृत हो उठती थी और उसी आधार पर यथासमय अगली साधना यात्रा प्रारम्भ कर देता है वह। ऐसे योगी साधकों को जानना समझना अत्यन्त कठिन कार्य है। समाज परिवार आदि के बीच रहते हुए भी अपनी वास्तविकता को सदैव छिपाये रख कर अपने साधना मार्ग पर बराबर अग्रसर होते रहते हैं। कभीकदा आवश्यकता पड़ने पर सद्गुरु उन्हें उचित निर्देशन और मार्गदर्शन करते रहते हैं अदृश्य रूप से। ऐसे अप्रच्छन्न योगी और साधकों की गतिविधि अथवा मतिगति विरला ही कोई समझ सकता है और पहचान सकता है। समाज परिवार आदि के प्रति सदैव अनाशक्त रहते हैं और रहते हैं पूर्णरूप से निरपेक्ष। अन्तर्मुखी रहना तो उनका स्वभाव होता है अथवा कोई योगी या साधक जब यह देखता है कि परिवार और उसके गृहस्थ जीवन के कारण उसके साधना मार्ग में विघ्न उपस्थित हो रहा है तो वह बिना किसी को कुछ बतलाए शान्त और एकान्त स्थान की खोज में निकल पड़ता है।

समाधि सोलह प्रकार की होती है जिनमें से एक है सहज समाधि। जो योगी ध्यान की प्रगाढ़ अवस्था को उपलब्ध हो चुका है वह कुछ समय के लिए सहज भाव से एक ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है जिसे योगीगण सहज समाधि कहते हैं। इस समाधि का न कोई समय है और न तो है कोई अवधि। वास्तव में यह समाधि आत्मा के विश्राम के लिए और मन को स्थिर करने के लिए है। लेकिन सबसे बड़ी बात तो यह है कि चेतन मन तो स्थिर हो जाता है। मगर उसके स्थिर होते ही अवचेतन मन सक्रिय हो उठता है और उसका तादात्म्य हो जाता है स्थापित सूक्ष्म शरीर से। आप तो जानते ही हो कि अवचेतन मन, ज्ञान का भण्डार है। त्रिकाल का ज्ञाता है। उसकी सीमा में सब कुछ है जो बाहर नहीं है। सहज समाधि अवस्था प्राप्त योगी अवचेतन मन से इच्छानुसार लाभ उठा सकता है।

कैसा और किस प्रकार का उठा सकता है लाभ –मैंने प्रश्न किया।

ब्रह्मचारी जी बोले अवचेतन मन की सहायता से पहली बात तो यह है कि असम्भव से असम्भव बात को तत्काल जान समझ सकता है। लेकिन इस कार्य में उसकी ऊर्जा अधिक व्यय होती है इसलिए इस कार्य को बहुत ही कम करता है। इस अवस्था में पश्यन्ति भूमि उसका सहयोग देती है।

ऐसा योगी तत्काल किसी के मन की बात जान सकता है। तीनों काल में किसी भी प्रकार की घटना को घटित होते हुए चित्र रूप में पश्यन्ति के चित्रपट पर देख सकता है उसी चित्रपट पर दूरस्थ किसी भी प्रकार के दृश्य को भी देख सकता है। हजारों मील की दूरी पर बैठे किसी भी व्यक्ति के विचार भाव और मनःस्थिति को जान समझ सकता है। किसके जीवन में कौन सी घटना घटित है और आगे कौन सी घटना घटने वाली है। उसे पश्यन्ति के चित्रपट पर सहज रूप से देख लेता है वह। बस उसे आँखे बन्द कर उस सहज समाधि की अवस्था में प्रवेश करने की देर है। फिर तो सब कुछ उसके सामने। दोपहर हो चुकी थी। प्रसंग ऐसा था कि समय का ज्ञान ही न रहा किसी को उसी समय सुभगा आ गयी। पल्लवी भी साथ थी। अब थोड़ी मोटी हो गयी थी वह। उस दिन उसके लावण्यमय चेहरे पर पहली बार गुलाब का फूल खिला हुआ देखा मैंने। पता चला कि पल्लवी की शादी पक्की हो गयी है। वर अच्छा है। रेलवे में बाबू है। सुभगा माँ ने ही बतलाया ये सब। सुनकर लोग प्रसन्न हो उठे। पल्लवी लजा गयी। उसके गाल लाल हो उठे। मैंने स्निग्ध भाव से देखा। आँख नीची कर ली उसने। भावाविष्ट होकर फिर लिपट गयी मुझसे भैय्या.....।

आप तो रहेंगे न! शादी..... में।

हाँ! पल्लवी। पीठ पर हाथ फेरते हुए उत्तर दिया मैंने। तुम्हारा छोटा भाई क्यों नहीं रहेगा अपनी बहन की शादी में।

सुभगा माँ मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कोमल स्वर में बोली– कब तक रहेगा तू! अगले महीने ही शादी है पल्लवी की। रहेगा न तू। क्या बोलता मैं! बाबा की ओर देखते हुए बोला उनकी इच्छा पर निर्भर है।

कुछ भी हो! रहना ही पड़ेगा। ठीक है! माँ! जैसी आपकी आज्ञा। मेरी आँखे छलछला आयी। मातृरूपा सुभगा, जगजननी रूपा मणिमाला। दो–दो माँ के आँचल की छाया कितना भाग्यशाली था मैं और सबसे ऊपर महामाया का स्नेह सिंचित अभयहस्त। थोड़ी देर ठहर कर तारा माँ का दर्शन करने के बाद सभी लोग चले गये। सांझ घिरने लगी थी। सांय–सांय करने लगा श्मशान का वातावरण। सामने वकुल का पेड़ था। उसी के नीचे पड़े पत्थर पर लेट गया था मैं। शायद घर परिवार के बारे में ही सोच रहा था मेरा मन। पूरे दो साल हो गये थे घर परिवार छोड़े। लोग क्या सोचते होंगे। भाग गया कहीं। पढ़ता लिखता तो था नहीं। पागलों की तरह भटकता होगा कहीं। हाँ ममता से डूबा हुआ और स्नेह से भरा हुआ एक हृदय अवश्य था मेरे परिवार में और वह करुणामय हृदय था तुलसी बुआ का। निश्चय ही वह मेरे वियोग में रोती कलपती होगी– कहाँ होगा? कैसे होगा? कहाँ रहता होगा? क्या खाता पीता होगा। कपड़ा भी तो नहीं ले गया है। आँखे गीली हो गयी मेरी और तभी ब्रह्मचारी जी आ गये मेरे फैले हुए पैर के तलवे को ध्यान से देखने लगे महाशय आश्चर्य हुआ मुझे। क्या देख रहे हैं मेरे पैर के तलवे में और तभी अपना हाथ ऊपर उठा कर अः हा! कहा उन्होंने! फिर बोले– अरे बन्धु आपके पैरों में तो भगवान शिव का त्रिशूल बना हुआ है। एक में नहीं दोनों में। भोलेनाथ का जो स्वभाव है वह स्वभाव तो आपका होगा ही। इसके अलावा आप हिमालय की यात्रा भी करोगे। छोटी–मोटी नहीं लम्बी हिमयात्रा। जहाँ साक्षात् शंकर और पार्वती निवास करते हैं।

यह सुनकर हँस पड़ा मैं। उठकर स्वयं में देखने लगा अपना तलवा। ब्रह्मचारी जी का कहना सत्य था। दोनों पैरों में स्पष्ट और गहरे थे त्रिशूल के चिन्ह। कहने की आवश्यकता नहीं, ब्रह्मचारी जी की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई जिसका परिणाम है मेरी पुस्तक **तीसरा नेत्र**।

***

दो चार दिन तक सत्संग नहीं हुआ। ब्रह्मचारी जी अपनी कोई विशेष साधना में थे। मदिरापान अधिक करने लगे थे महाशय। तांत्रिक जो थे मैं ही रामपुर जाकर मदिरा की व्यवस्था करता था उनके लिए।

एक दिन व्यवस्था करके लौटा तो ब्रह्मचारी जी को एक महिला से बातें करते हुए देखा मैंने। देखने में भैरवी लगती थी वह। आयु चालीस के लगभग रही होगी। गौरांग शरीर पर लाल रंग का रेशमी वस्त्र खुले, उन्मुक्त केश, गले बहुत सारी मालाएँ, चौड़े मस्तक पर लाल सिन्दूर का गोल टीका, चेहरे पर क्रूरता का स्थायी भाव, लेकिन नेत्रों में करुणा दया, कृपा आदि का मिलाजुला प्रभाव था। बगल में सर्वोदयी झोला लटक रहा था और एक हाथ में चमचमाता हुआ त्रिशूल था। व्यक्तित्व तो देखने में भयानक था लेकिन स्वभाव था मधुर। नाम था कंकाली माँ।

महाभैरवी कंकाली माँ- सुना है कि आसाम में आश्रम है कंकाली माँ का। सिद्ध है। कई प्रकार की तांत्रिक सिद्धियाँ उपलब्ध है उन्हें। ब्रह्मचारी जी के साथ साधना के निमित्त आयी थी कंकाली माँ। चार–पाँच दिनों के बाद वक्रेश्वर के नौमुण्डी आसन पर अमावस्या की महारात्रि में शुरू होने वाली थी ब्रह्मचारी जी की तांत्रिक साधना। सोचने लगा... कंकाली माँ के आ जाने से अब समाधि का जो प्रसंग चल रहा था। वह अधूरा ही रह जायेगा लेकिन ऐसा हुआ नहीं। मेरा सोचना भ्रमपूर्ण सिद्ध हुआ। दूसरे दिन ही समाधि से संबंधित चल पड़ा प्रसंग।

समाधि ध्यान की चरम प्रगाढ़ अवस्था है। इस अवस्था में स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर अलग हो जाता है। दोनों का संबंध रजतरज्जु द्वारा बराबर बना रहता है। भले ही सूक्ष्म शरीर हजारों मील दूर चला जाय लेकिन रजतरज्जु द्वारा उसका संबंध बराबर स्थूल शरीर से बना रहता है। शरीर का मुख्य केन्द्र नाभि है। उसी से जुड़ा रहता है। केवल भौतिक जगत में ही नहीं, अन्य लोक–लोकान्तरों में भी भ्रमण करते हैं ज्ञानार्जन के लिए सूक्ष्म शरीरधारी योगीगण। लेकिन ऐसे योगीगण शीघ्र वापस अपने शरीर में लौट नहीं पाते। अवधि से अधिक समय लग जाता है उनको लौटने में। समाधि के लिए संकल्प और अवधि दोनों महत्वपूर्ण है। ध्यान की चरम अवस्था में पहुँच कर संकल्प द्वारा ही निश्चित अवधि के लिए अपने शरीर से अलग होकर सूक्ष्म शरीर द्वारा भ्रमण करता है योगी। जैसी समाधि होती है, वैसी ही उपलब्धि भी होती है। जो अपने आपमें महत्वपूर्ण होती है।

समाधि से क्या उपलब्धि होती है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्मचारी जी ने कहा– पहली उपलब्धि होती है शरीर की नश्वरता का ज्ञान। मृत्यु और समाधि एक समान है। अन्तर है तो यही कि मृत्यु एक बार होती है। एक बार आत्मा से शरीर भी अलग होता है। मरने के बाद व्यक्ति अपने मृत शरीर को देख पाता है या नहीं यह एक अलग बात है लेकिन योगी जब भी समाधि को उपलब्ध होता है, अपने शरीर को निश्चेष्ट और मृतवत् देखता है। तब उसकी समझ में आता है कि शरीर नश्वर है। एक यंत्र है। वह शरीर को बाहर से भी देखता है भीतर से भी। तब उसके सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब वह शरीर नहीं है तो फिर 'वह कौन है'। इस प्रश्न का उत्तर उसे कब प्राप्त होगा? यह बतलाया नहीं जा सकता।'

जबतक योगी समाधि की अवस्था में रहता है तबतक उसके शरीर और मन पर काल का प्रभाव अति मन्द गति से पड़ता है। मन को स्वच्छ और निर्मल कर देता है समाधि। आत्मशक्ति भी बढ़ जाती है। सोचने समझने और विचार करने की क्षमता भी अधिक से अधिक बढ़ जाती है। दूसरी ओर शरीर और संसार के प्रति जो आकर्षण और आशक्ति होती है वह भी समाप्त हो जाती है सदैव के लिए। बस उसके सामने रहता है एक प्रश्न मैं कौन हूँ?

उच्चकोटि के योगीगण समाधि की अवस्था में सूक्ष्म शरीर द्वारा लोक–लोकान्तरों में भ्रमण करते हैं और अपौरूषेय ज्ञान को होते हैं उपलब्ध। यह परम उपलब्धि है। कोई–कोई योगी ऐसे भी होते हैं जो किसी दिव्यलोक में प्रवेश कर वहाँ की मण्डलियों के सदस्य बन जाते हैं और दिव्य ज्ञान विज्ञान को ग्रहण कर यथासमय वापस लौट आते हैं अपने शरीर में और मानवीय भाषा में उन ज्ञान विज्ञान को व्यक्त करते हैं। कोई–कोई योगी तो अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि के रमणीक लोको में भी प्रवेश कर जाते है। जहाँ की मनोहारिणी छवि देखकर मुग्ध हो जाते हैं। वह यह भूल जाते हैं कि वह एक मनुष्य है और उनका अपना एक पार्थिव शरीर भी है जो उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है।

आपको ज्ञात होना चाहिए कि हिमालय की गिरि कन्दराओं और हिम गुफाओं में सैकड़ों वर्ष से समाधिस्थ हैं और अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा इच्छानुसार ब्रह्माण्ड में विचरण कर रहे हैं योगीगण। वे कब पार्थिव शरीर में लौटेंगे– यह कोई निश्चित नहीं। आश्चर्य की बात यह है कि उनके पार्थिव शरीर पर काल अथवा प्रकृति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे जिस अवस्था में समाधि में प्रवेश करते हैं, बस उसी अवस्था में बना रहता है उनका शरीर। इस प्रकार के योगी आवश्यकता पड़ने पर परकाया प्रवेश भी करते हैं। शरीर असक्त हो गया है, उससे साधना नहीं होती तो उस अवस्था में किसी योग्य और अनुकूल व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और घर परिवार आदि त्यागकर साधना के अनुकूल स्थान पर चले जाते हैं। कभी–कभी तो ऐसा भी होता है कि किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी कोई–कोई योगी किसी युवा शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और उद्देश्य पूर्ण होने पर उसका त्याग कर देते हैं। ऐसी परकाया की अवस्था में युवा शरीर में रहने वाली आत्मा एक प्रकार से निष्क्रिय हो जाती है और उसके स्थान पर सक्रिय हो उठती है योगी की आत्मा। इस प्रसंग में आपको एक आश्चर्यजनक घटना सुनाता हूँ मैं। उस समय मेरा चतुर्मास वास चल रहा था काशी में। अचानक एक सम्भ्रान्त युवक से मेरा परिचय हो गया। सुदर्शन युवक था वह। नाम था बृजकिशोर शाह। शहर का धनी व्यक्ति माना जाता था वह। लेकिन सब कुछ होते हुए भी परम दुर्व्यसनी था बृजकिशोर शाह। कोई ऐसा दुर्व्यसन न था जो वह न करता हो। दुर्व्यसनी के साथ–साथ परम चरित्रहीन भी था वह। एक दिन एकाएक आश्चर्यजनक ढंग से उसके व्यक्तित्व और स्वभाव में हो गया परिवर्तन। उसकी सात्विक वृत्ति, सहनशीलता, नम्रता, गम्भीरता और व्यवहार कुशलता देखकर उसका पूरा परिवार आश्चर्यचकित था। मैं तो स्तब्ध था ही। पूजा–पाठ देवदर्शन दान पुण्य आदि नित्य का कार्य हो गया था बृजकिशोर शाह का। सायंकाल नित्य गंगा तट पर बैठता था एकान्त में बृजकिशोर और स्थिर नेत्रों से अपलक निहारा करता था आकाश की ओर शून्य में।

समझते देर न लगी मुझे। उसकी गतिविधि पर बराबर नजर रखे हुए था मैं। अन्त में रहा न गया मुझसे। पूछ ही बैठा– कौन हैं आप?

मेरा प्रश्न सुनकर सकपकाया एक बार बृजकिशोर। मैं तो बृजकिशोर ही हूँ और कौन हो सकता हूँ भला।

नहीं, शरीर अवश्य है बृजकिशोर का लेकिन आत्मा किसी और की है। यह अच्छी तरह जान गया हूँ मैं।

एक बार गहरी दृष्टि से देखा बृजकिशोर ने और फिर बोला– जब आप जान ही गये तो बतलाने में कोई आपत्ति नहीं है मुझे। मेरा नाम सर्वदानन्द है। पिछले चार सौ वर्ष से साधनारत हूँ मैं। पिछले किसी जन्म के कुछ कृत ऐसे थे जो साधना में विघ्न उपस्थित करने लगे थे। उनके निवारण के लिए कुछ आवश्यक रूप से दान पुण्य आदि करना उचित समझा मैंने। इसी कारण बृजकिशोर के शरीर का आश्रय लेना पड़ा मुझे। मेरा कार्य पूर्ण हो गया। कल शरीर छोड़ दूँगा मैं बृजकिशोर का और वह फिर जैसा था वैसा ही हो जायेगा।

सांझ हो गयी थी। ब्रह्मचारी जी नित्य कर्म करने चले गये। कंकाली माँ कुछ दूरी पर बैठी हुई थी उस समय अपने आप में मग्न लेकिन उनकी दृष्टि न जाने क्यों मुझ पर टिकी हुई थी। क्यों देख रही थी मेरी ओर समझ में नहीं आया। थोड़ी देर बाद आ गये ब्रह्मचारी जी। आगे फिर प्रसंग चल पड़ा। कहने लगे– योग तंत्र की साधना एक दो जन्म की नहीं है, कई–कई जन्म लग जाते हैं पूर्ण होने में। समय की कोई निश्चित सीमा नहीं है लेकिन शरीर की तो सीमा है। यह बात अलग है कि समाधि में जबतक योगी रहता है। तबतक काल का प्रभाव बहुत ही कम पड़ता है शरीर पर। इसलिए कोई–कोई योगी किसी सुरक्षित गुफा में अपने शरीर को रखकर योग बल से किसी कुलीन परिवार में जन्म ले लेते हैं और जन्म लेकर अपनी साधना पूरी करते हैं गुप्त रूप से। ऐसे योगियों को भी पहचानना और समझना भी कठिन है। अपनी बातचीत, अपने व्यवहार और अपने रहन सहन से अपनी वास्तविकता को परिलक्षित नहीं होने देते। इस बात को आप निश्चित रूप से समझ ले कि कोई भी सिद्ध साधक और योगी कभी भी और किसी भी अवस्था में अपने को प्रकट नहीं करता। यदि किसी कारण किसी का कल्याण भी करता है तो प्रच्छन्न रूप से। ऐसे वातावरण की

सृष्टि कर देगा कि जो वह चाहता है वह घटित हो जायेगा और किसी को पता भी न चलेगा।

***

समाधि के लिए दो बातें आवश्यक हैं– संकल्प और समाधि की अवधि। पहली अवधि निश्चित कर संकल्प शक्ति द्वारा स्थूल शरीर छोड़कर सूक्ष्म शरीर द्वारा निकल पड़ते थे लोक–लोकान्तरों की यात्रा पर। लेकिन जो योगी निश्चित अवधी पर वापस नहीं लौटते थे पार्थिव शरीर में पहले तो उनकी काफी समय तक प्रतीक्षा की जाती थी और जब फिर भी उनका आगमन नहीं होता था तो सामूहिक रूप से शंख ध्वनि की जाती थी। इसलिए कि शंख ध्वनि और हाथी का चिंघाड़ ही वापस ला सकने में समर्थ था सूक्ष्म शरीर को। अन्य कोई उपाय नहीं था और इस पर भी जब समाधि भंग नहीं होती थी तो योगी के शिष्यगण अपने गुरु के शरीर को मृत समझ कर उसे भू–समाधि दे देते थे और उसको सुरक्षित रखने के लिए ऊपर एक पक्का चबूतरा बना देते थे। उस दिन विशेष रूप से गुरु की स्मृति में समाधि पर्व खूब धूमधाम से मनाया जाता था। आज भी हमारे देश में कई महत्वपूर्ण दिव्य महापुरुषों और उच्चकोटि के योगी साधकों की समाधियाँ हैं। जहाँ समाधि पर्व दिवस का महोत्सव मनाया जाता है। यह प्रथा हमारे हिन्दू समाज में ही नहीं मुस्लिम समाज में भी है। जिसे 'मजार' कहते हैं। ऐसे अनेक प्रमुख मजार हैं। जिन पर 'उर्स' रूप में पर्व दिवस मनाया जाता है।

मेरा एक प्रश्न है मैंने कहा और वह यह कि निश्चत अवधि पर न वापस आने का कारण क्या होता था? इसके साथ मेरा एक और प्रश्न है– भू समाधि के बाद मान ले सूक्ष्म शरीरधारी योगात्मा वापस लौट आयी कालान्तर में तो फिर क्या होता था। मेरे प्रश्नों को सुनकर कुछ देर तक मौन रहे ब्रह्मचारी जी। फिर बोले– इसके कई महत्वपूर्ण कारण है। पहला तो यह है कि कोई कोई योगी ऐसे स्थान पर पहुँच जाते हैं जहाँ की मनोहर छटा देखकर यह भूल जाते हैं कि उनको अपने शरीर में वापस लौटना है। आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि भू–मण्डल के अन्तर्गत कुछ लोक ऐसे भी हैं। जहाँ का मनोरम वातावरण अकल्पनीय रूप से आत्मा को परम शान्ति प्रदान करता है। किसी प्रकार सूक्ष्म

शरीरधारी कोई योगी संयोगवश उस लोक में प्रवेश कर गया तो उसका लौटना कठिन होता है, इसलिए कि वहाँ की परम शान्ति, वहाँ का परम सुख और वहाँ का परम आनन्द विवश कर देता है वहाँ रहने के लिए। किन्तु रजतरज्जु से बंधे रहने के कारण भविष्य में कभी न कभी लौटने के लिए विवश तो होना ही पड़ता है उसे और लौटकर जब आता है तो शरीर के अभाव के कारण नये गर्भ की खोज में काफी समय तक इधर–उधर भटकता रहता है। इस स्थिति में सद्गुरु उसका पूर्ण सहयोग प्रदान करते थे। ऐसी योगात्माएँ विरले ही होती हैं और किसी धर्मनिष्ठ परिवार में जन्म लेती हैं लेकिन अधिक समय तक परिवारिक जीवन व्यतीत नहीं करतीं। संन्यास लेकर निकल पड़ती हैं हिमालय की ओर।

रहस्यमय रासायनिक द्रव्य– मेरा एक प्रश्न है और वह यह कि समाधि की अवस्था में जब सूक्ष्म शरीर के माध्यम से योगात्मा बाहर निकल जाती है तो उस अवस्था में पार्थिव शरीर जीवित कैसे रहता है। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्मचारीजी बोले– योग के अनुसार प्राण पाँच प्रकार के होते हैं जिनमें धनञ्जय प्राण समाधि की अवस्था में मस्तिष्क केन्द्र में बराबर बना रहता है। उसी से समाधि अवस्था में शरीर जीवित रहता है। मृत्यु के पश्चात् भी लगभग दो घण्टे तक धनञ्जय प्राण अपने केन्द्र में सक्रिय रहता है। अपान प्राण का केन्द्र नाभि है योग की दृष्टि में नाभि अति महत्वपूर्ण केन्द्र है। आत्मा नाभि मार्ग से ही शरीर से प्रवेश करती है। जैसे ही प्रवेश करती है वैसे ही मार्ग स्वयं बन्द हो जाता है। अपान प्राण ही रजतरज्जु के रूप में दोनों शरीरों के बीच तादात्म्य बनाए रखता है। उसी प्रकार समाधि की अवस्था में धनञ्जय प्राण सूक्ष्म शरीर में विद्यमान आत्मा से स्थूल शरीर का संबंध बनाए रखता है। ध्यान से समझने की बात है यह। जब सूक्ष्म शरीर वापस लौटता है तो उस अवस्था में धनञ्जय प्राण के द्वारा आत्मा और अपान प्राण के द्वारा सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर में करता है प्रवेश। पाँचों प्राण में अपान और धनञ्जय प्राण ये दोनों जीवन और मृत्यु के पर्याय हैं। श्वास लेते समय अपान भीतर जाता है और प्रश्वास के समय वही अपान भीतर प्राण में परिवर्तित होकर बाहर निकलता है। हर क्षण हम मरते हैं और हर क्षण जीते हैं। जन्म मरण का यह खेल बराबर चलता रहता है लेकिन

समाधि के समय यह प्राकृतिक खेल स्वयं बन्द हो जाता है। इसीलिए समाधि और मृत्यु दोनों को समान बतलाया गया है। मृत्यु का मतलब है खेल का बन्द हो जाना। समाधि में भी बन्द हो जाता है खेल और यही कारण है कि योगी के शरीर पर काल का प्रभाव मन्द गति से पड़ता है। जिसके फलस्वरूप अधिक आयु के योगी कम आयु के प्रतीत होते हैं। कंकाली माँ को ही देखें। सौ के लगभग आयु की है वह। मगर देखने में शरीर कम आयु का प्रतीत होता है।

***

आपको ज्ञात होना चाहिए कि दो हजार वर्ष पूर्व मृत्यु और समाधि पर सर्वाधिक प्रयोग किए गये। सूक्ष्म शरीर को वापस लाने के लिए जो साधन प्रयोग में लाए जाते थे। वे प्रायः असफल हो जाते थे। प्रयोग से एक आश्चर्यजनक तथ्य सामने आया और वह यह कि स्त्री और पुरुष के सूक्ष्म शरीर में कोई एक रहस्यमय रासायनिक द्रव्य विद्यमान है। जो एक दूसरे को अपनी और आश्चर्यजनक ढंग से आकर्षित करता है। बाद में यह भी ज्ञात हुआ कि पुरुष के सूक्ष्म शरीर के बजाय स्त्री के सूक्ष्म शरीर में वह रासायनिक द्रव्य अधिक मात्रा में रहता है इसलिए आचार्यों ने योगतांत्रिक दृष्टि से स्त्री को विशेष रूप से प्रशिक्षित करने लगे। कालान्तर में वही प्रशिक्षण भैरवी दीक्षा का रूप लेकर तांत्रिक साधना भूमि में अवतरित हुआ। वह वही काल है जब स्त्री का योगतांत्रिक साधना भूमि में महत्व समझा जाने लगा और समझा जाने लगा उसकी आवश्यकता। लेकिन यहाँ एक बात समझ लेना चाहिए कि योग्य और संस्कारवान अक्षत स्त्री को ही प्रशिक्षित किया जाता था अयोग्य को नहीं। कुलटा, कुरूप, कर्कश, चरित्रहीन, अति भोग्या, कामातुरा, विधवा आदि को नहीं।

अन्वेषण काल में जब यह ज्ञात हुआ कि स्त्री और पुरुष के बीच जो आकर्षण है। उसके मूल में वही रासायनिक द्रव्य है तो स्त्री का उपयोग उन योगियों के लिए किया जाने लगा। जितना सूक्ष्म शरीर अवधि व्यतीत हो जाने पर भी वापस लौट नहीं आया होता था। योग तंत्र में प्रशिक्षित भैरवी दीक्षा प्राप्त अक्षत स्त्री जब योगी की नाभि का जैसे ही विशेष मुद्रा में स्पर्श करती थी। उसी क्षण सूक्ष्म शरीर वापस

लौट आता था पार्थिव शरीर में। भले ही वह किसी लोक–लोकान्तर में रहा हो उस समय। कालान्तर में जब यह देखा गया कि अक्षत कुमारी कन्याओं में वह रहस्यमय रासायनिक अन्य स्त्रियों से सर्वाधिक मात्रा में होता है और उसका सूक्ष्म शरीर भी अति प्रबल और शक्तिशाली होता है तो इस दिशा में कुमारी कन्या का महत्व और अधिक बढ़ गया। उसका अन्य गोपनीय और गुह्य साधनाओं में भी सफलता प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया जाने लगा मातृ रूप में। इस प्रसंग में यह भी बतला देना आवश्यक है कि मरणोपरान्त भी मृतक के मस्तिष्क में धनञ्जय प्राण लगभग दो घण्टे तक बराबर बना रहता है। यदि उस अवस्था में उस प्रकार की कोई कन्या मृतक की नाभि और उसी के साथ ही साथ आज्ञा चक्र का भी स्पर्श कर दे तो आत्मा शरीर में लौट आ सकती है। उस काल में यह प्रयोग भी कर देखा गया और सफलता भी प्राप्त हुई। उसी समय से योग और तंत्र दोनों के साधना मार्ग में स्त्रियों विशेषकर कुमारी कन्याओं को सर्वाधिक महत्व दिया जाने लगा।

यह कहना असंगत न होगा कि इस नारी रहस्य से प्राचीन काल के ऋषि, मुनि, योगी और साधक भलीभांति परिचित थे और इसीलिए यदि वे गृहस्थ होते थे तो पत्नी को, नहीं तो अपनी किसी पट्ट शिष्या को सदैव रखते थे अपने साथ। कभी किसी साधना की अवस्था में यदि उनका सूक्ष्म शरीर बाहर निकल गया तो पत्नी अथवा शिष्या अपने स्पर्श मात्र से वापस बुला लेती थी सूक्ष्म शरीर को। इसी आधार पर विक्रम काल के सैकड़ों वर्ष पूर्व समाधि और मृत्यु पर विशेष रूप से अन्वेषण कार्य किया गया और साधना में स्त्री का महत्व समझ कर उसे दो रूप दिया गया– स्वकीया और परकीया। पहला रूप भोग्या है और दूसरा रूप है पूज्या। आवश्यकता पड़ने पर समयानुसार दोनों रूपों का प्रयोग किया जाने लगा योगतांत्रिक साधना भूमि में।

स्वकीया रूप जो भोग्या है उसे गृहस्थ योगी और साधक योग्य दीक्षा प्रदान कर पत्नी रूप में स्वीकार करते थे। इसी प्रकार जो गृहस्थ नहीं है वे परकीया स्त्री को पूज्या रूप में दीक्षा प्रदान करते थे। जो पट्ट शिष्या के रूप में सदैव उनके साथ रहती थी।

इस प्रसंग में यह भी जान लेना चाहिए जो योगी अथवा जो साधक दण्डधारी संन्यासी है, साधु, सन्त, महात्मा हैं, अखण्ड ब्रह्मचारी हैं और जिनके लिए नारी स्पर्श पूर्णतया वर्जित है। यदि वे समाधि को उपलब्ध है तो उनकी आयु कम होगी। कम अवस्था में होगी उनकी मृत्यु। जितने समय तक उनका सूक्ष्म शरीर बाहर रहेगा। उतनी उनकी आयु शनैः शनै कम होती जाएगी। नारी स्पर्श के अभाव में ऐसे लोग अपनी संकल्प शक्ति का करते हैं प्रयोग। उस प्रयोग से सूक्ष्म शरीर वापस लौट आता है स्थूल शरीर में। लेकिन यहाँ एक बात अवश्य कहूंगा और वह यह कि नारी स्पर्श में जो विद्युत चुम्बकीय आकर्षण हैं वह संकल्प शक्ति में उस मात्रा में नहीं है। जितनी मात्रा में होनी चाहिए। इसलिए योगतांत्रिक साधना भूमि में नारी का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। जहाँ तक कम आयु का प्रश्न है आदि शंकराचार्य और स्वामी विवेकानन्द इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। तैंतीस वर्ष की आयु में शंकराचार्य ने चिर समाधि ली। इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द की भी हुई मृत्यु मात्र छत्तीस वर्ष की आयु में। प्रच्छन्न रूप से ऐसे बहुत से योगी साधक और साधु संन्यासी के अतिरिक्त सिद्ध सन्त महात्मा होंगे। इसी कारणवश कम आयु में हुई होगी मृत्यु। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि आज भी ऐसे लोगों का अभाव नहीं है। प्रायः लोगों की यह धारणा है कि योगी साधक सन्त महात्मा आदि स्वस्थ और निरोग रहते हैं। वस्तुतः यह भ्रम है। सूक्ष्म शरीर को वापस लौट आने की दिशा में ऐसे कई साधन हैं लेकिन केवल दो ही साधन प्रमाणित और उपयोगी हैं– नारी स्पर्श और संकल्प शक्ति जैसाकि पहले बतलाया जा चुका है। आपको ज्ञात हो कि साधारण लोगों के लिए शरीर महत्व रखता है जबकि एक सिद्ध योगी और साधक के लिए जो समाधि में प्रवेश करने की कला में सिद्ध हस्त हैं, उनके लिए केवल मात्र सूक्ष्म शरीर ही महत्वपूर्ण है।

सूक्ष्म शरीर क्या है? इस आसामाजिक प्रश्न को सुनकर निकट ही बैठी कंकाली माँ बोली– आपके इस प्रश्न का उत्तर मैं ही दे देती हूँ क्योंकि मैं सूक्ष्म शरीर से ही अधिक कार्य करती हूँ। स्थूल शरीर तो प्रायः आत्मा के दो शरीरों में मुख्य रूप से निवास करता है। अन्नमय कोष से निर्मित स्थूल शरीर में और प्राणमय कोष से निर्मित सूक्ष्म शरीर

में। स्थूल शरीर एक पृथ्वी तत्व प्रधान यंत्र के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, उसकी सीमा है उसकी अपनी अवधि है। सीमा और अवधि समाप्त होते ही स्थूल शरीर से आत्मा स्वयं अलग हो जाती है और सूक्ष्म शरीर के द्वारा अपनी अगली यात्रा शुरू करती है। समयानुसार उसी सूक्ष्म शरीर द्वारा आत्मा गर्भ में भी करती है प्रवेश। यहाँ तीन बातों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। आत्मा एक अविनाशी परमतत्व है और उसके सम्बन्ध में आकर दो शरीर अपने आप सक्रिय हो उठते हैं एक है स्थूल शरीर और दूसरा है सूक्ष्म शरीर। स्थूल शरीर से तो हम सब परिचित हैं, क्योंकि वह आँखों से दिखलायी देता है लेकिन सूक्ष्म शरीर से केवल एक सिद्ध योगी ही परिचित होता है और जो योगी योग से भी ऊपर उठ जाता है वह परिचित होता है आत्मा से।

चर्मचक्षु से जैसे हम स्थूल शरीर को देखते हैं। वैसे ही योगचक्षु से योगी देखता है सूक्ष्म शरीर को। वह अपना ही नहीं किसी का भी सूक्ष्म शरीर देखने में समर्थ होता है लेकिन जो ध्यानातीत अवस्था से भी आगे और जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम् के पार जो रह जाता है। उसका अनुभव होता है समाधि में। जो योगी ध्यान से भी ऊपर उठ जाता है वह होता है समाधि को उपलब्ध। समाधि में जो अनुभव होता है वह है आत्मा का अनुभव। तात्पर्य यह कि योगी का अनुभव सूक्ष्म शरीर का अनुभव है। परम योगी का अनुभव आत्मा का अनुभव है। इसी प्रकार सिद्ध योगी का है अनुभव परमात्मा का। ये तीन अवस्थाएँ हैं। कौन किस अवस्था में इसे साधारण लोग कभी भी नहीं समझ सकते। इसके लिए चाहिए ज्ञानचक्षु। जो सभी के लिए उपलब्ध होना सम्भव नहीं।

हमारा अनुभव स्थूल शरीर का है जो स्थूल शरीर तक आकर रूक जाता है। यह जो स्थूल शरीर तक आकर रूक गया है वही मनुष्य जीवन का अन्धकार है। यही सारे दुख का कारण है। इसी प्रकार जिन लोगों का अनुभव सूक्ष्म शरीर का अनुभव है और वह सूक्ष्म शरीर तक आकर रूक गया है, वे कहेंगे आत्मा अनन्त है। ऐसे भी योगी है जो सूक्ष्म शरीर के भी पार चले गये हैं। वह कहेंगे आत्मा एक है, परमात्मा एक है और ब्रह्म भी एक है। आत्मा न कभी मरती है न तो जन्म ही लेती है। सूक्ष्म शरीर ही कारण बनता है जन्म और मरण का। स्थूल

शरीर की तरह उसकी भी मृत्यु हो जाती है तो कोई भी जन्म मरण नहीं रह जाता। आत्मा अकेली हो जाती है। उस समय उसका अपना निज का शरीर यानी आत्म शरीर जो जन्म मरण से मुक्त है। इस प्रसंग में आपको सूक्ष्म शरीर के संबंध में और कुछ बतला दूँ मैं कंकाली माँ बोली– जैसे अन्न से रक्त और रक्त से बीर्य से वीर्य, शुकाणु और शुकाणु से निर्मित होता है शरीर। उसी प्रकार पंच प्राणों के सूक्ष्मतम् कणों से निर्मित होता है सूक्ष्म शरीर। जिसमें समाहित रहती है, हमारी कामनाएँ, हमारी वासनाएँ, हमारे विचार, हमारी इच्छाएँ, हमारे अनुभव, हमारा ज्ञान और हमारे संस्कार भी लेकिन बीज रूप में। मृत्योपरान्त सूक्ष्म शरीर इन सबको अपने आपमें समेटकर अगली यात्रा पर निकल पड़ता है। जिसका उद्देश्य होता है नये पार्थिव शरीर की प्राप्ति।

लेकिन समाधि की अवस्था में शरीर से अलग होकर जो सूक्ष्म शरीर निकलता है बाहर। उसमें केवल आत्मा रहती है और मन का वह भाग भी जो अवचेतन है। अवचेतन मन सभी ज्ञानेन्द्रियों का कार्य करता है और जो अनुभव होता है उसे बराबर करता रहता है ग्रहण। सबसे बड़ी समस्या है दोनों शरीर के बीच सामञ्जस्य का सही ढंग से होना, नारी स्पर्श से भी वापस लौटने वाले सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर से सामञ्जस्य का सही ढंग से होना। नारी स्पर्श से भी वापस लौटने वाले सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर से सामञ्जस्य स्थापित होने में कभी–कभी व्याघात उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में जबतक दोनों शरीर आपस में पूर्णरूप से सामञ्जस्य स्थापित नहीं कर लेते हैं, तबतक योगी की शारीरिक और मानसिक स्थिति अत्यधिक चिन्तनीय रहती है और अव्यवस्थित रहती है उसकी दिनचर्या भी।

लेकिन जो योगी अपने संकल्प बल से सूक्ष्म शरीर को वापस लौटाने वाले होते हैं और जो सूक्ष्म शरीर में ही अधिक से अधिक समय तक रहते हैं और अधिक से अधिक कार्य लेते हैं उससे। उनका सूक्ष्म शरीर शीघ्र तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता है पार्थिव शरीर से। दोनों में सामञ्जस्य होने में अत्यधिक कठिनाई होती है। ऐसे योगी किसी न किसी कारण विशेष से रूग्ण ही रहते हैं। अस्वस्थ रहते हैं बराबर। रामकृष्ण परमहंस देव अनेक रोगों से रहते थे पीड़ित। महर्षि रमण को

तो कैंसर ही हो गया था। अरविन्द की भी यही दशा थी। क्या कारण था? यही कारण था दोनों शरीर के बीच तादात्म्य भंग हो जाता था लम्बे समय के लिए। बस, इतनी सी बात थी।

लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसे योगियों का सूक्ष्म शरीर अत्यन्त शक्तिशाली प्रबल और तेजस से भरा हुआ होता है। अवचेतन मन को होने के कारण सूक्ष्म शरीर की गति अति विलक्षण होती है उसी गति से वह लोक–लोकान्तरों में भ्रमण करता है। दिव्य महापुरुषों से सम्पर्क स्थापित करता है। इन सब के अतिरिक्त योगी के इच्छानुसार वह भी कार्य करता है जो भौतिक दृष्टि से असम्भव समझा जाता है।

शरीर में सम्पर्क केन्द्र– योग में जिन चक्रों की चर्चा की गयी है– वे सभी के सभी लोक–लोकान्तरों से सम्पर्क स्थापित करने के केन्द्र हैं। रही नाभि की बात। आत्मा और शरीर के बीच संबंध का सबसे बड़ा और सबसे गहरा केन्द्र है नाभि। किन्तु वे सभी सम्पर्क केन्द्र शरीर के बाहर कहीं नहीं दिखलायी देंगे। आप शरीर को बाहर से जानते हैं भीतर से नहीं, भीतर से जानने समझने का अपना एक आन्तरिक शास्त्र है जो अपने आपमें अतिसूक्ष्म है और एक योगी ही उस शास्त्र का होता है ज्ञाता और ज्ञाता होता है उन चक्रों का उपयोग करने का भी।

सूक्ष्म शरीर का अनुभव– उस रात ठीक से सो न सका मैं। भोर के समय उठकर चलता गया दामोदर नदी की ओर और थोड़ा टहल लेने के बाद जब वापस लौटने लगा तो देखा कदम्ब के नीचे समाधीस्थ बैठी हुई थी कंकाली माँ। क्या पूरी रात उसी अवस्था में थी वह महातंत्र साधिका। हाँ पूरी रात, निश्चल पाषाणवत्। पक्षी चहचहाने लगे थे। पूरी तरह सवेरा हो चुका था अबतक। तभी बोल हरि..... हरि बोल की आवाज सुनायी दी। देखा पलट कर किसी युवती का शव था वह। थोड़ा निकट चला गया। अकाल मृत्यु हुई थी शायद। लेकिन मृत्यु का कोई लक्षण नहीं था चेहरे पर। सौम्य शान्त निर्विकार और सुन्दर चेहरा देख कर बड़ा कष्ट हुआ मुझे। न जाने क्यों आँसू छलछला आये आँखों में और तभी कंकाली माँ की आवाज कानों में सुनायी पड़ी। वह बुला रही थी मुझे। जब पास में गया तो पूछी– क्या देख रहा था वहाँ? युवती का शव.....।

हाँ! माँ। सिर हिलाकर दिया उत्तर मैंने। बड़ी सुन्दर थी वह माँ। बेचारी इतनी कम आयु में कैसे मर गयी वह।

यह सुनकर गम्भीर हो उठी कंकाली माँ। फिर बोली– तुम सत्य की खोज में निकले हो और सत्य से परिचित भी होना चाहते हो न।

हाँ! माँ। सिर झुका कर धीमे से उत्तर दिया मैंने लेकिन बेटा जानते हो इस संसार का सबसे बड़ा और सबसे महत्वपूर्ण कोई सत्य है तो वह है मृत्यु। मृत्यु से बड़ा कोई सत्य नहीं है और मृत्यु के सत्य से परिचित होने के लिए, मृत्यु के सत्य को जानने के लिए और मृत्यु के सत्य का अनुभव प्राप्त करने के लिए बेटा तुमको मृत्यु के सत्य से गुजरना पड़ेगा।

मृत्यु के सत्य को जान लेने पर फिर किसी अन्य सत्य को जानने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। क्योंकि जो भी सत्य है और जितने भी सत्य हैं। वे सभी के सभी अपने आप प्रकाश में आ जाते हैं। भले ही ब्रह्म से संबंधित वह सत्य क्यों न हो और इसके लिए बेटा तुमको अपने जीवन में ही तैयारी करनी पड़ेगी। समझ गये न मृत्यु की तैयारी जीवन में ही करनी चाहिए और जो नहीं कर पाता है तो उसकी मृत्यु गलत ढंग से होती है। गलत ढंग से जीने को तो क्षमा भी किया जा सकता है, लेकिन गलत ढंग से हुई मृत्यु को कभी भी क्षमा नहीं किया जा सकता इसलिए कि क्षमा के लिए अवसर ही कहाँ मिलता है। मृत्यु चरम बिन्दु है, वह अन्त है। जीवन का सार है और है निष्कर्ष। जीवन की गलतियाँ, जीवन की भूलें चल सकती हैं। उनको क्षमा भी किया जा सकता है लेकिन अन्तिम क्षण की जो गलतियाँ हैं और हैं भूलें। वे हमेशा–हमेशा के लिए हो जाती हैं स्थायी।

आश्चर्य की बात तो यह है कि जीवन की गलतियों पर और जीवन की भूलों पर पश्चाताप किया जा सकता है। क्षमा माँगी जा सकती है। उसको सुधारा भी जा सकता है लेकिन बेटा! मृत्यु के बाद ये सब कुछ सम्भव नहीं है इसीलिए योग कहता है कि सत्य को जानने समझने और अनुभव करने के लिए एकमात्र मृत्यु में प्रवेश करना अति आवश्यक है और वह भी जीते जी यह कैसे सम्भव है माँ?

समाधि द्वारा है सम्भव। माँ ने उत्तर दिया।

मृत्यु के समय क्या होता है? कंकाली माँ ने कहना शुरू किया– जब प्राण की ऊर्जा बाहर फैली हुई होती है। वह धीरे–धीरे सिकुड़ने लगती है और पूरी तरह सिकुड़ने के बाद अपने केन्द्र नाभि में पहुँच कर अणु के रूप में परिवर्तित हो जाती है। प्राण के संकुचन काल में अपने मरने का अनुभव होने लगता है। सभी अंग शिथिल होने लगते हैं। श्वास प्रश्वास में व्यतिक्रम उत्पन्न हो जाता है। आँखों के सामने अंधेरा छाने लगता है। स्मृति भी लुप्त होने लगती है। शरीर का बोध समाप्त हो जाता है। इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती है। आन्तरिक यह बोध होने लगता है कि जिस जीवन को जीया था– वह अब छूट रहा है। जिन लोगों को अपना समझता था। वे सब लोग अलग हो रहे हैं हमेशा के लिए। जिन वस्तुओं को अपना समझता था। वे सब भी छूटे जा रहे हैं मुझसे। इन सबके कारण 'मन' घबराने लगता है और उसी घबराहट और सब छूट जाने की चिन्ता के कारण मरणासन्न व्यक्ति बेहोश हो जाता है। बेहोशी के कारण ही वह मृत्यु के अनुभव से वंचित रह जाता है। मृत्यु को जानने के लिए और मृत्यु के अनुभव को प्राप्त करने के लिए आन्तरिक रूप से शान्ति चाहिए। लेकिन ऐसा होता है हम न जाने कितनी बार मर चुके हैं लेकिन हर बार बेहोश ही मरे हैं और इसी कारण मृत्यु को न जान पाये और न तो मृत्यु के अनुभव को ही हो सके उपलब्ध।

ठीक है। मृत्यु के क्षण बेहोशी के कारण मृत्यु को नहीं जाना जा सकता लेकिन आयोजित मृत्यु द्वारा तो हम मृत्यु का अनुभव कर ही सकते हैं और मृत्यु को जान भी सकते हैं।

आयोजित मृत्यु क्या है? आयोजित मृत्यु को ही कहते हैं ध्यान और कहते हैं समाधि। जो घटना मृत्यु के समय घटती है, अपने आप प्राकृतिक रूप से, वही घटना संज्ञान रूप में घटती है, समाधि की अवस्था में। समाधि में प्रवेश करने के पूर्व योगी जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से संबंधित मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपूरक चक्र को पार कर तुरीयावस्था में संकल्प द्वारा प्रवेश करता है और उसी प्रबल संकल्प शक्ति के द्वारा तुरीयावस्था को भी पार कर समाधि में प्रवेश करता है लेकिन समाधि की अवस्था को उपलब्ध होने के लिए

सर्वप्रथम अपनी प्रबल चेष्टा और प्रयास से उसी प्रकार बाहर फैले हुए प्राण ऊर्जा को सिकोड़ता है। जैसे मृत्यु के समय सिकुड़ती है अपने आप ऊर्जा। इसीलिए योगी के लिए अशान्त होने का कोई कारण ही नहीं रहता। वह निरपेक्ष और अनाशक्त रहता है। जिसके परिणाम स्वरूप संसार समाज परिवार और अन्य वस्तुओं के प्रति किसी भी प्रकार का न मोह रहता है और न तो आकर्षण ही उसके भीतर। फिर अशान्त और बेहोश होने का कोई कारण ही नहीं रह जाता। अन्त में शरीर निर्जीव हो जाता है और योगी की आत्मा सूक्ष्म शरीर के माध्यम से बाहर निकल कर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ जाती है। वास्तव में जीवन वह ऊर्जा है, वह प्राण है और वह विद्युत है जो शरीर को बराबर गरम रखे रहती और रखे रहती है जीवित भी। समाधि में साधक अपनी यौगिक क्रियाओं और संकल्प द्वारा स्वेच्छा से मृत्यु में करता है प्रवेश और इस परम सत्य को जान लेता है कि मैं अलग हूँ और मेरा शरीर अलग है और इसका ज्ञान होते ही योगी के लिए मृत्यु का भय सदैव के लिए हो जाता है समाप्त। वह उस जीवन को हो जाता है उपलब्ध जो शाश्वत है और जिसका प्रवाह अनन्त है। जहाँ मृत्यु नाम की कोई भी वस्तु नहीं है और तब उस शाश्वत जीवन का अनुभव शुरू होता है। जिसमें न जन्म है और न तो है मृत्यु।

आयोजित मृत्यु एक कला है और है एक धर्म। धर्म इसलिए कहती हूँ कि वह कला धर्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकती। धर्म मृत्यु की कला है। यह कहना साधुतर होगा। कहीं कहीं जीवन की कला को भी धर्म माना गया है। दोनों बाते अपने स्थान पर ठीक हैं और है उचित भी। क्योंकि जो मरना जान लेता है वही व्यक्ति जीवन को भी जान पाता है। यदि हम यह कहें कि धर्म है जीवन और मृत्यु है कला—तो अतिशयोक्ति न होगी। यदि आपको जीवन और मृत्यु को जानना है समझना है और उन दोनों का अनुभव भी करना है तो आपको स्वेच्छा से और संकल्प शक्ति से पूरे शरीर से ऊर्जा को नाभि को केन्द्र बना कर खींचनी होगा और अपने को तुरीय अवस्था में ले जाना होगा। ऊर्जा को उसके केन्द्र की ओर खींचना सरल भी है और कठिन भी। वह संकल्प से फैलती हैं और संकल्प से ही वापस भी अपने केन्द्र में

लौटती भी है। सच तो यह है बेटा कंकाली माँ बोली– योग की सारी साधना के मूल में एकमात्र संकल्प है।

यह सब सुनकर मैंने प्रश्न किया– एक बार बाबा ने प्रसंगवश कहा था कि कोई भी संस्कार सम्पन्न व्यक्ति किसी योगी के माध्यम से अपने आपको अपने सूक्ष्म शरीर में अनुभव कर सकता है? क्या मेरे लिए यह सम्भव है? हाँ है सम्भव! कंकाली माँ बोली– तुम तो ध्यान की गहन अवस्था को उपलब्ध हो चुके हो लेकिन आयोजित मृत्यु फिर भी आवश्यक है।

यह सुनकर थोड़ा निराश हो गया मैं। मुँह लटक गया मेरा। कंकाली माँ को समझते देर न लगी मेरी स्थिति को। थोड़ा हँसकर बोली– सूक्ष्म शरीर में अपने अस्तित्व का बोध तो अपने आपमें ठीक है। लेकिन बेटा तुमको उसी के साथ मृत्यु का रहस्य मालूम हो जायेगा तो अभी जो कुछ भी तुम हो वह नहीं रह जाओगे, सारा का सारा जीवन सपना–सा लगेगा तुम्हे। विरक्त हो उठेगी तुम्हारी आत्मा। वैराग्य की अग्नि प्रज्जवलित हो उठेगी तुम्हारे भीतर एक जीते जागते शव रह जाओगे तुम।

ऐसा मत कहो माँ। विह्वल हो उठा मैं। कातर स्वर में कहा– मैं तो ऐसा ही चाहता हूँ माँ और इसी के लिए तो व्याकुल है मेरी आत्मा और उसी अवस्था में कंकाली माँ का चरण पकड़ लिया मैंने। अनुभव कराना ही पड़ेगा माँ आपको? मेरी विह्वलता, मेरी कातरता और मेरी करुण पुकार सुनकर एकबारगी द्रवित हो उठी वह महान साधिका। बोली– अच्छा, अच्छा अब बस कर ज्यादा नाटक मत कर मैं जानती हूँ तुझे। कुछ पाने के लिए तू खूब करता है नौटंकी। रात को कदम्ब के नीचे बैठे रहना। वहीं मैं मिलूँगी तुझसे। समझा कुछ। मैंने सिर हिला कर आँसू पोंछते हुए कहा... हाँ! प्रतीक्षा करूँगा आपकी मैं।

***

काली अंधेरी रात और रात के काले स्याह अन्धकार में डूबी हुई सारी प्रकृति। निस्तब्ध वातावरण सांय सांय कर रहा था चारो ओर। झाड़ियों में सो रहे जंगली झींगुओं की झीं झीं की आवाज गूंज रही थी उस चिपचिपे वातावरण में। कृष्ण पक्ष की अष्टमी का चांद निकल आया था नीले आकाश में जिसके आसपास बादलों के कुछ टुकड़े तैर रहे थे।

पत्थर के चबुतरे पर बैठा मैं उन्हीं टुकड़ों को अपलक निहार रहा था जो चाँद को चारो ओर से अपनी गोद में ले रखे थे और तभी किसी का आभास प्रतीत हुआ मुझे अपने निकट। सिर घुमाकर देखा कंकाली माँ थी मेरे सामने। वह बोल नहीं रही थी, बस चुपचाप खड़ी निहार रही थी अपलक मेरी ओर। अचानक उनके शरीर से एक चमकती हुई नीले रंग की एक रेखा निकली। वह शरीर के किस अंग से वह समझ न सका लेकिन थी वह अति तीव्र। उसमें से रश्मियाँ निकल रही थी लेकिन प्रकाशवान नहीं थी। घोर अन्धकार में वह रश्मि रेखा आश्चर्यजनक लगी मुझे और देखते ही देखते मेरे शरीर में समा गयी वह और उसी क्षण मुझे अपने शरीर के भीतर कुछ विचित्र सा अनुभव होने लगा। वह अनुभव कैसा था। बतला नहीं सकता मैं। थोड़ी देर बाद सनसनाने लगा मेरा पूरा शरीर। यह सब क्या हो रहा था मेरे शरीर के साथ समझ में नहीं आ रहा था मुझे। कुछ ही क्षण बाद चबुतरे से नीचे गिर पड़ा और गिर कर पीठ के बल लेट गया मैं। वैसे तो मेरी बाह्य चेतना लुप्त होती जा रही थी उस समय लेकिन भीतर से पूर्ण सजग और चैतन्य था मैं। कुछ क्षण बाद लगा जैसे मैं अपने शरीर से धीरे–धीरे अलग होता जा रहा हूँ और जब पूरी तरह अलग हो गया तो अपने आपको एक शुभ्र और उज्जवल प्रकाशमय जगत में पाया मैं अपने आपको। क्या वह शाश्वत जगत था? हाँ! शाश्वत जगत ही था। जहाँ मृत्यु नहीं है। जो कुछ भी है शाश्वत जीवन है और उसका है अन्तहीन प्रवाह। मैं अपने आपको प्रसन्न, हल्के प्रफुल्ल और हल्के कर रहा था अनुभव उस समय। मेरी मानसिक और वैचारिक शक्ति भी प्रखर हो उठी थी उस अवस्था में और उसी के साथ ऐसा लगा जैसे मेरा सूक्ष्मशरीर अत्यन्त शक्तिशाली है और सारे भौतिक बन्धनों से है मुक्त। एकाएक मेरी दृष्टि कदम्ब की ओर घूम गयी। देखा कदम्ब के नीचे मेरी स्थूल काया धूल मिट्टी में पड़ी हुई थी निर्जीव और मृतवत्।

आँखे खुली हुई थी। मुख भी थोड़ा खुला था। अरे यह सब कैसे क्या हो गया? आश्चर्यचकित हो उठा मैं। क्या वास्तव में मर गया? हाँ पूर्णरूप से मृत हो गयी थी मेरी काया। लेकिन मैं तो जीवित अनुभव

कर रहा था। किञ्चित मात्र किसी भी प्रकार का परिवर्तन का अनुभव नहीं कर रहा था अपने आपमें उस अवस्था। जिस शरीर को अबतक जीवित समझता था। वह तो मृत पड़ा था मेरे सामने।..... तो फिर मैं कौन हूँ? शरीर नहीं हूँ तो फिर मैं कौन हूँ? मैं कौन हूँ? .....कौन हूँ मैं? लेकिन उस समय मेरे इस प्रश्न का उत्तर देने वाला कोई नहीं था? चारो ओर शून्य ही शून्य था और शून्य के अलावा और कुछ नहीं था।

अब मैं शरीर में वापस लौट आया था। जैसे शरीर से निकलने का अनुभव हुआ था, वैसे ही भीतर प्रवेश करने का भी अनुभव हुआ था मुझे। अब मैं मृत्यु से भलीभांति परिचित हो चुका था। वास्तव में मृत्यु कुछ भी नहीं है। यदि है तो शरीर का परिवर्तन मात्र। मृत्यु से जीवन का कोई नाता रिश्ता नहीं। जीवन की धारा शाश्वत है और फिर है अन्तहीन। मृत्यु के उस अनुभव ने मुझे जीवन के प्रति जगा दिया था और इस प्रकार का जागा हुआ व्यक्ति अपने लिए योग्य गर्भ का भी चुनाव स्वयं कर लेता है और मैंने कर लिया था उसी समय अपने लिए योग्य और अनुकूल गर्भ का चुनाव। शरीर नगण्य है मेरे लिए और संसार है मेरे लिए एक लम्बा सपना। इसलिए कि जो जीवन में जी रहा हूँ वह शाश्वत है और है अन्तहीन। शाश्वत जीवन जीने वाले के लिए शरीर और संसार का क्या मूल्य है भला।

संकल्प साधना- मनुष्य के संकल्प की बड़ी सम्भावनाएँ हैं लेकिन मनुष्य है कि संकल्प के संबंध में न कोई विचार रखता है और न तो किसी भी प्रकार का देता है महत्व ही। पिछले प्रसंग में जिस आयोजित मृत्यु की मैंने चर्चा की थी। वह योग की सर्वोच्च और सर्वोत्तम साधना है। विरला ही कोई योगी उपलब्ध हो सकता है उस परम अवस्था को। आयोजित मृत्यु के प्रयोग में अद्म्य संकल्प बल पर स्वेच्छा से मृत्यु का आवाहन सरल और सहज बात है क्या? साधारण जीवन में संकल्प करना कठिन होते हुए भी सरल है लेकिन मृत्यु के प्रति संकल्प करना कठिन ही नहीं असम्भव है। एक परम उच्चावस्था प्राप्त योगी ही यह कार्य कर सकता हैं– साधारणजन नहीं। सभी जीवित रहना चाहते हैं। भले ही भयंकर रोग शैय्या पर पड़े हो मरना कोई नहीं चाहता। मृत्यु के नाम से भीतर ही भीतर कांप उठते हैं लोग। कहने की आवश्यकता नहीं

मनुष्य की यही प्रबल इच्छा उसकी मृत्यु के समय के तमाम कष्टों का बन जाती है कारण।

भौतिक जीवन में भी संकल्प का भारी महत्व है। जीवन में यदि कहीं सफलता है तो उसकी पृष्ठभूमि में संकल्प अवश्य होगा। बिना संकल्प के और बिना दृढ़ निश्चय के उसका सफल होना सन्दिग्ध ही है।

दो मूल्यवान शब्द है—पहला है संकल्प और दूसरा है दृढ़ निश्चय। इन दोनों के अभाव में चाहे असाधारण कार्य हो या हो साधारण कदापि सफल और सिद्ध नहीं हो सकता। संसार में जो लोग अपने उद्देश्य में और अपने लक्ष्य में सफल और सिद्ध हुए हैं और पहुँचे हैं उन्नति की चरम पराकाष्ठा पर, भले ही वह आध्यात्मिक हो या हो भौतिक उसकी पृष्ठभूमि में सदैव रहा है संकल्प और दृढ़ निश्चय।

इस संसार में जितनी भी धर्म साधनाएँ हैं यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो वे धर्म की साधनाएँ हैं ही नहीं। आपको आश्चर्य होगा यह पढ़कर लेकिन सत्य है। धर्म से किसी भी साधना का दूर तक कोई भी और किसी भी प्रकार का संबंध नहीं है। कोई नाता रिश्ता नहीं है। वास्तव में धर्म साधना संकल्प की साधना है इसलिए संकल्प की साधना पहले होनी चाहिए। पहले आप छोटे—छोटे संकल्प करें। उन छोटे—छोटे संकल्प का क्या विलक्षण परिणाम होगा। उसे देख कर आप स्वयं आश्चर्यचकित हो उठेंगे। आप दृढ़ निश्चय होकर संकल्प करिए कि पूरे एक महीने तक नित्य एक घंटा किसी भी समय पूर्णरूप से मौन रहेंगे। यदि दृढ़ निश्चय के साथ संकल्पानुसार पूरे एक मास इस प्रकार आप मौन रह गये तो निश्चय ही इसका परिणाम विलक्षण होगा। आप आपने आपमें एक विचित्र सी शक्ति की अनुभूति करेंगे। आपके चेहरे पर चमक आ जायेगी और आँखों में आ जायेगा तेज। इस संबंध में मैं आगे चर्चा करूँगा। पहले आपको यह बतला दूँ कि सभी प्रकार की पूजा, उपासना, साधना और सभी प्रकार की धार्मिक क्रियायें कर्मकाण्ड यहाँ तक कि श्राद्धादि भी बिना संकल्प के व्यर्थ है। इनका **'परिणामेन किञ्चन'** कोई परिणाम नहीं। कोई फल नहीं, न शुभ और न तो अशुभ ही। आप व्रत उपवास रखते हैं। यदि उसके साथ संकल्प नहीं जुड़ा है तो वह भी व्यर्थ ही है। इतना ही नहीं, जप, तप, पूजा, पाठ आदि जो कुछ भी आप

करते हैं। उनसे कोई लाभ नहीं। लाभ होना है आपके संकल्प से। दृढ़ निश्चय के साथ आप जो कुछ भी करेंगे, अच्छा या बुरा, निश्चय ही उसका परिणाम आपके सामने आयेगा। चाहे जप–तप हो चाहे पूजा–पाठ हो या हो व्रत उपवास। दृढ होकर संकल्प करिए। पूर्ण दृढ़ चित्त होकर करिये। निश्चय ही उसका फल होगा प्राप्त आपको इसमें सन्देह नहीं।

पहले आप छोटे–छोटे संकल्प करिए। उनसे आपके भीतर ऊर्जा एकत्र होती जायेगी। जो आपके काम आयेगी। आप संकल्प कर लें कि नित्य रात्रि में सोने के पहले पद्मासन में बैठूँगा, लगातार दस दिन तक। यदि आप अपने संकल्प में सफल हो गये तो आप अपने भीतर पायेंगे दृढ़ निश्चय का भाव। जो जीवन में अति आवश्यक है। आप रास्ते में निकलें। संकल्प कर लें कि रास्ते में दिखलायी पड़ने वाले किसी भी साइन बोर्ड को नहीं पढ़ेंगे। किसी भी एकान्त स्थान पर नेत्र बन्द करके बैठ जायें और संकल्प कर लें कि एक घण्टे तक आँखें नहीं खोलूँगा। इससे कोई लाभ हानि नहीं है लेकिन आपको संकल्प का अवसर अवश्य मिल जायेगा। किसी से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। यह आपकी आन्तरिक यात्रा है। मेरा प्रयोजन यह है कि जिस प्रयोग से आपके संकल्प को ठहरने का सामर्थ्य बढ़ता हो, उसे आप कर सकते हैं। ऐसे छोटे मोटे संकल्प के प्रयोग बराबर करते रहने से एक समय ऐसा आयेगा जब आप और आपका शरीर पूर्णरूप से ऊर्जा कृत हो जायेगा। जिसके परिणामस्वरूप मन स्थिर रहने लगेगा। आध्यात्मिक विचारों का उदय होगा। मानसिक सन्तुलन बराबर बना रहेगा। नेत्रों की ज्योति बढ़ेगी। चेहरे पर तेज आयेगा। वाणी में भी कोमलता आयेगी। अच्छे कार्यों में मन लगेगा। सफलता भी मिलेगी। जिस कार्य से यानी जिस प्रयोग से भी आपके संकल्प को स्थिर रहने का सामर्थ्य बढ़ता है। उसे आप कर सकते हैं। जैसा बतलाया है वैसे वैसे छोटे प्रयोग करते रहें बराबर।

संकल्प करके आप यदि एक घंटे मौन साध कर नेत्र बन्द कर ध्यान में बैठते हैं और बीच–बीच में एकाध बार आँखे खोल कर देख लेते हैं तो आपको क्या समझा जायेगा। संकल्पहीन समझा जायेगा और समझा जायेगा आत्महीन। आप यह समझ लें कि साधारणतः लोगों का

मन मजबूत होता और संकल्प होता है क्षीण और कमजोर। मन सदैव संकल्प को कमजोर बनाने का प्रयास करता है। अपना प्रभाव भी डालता रहता है। संकल्प साधना का उद्देश्य है मन को क्षीण करना और संकल्प को मजबूत करना। मन जितना क्षीण होता जायेगा संकल्प उतना ही दृढ़ और शक्तिशाली होता जायेगा। मैं आपसे कहता हूँ कि आप दस मिनट तक गहरी श्वास लें। आप दो–तीन बार अवश्य गहरी श्वास लेंगे। फिर धीमी लेने लगेंगे फिर मैं आपसे कहूँगा, गहरी श्वास लें। फिर गहरी श्वास लेने लगेंगे आप। इसका क्या मतलब यही कि आप आत्मवान नहीं हैं। आपका मन अस्थिर है दस मिनट तक गहरी श्वास लेना कोई भारी बात नहीं है। कोई उपलब्धि नहीं है लेकिन हाँ! दस मिनट के संकल्प से मन की शक्ति क्षीण होगी और संकल्प की शक्ति बढ़ेगी और आप आत्मवान हो जायेंगे।

संकल्प का प्रयोग धर्म और अध्यात्म में- धार्मिक कार्यों में संकल्प का प्रयोग तो अवश्य ही होना चाहिए। क्योंकि संकल्प के बिना छोटे से छोटा धार्मिक कार्य सफल नहीं हो सकता। आप अपने इष्ट की या किसी भी देवी–देवता की पूजा करने बैठते हैं। तो बैठना भी संकल्प के साथ होना चाहिए। मैं पूजा, उपासना और साधना के लिए बैठता हूँ। यह संकल्प होना चाहिए पूर्ण दृढ़ता के साथ। आप माला भी देवता को चढ़ाते हैं संकल्प के साथ चढ़ाइये। एक अगरबत्ती भी जलाइये तो संकल्प के साथ, ध्यान भी करिए तो संकल्प के साथ। तात्पर्य यह कि आपका प्रत्येक धार्मिक कृत्य संकल्प से जुड़ा हुआ होना चाहिए। फिर आप देखेंगे कि आपको कैसे नहीं सफलता मिलती, जो सफलता मिलेगी वह पूजा अर्चना की नहीं बल्कि संकल्प की मिलेगी सफलता। संकल्प ही मुख्य है संकल्प ही आपको फल देगा। लेकिन उसमें दृढ़ता का भाव होना चाहिए। आप जप करने बैठते हैं तो संकल्प कर लें कि जप के समय जप ही करूँगा। किसी भी प्रकार विचार भाव आदि मन में न आने दूँगा। दो घण्टे ध्यान करना है। संकल्प कर लें, दो घंटे पूर्ण रूप से ध्यान ही करूँगा। पाषाणवत् बैठा रहूँगा। आँखे भी नहीं खोलूँगा। कहने का तात्पर्य यह कि धर्म व अध्यात्म से संबंधित जो भी कार्य करें संकल्प के साथ करें, लेकिन दृढ़ निश्चय भी होना आवश्यक है।

व्यावहारिक जीवन में संकल्प का तो भारी महत्व है। छोटे से छोटा या बड़े से भी बड़ा कोई भी कार्य करें संकल्प युक्त होकर करें। देखिए, सफलता कैसे नहीं मिलती। भोजन करते समय, पढ़ते समय, चिन्तन मनन के समय और कहीं बाहर जाते समय संकल्प करें। देखेंगे, भोजन में रस मिलेगा और वह पचेगा भी। पढ़ने में मन लगेगा और विषय याद भी रहेगा। यात्रा में सफलता भी मिलेगी। व्यापार के संबंध या नौकरी के संबंध में संकल्प करिए। सफलता मिलेगी। व्यापार में लाभ होना ही है यह संकल्प करें। नौकरी मिलनी ही है यह संकल्प करें देखे आप क्या चमत्कार होता है। स्थानाभाव के कारण केवल इस प्रसंग में इतना ही कहूँगा कि आप संकल्प को साधिए। जीवन ऊर्जा कृत हो जायेगा। प्रसन्नता और सफलता से जीवन सुगन्धमय हो उठेगा।

मनोबल और संकल्प बल- आपको ज्ञात होना चाहिए कि योग में मनोबल का कोई महत्व नहीं है। 'मनोविग्रह' का अर्थ है मनोबल को तोड़ना और वह टूटता है तो संकल्प बल से। योग में 'संकल्प' ही सब कुछ है। मन कभी भी स्थिर न रहा है और न तो रहेगा ही कभी। मन की चचंलता कभी भी दूर नहीं हो सकती। आप ध्यान में बैठते हैं। कितना भी प्रयास करें, मन कहीं न कहीं अस्थिर और चंचल रहेगा ही। इसीलिए ध्यान की प्रक्रिया के साथ संकल्प बल का होना आवश्यक है। ध्यान में आपको जो भी सफलता मिलेगी, वह संकल्प की सफलता मानी जायेगी। जैसे आप रास्ते में निकलते हैं। कोई न कोई साइन बोर्ड अवश्य पढ़ते होंगे। ऐसा नहीं कि न पढ़ते हों। लेकिन जिस दिन आप निश्चित कर लेंगे कि आपको कोई साइन बोर्ड नहीं पढ़ना है। उस दिन मन करेगा कि पढ़ो। क्योंकि मन की शक्ति आपके संकल्पहीन होने में निर्भर है। आप जहां संकल्पवान हुए उसी क्षण आपका मन निष्क्रिय हो जायेगा। उसका बल समाप्त हो जायेगा। वह न समाप्त हो, लेकिन क्षीण तो हो ही जायेगा। आप दृढ़ संकल्प करके निकलिए, आप कोई बोर्ड नहीं पढ़ेंगे। निश्चय ही नहीं पढ़ पायेंगे आप। क्योंकि मन उस समय क्षीण हो गया होता है संकल्प के सामने। इस प्रसंग में आपको यह भी बतला दूँ कि मन के साथ आप अपने जिस कार्य को जोड़ेंगे उस कार्य में सन्देह होगा, भ्रम होगा, तनाव होगा और इस बात की विद्या भी बराबर बनीं रहेगी कि सफलता मिलेगी या नहीं। लेकिन आप

उसी कार्य को दृढ़ निश्चय हो संकल्प के साथ करेंगे, तो सन्देह, भ्रम आदि उत्पन्न होंगे ही नहीं। क्योंकि सन्देह, भ्रम, शंका, दुविधा, तनाव, चिन्ता आदि तो मन के विषय हैं, संकल्प के नहीं।

मन जितना बलशाली है। संकल्प उतना ही कमजोर, शिथिल और क्षीण है। इसी प्रकार संकल्प जितना बलवान है, उतना ही मन कमजोर और क्षीण है। यदि किसी भी क्षेत्र में सफलता पाना चाहते हैं तो दृढ़ निश्चयी बन कर संकल्प करिए। सफलता आपके पीछे–पीछे दौड़ेगी। लेकिन प्रारम्भिक अवस्था में छोटे–छोटे संकल्प होने चाहिए। उनका अभ्यास हो जाने पर फिर बड़े–बड़े संकल्प होने चाहिए। सबसे बड़ा और सबसे शक्तिशाली संकल्प है सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से अलग करने का संकल्प। आयोजित मृत्यु के समय प्राणों को संकुचित करना और सूक्ष्म शरीर के साथ बाहर निकलना और स्वेच्छा से पार्थिव शरीर का त्याग कर सूक्ष्म शरीर द्वारा भ्रमण करना आदि संकल्प बल पर ही तो है निर्भर।

बड़े संकल्पों का प्रारम्भ– हम सभी लोग मन के साथ जीते हैं। योगी साधक सन्त महात्मा लोग जीते हैं संकल्प के साथ। जो मन के साथ जीता है, वह न योगी है और न तो है साधक। योगी और साधक का अर्थ ही है कि उसका मन अब संकल्प में रूपान्तरित हो रहा है। जितनी असद्वृत्तियाँ हैं, उनमें क्रोध, अत्यन्त भयंकर वृत्ति है इसलिए योग कहता है कि क्रोध से शुरू करना चाहिए बड़े संकल्पों का प्रारम्भ। आप यह संकल्प कर लें कि कोई मुझ पर क्रोध करेगा तो मैं खूब हसूँगा। यह प्रयोग करके देखें। आप पर कोई भयंकर रूप से क्रोधित होकर अनाप–सनाप बक रहा है, गाली दे रहा है अपमानजनक शब्दों का प्रयोग कर रहा है। उस समय आप हृदय से प्रसन्न होइए। खिलखिला कर हँसिए। उसका आपको इतना अद्भुत मूल्य प्राप्त हो जायेगा कि आप क्रोध करने वाले को धन्यवाद देने के लिए अपने आपको रोक न पायेंगे। धन्यवाद देकर ही रहेंगे और वह भी हाथ जोड़ कर। एक संकल्प बस, एक गहरायी से किया गया संकल्प, कोई क्रोध करेगा, कोई गाली देगा, कोई अपमान करेगा, मैं हसूँगा। खूब जोर से खिलखिला कर। कुछ भी हो मै हँसे बिना नहीं रहूँगा। आप अधिक नहीं बस, दो सप्ताह बाद

पायेंगे कि आप दूसरे व्यक्ति हो गये हैं। आप जो दो सप्ताह पहले थे, वह अब नहीं रह गये हैं। आप अपने भीतर भारी परिवर्तन का अनुभव करेंगे। आप अपने आप में गम्भीर और धैर्यवान जायेंगे।

आप से कोई ईर्ष्या करता है। द्वेष करता है। आपकी निन्दा करता है। करने दें, सुनें तो खूब हँसे। इसका परिणाम आपके लिए बड़ा ही सुखद होगा। क्रोधी ईर्ष्यालु कपटी, सन्देही स्वभाव का व्यक्ति कभी भी सुखी नहीं रहता। न सुखी रहता है और न तो किसी को सुखी रहने ही देता है। ऐसे व्यक्ति के प्रति हमेशा उपेक्षा का भाव रखना चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं, इस प्रकार थोड़े–थोड़े बड़े संकल्प करें। आगे बढ़ते–बढ़ते आपका संकल्प साधक के करने जैसा हो जायेगा और अन्त में आप उस परम स्थिति में पहुँच जायेंगे, जहाँ संकल्प द्वारा स्वेच्छा से होशपूर्वक मृत्यु का अनुभव किया जा सकता है। जिस दिन आपको यह प्रतीत हो कि अब मैं संकल्प बल पर स्वेच्छा से शरीर से अलग हो सकता हूँ। स्वेच्छा से पुनः शरीर में वापस भी लौट सकता हूँ तो समझ लें कि आप योग के उस शिखर पर पहुँच गये हैं। जहाँ पहुँच कर एक परम योगी अपने आपको धन्य समझता है इसलिए कि यह प्रक्रिया योग की सर्वोच्च प्रक्रिया है और जिसका परिणाम है होशपूर्वक मृत्यु का अनुभव और जिस दिन उस अनुभव को आप उपलब्ध हो जायेंगे, उस दिन आपके लिए मृत्यु का भय समाप्त हो जायेगा। आपकी दृष्टि में वह हो जायेगी असत्य। आप समझेंगे मृत्यु मात्र एक शब्द है। शब्द के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं और तब पहली बार आपको यह अनुभव होगा कि जीवन मूल्यवान है। उसका प्रत्येक क्षण मूल्यवान है। जीवन शाश्वत है। आदि अन्तहीन है उसका प्रवाह। निश्चय ही वह आपके जीवन का संक्रान्ति काल होगा और वह संक्रान्ति काल आपको इस तथ्य से परिचित करा देगा कि मृत्यु असत्य है और जीवन है सत्य।

***

जबतक शरीर है, तबतक आपके लिए संसार है। शरीर के अस्तित्व के साथ संसार का है अस्तित्व। लेकिन एक योगी को छोड़कर आज तक कोई व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ है जो मरने के बाद आकर यह कहा

हो कि मैं तो भले ही मर गया हूँ इससे क्या होता है संसार तो है। संसार कहाँ मरा है। उसका तो अस्तित्व पूर्ववत् है परन्तु आप अवश्य एक ऐसे व्यक्ति होंगे जो संकल्पपूर्वक स्वेच्छा से शरीर से अलग होकर पहली बार अपने शरीर को निश्चेष्ट प्राणहीन और मृतवत् देखेंगे और देखेंगे शव के रूप में और तब पहली बार आप सोचेंगे कि अरे! यह क्या हो गया? जिस शरीर को अपना समझता था। मैं जिस शरीर के द्वारा संसार में था और था संसार मेरे लिए। उस शरीर के मर जाने के बाद भी मेरा अस्तित्व पूर्ववत् है और संसार का भी। कोई अन्तर नहीं, कोई परिवर्तन नहीं। यह आपके जीवन का दूसरा महत्वपूर्ण संक्रान्ति काल होगा। जो आपके भौतिक जीवन को आध्यात्मिक जीवन बना देगा। जो आपकी जीवन शैली को बदल देगा। जो आपके विचारों को, भावों को और आपकी धारणाओं को, आपकी भावनाओं को, आपकी सोच को आमूल चूल कर देगा परिवर्तित। आप सहज नहीं रह जायेंगे। आपका जीवन भी नहीं रह जायेगा सहज और सरल। आपके भीतर कोई और जन्म ले लेगा। आपको संसार से, समाज से और परिवार से अलग कर देगा पूर्णरूप से। आप संसार, समाज और परिवार के बीच रहते हुए भी नहीं रहेंगे। सब कुछ करते हुए भी कुछ भी नहीं करेंगे। तीनों में से कोई भी आपको नहीं समझेगा, लेकिन आप समझ जायेंगे तीनों को। यह मानव जीवन की परम अवस्था है और इसी परम अवस्था को भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा संन्यास योग और जब आप इस परम अवस्था को उपलब्ध होंगे। उसके बाद आपके लिए वेद, शास्त्र, पुराण, दर्शन उपनिषद आदि सभी धर्म ग्रन्थ सारहीन हो जायेंगे। कोई मूल्य और कोई महत्व नहीं रह जाएगा उनका आपकी दृष्टि में। सब केवल शब्द मात्र प्रतीत होंगे आपको।

***

इस प्रसंग के अन्त में आपको अच्छी तरह जान समझ लेना चाहिए कि मैं 'शब्द' नहीं लिखता हूँ अपना स्वयं का अनुभव लिखता हूँ मैं, अपने मार्ग में हर क्षण अनुभव से गुजरता हूँ। मेरे जीवन का हर क्षण अनुभव है और हर अनुभव मेरे जीवन का एक मूल्यवान क्षण है। मेरी खोज अस्तित्ववादी खोज है और मेरी खोज दृष्टि में मृत्यु क्या है? जीवन क्या

है? आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? मोक्ष क्या है? मुक्ति क्या है? पाप, पुण्य क्या है? ये सब दार्शनिक चिन्तन का विषय नहीं है। अनुभव का विषय है। जो लोग इन विषयों पर विचार करते हैं। चिन्तन मनन करते हैं। पुस्तकें लिखते हैं और देते हैं प्रवचन– वे सब व्यर्थ हैं। उनका कोई मूल्य नहीं है। उनका कोई फल नहीं है और उनसे कोई लाभ भी नहीं है। जो लोग उपुर्यक्त विषयों पर विचार करते हैं तो करते रहें। कई जन्मों तक करते रहें। कुछ भी ज्ञान नहीं होगा उन्हें। जन्म, मृत्यु, पुनर्जन्म, मुक्ति, मोक्ष आदि सदैव उनके लिए 'शब्द' ही बने रहेंगे। कभी नहीं बन सकेंगे अनुभव। फिर विचार करके करेंगे भी भला क्या? विचार तो उनके संबंध में किया जा सकता है जिसे हम जानते हों। लेकिन जो अज्ञात है। इसके संबंध में कोई विचार नहीं हो सकता। हम उसी विषय पर सोच–विचार और चिन्तन, मनन कर सकते हैं। जिसे हम जानते समझते हैं। क्या कभी हम यह सोच सकते हैं जिसे हम जानते तक नहीं। सोचेंगे भला कैसे? उसकी कल्पना भी कैसे करेंगे हम। विचार को छोड़िए कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसकी धारणा भी कैसे हो सकती है। जिसे जानते तक नहीं हम। जीवन को हम जानते नहीं। मृत्यु हम जानते नहीं। तब हम सोच विचार करके भला करेंगे क्या....? इसलिए शुरू से लेकर आज तक धार्मिकों ने और दार्शनिकों ने इन सब विषयों के संबंध में जो कुछ भी लिखा है और कहा है, उसका कोई मूल्य और महत्व नहीं। क्योंकि उन लोगों ने जो कुछ लिखा है और बोला है। वह सब सोच..... सोच..... कर और अनुमान लगा–लगा कर लिखा है और बोला भी है। सब कुछ सोच और अनुमान पर निर्भर है इनका आध्यात्मिक और दार्शनिक ज्ञान। सोच और अनुमान पर लिखने और बोलने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है इन समस्त विषयों पर योग ने जो कुछ भी लिखा है। वह सब अनुभव पर है आधारित उसके अतिरिक्त जो कुछ भी है वह सब कुछ शब्दों का मायाजाल है। शब्दों की है लीला मात्र। क्योंकि योग जो कहता है वह जीवन का अनुभव है। हम सब लोग विचारों में जीवित हैं अनुभव में नहीं। अनुभव में जीता है केवल योगी।

❐

अष्टम आवाहन

एक मुगलकालीन दिव्यात्मा से साक्षात्कार

भगवान विष्णु शेषशैय्या पर लेटे हुए योगनिद्रा में लीन हैं और उस अवस्था में वे जो स्वप्न देख रहे हैं वह सम्पूर्ण विश्व है। भारतीय धर्म और संस्कृति के अनुसार सम्पूर्ण विश्व योगनिद्रा का स्वप्न है। जिस समय योगनिद्रा भंग होगी, उसी के साथ ही स्वप्न भी हो जायेगा भंग। जिसका परिणाम होगा सम्पूर्ण विश्व का नाश। भारतीय धर्म और संस्कृति तो यह भी कहती है कि स्वप्न रूप यह सम्पूर्ण विश्व भगवान की योगमाया की लीला है और उस लीला के पात्र हैं सभी प्राणी और सभी जीव। जिसके फलस्वरूप सभी अपने आपको और अपने स्वरूप को भूल गये हैं। एक प्रकार से गहरी नींद में हैं। भारतीय धर्म और संस्कृति की यह धारणा वास्तव में अपने आपमें महत्वपूर्ण है इसलिए कि मनुष्य मृत्यु नहीं जीवन है। मनुष्य और जीवन एक दूसरे के पर्याय हैं। मृत्यु का भय एक ऐसा कारण है कि मनुष्य को जीवन से भलीभांति परिचित होने ही नहीं देता। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो जीवन की अमृतमयी धारा सर्वत्र प्रवाहित है कण–कण में, श्वास–प्रश्वास में, लेकिन मनुष्य उससे अपरिचित है। इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य किसी गहरी नींद में है। उसके प्राणों की जो चेतना है वह अविकसित है। उसकी शक्ति सचेतन नहीं है।

एक व्यक्ति गहरी नींद में है तो उसे इस बात का किञ्चितमात्र पता नहीं रहता कि "मैं" कौन हूँ? "मैं" क्या हूँ और मेरा नाम क्या है" नींद के गहन अन्धकार में सब कुछ डूब जाता है एकबारगी। संसार समाज और परिवार भी। नींद का पता भी उसे तब चलता है, जब वह जागता है नींद से। नींद में नींद का पता नहीं चलता। नींद का पता चलता है जागने पर। यहाँ एक विचारणीय प्रश्न यह है कि जागने पर नींद का पता किसको चलता है। नींद अच्छी लगी थी? नींद सुखद

थी। नींद में सपने आये थे जो अच्छे भी थे और बुरे भी। इन सबका अनुभव किसे हुआ था? आत्मा को। लेकिन मनुष्य, जीवन से अपरिचित है तो आत्मा से भला कैसे हो सकता है परिचित।

निश्चित ही मनुष्य योगमाया से ग्रस्त होकर गहरी नींद में है। निश्चय ही वह कोई बहुत गहरी आध्यात्मिक नींद है। जिसे आध्यात्मिक सम्मोहन की तन्द्रा भी कहा जा सकता है और सम्भवतः यही एकमात्र कारण है कि मनुष्य को जीवन का कोई पता नहीं है। वह क्या है और वह कौन है? इन दोनों महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर भी उसके पास नहीं है। इसी कारण एक मूर्च्छाग्रस्त जीवन व्यतीत करता है मनुष्य। उसे होश ही नहीं है अपने प्रति। एक प्रकार से यंत्र चालित है वह।

निश्चय ही आपको मेरी ये बातें रूचिकर प्रतीत न हो और यह भी कहना चाहेंगे कि यह सब कैसे हो सकता है। हम मूर्च्छाग्रस्त कैसे हो सकते हैं। कैसी बात करते हैं आप। हमें अच्छी तरह इस बात का ज्ञान है कि जीवन है और उस जीवन को हम जीते हैं। श्वास लेते हैं। सोते बैठते हैं। खाते–पीते हैं जीवन के जितने काम हैं, उन सबको भलीभांति करते हैं। ठीक है आपका कहना अपने आपमें उचित और सत्य है लेकिन अपने विचारों के सन्दर्भ में आपसे यह कहना चाहूँगा कि एक पागल व्यक्ति है। एक शराबी व्यक्ति भी है। वह भी उठता–बैठता है। वह भी चलता–फिरता है। वह भी खाता–पीता है। वह भी रोता–हँसता है। वह भी श्वास लेता है कहने का मतलब यह कि वह भी आपकी ही तरह सब कुछ करता है। लेकिन इससे शराबी को न ही होश में कहा जा सकता है और न तो पागल को ही कहा जा सकता सचेतन। समझ लीजिए बस यही स्थिति है लगभग समस्त मानव जाति की। वह पागल नहीं है और शराबी भी नहीं है। लेकिन किसी अर्थ में वह गहरी नींद में है और एक प्रकार से मूर्च्छित भी और उसी अवस्था में हम सब लोग जी रहे हैं और सारे कार्य भी कर रहे हैं हमारा कोई भी कार्य सचेतन नहीं है। होश में नहीं है। हम प्रेम भी करते हैं तो बेहोशी में ही। हम घृणा करते हैं, हम क्रोध करते हैं और हम झूठ सच भी बोलते हैं तो बेहोशी में ही और यही एकमात्र कारण है कि हम भूल जाते हैं किसी भी कार्य को करके। स्मृति ही नहीं रहती उस कार्य की इसलिए कि वह बेहोशी में किया गया होता है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि पिछले

तीन हजार वर्षों के अन्तर्गत मानव जाति ने पन्द्रह हजार युद्ध किए हैं। क्या यह गहरी नींद में डूबे हुए और मूर्च्छाग्रस्त मनुष्य के लक्षण नहीं है। क्या यह जागे हुए सचेतन मनुष्य का है कार्य? भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन से कहा– हे अर्जुन! ये सभी मेरे हुए हैं पहले से ही। इसका क्या तात्पर्य है? तात्पर्य है कि पहले से ही सोये हुए है।

जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त की सारी की सारी कथा चिन्ता की, दुख की, कष्ट की, पीड़ा की, व्यथा की और रोने कलपने की कथा है। जीवन की लम्बी यात्रा में एक पल के लिए भी न आनन्द उपलब्ध होता है और न तो सुख ही। उसकी एक झलक भी नहीं मिलती जीवन में। क्यों? इसलिए कि हम गहरी नींद में हैं और हैं जीवन के प्रति मूर्च्छाग्रस्त और यही एकमात्र कारण है कि हमारा सारा का सारा जीवन दुःख कष्ट, पीड़ा, व्यथा और तमाम चिन्ताओं की कथा बन कर रह जाता है। इसके अलावा और कुछ नहीं। अन्त में मृत्यु सामने आ जाती है और उसका समापन हो जाता है उसकी गोद में।

***

योगमाया की लीला इतनी विचित्र और रहस्यमयी है कि मानव समाज आध्यात्मिक नींद से जागना ही नहीं चाहता। वह मूच्छाग्रस्त ही ग्रस्त हो रहना चाहता है। यहाँ तक तो बात ठीक है लेकिन संयोगवश कोई जागा हुआ व्यक्ति पैदा हो जाता है अथवा कभीकदा किसी काल में कोई व्यक्ति स्वयं जाग जाता है। उसका सम्मोहन भंग हो जाता है और तन्द्रा भी टूट जाती है तो ऐसे व्यक्ति को हमारा समाज जीने नहीं देता। उसके व्यक्तित्व को सहन नहीं कर पाता। उसकी वाणी से निकले हुए सत्य की चोट, उसे गहरी आध्यात्मिक नींद से जागने के लिए विवश करने लग जाती है इसलिए मानव समाज शीघ्र से शीघ्र किसी न किसी प्रकार उसके अस्तित्व को नष्ट कर देना चाहता है। उसकी हत्या कर देना चाहता है इसलिए कि क्यों वह उसे गहरी नींद से जगाने का प्रयास कर रहा है? क्यों उसकी नींद में बाधा डाल रहे हैं? उसके सिद्धान्त, उसके विचार और उसकी वाणी से निकले हुए शब्द। ऐसे ही समझिए जैसे आप बड़े आराम से गहरी नींद में हो और कोई आकर आपको झकझोर दे और आप जाग जायें तो उस समय आपको कैसा लगेगा। भले ही वह आपका परम मित्र ही क्यों न हो। भले ही आपकी पत्नी ही क्यों न हो। निश्चय ही आप झुंझला उठेंगे और मन ही मन उसे बुरा

भला कहने लगेंगे। सोचेंगे इसी समय आना था मित्र को या पत्नी को जगाने की आवश्यकता थी। आप स्वयं सोच समझ सकते हैं उस समय की अपनी मनः स्थिति को।

जीसस को इसलिए सूली पर लटका दिया गया कि वे जागे हुए व्यक्ति थे। सुकरात को इसलिए जहर दे दिया गया कि वे जागे हुए व्यक्ति थे। मंसूर की गरदन इसलिए काट डाली गयी कि वे जागे हुए व्यक्ति थे। गांधी को इसलिए गोली मार दी गयी कि वे जागे हुए व्यक्ति थे। महावीर और बुद्ध को इसलिए अपमानित होना पड़ा कि वे लोग जागे हुए व्यक्ति थे। राम को वनवास का कष्ट इसलिए झेलना पड़ा कि वे जागे हुए महापुरुष थे। इसी तरह भगवान श्रीकृष्ण को महाभारत काल में इसलिए मानसिक कष्ट झेलना पड़ा और अपमानित होना पड़ा कि वे जागे हुए महात्मा थे। मीरा को विष द्वारा इसलिए मारने का प्रयास किया कि वे एक जागी हुई विदुषी थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती की इसलिए वेश्या द्वारा हत्या की गयी कि वे एक जागे हुए महापुरुष थे।

योगमाया के बन्धनों से मुक्त और गहरी आध्यात्मिक नींद से जागा हुआ व्यक्ति का एकमात्र उद्देश्य होता है कि अन्य लोग भी उसकी तरह जागे। उसकी तरह वास्तविक जीवन से परिचित हों। उसकी तरह ही शाश्वत आनन्द का और परम सुख का अनुभव करें और इतना ही नहीं, उसकी तरह ही मृत्यु को असत्य समझे और जीवन को समझे सत्य। लेकिन जैसाकि मैंने ऊपर लिखा है उसका परिणाम होता है ठीक विपरीत। सच्चे अर्थों में जो सन्त महात्मा और योगी साधक हैं वे जागे हुए लोग है लेकिन उनको जानना समझना और पहचानना अत्यन्त कठिन है। ऐसे महापुरुषों की एकमात्र यही पीड़ा है, यही दुःख और यही कष्ट है कि लोग उनको समझते क्यों नहीं पहचानते क्यों नहीं, सम्भवतः इसलिए कि वे गहरी नींद से जागना नहीं चाहते। गहरी नींद के सुख को ही चरम सुख मानते हैं। गहन आध्यात्मिक निद्रा को योग अनादि सुषुप्ति कहता है यानी अनादि काल से गहन सुषुप्ति अवस्था में लीन है। उसको जागृत होना आवश्यक है। तभी जीव भाव का नाश और भव मुक्ति सम्भव है। यहां यह कहना आवश्यक है कि इसी अनादि सुषुप्ति की अवस्था में मनुष्य का जन्म होता है। मृत्यु भी होती है। रही जीवन की बात, वह तो सुषुप्ति में ही व्यतीत हो जाता है।

आयोजित मृत्यु अनादि सुषुप्ति को भंग करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है मृत्यु के भय का निवारण। इस उपलब्धि से योगी जान लेता है कि मृत्यु का कोई अस्तित्व नहीं है। जो कुछ भी है वह जीवन है। जीवन शाश्वत है। उसकी धारा निरन्तर प्रवाहित होती रहती है निर्विघ्न प्रवाहित। शरीर का मूल्य और महत्व की समझ में आ जाता है और साथ ही समझ में आ जाती है संसार की नश्वरता भी। सब कुछ निस्सार है। यदि सार तत्व है तो मात्र केवल आत्मा। इसका अनुभव योगी की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

आयोजित मृत्यु को योग की भाषा में नरमेध समाधि कहते हैं। यह सर्वोच्च समाधि है। इस समाधि में प्रवेश विरला ही कोई योगी कर पाता है। सभी के लिए सम्भव नहीं। इसलिए कि इसकी प्रक्रिया अत्यन्त जटिल और दुरूह है। कुछ अपना संस्कार था, कुछ सद्गुरु की कृपा थी और कुछ कंकाली माँ की थी प्रेरणा और उनका सहयोग। जिसके फलस्वरूप आयोजित मृत्यु की रहस्यमयी प्रक्रिया में सफल हो सका। सफलता के बाद अभ्यास आवश्यक है। जिन उपलब्धियों की मैंने चर्चा की है, वे तो हैं ही, उनके अतिरिक्त सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि संकल्प बल से, स्वेच्छा से शरीर को त्याग कर सूक्ष्म शरीर द्वारा योगी संचरण विचरण कर सकता है सूक्ष्म जगत में। इतना ही नहीं सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं से स्थापित कर सकता है सम्पर्क भी। अपने अभ्यास काल में मैंने अनुभव किया कि संकल्प जितना दृढ़ और शक्तिशाली होगा उतना ही सूक्ष्म शरीर चैतन्य और क्रियाशील होगा और उसी के अनुसार उसकी गति भी होगी।

ध्यानास्थ बैठकर नाभि पर मन को केन्द्रित कर जैसे ही मैं संकल्प करता था उसी क्षण स्थूल शरीर से मेरा सूक्ष्म शरीर धीरे–धीरे अलग होने लग जाता था। सूक्ष्म शरीर में मुझे बड़ा ही हल्कापन और साथ ही एक विचित्र शान्ति का भी होता था अनुभव। सूक्ष्म शरीर की अपनी कई विशेषताएँ हैं।

सूक्ष्म शरीर की विशेषताएँ– पहली विशेषता तो यह है कि इच्छानुसार उसकी गति बढ़ाई और घटाई जा सकती है। दूसरी विशेषता यह है कि

कोई भी भौतिक वस्तु या पदार्थ उसके मार्ग में बाधक नहीं बन सकता। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से मुक्त होता है वह। इसलिए पृथ्वी के किसी भी भाग में निर्बाध गति से तत्काल पहुँच सकता है। एक बात सुनकर आप आश्चर्यचकित हो उठेंगे, वह यह कि पृथ्वी पर जितने जीवित मनुष्य हैं, उनसे कहीं अधिक पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की परिधि में सूक्ष्म शरीरधारी विभिन्न प्रकार की आत्माएँ विद्यमान हैं। जो पुनः शरीर धारण करने के लिए बराबर प्रयासरत रहती है। उन्हीं में बहुत सी उच्चकोटि की दिव्यात्माएँ और योगात्माएँ भी हैं। जो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की सीमा लांघकर पारलौकिक जगत में प्रवेश करने के लिए व्याकुल हैं।

एक योगात्मा से साक्षात्कार–ऐसे ही एक योगात्मा से मेरा साक्षात्कार हुआ। उस समय अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा सूक्ष्म जगत के एक सुरम्य और रमणीक वातावरण में विचरण कर रहा था मैं। चारो ओर मनोहारी प्राकृतिक दृश्य था। जिनका अवलोकन करते हुए मैं आगे बढ़ रहा था और तभी मेरी दृष्टि पड़ी एक सूक्ष्म शरीरधारी महापुरुष पर। निश्चय ही वे कोई दिव्य पुरुष थे। उनके शरीर से दिव्य अलौकिक आभा प्रस्फुटित हो रही थी। एक वृक्ष के नीचे सिर झुकाए और नेत्र बन्द किए बैठे हुए थे वे। मेरी उपस्थिति का सम्भवतः आभास लग गया उनको। सिर उठा कर देखा और देख कर मन्द–मन्द मुस्कराये। ज्ञात हुआ कि पिछले दो सौ वर्ष से रह रहे हैं महाशय सूक्ष्म जगत में। आये थे मेरी ही तरह सूक्ष्म जगत का भ्रमण करने, लेकिन ऐसा फँसे कि वापस ही न लौट सके अपने शरीर में। आश्चर्य हुआ मुझे। कैसे हुआ ये सब?

महापुरुष का नाम था केशव भट्ट। योग साधक थे केशव भट्ट। खेचरी सिद्धि थी उन्हें! काशी के दशाश्वमेध घाट के ऊपर एक मकान में रहते थे। गुरु की सेवा करते हुए साधना में आगे बढ़ते जा रहे थे केशव भट्ट। गुरु का नाम था रत्न देव। वीर शैव सम्प्रदाय के अनुयायी थे वह। आकाश मार्ग से प्रायः भ्रमण किया करते थे रत्न देव। अपने शिष्य को पूर्ण योगी बना देना चाहते थे वह। क्या पूर्ण योगी बना पाये अपने शिष्य को वह? नहीं! व्याघात उत्पन्न हो गया न।

जो मेरा उद्देश्य था, वही उद्देश्य था केशव भट्ट का भी। सूक्ष्म जगत में निवास करने वाले दिव्यात्माओं और महात्माओं के साथ सत्संग

और ज्ञानार्जन। केशव भट्ट जब शरीर छोड़कर सूक्ष्म शरीर द्वारा सूक्ष्म जगत के भ्रमणार्थ निकलते थे, उस समय उनके शरीर की रक्षा उनके गुरु करते थे। नियम के अनुसार केशव भट्ट निश्चित अवधि में लौट आने का संकल्प करते थे और उसी अवधि में लौट भी आते थे वह अपने शरीर में। एक बात यहाँ बतला देना आवश्यक है कि सूर्योदय के पूर्व उषाकाल का जैसा प्रकाश होता है, वैसे ही प्रकाश से भरा रहता है सदैव सूक्ष्म जगत। समय का ज्ञान नहीं होता। वहाँ काल का प्रभाव अति मन्द है। जिस अवस्था में योगी सूक्ष्म जगत में प्रवेश करता है। बस समझिए उसी अवस्था का होकर रह जाता है वह। जो योगी अपने जीवन काल का अधिक समय सूक्ष्म जगत में व्यतीत करता है उसके शरीर पर काल का प्रभाव मन्द गति से पढ़ता है। दीर्घकाल तक योगी के जीवित रहने का एकमात्र यही रहस्य है। वैसे मैंने अपनी पुस्तकों में यथा प्रसंग सूक्ष्म शरीर की चर्चा की है। यहाँ सूक्ष्म शरीर के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात बतलाना चाहता हूँ और वह यह कि सूक्ष्म शरीर में दस प्रतिशत पृथ्वीतत्व, तीस प्रतिशत मनस्तत्व और शेष साठ प्रतिशत प्राणतत्व रहता है। दस प्रतिशत पृथ्वीतत्व रहने के कारण ही कभी–कभी सूक्ष्म शरीरधारी आत्मायें दिखलायी दे जाती हैं लोगों को और वह भी कुछ क्षणों के लिए ही। जैसे स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर समाहित रहता है उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर में मनोमय शरीर भी रहता है समाहित। लेकिन प्रतिशत कम होने के कारण इसमें गति नहीं होती और न तो होती है ऊर्जा ही। उसको विशेष यौगिक क्रियाओं से बढ़ाना पड़ता है साधक को। जैसाकि संकेत किया जा चुका है सूक्ष्म जगत की सीमा के पार, पारलौकिक जगत है और उसके पार है अन्य विशिष्ट लोक–लोकान्तर।

सूक्ष्म शरीर में इतनी शक्ति नहीं है कि वह सूक्ष्म जगत की सीमा पारकर पारलौकिक जगत में प्रवेश कर सके और प्रवेश कर सके अन्य लोक–लोकान्तरों में। सूक्ष्म शरीर की मर्यादा सूक्ष्म जगत की सीमा पर ही समाप्त हो जाती है जैसे स्थूल शरीर की मर्यादा समाप्त हो जाती है महाश्मशान में। सूक्ष्म जगत से आगे की यात्रा मनोमय शरीर की है यात्रा। मनोमय शरीर में दस प्रतिशत प्राणतत्व, सत्तर प्रतिशत मनस्तत्व और बीस प्रतिशत आत्मतत्व रहता है। मनोमय शरीर को उपलब्ध होने

के लिए अधिक से अधिक संकल्प बल और अधिक से अधिक मनोबल होना चाहिए और यह तभी सम्भव है जब विशेष यौगिक क्रियाओं द्वारा प्राण का लय मन में और मन का लय संकल्प में हो जाता है। इस अवस्था में मनोमय शरीर अधिक से अधिक ऊर्जावान हो जाता है और वही मनो ऊर्जा पारलौकिक अथवा लोक–लोकान्तरों की यात्रा में गति प्रदान करती है।

सूक्ष्म शरीर से अधिक गति होती है मनोमय शरीर की। समझ ले कि मनोमय शरीरधारी योगी एक मिनट में हजारों मील की यात्रा कर सकने में समर्थ होते हैं। भू–मण्डल का समय त्रिकाल में विभक्त है लेकिन अन्य जगत अथवा अन्य लोक–लोकान्तरों के समय, केवल 'समय' है। न भूत है न भविष्य है और न तो है वर्तमान। काल की गति समान है।

समस्त विश्व ब्रह्माण्ड में छः मण्डल हैं, भू–मण्डल, सूक्ष्म मण्डल मनोमय मण्डल, देव मण्डल, आत्म मण्डल और ऋषि मण्डल। प्रत्येक मण्डल में अनेक जगत, अनेक लोक–लोकान्तर हैं। सभी में अलग–अलग काल की गति है। **(विशेष अध्ययन के लिए शीघ्र प्रकाश्य "परलोक के खुलते रहस्य")** सदैव की भांति केशव भट्ट उस दिन भी सूक्ष्म जगत की यात्रा पर निकल पड़े। एक बार वे सूक्ष्म जगत की सीमा पार करना चाहते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी पारलौकिक जगत में प्रवेश करने की। इसके लिए गुरु के निर्देश में साधना भी की थी उन्होंने। लेकिन जो होना था वही हुआ। सीमा पर पहुँचते ही योगी का मनोबल शिथिल पड़ने लगा। जिसके परिणामस्वरूप वह न आगे जा सकता था और न तो पीछे ही लौट सकता था। बड़ी विषम स्थिति थी योगी की। इधर समयावधि बीत जाने पर स्वामी रत्नदेव चिन्तित हो उठे। बार– बार केशव भट्ट के शरीर को टटोलते और बार–बार नाभि का करते स्पर्श जीवन का चिन्ह धीरे–धीरे लुप्त होता जा रहा था। बस सूक्ष्म शरीर को वापस लाने का एक ही मार्ग था और वह था कुमारी कन्या द्वारा नाभि का स्पर्श। गुरुदेव; निकल पड़े कुमारी कन्या की खोज में। कहां मिलती उनको कुमारी कन्या? उस समय बनारस की सामाजिक व्यवस्था अत्यन्त जटिल थी। समाज के नियम बड़े ही कड़े थे। कौन देता अपनी कन्या रात के समय और वह भी अक्षता और कुमारी। जब सिर झुकाए म्लान हत्श्री वापस लौटे स्वामी रत्नदेव, तबतक शिष्य का निर्जीव हो चुका

था पार्थिव शरीर। शव में परिणति हो चुकी थी काया। न जाने कब का रजत रज्जु टूट चुका था दोनों शरीर के बीच से। लाचार विवश होकर मूकवत निहारते रहे गुरु अपने नीले पड़ गये शिष्य के शरीर को।

करुणा में डूबे हुए कातर स्वर में बोले केशव भट्ट क्या करूँ बन्धु! पूरे दो सौ वर्ष से इसी स्थिति में हूँ। मनोमय जगत में प्रवेश करने की क्षमता मन में नहीं है। अभ्यास की आवश्यकता है और अभ्यास स्थूल शरीर में ही सम्भव है। इसलिए पुनर्जन्म की प्रतीक्षा है। लेकिन मित्र! प्रतीक्षा करके करूँगा क्या? मुझ जैसी ही योगात्मा का पुनर्जन्म भी तो शीघ्र नहीं होता। योग्य गर्भ तो चाहिए न। आप ही कुछ करे मित्र।

भला मैं आपके लिये क्या कर सकता था? बस, सान्त्वना देता रहा। जब भी मैं सूक्ष्म शरीर द्वारा सूक्ष्म लोग की यात्रा पर जाता तो अवश्य एक दो बार मिलता केशव भट्ट से। कहने की आवश्यकता नहीं। केशव भट्ट के माध्यम से अनेक सूक्ष्म शरीरधारी दिव्य आत्माओं से मेरा परिचय हो गया। जिनके द्वारा सभी विषयों का सूक्ष्म ज्ञान और तत्व ज्ञान तो प्राप्त हुआ ही, इसके अतिरिक्त विशेष मानवेतर अनुभव भी हुए मुझे। एक बार एक ऐसे महात्मा से परिचय हुआ जो मनोमय जगत से सूक्ष्म जगत होते हुए पृथ्वी पर पुनर्जन्म के लिए जा रहे थे। गर्भ निश्चित हो चुका था लेकिन अभी कुछ समय शेष था और उस कुछ समय को वह व्यतीत कर रहे थे सूक्ष्म जगत में। महात्मा का नाम था अग्निवेश। गुरु प्रदत्त नाम था वह। साधना क्षेत्र के बड़े ही अनुभवी और आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न थे अग्निवेश महाशय।

सूक्ष्म जगत में कार्य सिद्धि-पूरे चार सौ साठ वर्ष मनोमय लोक में रहने के पश्चात् पुनर्जन्म ग्रहण करने जा रहे थे महात्मा अग्निवेश। दीर्घकाल तक मनोमय जगत में रहकर उन्होंने विशेष सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त किया था अध्यात्म से संबंधित। मनोमय लोक के ऊपर आत्मलोक है। उसमें प्रवेश पाने के लिए योगी को आत्म साधना करनी पड़ती है। सभी प्रकार की साधनाएँ स्थूल शरीर साध्य है। पुनः पुनर्जन्म ग्रहण कर आत्म साधना करना ही एकमात्र उद्देश्य था उस महात्मा का।

महात्मा अग्निवेश पूरे तीन सौ वर्ष रह चुके थे सूक्ष्म जगत में। उस जगत का उनका अपना विशिष्ठ अनुभव था। उनका कहना था कि

भौतिक जगत कर्म प्रधान है और सूक्ष्म जगत है भाव प्रधान। भौतिक जगत में जप, तप, पूजा, पाठ, हवन देवोपासना आदि के लिए कर्म की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के भौतिक कार्यों की सिद्धि और सफलता के लिए भी कर्म की पड़ती है आवश्यकता। फिर भी सफलता सन्दिग्ध ही रहती है। चाहे धार्मिक कार्य हो या हो भौतिक कार्य। उसमें सफलता प्रायः सन्दिग्ध ही रहती है। फल मिलेगा कि नहीं। यह भावना बराबर मन में उठती है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि भौतिक जगत में किसी भी प्रकार के कर्म में सफलता तभी निश्चित होती है, जबकि कर्म में संकल्प शक्ति, मनः शक्ति यानी मन की एकाग्रता और भाव अथवा भावना संयुक्त हो अन्यथा नहीं।

सूक्ष्म जगत में ऐसा कुछ भी नहीं है। केवल मन को एकाग्र कर संकल्प करिये और कार्य की सफलता का भाव अपने आपमें उत्पन्न करिये। फिर क्या? तत्काल उस कार्य को पूर्ण होने में विलम्ब न होगा। भले ही वह कार्य धार्मिक हो या हो भौतिक। समयानुसार उसमें सफलता अवश्य मिलेगी। विशेष कर्मकाण्ड की आवश्यकता ही नहीं। हाँ! यहाँ एक बात अवश्य जान लेना चाहिए कि सूक्ष्म जगत में वे ही कार्य सफल होते हैं जो नियति, प्रकृति और संस्कार के अनुकूल होते हैं। इसलिए इस दिशा में खूब समझ बूझ कर कदम उठाना चाहिए। अन्यथा हानि की सम्भावना अधिक हो जाती है। सूक्ष्म जगत की एक विशेषता यह भी है कि जो संकल्प करके उसमें प्रवेश करिए। अवश्य वह संकल्प पूर्ण होगा इसमें सन्देह नहीं। सच बात तो यह है कि सूक्ष्म जगत मानव जीवन की खुली हुई वह पुस्तक है। जिसमें आप किसी का भी सम्पूर्ण जीवन गाथा पढ़ सकते हैं। किसी का भी आन्तरिक रहस्य जान समझ सकते हैं। कौन क्या करने वाला है? कौन क्या करेगा? कौन क्या कर चुका है? इन तीनों महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर आपको एक क्षण में हो जायेगा उपलब्ध? वहां धरती और धरती पर रहने वाली मानव जाति का पूरा का पूरा लेखा जोखा विद्यमान है। आप अपनी योग्यता के अनुसार उस लेखा– जोखा को जान समझ सकते हैं इसमें सन्देह नहीं।

अब एक और आश्चर्यजनक विशेषता बतलाता हूँ मैं। महात्मा बोले– सूक्ष्म जगत में विचरण करने वाले योगी के शरीर पर काल का प्रभाव

मन्द गति से पड़ता है। कभी वह अस्वस्थ भी होता है तो समझ लेना चाहिए कि उसके स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर के बीच सामजंस्य स्थापित नहीं हो पा रहा है। सामंजस्य होते ही वह स्वस्थ हो जाता है अपने आप। अब और आप सुनिए सूक्ष्म जगत में इच्छाशक्ति भी प्रबल हो जाती है। जिसके फलस्वरूप योगी अपनी इच्छाशक्ति का आश्रय लेकर तत्काल सूक्ष्म जगत में अपने रहने के लिए अनुकूल व्यवस्था कर लेता है। थोड़ा रूक कर महात्मा आगे बोले– आप सामने देखिए, जो कुटिया जो आश्रम और जो झरने और सुरम्य वाटिकाएँ दृष्टिगत हो रही हैं। वे सब के सब योगियों की इच्छा सृष्टि है। यह सब देख सुनकर आश्चर्य चकित होना पड़ा मुझे एकबारगी। सूक्ष्म जगत वास्तव में अत्यन्त रमणीक और प्राकृतिक सुषुमाओं से भरा है। वहां न भूख प्यास लगती हैं। न तो किसी अन्य वस्तुओं की ही पड़ती है आवश्यकता। यदि वहां कुछ है तो वह है पूर्ण तृप्ति, पूर्ण शन्ति और पूर्ण आनन्द। जो भौतिक जगत की कल्पना से परे है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि संसार में जो अमानवीय और भयानक घटना घटती है। वह सूक्ष्म जगत में न जाने की कब की घट चुकी होती है। इसी प्रकार मनुष्य के जीवन में जो कुछ शुभ अशुभ होने वाला होता है और जो भी रोग शोक उत्पन्न होने वाला है और इसी प्रकार जो भी घटना उसके जीवन में घटने वाली होती है। उन सबका प्रारूप बहुत पहले ही तैयार हो चुका रहता है सूक्ष्म जगत में।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि महात्मा अग्निवेश के माध्यम से अनेक उच्चकोटि की दिव्य विदेही आत्माओं के सम्पर्क में आया मैं। सम्पर्क प्रगाढ़ होने के पश्चात् मैंने यह अनुभव किया कि वे विदेही आत्माएँ मनुष्य के प्रति सदैव कल्याणकारी और शुभ भावना रखती हैं। जो लोग बुद्धिमान, विद्वान, प्रज्ञावान हैं और जो लोग उच्च विचार रखते हैं और मनीषी हैं और उसी प्रकार जो लोग धर्म, संस्कृति, जप, तप, साधना उपासना आदि में रूचि रखते हैं। ऐसे लोगों से वे दिव्य विदेही आत्माएँ बराबर बनाएं रखती हैं मानस स्तर पर सम्पर्क। इस प्रकार की दिव्य विदेही आत्माओं द्वारा मुझे समय–समय पर अपने बौद्धिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में बराबर योगदान और सहयोग प्राप्त होता रहा और मिलती रही बराबर प्रेरणा भी। आज भी लगभग वैसी ही स्थिति है। अधिक तो नहीं,

फिर भी कभीकदा सूक्ष्म जगत की यात्रा करता हूँ तो वे सभी दिव्य विदेही आत्माएँ मुझे देखकर प्रसन्न और हर्षित होती है और मेरे किसी भी कार्य को साकार करने के लिए हो उठती हैं व्याकुल। कोई भी अपनी समस्या हो वे स्वयं समझ जाती है और बिना कहे उसे हल करने का प्रयास करने लग जाती है। आध्यात्मिक भाषा में इसे कहेंगे नैसर्गिक प्रेम।

***

एक प्रकाण्ड विद्वान की मृतात्मा की दारुण कथा– मेरे एक अन्तरंग मित्र थे। नाम था जगदीश पाण्डेय। पाण्डेयजी शिवकुमार संस्कृत विद्यालय में अध्यापक थे और रहते थे नगवां में। उनका मकान गंगा के किनारे अत्यधिक एकान्त स्थान में था। शान्ति की बात तो पूछिए मत। इतनी अधिक शान्ति थी वहां के वातावरण में कि बतलाया नहीं जा सकता। मेरी साधना और चिन्तन मनन के लिए अनुकूल था वह रमणीक स्थान। पाण्डेय जी का मकान दो मंजिला था। ऊपर की मंजिल के बड़े से कमरे में अपना आसन जमा लिया मैंने। पाण्डेय जी का बृहद परिवार गांव में रहता था इसलिए कोई परेशानी नहीं थी। सरल और सहृदयी प्राणी थे पाण्डेय जी। मुझे बहुत मानते थे। रात्रि में स्वयं भोजन बनाते अपने खाते और मना करने पर भी मुझे भी खिलाते। उन्होंने ने यह कभी नहीं पूछा कि मैं भीतर से अपना कमरा बन्द कर क्या करता हूँ। उनसे कोई मतलब नहीं।

***

उन दिनों मैं एक उच्च स्तर की साहित्यिक संस्था से जुड़ा हुआ था। जिसके संरक्षक कई दिग्गज महापुरुष लोग थे। जिनके बीच रहकर मैं अपने आपको गौरवान्वित समझता था। मेरा कार्य था सभी विषयों से संबंधित प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों और पाण्डुलिपियों का गहन अध्ययन करना। उनका भावार्थ समझना और उसके आधार पर नोट्स तैयार करना। वैसे तो बड़ा ही श्रम साध्य कार्य था लेकिन मेरे लिए ज्ञानवर्धक ही हो रहा था सिद्ध।

***

सांझ का समय था। सावन भादो का महीना। हल्की बारिश हो रही थी। शान्त वातावरण। अपने कमरे में अकेला बैठा मैं एक अति

प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक के विषय को समझने का कर रहा था प्रयास बड़ा ही जटिल और दुरूह था विषय। अबतक मैं सैकड़ों बार उस ज़टिल पुस्तक के सड़े गले पन्ने उलट–पुलट चुका था। हाँ! यह तो बतलाना भूल ही गया था मैं और वह यह कि उस प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक का मुख्य विषय था– "हम और हमारा व्यक्तित्व" पुस्तक का नाम क्या था? यह नहीं बतला सकता मैं। क्योंकि प्रारम्भ के कई पृष्ठ बिलकुल ही गल गये थे और फट भी गये थे। पुस्तक का लेखक कौन था? यह प्रश्न भी उन्हीं सड़े गले पन्नों में हो गया था लापता। पुस्तक में एक स्थान पर लिखा था– 'हम' कभी भी नहीं मरता। व्यक्तित्व का कभी भी नाश नहीं होता। ये दोनों शब्द अति महत्वपूर्ण थे और जिनके भीतर कोई अज्ञात रहस्य भरा हुआ था इसमें सन्देह नहीं।

वह कौन था? शायद रात के दो बजे थे। मैंने उठकर पानी पीया और गिलास टेबल पर रखकर फिर दत्तचित होकर लीन हो गया पुस्तक में। विषय ही ऐसा था कि पुस्तक छोड़ने का मन ही नहीं करता था और तभी कहीं टन्–टन् कर दो का घंटा बजा और मेरी एकाग्रता भंग हो गयी उसी के साथ। फिर उठ कर एक लम्बी अंगड़ाई ली और सामने खिड़की के बाहर देखा। बारिश ने अबतक गति पकड़ ली थी। चारो ओर गहरा सन्नाटा बिखरा हुआ था। काफी थक गया था। अब सोने की इच्छा हो रही थी लेकिन क्या मैं सो सका। नहीं बन्धुवर नहीं! चारपाई तक पहुँचने का अवसर ही नहीं मिला मुझे। कुर्सी से उठा ही था कि एक गम्भीर स्वर ने चौंका दिया मुझे एकबारगी। अपने आप आँखे ऊपर उठ गयीं। देखा सामने एक काफी लम्बा–चौड़ा भीमकाय व्यक्ति खड़ा था। उसकी मुद्रा गम्भीर थी। आँखों में तेज था और चेहरे पर असीम शान्ति थी। कभी वह काफी सुन्दर रहा होगा लेकिन उस समय उसके शरीर पर सौन्दर्य की छाया मात्र थी। शरीर पर एक लम्बा लबादा था और कुछ नहीं। बड़ा ही रहस्यमयी व्यक्ति लगा मुझे वह। भौंचक्का सा न जाने कबतक उसकी ओर देखता रहा मैं।

क्या आप जानते हैं– गम्भीर स्वर में कह रहा था वह रहस्यमय व्यक्ति– तुम्हारे सामने जो किताब है उसे स्वयं मैंने लिखा है। मैं उसका

लेखक हूँ। क्या कहा आपने? आप.....आप लेखक हैं.....। शायद मैं बौखला सा गया था उस समय। आश्चर्य, भय और कौतूहल के मिले–जुले भाव मेरे मन में उभर आये थे। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

मैंने कुछ बोलना चाहा और कुछ कहना चाहा, लेकिन मुँह से आवाज न निकल सकी। शब्द कण्ठ में ही अटक कर रह गया जैसे। वह रहस्यमय व्यक्तित्व पुनः रहस्यमय ढंग से कहने लगा– मेरा नाम जॉन पाल है। मैं क्रिश्चियन धर्म से सम्बन्ध रखता हूँ। मेरा धर्म ग्रन्थ बाइबिल है। मैं पूर्णरूप से अपने धर्म का अनुयायी था। मेरा जन्म कोलम्बो में एक गरीब ईसाई परिवार में हुआ था। बड़ा होने पर मैं माल की ढुलाई का काम करने लगा। हर शुक्रवार को चर्च जाता था। मोमबत्ती जलाता, प्रभु से अपने लिए प्रार्थना करता, लेकिन कोई लाभ नहीं। जीवन की कड़वाहट दूर नहीं हुई। धीरे–धीरे अपने धर्म के प्रति आस्था डावाँडोल होने लगी। एक युवा व्यक्ति क्या–क्या चाहता है? क्या होना चाहता है? क्या बनना चाहता है और वह क्या–क्या सपने देखता है? आप स्वयं एक युवक हैं समझ सकते हैं पर महाशय मेरी धर्मनिष्ठा ने मेरे लिए कुछ भी नहीं किया। पूरी तरह निराश हो गया मैं। क्या करूँ? क्या न करूँ? अन्त में आत्महत्या करने का निर्णय कर लिया मैंने। संयोग ही कहिए इसे उसी मानसिक स्थिति में मेरी भेंट अचानक एक बौद्ध भिक्षु से हुई। उसका नाम था भिक्षु कीर्ति आनन्द। वह युवा था। उसके चेहरे पर अपनी साधना और अपने धर्म की चमक थी। उसके व्यक्तित्व से काफी प्रभावित हो गया मैं। उससे अज्ञात रूप से कौन सी ऐसी प्रेरणा मिली कि उसका बौद्ध शिष्य बन गया मैं और बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया मैंने। मेरा नाम रखा गया बौद्ध धर्म के अनुसार आनन्द भिक्षु और मंत्र दिया गया "मणि पद्में हूँ" जिसके निरन्तर जप से मेरे मन को और मेरी आत्मा को भरपूर शान्ति प्राप्त हुई। जो भौतिक वासनाएं थी वे भी अपने आप हो गयी विसर्जित। मेरी बाहरी और भीतरी दोनों अवस्थाएँ पूरी तरह अब परिवर्तित हो चुकी थीं। समुद्र तट पर अपने गुरु के साथ प्रायः साधना में ही समय व्यतीत करने लगा था। कभी–कभी विचित्र अनुभव होता था। निश्चय ही वह साधना का ही सद्परिणाम था। कुछ समय बाद श्रीलंका के धम्मसंघ का सदस्य भी बन गया मैं और भिक्षु

कीर्ति आनन्द के साथ मैंने दक्षिण–पूर्व एशिया की यात्रा की और अन्त में भारत पहुँचा। वहां भिक्षु कीर्ति आनन्द का साथ छूट गया। वे तिब्बत की ओर चले गये और मैं भारत भ्रमण करने लगा। अनेक धार्मिक स्थानों पर गया और अनेक आध्यात्मिक स्थानों पर थोड़ा समय रहा भी, लेकिन मेरी आत्मा जो चाहती थी वह प्राप्त हुआ वाराणसी में। अबूझ सी शान्ति और विचित्र आत्म सुख। वाराणसी के निकट सारनाथ में मेरी व्यवस्था हो गयी रहने की एक बौद्धाश्रम में। उसी बौद्धाश्रम में एक बौद्ध भिक्षुणी भी रहती थी बर्मा की थी वह। नाम था सुजाता। आयु यही पच्चीस के आसपास। गोरा शरीर और सुगठित भी। बड़ी–बड़ी आँखें, घने काले बाल किन्तु काफी छोटे–छोटे। गले में किसी चमकीली वस्तु की माला और शरीर पर कषाय वस्त्र बड़ा ही आकर्षक व्यक्तित्व था सुजाता का। बौद्धधर्म के आध्यात्मिक स्वरूप की साक्षात् प्रतिमा थी वह बाल भिक्षुणी, इसमें सन्देह नहीं। प्रथम दर्शन में ही आकर्षित और मोहित हो गयी थी मेरी आत्मा उसके प्रति। सबसे बड़ी बात थी कि बहुत कम बोलती थी सुजाता। प्रायः गम्भीर ही रहती थी वह। आवश्यकता पड़ने पर जब कभी बोलती भी तो ऐसा लगता था कि मानो रजनीगंधा के फूल झर रहे हों। वह ब्रह्मचारिणी थी। वासना और कामना की कहीं कोई झलक नहीं। कहीं कोई ताप या उत्ताप नहीं। चेहरे पर साधना का अलौकिक तेज, जो किसी को भी अपनी ओर आकर्षित करने के लिए पर्याप्त था। मैं तो आकर्षित हो ही गया था सुजाता भी आकर्षित हो गयी थी मेरे सुगठित सौम्य शान्त और निर्विकार व्यक्तित्व से इसमें सन्देह नहीं।

आप समझ सकते हैं कि दो आकर्षण टकराते हैं तो उसका परिणाम शुभ भी होता है और अशुभ भी। अशुभ तब होता है जब वह वासनाजन्य होता है, वैसा ही हुआ। हम दोनों का आकर्षण और प्रत्याकर्षण न जाने कब और कैसे वासनाजन्य हो गया। जिसका शोचनीय और दुःखद परिणाम यह हुआ कि सुजाता गर्भवती हो गयी। हम दोनों बुद्धिष्ठ थे। भगवान तथागत के शरणागत थे। विवेक और बुद्धि से काम लिया। संभव है कोई दिव्य बुद्धिष्ठ आत्मा का आगमन होने वाला हो। शायद तथागत की प्रेरणा हो इसमें लेकिन बौद्धधर्म का संन्यास मार्ग क्या इस बात को स्वीकार करेगा। नहीं, कभी नहीं। उसके तिरस्कार का पात्र तो बनना निश्चित था। हम दोनों कौशाम्बी चले गये। वहां एक विधवा बौद्ध भिक्षुणी

ने आश्रय दिया और उसी के निवास पर एक सुन्दर शिशु को जन्म दिया सुजाता ने। निश्चय ही शिशु के रूप में कोई दिव्य आत्मा थी इसमें सन्देह नहीं। लोग गृहस्थ से संन्यास ग्रहण करते हैं, लेकिन यहां उल्टा ही हुआ। शिशु जन्म के बाद भिक्षुणी के आदेशानुसार हम दोनों गृहस्थ धर्म स्वीकार कर पति–पत्नी बन गये। फिर भी बौद्ध धर्मावलम्बी बने रहे। भगवान तथागत के पवित्र चरणों में अर्पित रहे और समर्पित रहे उस महान आत्मा के प्रति। कौशाम्बी में रहना अब उचित नहीं था। पुनः वाराणसी आ गये। जीवकोपार्जन का साधन खोजने लगा। एक महीने के अन्दर ही अभावग्रस्तता का प्रभाव पड़ने लगा था हम सब पर। शिशु के दूध की समस्या सबसे अधिक परेशान करने लगी। हम दोनों तो भूख प्यास सहन भी कर सकते थे, लेकिन, वह नवजात शिशु के लिए सम्भव नहीं था। भगवान तथागत की कृपा से एक विद्वान ब्राह्मण ने आश्रय दिया मुझे और मेरे परिवार को। वे काशी के दशाश्वमेध मुहल्ले में रहते थे। नाम था कवीन्द्राचार्य सरस्वती। अब थोड़ा उनके संबंध में आपको बतला देना आवश्यक है। फ्रेन्च पर्यटक वर्नियर काशी आने पर उनसे मिला था और काफी प्रभावित भी हुआ था उनके व्यक्तित्व से। उस समय काशी में बहुत से विद्यालय थे। जिनमें ब्राह्मण निरन्तर पठन–पाठन किया करते थे। प्रत्येक अध्यापक के पास पन्द्रह–बीस ब्राह्मण विद्यार्थी रहते थे। वे सभी ब्राह्मण विद्यार्थी पहले व्याकरण पढ़ते थे और उसके बाद पुराण, दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि का अध्ययन करते थे।

कविन्द्राचार्य सरस्वती काशी के मूर्धन्य विद्वान थे। सभी गणमान्य लोग उनका आदर और सम्मान करते थे। शहर के बाहर एक रईस का काफी लम्बा–चौड़ा बाग था उसी बाग में अपने विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। उनका एक विशाल पुस्तकालय भी था। जिसमें सभी विषयों की पुस्तकें थीं। स्वयं कवीन्द्राचार्य सरस्वती ने कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी थीं। जिनमें (1) कवीन्द्रकल्पद्रुम (2) दश कुमार चरित्रम् की टीका (3) योग भास्कर योग (4) 'हंसदूत' काव्य आदि उनके ग्रन्थ प्रसिद्ध थे। सरस्वतीजी ने मुझे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया था। हम दोनों प्राणी उनकी खूब सेवा करते। उन्होंने पढ़ाना शुरू किया। कुछ ही समय में संस्कृत साहित्य, दर्शन, वेद, वेदांग, योग आदि में निष्णात् हो गया मैं।

16वीं शताब्दी का अन्त था वह। निजाम शाही राज्य के ऊपर उस समय सम्राट शाहजहां का अधिकार हो गया था। इसलिए गुरुदेव सरस्वती अपना पूर्व स्थान त्याग कर वरुणा नदी के तट पर एक बगीचे में रहने लगे जो आगे चलकर वेदान्ती बाग के नाम से प्रसिद्ध हुआ काशी में। उस समय काशी, गया और प्रयाग इन तीनों धर्म तीर्थों को त्रिस्थली कहते थे। त्रिस्थली के यात्रियों के ऊपर मुगल सम्राट ने कर लगा दिया था। अपनी विद्वद्मण्डली को लेकर कवीन्द्राचार्य सरस्वती दिल्ली पहुंचे। उनका उद्देश्य था 'त्रिस्थली' पर लगे कर को हटाने का सम्राट से अनुरोध करना। कवीन्द्राचार्य के ओजस्वी भाषण से काफी प्रभावित हुआ सम्राट। प्रसन्न होकर कवीन्द्राचार्य को सर्वविद्या निधान की उपाधि ही नहीं दी बल्कि दो हजार रूपए वार्षिक पेन्शन की भी व्यवस्था कर दी उसने उस महाविद्वान के लिए। विद्वद्मण्डली के सदस्यों को पाँच–पाँच अशर्फियाँ दी गयी। मुझे भी प्राप्त हुई पाँच अशर्फियाँ। उससे मैंने काशी में मकान बनवाया अपने लिए। गुरुकृपा से काशी के विद्वद्मण्डली में मेरा नाम भी सम्मान के साथ लिया जाने लगा था। हाँ! एक बात बतलाना तो मैं भूल ही गया था और वह यह कि गुरुदेव ने मेरा नया नाम संस्करण किया था शिवेन्द्र सरस्वती। गुरुदेव ने 1670 ई0 में शरीर त्याग किया उनके बाद शिष्य रूप में मेरी अत्यधिक ख्याति हुई चतुर्दिक। अबतक मेरा पुत्र भी बीस वर्ष का युवक हो चुका था। उसका नाम रखा गया था ब्रजेन्द्र सरस्वती। यह नाम गुरुदेव ने ही रखा था। ब्रजेन्द्र भी विद्या व्यसनी था। अल्पकाल में ही वेद में पारंगत हो गया था वह युवक।

सांझ का समय था। मैं गंगातट पर बैठा सोच रहा था कि जन्म–जन्मान्तर के संस्कार मानव जीवन में कैसे–कैसे मोड़ लाते हैं। वह होता है कुछ और हो जाता है कुछ और ही। नियति का चक्र चलता रहता है उसके जीवन में। कभी सोचा भी न था और कभी कल्पना भी नहीं की थी कि एक कट्टर क्रिश्चियन एकाएक बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेगा और फिर हिन्दू धर्म। हे भगवान! क्या से क्या हो गया था इतने लम्बे जीवन में। इतनी कथा सुनकर शिवेन्द्र सरस्वती कुछ देर के लिए मौन साध गये। फिर बोले– आपका अब अधिक समय नहीं लूंगा मैं। थोड़े में ही समाप्त कर दूँगा अपनी कथा।

नहीं, नहीं आप चिन्ता न करें आराम से सुनायें आप अपनी कथा। कहां मिलेगी ऐसी कथा सुनने के लिए–मैंने विनम्र स्वर में कहा।

1712 ई0। उस समय मेरी अवस्था साठ पैंसठ के लगभग थी। अब मेरे पास एकान्त सेवन और पुस्तक लेखन के अलावा और कोई काम नहीं था। ब्रजेन्द्र सरस्वती एक पाठशाला में पढ़ाने लगा था। सुजाता की एक लम्बी बीमारी में मृत्यु हो चुकी थी। सोच रहा था कि यदि ब्रजेन्द्र सरस्वती का विवाह हो जाय तो कितना अच्छा होता। हम पिता पुत्र के एकाकी जीवन में गृहस्थी की सुगन्ध बिखर जाती। भगवान विश्वनाथ की कृपा से मेरी कल्पना थोड़े ही दिनों में साकार हो गयी। काशी के महापण्डित जयदेव स्मृतिरत्न की कन्या से विवाह हो गया ब्रजेन्द्र सरस्वती का। पुत्रवधु का नाम था चन्द्रकला। वास्तव में वह चन्द्रमा की कला ही थी। सुन्दर और गृहकार्य में निपुण। अब मैं प्रसन्न था। कहीं कोई अभाव नहीं। उस दिन नित्य की भांति प्रातः चार बजे इष्ट जप के पश्चात् सद्गुरु का स्मरण कर रहा था कि तभी मुझे अनुभव हुआ कि मेरे शान्त और एकान्त कमरे में कोई अदृश्य रूप से उपस्थित है। अभी मैं कुछ सोच ही रहा था कि अचानक एक रूपहले रंग की ज्योति मेरे सामने प्रकट हुई। वह ज्योति अति विलक्षण थी। उसका आकार दीपक की लौ की तरह था। बड़ी प्रखर और तेज थी वह ज्योति। मेरे देखते ही देखते वह रहस्यमयी ज्योति मानवाकार में परिवर्तित हो गयी। आश्चर्य–चकित हो उठा मैं। मेरे सामने सद्गुरु कवीन्द्राचार्य सरस्वती खड़े थे और मुस्कुरा रहे थे। कौतूहल आश्चर्य और अविश्वास के मिलेजुले भाव से भर गया मैं। यह कैसे सम्भव है। बिल्कुल प्रत्यक्ष देख रहा था मैं अपने गुरुदेव को। सन्देह और भ्रम का तो कोई स्थान ही नहीं था। गहरी निस्तब्धता व्याप्त थी कमरे में। वातावरण में एक ऐसी सुगन्ध बिखर रही थी जो मेरे मन प्राण और साथ ही मेरी आत्मा को सम्मोहित किए दे रही थी एकबारगी।

आत्मा का स्वरूप– आत्मा का स्वरूप ज्योतिर्मय है वह ज्योति रूप है इसलिए उसे आत्मज्योति भी कहते हैं। सिद्ध पुरुषों, सिद्ध योगियों और महात्माओं की आत्मज्योति का प्रकाश गुलाबी रंग का होता है। दिव्यात्माओं बुद्धिजीवियों, विद्वानों, मनीषियों तत्वविदों आदि की आत्मज्योति

का प्रकाश सुनहले रंग का होता है। देवताओं की आत्मज्योति का प्रकाश श्वेत वर्ण का होता है। पुण्यात्माओं, धार्मिकों और सात्विकों की आत्मज्योति का प्रकाश पीत वर्ण का होता है। साधारण लोगों की आत्मज्योति का प्रकाश हल्के नीले रंग का होता है। तमोगुणी वृत्ति वालों की आत्मज्योति का प्रकाश धुएं जैसा होता है। राजसी वृत्ति वालों की आत्मज्योति का प्रकाश हल्के लाल रंग का होता है। निकृष्ट और पापियों की आत्मज्योति का प्रकाश भूरे रंग का होता है। वे सभी प्रकार की आत्मज्योतियां चर्मचक्षु से परे हैं। सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित नहीं है। वे स्व प्रकाशी हैं इसलिए वे दिखलायी नहीं देती है। सूर्य के प्रकाश की सीमा में आने वाले जितने भी पदार्थ और जितनी भी वस्तुएँ हैं वे चर्मचक्षु से दिखलायी दे सकती हैं लेकिन जो स्व प्रकाशी हैं वे नहीं। सभी प्रकार की आत्मा की अपनी स्वशक्ति भी होती है। वह अपनी शक्ति से कुछ समय के लिए आकार बना सकती है। किसी भी रूप में प्रकट भी हो सकती है।

सद्गुरु की आत्मा से सम्पर्क–सद्गुरु के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया मैं। आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद सद्गुरु बोले– मेरा एक प्रयोजन है। उसे तुम ही भौतिक दृष्टि से साकार कर सकते हो। आज्ञा गुरुदेव–विनम्र स्वर में कहा मैंने। सद्गुरु ने जो कुछ बतलाया उसके अनुसार शरीर त्याग के बाद उनकी आत्मा का संबंध चेतन मन से टूट गया और उसी के साथ–साथ अवचेतन मन से संबंध स्थापित हो गया जबकि साधारण आत्माओं के साथ ऐसा सम्भव नहीं है। अवचेतन से संयुक्त होने पर आत्मा की स्वशक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है। वह एक विशेष सीमा के अन्तर्गत किसी भी लोक–लोकान्तरों की यात्रा इच्छानुसार कर सकती है। गुरुदेव के साथ भी ऐसा ही हुआ। शरीर छोड़ते ही अवचेतन मन जिसे आन्तरचेतना भी कहते हैं– से उनकी आत्मा का संबंध स्थापित हो गया। जिसके फलस्वरूप उनकी आत्मा ने भू–लोक, दिव्यलोक और देवलोक की यात्रा की और उन तीनों लोकों का अनुभव भी प्राप्त किया। वे सभी अनुभव अपने आपमें विचित्र आश्चर्यजनक, कौतूहलपूर्ण तो थे ही इसके अलावा अविश्वसनीय भी थे इसमें सन्देह नहीं। गुरुदेव अपने उन समस्त अनुभवों को, अनुभूतियों को और यात्रा वृत्तान्त को मुझसे लिपिबद्ध कराकर उसे पुस्तक रूप देना चाहते थे।

तैयार हो गया मैं इस कार्य के लिए। गुरुदेव ने अन्त में कहा– मैं बार–बार साकार रूप में प्रकट नहीं हो सकता इससे आत्मा की शक्ति क्षीण होती है इसलिए तुम अपने प्राणबल पर मनःशक्ति और आत्मशक्ति को नियोजित कर मेरी आत्मा का अपने आप में आवाहन करना। मैं तत्काल तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर तुम्हें उत्प्रेरित करूँगा और फिर लिखने लगोगे तुम। इसके लिए तुमको सावधान रहने की आवश्यकता है। पूर्ण एकान्त होना चाहिए और समय भी निश्चित होना चाहिए और इसके अलावा इस विषय में किसी को जानकारी भी नहीं होनी चाहिए।

सद्गुरु का आवाहन और पुस्तक लेखन- आत्म आवाहन में चित्त की स्थिरता, मन की एकाग्रता और प्राण पर नियंत्रण आवश्यक है। मैंने ऐसा ही किया। अपने कमरे के शान्त वातावरण में रात्रि के समय पद्मासन की मुद्रा में बैठकर सर्वप्रथम प्राणायाम के द्वारा प्राण को नियन्त्रित किया। आश्चर्य की बात तो यह थी कि प्राण पर नियंत्रण होते ही चित्त अपने आप स्थिर हो गया और कुछ ही समय पश्चात् ध्यान के द्वारा मन भी धीरे–धीरे एकाग्र होने लग गया। उस अनर्वचनीय स्थिति में गुरु का स्मरण किया मैंने और स्मरण मात्र से मेरा सारा शरीर हल्का हो गया लेकिन सिर नहीं। लगा जैसे मेरे सिर के आन्तरिक भाग में कोई अदृश्य शक्ति तीव्र गति से अपने स्थान पर चक्कर काट रही है। कुछ समय के बाद मेरा पूरा मस्तिष्क किसी अज्ञात शून्य से भर गया और उसी के साथ–साथ अपने व्यक्तित्व को और अपने अस्तित्व को एक प्रकार से भूल गया और अपने आपको भी जब हुआ तो आश्चर्यचकित रह गया मैं। भोर होने वाला था। पूरब का आकाश सफेद हो रहा था धीरे–धीरे। पूरे चार घंटे तक एक ही स्थिति में और एक ही अवस्था में रहा था मैं। कागज कलम आदि की व्यवस्था पहले ही हो चुकी थी। देखा मेरे सामने कागज के पन्नों का ढेर लगा हुआ था और भरा हुआ था सद्गुरु के त्रैलोक्य के अनुभवों से लेकिन अपूर्ण था अभी। निश्चय ही सद्गुरु की आत्मा ने मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर मेरे द्वारा लिखवाया था इसमें सन्देह नहीं। लगातार सात दिनों तक यही क्रम चला। आठवें दिन पुस्तक पूर्ण हुई और उसका नाम रखा गया 'त्रैलोक्य मीमांसा'।

यह सब सुनकर दंग रह गया मैं। कुछ क्षण तक जड़वत् देखता रहा मैं शिवेन्द्र सरस्वती की अपार्थिव काया की ओर। किसी प्रकार अपने

आपको संभाला और लगभग लड़खड़ाते स्वर में बोला– इस पुस्तक की भाषा तो आपके सद्गुरु की ही है न?

हाँ ! और किसकी होगी? बस उनका माध्यम बन कर लिखने वाला मैं हूँ। मैंने जिज्ञासु भाव से पूछा– लेकिन विषय तो अत्यन्त दुरुह है और भाषा भी जटिल है। क्या आपने स्वयं पुस्तक को पढ़ा? विषयों को समझा? भाषा समझ में आयी और तात्विक रहस्यों को उद्घाटित किया आपने?

ऐसा कोई प्रश्न करेगा? शायद इसकी आशा नहीं थी शिवेन्द्र सरस्वती को, कुछ समय तक मौन साधे रहे। फिर बोले– हाँ! एक विशेष सीमा तक। यह दुर्लभ पुस्तक है। अबतक न जाने कितने लोगों के हाथों में पड़ी। न जाने कितने लोगों ने पुस्तक के मर्म को समझने का प्रयास किया, लेकिन पूर्ण सफलता नहीं मिली किसी को भी। जब आपके सामने पुस्तक आयी तो मुझसे रहा न गया और आना ही पड़ा समझे न। सद्गुरु ने ही प्रेरित किया मुझे। आपके लिए 'हम' कभी नहीं मरता। व्यक्तित्व का कभी नाश नहीं होता। कौतूहल और जिज्ञासा का विषय है। आप चिन्ता न करें। केवल सद्गुरु का स्मरण करें। सच पूछिए तो मेरी समझ में नहीं आ रहा था कुछ। फिर भी जरा संभल कर प्रश्न किया मैंने आपके गुरुदेव को शरीर त्याग किए न जाने कितने वर्ष बीत गये। कैसे फिर है सम्पर्क की सम्भावना ?

विहेदी हँसा, मेरा प्रश्न सुनकर। आप संसार और शरीर की सीमा में बंधे हैं महाशय! उस सीमा से भी परे बहुत कुछ है और उस बहुत कुछ का ज्ञान जब आपको हो जायेगा तब आपको अपना यह प्रश्न निरर्थक प्रतीत होगा। गुरुदेव के विषय में आपको बतला देना आवश्यक है। योग्य शरीर अभी तक उपलब्ध न होने के कारण वे इस समय अपार्थिव जगत में स्थित विद्वद्मण्डली के सदस्य के रूप में अवस्थित हैं। उनकी बड़ी इच्छा है कि कोई योग्य व्यक्ति उनकी पुस्तक 'त्रैलोक्य मीमांसा' को संसार के आध्यात्मिक वातावरण में प्रस्तुत करे जिससे लोगों का त्रैलोक्य के प्रति भ्रम दूर हो और वे वास्तविकता को समझें। साथ ही साथ यथार्थ से भी परिचित हों। उस महान शास्त्र मर्मज्ञ और निष्णात् विद्वान की दृष्टि में आप ही योग्य व्यक्ति हैं जो उनकी इच्छा को साकार कर सकता है। शिवेन्द्र सरस्वती से इतना सब कुछ सुनकर स्तब्ध रह गया मैं

एकबारगी। मेरी समझ में नहीं आ रहा था उस समय। किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति हो गयी थी मेरी। काफी देर तक उस अशरीरी विद्वान की ओर ताकता रहा और फिर न जाने क्यों पूछ बैठा मैं–आप किस अवस्था में हैं? क्या आपका भी जन्म नहीं हुआ?

दो महापाप- धर्म परिवर्तन और संन्यासी का गृहस्थ धर्म स्वीकार करना ये दोनों महापाप मुझसे हुए थे शर्माजी। शिवेन्द्र सरस्वती ने अवरूद्ध कण्ठ से मेरे प्रश्न का उत्तर दिया। फिर उसी अवस्था में आगे कहने लगे– धर्म का संबंध पिछले जन्मों के संस्कारों से समझना चाहिए और धर्म के अनुसार ही माता–पिता, जाति और समाज की होती है उपलब्धि।

पिछले जन्मों के संस्कारों के अनुसार मुझे क्रिश्चियन धर्मावलम्बी परिवार में जन्म लेना पड़ा। लेकिन मेरी आत्मा जिस शान्ति को प्राप्त करना चाहिए थी– वह शान्ति प्राप्त नहीं हुई अपने धर्म से मुझे। हताश और निराशा की अवस्था में मैंने अपना धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म स्वीकार किया और उस धर्म ने वह सब कुछ दिया जो मेरी आत्मा चाहती थी। जैसाकि मैं आपको बतला चुका हूँ– परिस्थिति कुछ ऐसी बनी कि मुझे हिन्दू धर्म स्वीकार करना पड़ा। पहला महापाप मैंने यह किया। इसी प्रकार दूसरा महापाप मुझसे हुआ। बौद्ध संन्यासी का जीवन त्यागकर गृहस्थ धर्म को स्वीकार करना। इस कार्य के पीछे सबसे बड़ा कारण था वासना। सुजाता के प्रति वासना से आविर्भूत होकर यह जघन्य अपराध हो गया मुझसे। जो होना था वही हुआ। प्रकृति ने अपने नियम का पालन किया जिसके फलस्वरूप मृत्यु के पश्चात् नर्कगामी हो गया मैं।

अरे! मेरे मुंह से अचानक निकल पड़ा। आप जैसे प्रकाण्ड विद्वान की यह गति.....।' इस समय आप किस अवस्था में हैं।

क्या बतलाऊँ मैं आपको। दीर्घकाल से नर्क की यातना भोग रहा हूँ। पश्चाताप की अग्नि में जल रही है मेरी आत्मा! थोड़ा रूककर शिवेन्द्र सरस्वती आगे बोले– क्या मेरे उद्धार के लिए कुछ कर सकते हैं आप? यदि करेंगे तो मेरा कल्याण तो होगा ही आपको भी एक विद्वान का आशीर्वाद प्राप्त होगा। आपकी लेखनी मृत्यु पर्यन्त चलती ही रहेगी। इतना कहकर शिवेन्द्र सरस्वती का अस्तित्व गायब हो गया।

क्या काशी में पाप क्षय और मुक्ति सम्भव है? मेरे अबतक के जीवन में ऐसी अपूर्व आश्चर्यजनक, कौतूहलपूर्ण और अविश्वसनीय घटना नहीं घटी थी इसमें सन्देह नहीं। मैं स्तब्ध था आश्चर्यचकित था और था किंकर्तव्यविमूढ़।

आखिर रहा न गया मुझसे। एक दिन अवसर देख कर गुरुदेव डॉ. गोपीनाथ कविराज जी को सारी कथा सुनायी और अन्त में 'त्रैलोक्य मीमांसा' उनके सामने रख दिया मैंने।

मेरी बात ध्यान से सुनी और फिर त्रैलोक्य मीमांसा के पृष्ठ उलटने पुलटने लगे कविराजजी उनकी मुखमुद्रा गम्भीर थी उस समय। काफी देर तक न जाने क्या सोचते रहे, फिर बोले काशी की पण्डित परम्परा में अनेक मूर्धन्य और दिग्ग्ज विद्वान हो चुके हैं। कवीन्द्राचार्य उन्हीं में से एक थे। ख्याति प्राप्त थे वह। उनसे भलीभांति परिचित हूँ मैं।

ऐं! क्या कहा आपने? परिचित हैं आप, आश्चर्य से पूछा मैंने। कविराज जी ने सिर हिला कर कहा– काशी के विद्वानों और पण्डितों की परम्परा में कवीन्द्राचार्य सरस्वती का सम्मानजनक उल्लेख है। रही पुस्तक की बात। निश्चय ही समाधि भाषा में लिखी गयी है इसीलिए जटिल और दुरुह है। निश्चय ही अपने योग्य शिष्य के शरीर में प्रविष्ट होकर उस महान विद्वान और मनस्वी ने लिखवायी होगी वह पुस्तक इसमें सन्देह नहीं। थोड़ा रूककर कविराज जी आगे बोले पुस्तक में देवलोक, पितृलोक और भूलोक का वर्णन है। वहां का स्वानुभव भी है। इसके अतिरिक्त वहां के वातावरण के संबंध में और साथ ही उन तीनों लोकों में आत्मा किस स्थिति में रहती है और क्या चाहती है? इन सबका भी विस्तृत वर्णन है। पुस्तक के अन्त में कवीन्द्राचार्य ने काशी में मुक्ति की कामना की है। काशी में पाप क्षय हो जाता है। भगवान शिव द्वारा तारक मंत्र की दीक्षा प्राप्त होती है। जिसके फलस्वरूप मुमुक्षु को मुक्ति अथवा मोक्ष लाभ होता है। ऐसी धारणा है कवीन्द्राचार्य की आत्मा की। मेरे विचार से यह धारणा भ्रमपूर्ण है। यह समझने की बात है कि कर्म का क्षय नहीं होता। उसका फल किसी न किसी रूप में भोगना ही पड़ता है। जीवन मुक्त होने पर भी जबतक कर्म क्षय नहीं हो जाता तबतक शरीर को आत्मा छोड़ नहीं सकती।

चेतनतत्व और आत्मतत्व की यात्रा- कविराज जी की बातें सुन कर न जाने क्यों विचलित हो उठा मैं। **काश्यां मरणान्मुक्ति** की धारणा डावाँडोल होने लगी। समझ में नहीं आ रहा था। कहीं समाधान नहीं मिल रहा था। रात्रि का समय। नींद नहीं आ रही थी। सोचने लगा क्या कपिला आनन्द सें समाधान हो जायेगा मेरी जिज्ञासा का? फिर रहा न गया मुझसे। व्यक्तिगत रूप से कपिला आनन्द की आत्मा के आवाहन की क्रिया तो जानता ही था मैं। तुरन्त आवाहन की मुद्रा में बैठ गया। एक–एक क्षण बीतने लगा। अचानक वातावरण सुगन्धित हो उठा। अपने अपार्थिव शरीर में खड़ी थी कपिला आनन्द मेरे सामने। मेरी क्या जिज्ञासा है? मैं क्या जानना चाहता हूँ और मैं क्या सोच रहा हूँ? निश्चय ही यह सब कुछ जान समझ गयी थी वह दिव्यात्मा। जरा हँस कर मन्द स्वर में बोली कपिला आनन्द यह तो तुम जानते ही हो कि मानव शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। थोड़ा तुमको समझना पड़ेगा। पहले तुम्हे यह बतला दूँ कि विश्व ब्रह्माण्ड में दो मूल तत्व हैं– ब्रह्माण्डीय तत्व और सूक्ष्मतम् प्राणतत्व। इन दोनों तत्वों की ऊर्जाएँ आपस में मिलकर एक विलक्षण तत्व को जन्म देती है और वह तत्व है चेतनतत्व। नैसर्गिक रूप से उसमें आकाशतत्व, वायुतत्व, अग्नितत्व और पृथ्वीतत्व का समावेश हो जाता है समयानुसार। इसका परिणाम यह होता है कि उस चेतनतत्व में जीवभाव का उदय स्वयं हो जाता है और जीवभाव का उदय होते ही उसकी यात्रा शुरू हो जाती है और उस यात्रा की खोज होती है पार्थिव अथवा स्थूल आधार की। वास्तव में जीवभावापन्न चेतना की यह जीवन यात्रा है। अपने हजारों हजार वर्षों की दीर्घकालीन यात्रा में अण्डज पिण्डज स्थावर जंगम– इन चार भागों में विभक्त 84 लाख योनियों में भ्रमण करती हुई अन्त में हाथी की योनि में जन्म लेती है। पशु योनि की अन्तिम योनि हाथी है। इस योनि में चेतनतत्व में एक और मौलिक तत्व का समावेश होता है और वह तत्व है बुद्धितत्व। पशुओं में केवल हाथी में ही 'बुद्धि' होती है।

मध्य योनि- पशु योनि का अन्त और मानव योनि का आरम्भ। जीव सृष्टि का संक्रान्ति काल है। अन्त और प्रारम्भ के बीच एक योनि विशेष

है। जिसे मध्य योनि कहते हैं और वह मध्य योनि है बन्दर की जिसे वानर की भी संज्ञा दी गयी है। इस योनि में एक विशेष तत्व का नैसर्गिक रूप से आविर्भाव होता है और वह तत्व है मनस्तत्व। बुद्धितत्व का आश्रय लेकर मनस्तत्व का विकास इसी योनि से शुरू हो जाता है। मन का अंश होने से इसे वानर कहा जाता है। इतिहासकारों का कहना है कि मनुष्य के पूर्वज हैं बन्दर ? अपने स्थान पर बात सत्य भी है। बुद्धि और मन के मिश्रण से एक और तत्व जन्म लेता है और वह है अहंकार। मन बुद्धि अहंकार इन तीनों के योग से जीव भाव उत्पन्न होता है और यह भाव बन्दर में उत्पन्न होकर अपने विकास की ओर बढ़ता है और जीव भाव उत्पन्न होते ही मन, बुद्धि और अहंकार के मिश्रित रूप में आत्मतत्व का उदय होता है और तब वह जीवात्मा की संज्ञा को उपलब्ध होता है और यहीं से शुरू हो जाती है जीवात्मा की दीर्घकालीन यात्रा जिसकी समाप्ति होती है 'मोक्ष' की परम प्राप्तव्य में। अहंकार के कारण ही आत्मा को जीवात्मा की संज्ञा दी गयी है। शुद्धात्मा, दिव्यात्मा अथवा पूर्ण आत्मा बनने के लिए अहंकार का त्याग आवश्यक है। समस्त साधना का एकमात्र लक्ष्य है अहंकार का नाश और आत्मा को दिव्य शुद्ध विशुद्ध रूप की उपलब्धि ही मोक्ष की धारणा है। मन और आत्मा एक ही वस्तु के दो रूप हैं मन चंचल है जबकि आत्मा स्थिर है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं मन और आत्मा की संयुक्त यात्रा एक विकासशील यात्रा है। इस यात्रा का प्रारम्भ होता है मनुष्य की निम्नतम् योनि से और अन्त होता है कैवल्य अथवा मोक्ष में। यह यात्रा जीवन–मरण की यात्रा है जो अपने आपमें लोम–विलोम यात्रा है। मनुष्य की निम्नतम् योनि नीच योनि से प्रारम्भ होकर ब्राह्मण योनिपर्यन्त लोम यात्रा है। ब्राह्मण का शरीर जीवात्मा का अन्तिम शरीर है। इस शरीर में रहकर जीवात्मा मुक्त होने का उपाय नहीं करती है तो मरणोपरान्त नीचे की किसी भी योनि में जन्म ले सकती है कर्मानुसार। यहां यह समझ लेना चाहिए कि एक बार मानव शरीर को उपलब्ध होने के बाद जीवात्मा फिर कभी भी मानवेतर शरीर को स्वीकार नहीं कर सकती। यह अकाट्य नियम है।

मुक्ति और मोक्ष- मुक्ति क्या है और मोक्ष क्या है? इस पर भी यहां थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। अपने स्थान पर यह बात पूर्ण सत्य

है कि एक बार जन्म–मरण के चक्र में फँसने के बाद उसमें से निकलना जीवात्मा के लिए अत्यन्त कठिन है। जिसे भव मुक्ति कहते हैं वह है जीवन–मरण से सदैव के लिए मुक्त हो जाना। भव मुक्ति से संसार में आवागमन से जीवात्मा तो मुक्त हो ही जाती है लेकिन उसका अस्तित्व किसी न किसी लोक–लोकान्तरों में किसी न किसी रूप में बना ही रहता है। जीवात्मा और शरीर का नाता–रिश्ता, दूध–पानी के समान है। भव मुक्ति से भौतिक शरीर से जीवात्मा निवृत्त तो हो ही जाती है, लेकिन जिस लोक में जाती है वहां का शरीर तो उसे धारण करना ही पड़ेगा। भव मुक्ति के पश्चात् आत्म मुक्ति है। स्थूल शरीर का अन्य शरीरों से भी सदैव के लिए मुक्त हो जाना आत्म मुक्ति है। इस अवस्था में आत्मा अपने निज शरीर यानी आत्म शरीर को उपलब्ध हो जाती है। ऐसी आत्मा को ही दिव्यात्मा और विशुद्ध आत्मा कहते हैं। अन्ततः एक ऐसी भी अवस्था आती है, जब आत्मा अपने निज शरीर का भी त्याग कर देती है और यही त्याग आत्मा को आकर्षित करता है परमात्मा की ओर जिसका परिणाम है मोक्ष। आत्मा के ऊपर यदि कोई है तो वह है परमात्मा। परमात्मा एक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्यापक परमतत्व है। वह आदि अन्तहीन है। **'व्याप्तेन चराचरम्'** है। मोक्ष का अर्थ है आत्मतत्व और परमात्मतत्व का सामरस्य भाव। आत्मा के अस्तित्व का परमात्मा के अस्तित्व में सदैव के लिए विलीन हो जाना। जीवात्मा की यात्रा कब समाप्त होगी और कब आवागमन से मुक्ति मिलेगी यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता।

क्या काशी जैसे तीर्थों में मृत्यु होने पर मुक्ति अथवा मोक्ष लाभ सम्भव नहीं है?

यह भ्रामक धारणा है– कपिला आनन्द बोली।

दो प्रकार के तीर्थ– वेद शास्त्र, पुराण उपनिषद काव्य आदि जितने भी ग्रन्थ हैं, उन सबकी भाषा और विषय सांकेतिक और लाक्षणिक है। अवचेतन मन की स्थिति में महापुरुषों द्वारा लिखे गये हैं सब के सब और यही कारण है कि वास्तविकता से अपरिचित रह कर जिज्ञासुगण अपने अनुमान ज्ञान के आधार पर अलग–अलग अर्थ निकालते हैं। शास्त्रों में सप्त तीर्थों की चर्चा की गयी है। लोगों की धारणा है कि तीर्थों में शरीर

त्याग होने पर मोक्ष को उपलब्ध होती है जीवात्मा। सप्त तीर्थों में काशी सर्वोपरि और विशिष्ट आध्यात्मिक तीर्थ है। उसकी अपनी विशेषता है।

मोक्ष की धारणा पर विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि तीर्थ दो प्रकार के हैं कर्म तीर्थ और ज्ञान तीर्थ। काशी ज्ञान तीर्थ है और अन्य तीर्थ हैं कर्म तीर्थ। दोनों प्रकार के तीर्थों की अपनी–अपनी विशेषताएं हैं। कर्म तीर्थ के क्षेत्र में फलाकांक्षारहित निष्काम भाव से सत्कर्मों द्वारा धर्म और पुण्य दोनों प्रकार के संस्कार उत्पन्न होते हैं। जिसके फलस्वरूप आवागमन से तो मुक्ति नहीं मिलती और न तो मिलता है कैवल्य अथवा मोक्ष ही। यदि मिलता भी है तो स्वर्गादि लोक–लोकान्तरों में स्थान। कालान्तर में संस्कार क्षय होने पर जीवात्मा को पुनः संसार में जन्म लेना पड़ता है लेकिन वह पुनर्जन्म साधारण नहीं होता। विद्वद् ब्राह्मण उच्च कुल में और धर्मात्माओं के परिवार में होता है। जीवन काल में यश कीर्ति, वैभव आदि की उपलब्धि होती है। व्यक्तित्व भी असाधारण होता है।

ज्ञान तीर्थ काशी– काशी ज्ञान तीर्थ है। कर्म से मोक्ष नहीं, ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है और वह भी काशी में। काशी के दो रूप हैं– मृणमय और चिन्मय। जिस काशी से लोग परिचित हैं वह मृणमय काशी है चिन्मय काशी ठीक मृणमय काशी के ऊपर चिन्मय जगत में है। वह स्वर्णमय है। वहां गंगा की धारा दुग्ध के समान है। उच्चकोटि के योगी साधकगण उसमें स्नान करते हैं। काशी विश्वनाथ का स्वरूप भी चिन्मय है। चिन्मय काशी का महाश्मशान भी चिन्मय है। जहां भैरव और भैरवी के रूप में शिव–पार्वती विचरण करते हैं। जैसे कर्म तीर्थ मुक्ति प्रधान है, उसी प्रकार काशी मोक्ष प्रधान है। मोक्ष, कर्म के द्वारा नहीं ज्ञान द्वारा उपलब्ध होता है इसीलिए काशी के संबंध में ज्ञानान्मुक्ति कहा गया है। यहां मुक्ति का अर्थ मोक्ष है। ज्ञान के द्वारा मोक्ष लाभ यानी परमाम् गति। लेकिन कौन सा ज्ञान? भौतिक ज्ञान, शास्त्रीय ज्ञान, वैदिक ज्ञान, पौराणिक ज्ञान, यौगिक ज्ञान और तांत्रिक ज्ञान आदि ज्ञान नहीं। इन समस्त ज्ञानों से, मोक्ष का कोई संबंध नहीं। संबंध है आत्म ज्ञान से और वह भी काशी में उपलब्ध होने पर।

कपिला आनन्द ने कहा– आत्म ज्ञान तो किसी भी स्थान पर उपलब्ध हो सकता है लेकिन उसके द्वारा मोक्ष नहीं। मोक्ष उपलब्ध होगा

केवल काशी में। अन्यत्र आत्म ज्ञान होने पर उसके द्वारा मोक्ष प्राप्ति के लिए आत्मा को काशी में जन्म लेना अनिवार्य होता है।

आत्म ज्ञान का उदय कैसे होता है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कपिला आनन्द ने कहा– क्रमशः ग्यारह बार सात्विक और धर्म परायण ब्राह्मण कुल में जन्म लेने पर प्रत्येक जन्म में जीवनपर्यन्त जो व्यक्ति निरपेक्ष भाव से, अनाशक्त भाव से, निस्पृह भाव से धर्मानुसार कर्म करते हुए अध्यात्म मार्ग का अनुशरण करता है और अन्त में उससे उसे जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसे कहते हैं 'आत्म ज्ञान'। आत्म ज्ञान, परम ज्ञान है। परम ज्ञान उपलब्ध होने पर व्यक्ति की अपनी आत्मा के दूसरे खण्ड का पता चल जाता है और पता चलते ही दोनों खण्ड आपस में मिलकर एक हो जाते हैं। इसी अवस्था को कहते हैं पूर्णात्मा। पूर्णात्मा हुए बिना मोक्ष लाभ सम्भव नहीं। पूर्णात्मा का अगला जन्म होता है काशी में और वह भी उच्च ब्राह्मण कुल में। ऐसी पूर्णात्मा का संसार के रंगमंच पर एक वीतराग योगी के रूप में प्रस्तुतीकरण होता है। ऐसे वीतराग महापुरुष के मुमुर्षु काल में भगवान विश्वनाथ शिव के रूप में दक्षिणावर्त शंख द्वारा तारक मंत्र की दीक्षा प्रदान करते हैं। जिसके फलस्वरूप उस महापुरुष की आत्मा तत्काल मोक्ष को उपलब्ध हो जाती है। जैसाकि बतला चुका हूँ काशी कर्म तीर्थ नहीं ज्ञान तीर्थ है। कर्म का संबंध मोक्ष से नहीं ज्ञान से है। काशी में जो योगी और साधक निवास करते हैं वे अपनी विशेष अवस्था में चिन्मय काशी में विचरण करते हैं। सम्पूर्ण काशी क्षेत्र महाश्मशान क्षेत्र है। जो दो भागों में विभक्त है। उत्तर क्षेत्र विश्वेश्वर क्षेत्र है और दक्षिण क्षेत्र है केदारेश्वर क्षेत्र। केदारेश्वर क्षेत्र के श्मशान में गौरी केदार यानी पार्वती और शिव, भैरवी और भैरव के रूप में विचरण करते हैं जैसाकि ऊपर संकेत किया जा चुका है। रामकृष्ण परमहंसदेव जब काशी आये थे और केदारेश्वर मन्दिर के बगल में जिस मकान में ठहरे हुए थे। उसकी छत से भैरव–भैरवी के रूप में शिव–पार्वती को महाश्मशान में विचरण करते हुए देखा था उन्होंने।

काशी में जन्म एक दुर्लभ उपलब्धि–चौरासी लाख योनियों में सर्वश्रेष्ठ योनि मानव योनि है। मानव शरीर में भी उत्तम और महत्वपूर्ण शरीर जिसे

गरिमामय भी कह सकते हैं वह है ब्राह्मण शरीर। कई जन्मों के शुभ संस्कार उदय होने पर ही आत्मा का जन्म ब्राह्मण के शरीर में होता है। इसी प्रकार और अधिक शुभ संस्कारों और शुभ कर्मो के उदय होने पर काशी के उच्च ब्राह्मण कुल में आत्मा का जन्म होता है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो काशी में जन्म लेना आत्मा के लिए एक परम उपलब्धि है और इस उपलब्धि से महत्वपूर्ण लाभ यह होता है कि उसे आत्म चिन्तन करने का अवसर प्राप्त होता है। सहज भाव से स्वयं अध्यात्म मार्ग पर चल पड़ता है वह। पूर्वजन्म के शुभ संस्कार उस व्यक्ति के अध्यात्म मार्ग के प्रकाश स्तम्भ बनते हैं। कालान्तर में ऐसा ही आध्यात्मिक व्यक्ति आत्म ज्ञान को उपलब्ध होता है और अन्त में मोक्ष का अधिकारी भी।

काशीवास करना, काशी में जप ध्यान आदि करना, क्या इसका कोई महत्व अथवा परिणाम कुछ है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कपिला आनन्द का कहना था कि किसी अन्य स्थान से आकर काशीवास करना मात्र केवल कालक्षेम करना है। भौतिक लाभ हो सकता है किसी प्रकार का आध्यात्मिक लाभ नहीं। यदि इस प्रकार का काशीवासी जप, तप, ध्यान, धर्म पुण्य करते हुए अध्यात्म मार्ग पर चलता है तो उसके पिछले जन्मों के कर्मजन्य पापों का क्षय तो होता ही है इसके अतिरिक्त वर्तमान जन्म का भी पाप क्षय होता है। मन को शान्ति प्राप्त होती है। आत्मा भी प्रबुद्ध होती है। कलुषित भावना का उदय भी नहीं होता। परिणाम यह होता है कि काशी में ही उसका पुनर्जन्म श्रेष्ठ परिवार में होता है। यदि वह ब्राह्मण है तो ब्राह्मण कुल में होगा और अध्यात्म मार्ग पर चल कर मोक्ष की कामना करेगा। यदि अन्य वर्ण का है तो ब्राह्मण कुल में जन्म लेगा। यहां यह समझ लेना चाहिए कि शूद्र वर्ण को यह सब अधिकार नहीं है। उसे केवल अधिकार है भजन करना और सेवा करना। भजन और सेवा धर्म ही उसका धर्म है और वही धर्म ऊपर की मानव योनि में ले जाता है उसे।

ज्ञानान्मुक्ति– प्रायः लोगों की धारणा है कि किसी स्थान विशेष में मृत्यु होने पर मोक्ष उपलब्ध हो जायेगा। मोक्ष को दूसरे शब्दों में सायुज्य मुक्ति भी कहते हैं। यहां ज्ञानान्मुक्ति का यही अर्थ है– सायुज्य मुक्ति, ऐसा मानना सर्वथा युक्ति के विरूद्ध है। काशी में मरण के संबंध में हमारे

शास्त्रों में जो प्रशंसा की गयी है, वह केवल अर्थवाद मात्र है। प्रशंसा का कारण है लोगों को काशी के प्रति आकर्षित करना। जरा समझने की बात है कि यदि काशी में शरीर त्याग होने पर सायुज्य मुक्ति लाभ हो जाय। परमगति को आत्मा उपलब्ध हो जाय तो कृतकर्मों को कौन भोगेगा? यदि मनुष्य अपने अच्छे बुरे कर्मों का फल न भोगे तो सृष्टि में तरह–तरह की विषमताएँ उत्पन्न होने लगेंगी। पापी और पुण्यात्मा दोनों को समान गति मिल जाय, यह भी अनुचित है। इसके आतिरिक्त आत्म ज्ञान हुए बिना सायुज्य लाभ कैसे सम्भव है? ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं। सायुज्य लाभ भी नहीं। यह ऋषियों का अभ्रान्त सिद्धान्त है और यह भी समझ में नहीं आता कि पापी और पुण्यात्मा दोनों काशी में मरते ही अपने पाप पुण्य के संस्कारों से छूट कर तत्वज्ञान की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं लेकिन कर्मों का क्षय हुए बिना ज्ञान का उदय सम्भव कैसे है।

आत्म खण्ड–आपने आत्म खण्ड की चर्चा की थी। वह क्या है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कपिला आनन्द हँसते हुए बोली– मुझे देखते ही तुम्हारे मन में न जाने कितने प्रश्न उठने लगते हैं? समझ में नहीं आता। मैं एक विदेही आत्मा हूँ। पंचतत्वों के भौतिक जगत में अधिक समय ठहर नहीं सकती, तुम्हारा मोह और तुम्हारा आकर्षण खींच लाता है मुझे। लेकिन कबतक.....। अच्छा चलो तुम्हारा यह भी समाधान कर दूँ। पहले तुमको यह बतला दूँ कि विश्व ब्रह्माण्ड का जो परम मूलतत्व है जिसे तुम 'ब्रह्म' भी कह सकते हो जो दो रूपों में विभक्त है, परमात्मा उसका पहला रूप है और दूसरा रूप है आत्मा। आत्मा के दो खण्ड हैं पहला है पुरुषतत्व प्रधान और दूसरा है, स्त्रीतत्व प्रधान। ये दोनों खण्ड काल के प्रवाह में पड़ कर शुरू से ही एक दूसरे से अलग हो गये हैं। आत्म खण्ड का यह वियोग कब और कैसे हुआ यह कोई नहीं जानता। दोनों खण्ड एक दूसरे से मिलने के लिए प्रारम्भ काल से ही व्याकुल हैं। दोनों का वियोग शाश्वत है, नैसार्गिक है। पराप्रकृति की सीमा से बाहर है। दोनों की यह आकुलता व्याकुलता स्त्री–पुरुष की आत्मा में 'काम' की सृष्टि करती है। दोनों का कामजन्य आकर्षण–विकर्षण स्त्री पुरुष के मन में कामवासना, विविध प्रकार की कामना, पुत्र प्राप्ति की कामना आदि को जन्म देता है। मगर काल चक्र के प्रवाह में कौन खण्ड कहां

है। यह एक दूसरे को ज्ञात नहीं है और न तो यही पता है कि किस खण्ड ने कहां जन्म लिया है? अपने अनादि वियोग को संयोग में बदलने की प्रबल कामना लेकर दोनों खण्ड बार–बार संसार में शरीर धारण करते हैं। बार–बार मिलन की कामना लिए जन्म लेते हैं और जीवन मरण के चक्र में फंसते हैं। इस आवागमन से न कोई धर्म मुक्ति दिला सकता है और न तो कोई साधना, सम्प्रदाय ही दिला सकता है। 'मुक्ति' तो तभी मिलेगी। जबकि बार–बार जन्म लेने वाले और शरीर धारण करने वाले दोनों खण्ड काल के प्रवाह में मिल जायेंगे। इस संसार में कौन किसकी आत्मा का खण्ड है यह नहीं जानता। व्यवहारिक, सामाजिक और धार्मिक धरातल पर स्त्री पुरुष मिलते तो अवश्य हैं लेकिन दोनों में भला यह कौन जानता है कि कौन किस आत्मा का खण्ड है? एक स्त्री एक पुरुष से प्रेम करती है पर उस पुरुष का आत्मखण्ड किसी और ही स्त्री का होता है। इसी प्रकार एक पुरुष भी एक स्त्री से प्रेम करता है और विवाह भी। पर वह यह नहीं जानता कि उसने जिस स्त्री से प्रेम किया है और विवाह भी किया, उसका आत्मखण्ड किसी और पुरुष का है और यही कारण है कि उनका प्रेम, उनका विवाह और उनका संयोग शरीर के तल पर ही अटक कर रह जाता है। शरीर, माता–पिता की वासना का परिणाम है और इसीलिए साधारणतः स्त्री–पुरुष का प्रेम विवाह और योग मात्र वासनाजन्य होता है। उसके आगे क्या है? वे नहीं जानते वे दोनों एक दूसरे को जानते हैं, समझते नहीं। केवल मात्र जानते हैं और यही कारण है कि स्त्री पुरुष में मतभेद होता है। दोनों में झगड़ा होता है। कभी किसी दृष्टिकोण से दोनों में सामञ्जस्य नहीं होता। रही बात 'प्रेम' की। प्रेम क्या है? भला वे दोनों क्या जाने। वे तो वासना की पूर्ति को ही प्रेम समझते हैं। 'प्रेम' वास्तव में आत्मा की वस्तु है और सच्चे अर्थों में प्रेम की उत्पत्ति तभी होती है जब दोनों खण्ड आपस में कभी किसी काल में मिलते हैं। जिस प्रेम से मनुष्य परिचित है, वह वासनाजन्य प्रेम है। वासनाजन्य प्रेम कभी भी सच्चा प्रेम नहीं हो सकता। लेकिन मनुष्य वासना के भीतर सच्चे प्रेम की खोज करता है। यह भारी भूल है। प्रेम आत्मा का स्वाभाविक गुण है और जब उसका आविर्भाव होता है तो सारा जीवन प्रेममय हो उठता है। सारा संसार प्रेम के अथाह सागर

में डूबा हुआ दिखलायी देता है। सारे क्लेश, दुख, कष्ट और सारी पीड़ाएँ, सारी व्यथाएँ हमेशा–हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है। इसी को भवमुक्ति कहते हैं। काल के प्रवाह में फंसे आत्मा के दोनों खण्डों के मिलन का नाम ही सच्चे अर्थों में योग है। यह 'योग' योग की चरम पराकाष्ठा है इसीलिए वैदिक ऋषियों ने इस योग को 'परम योग' कहा है। इस परम योग को उपलब्ध होने वाली आत्मा विश्वब्रह्माण्ड के अस्तित्व में उसी प्रकार विलीन हो जाती है जैसे समुद्र में समा जाती है बूंद। (आत्मखण्ड के संबंध में मैंने प्रसंगवश अन्यत्र भी चर्चा की है) और अब आगे।

***

कापालिक महाभैरवी रोहिणी से सम्पर्क–काशी के संबंध में जो बाते मालूम हुई थी और मुक्ति तथा मोक्ष के विषय में मिली थी मुझे जानकारी कपिला आनन्द जैसी योगात्मा से जो कि निश्चय ही अपने आपमें महत्वपूर्ण थी इसमें सन्देह नहीं। इस दृष्टि से शिवेन्द्र सरस्वती को न मिलेगी मुक्ति और न तो मिलेगा मोक्ष ही! फिर क्या होगा? क्या वह प्रकाण्ड विद्वान नर्क की यातना ही सहता रहेगा, लेकिन कबतक.....। एकाएक पीड़ा यातना और वेदना में डूबा हुआ शिवेन्द्र सरस्वती का चेहरा उभर आया मेरे सामने इतना ही नहीं, नर्क का उन्होंने जो चित्रण किया था। वह भी मेरे मानसपटल पर साकार होने लगा।

.....नर्क का अर्थ जानते हैं शर्माजी! पुराणों में और शास्त्रों में नर्क का जो वर्णन किया गया है और जो विवरण प्रस्तुत किया गया है, भले ही उसे मान्यता प्राप्त हो, लेकिन वह यथार्थ नहीं है। यथार्थ तो कुछ और ही बन्धु। नर्क का सरल और सुबोध अर्थ है 'न' यानि नहीं 'अर्क' यानि सूर्य। जहां जिस स्थान पर सूर्य और सूर्य का प्रकाश नहीं है– वह नर्क है। बस यदि कुछ है जो गहनतम् और चिपचपाहट से भरा अन्धकार? जिस गहन अन्धकार से आप परिचित हैं उसका दस गुना अधिक गहन अन्धकार! आप नर्क के वातावरण की कल्पना भी नहीं कर सकते। कभी भी नहीं। आप जरा एक ऐसे स्थान की कल्पना करिए और सोचिए जिसकी जमीन दलदल और दुर्गन्धमय कीचड़ से भरी हुई है और चारो ओर गहनतम् अन्धकार फैला हुआ हो और घबड़ा कर चारो ओर प्रकाश की खोज में हाथ फैलाए चींखते चिल्लाते हुए पागलों की तरह दौड़ रहे हों और आप

की ही तरह उस दुर्गन्धमय कीचड़ भरी दलदली जमीन में और उस गहन अन्धकार में असंख्य इस अन्य लोग भी प्रकाश की खोज में चींखते चिल्लाते हों और रोते कलपते हों, लेकिन फिर भी उनका अस्तित्व आपको दिखलायी न दे रहा हो–तो आपको कैसा लगेगा? क्या अनुभव करेंगे आप ? उसी वातावरण में किसी के रोने गिड़गिड़ाने की आवाज, किसी के करूण क्रन्दन की पीड़ामयी आवाज और किसी के जोर–जोर से चीखने चिल्लाने की आवाज बराबर सुनाई दे और वैसा ही आप भी करते हों तो जरा बतलाइये कैसी होगी आपकी मानसिक स्थिति? आप इसकी कल्पना कर अथवा इसे सोचकर ही कांप जायेंगे और थरथरा उठेगा आपका सारा अस्तित्व। शिवेन्द्र सरस्वती के एक–एक शब्द गूंजने लगे थे मेरे कानों में। एकबारगी विचलित और विकल हो उठा मैं। क्या करूँ? कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मेरे सामने उस समय दो समस्याएँ थी, जो अपने आपमें विकट और कठिन थी। पहली तो थी शिवेन्द्र सरस्वती की नर्क से मुक्ति कैसे हो? दूसरी थी त्रैलोक्य मीमांसा का रहस्योद्घाटन। दोनों ही असम्भव–सा प्रतीत हो रहा था मुझे। वैसे कविराज जी ने जैसा कहा था– कवीन्द्राचार्य सरस्वती की आत्मा स्वयं किसी न किसी समय संबंध स्थापित करेगी लेकिन मुझे ऐसा दिखलायी नहीं दे रहा था। क्या त्रैलोक्य मीमांसा का रहस्य 'रहस्य' ही बना रहेगा? हे भगवान! कैसे क्या होगा?

शिवेन्द्र सरस्वती ने मरणोपरान्त अवस्था की जो वेदनामयी और पीड़ादायक कथा सुनायी थी। उसने मेरी आत्मा में पारलौकिक जगत और लोक–लोकान्तरों के प्रति असीम कौतूहल उत्पन्न कर दिया था, इसमें सन्देह नहीं। निश्चय ही कवीन्द्राचार्य ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक में लोक–लोकान्तरों का वर्णन करने के साथ ही साथ उनमें रहने वाले मानवेतर प्राणियों का अपने अनुभव के आधार पर अवश्य वर्णन किया होगा इसमें सन्देह नहीं। काश! उस दुर्लभ पुस्तक का दुर्लभ विषय किसी प्रकार हो जाता अनावृत्त।

गालों पर हाथ धरे चुपचाप अपने कमरे में बैठा यही सब सोच रहा था। सांझ की स्याही न जाने कब रात के अन्धकार में बदल गयी थी, पता ही न चला और तभी पत्नी किरण कमरे में आयी और बत्ती जलाते हुए बोली– कब से अन्धेरे में बैठे हैं आप? कुछ सुध भी है अपनी।

मेरी आन्तरिक स्थिति क्या है? मैं किस विषय पर अधिक चिन्तन मनन करता हूँ और मेरा उद्देश्य क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर उसके पास था। मेरे सामने बैठकर आगे बोली– मैं जानती हूँ और समझती भी हूँ कि आप आत्माओं और लोक–परलोक के चक्कर में इतनी दूर चले जायेंगे जहां से वापस लौटना बड़ा मुश्किल होगा आपके लिए। यह सब छोड़े। इतने बड़े ज्ञानी हैं, विद्वान हैं। लोग आपको महापुरुष कहते हैं और कहते हैं साधक भी। सुनकर आत्मा गद्गद् हो उठती है। मैं तो बस यही कहूँगी कि जो जीवन मिला है उसे अच्छी तरह जीयें। जो शरीर मिला है उसका उपयोग करें । फिर आगे बढ़कर मेरे सिर को सहलाते हुए मधुर स्वर में बोली पत्नी–जीवन में वक्त को बिना कारण नष्ट नहीं करना चाहिए। उसके सदुपयोग पर बराबर ध्यान रखना चाहिए। उसका खर्च भी खूब सोच समझ कर करना चाहिए ताकि बेवक्त पर काम आये। रात हो गयी है चलिए उठिए भोजन कर लें। आपको तो अपनी सुध बुध ही नहीं रहती। हर समय बस, खोये खोये से रहते हैं आप! कैसे चलेगी दुनिया.....।

मैंने सिर उठा कर किरण की ओर देखा और एक आज्ञाकारी बालक की तरह भोजन करने बैठ गया और भोजन करते समय सोचने लगा– पत्नी का कहना अपने स्थान पर पूर्ण उचित था इसमें सन्देह नहीं। लेकिन उसे लेकर अपने संबंध में सोचने लगा तो मेरी अन्तरात्मा ने कहा– नहीं, तुम वक्त को बर्वाद नहीं कर रहे हो। ऐसा तुमसे हो ही नहीं सकता। पत्नी तो तुम्हारे आन्तरिक स्वरूप से परिचित तो है नहीं वह तो तुम्हे पति परमेश्वर के रूप में जानती है। इसके अलावा और कुछ नहीं।.....फिर इसके अतिरिक्त भला जानकर करेगी क्या?

सांझ का समय। लालीघाट की धूल से अटी टूटी फूटी सीढ़ियों पर गाल पर हाथ धरे चुपचाप सोच रहा था मैं– अमानवीय सत्ता की खोज की अदम्य जिज्ञासाओं ने मुझे एक ऐसी जगह लाकर खड़ा कर दिया था– जहां अपने आपमें एक असीम एकांकीपन का गहरा अनुभव कर रही थी मेरी आत्मा। मेरे जीवन में एक गहन शून्य के अलावा और कुछ भी नहीं रह गया था। समझ में नहीं आ रहा था करूँ क्या? एकाएक

सिर घूम गया, बगल के श्मशान में कई चिताएँ जल रही थी एक साथ धूँ–धूँ कर, अपलक निहारता रहा न जाने कबतक और तभी शान्त, निस्तब्ध और नीरव वातावरण में अचानक एक सुपरिचित गन्ध बिखर गयी। समझते देर न लगी अपने युग के भयंकर कापालिक की महाभैरवी रोहिणी **(कौन थी रोहिणी? इसका उत्तर आपको प्राप्त होगा, अगली प्रकाशित होने वाली पुस्तक 'तंत्रम्' में)** की गन्ध थी वह और जब कभी मैं इस प्रकार किसी विकट मानसिक स्थिति में अपने आपको पाता हूँ तो अपने आप चिरयौवन सम्पन्न कालञ्जयी विदेही आत्मा का आभास होने लग जाता है मुझे। थोड़ी ही देर बाद एक कुहरा जैसा छा जाता है वातावरण में और फिर धीरे–धीरे वह आकार ग्रहण करने लग जाता है जो बाद में रोहिणी के रूप में प्रकट हो जाता है मेरे सामने। उस दिन भी ऐसा ही हुआ सब कुछ। मुझे गालों पर हाथ धरे बैठे देखकर मुस्कुरायी रोहिणी और फिर बोली– ऐसे काम नहीं चलेगा समझे न। इसी प्रकार एक–एक क्षण सोचने विचारने में ही निकल जायेगा और अन्त में पश्चाताप के सिवाय और कुछ भी हाथ न लगेगा।

क्या करूँ? कुछ समझ में नहीं आ रहा है। शुरू से लेकर अब तक आप तो जानती ही हैं जितनी भी मानवेतर घटनाएँ मेरे जीवन में घटी उसने अशरीरी और विदेही दिव्यात्माओं को जानने समझने और उनके गुण धर्म से भलीभांति परिचित होने के लिए मेरी आत्मा को विवश कर दिया है। विह्वल हो उठी है वह। हताश और उदास स्वर में बोल गया मैं आकाश की ओर शून्य में देखते हुए।

मेरी बात सुनकर हँसी एक बार खिलखिला कर और फिर एक लम्बी सांस लेकर बोली– वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद, धर्म आदि सब आज के युग में लोगों के कण्ठ की सीमा तक ही हैं। अहंकार' उसके नीचे उतरने देता ही नहीं। जो आध्यात्मिक सत्य है वह हृदय में है और हृदय में प्रवेश करने पर ही सत्य का ज्ञान होता है। यथासमय वही 'ज्ञान' प्रज्ञा के रूप में परिवर्तित होकर वाणी द्वारा व्यक्त होता है। ज्ञान में सत्य की केवल झलक मिलती है, उसका साक्षात्कार नहीं होता। साक्षात्कार होता है प्रज्ञा में।

थोड़ा रूक कर महाभैरवी आगे बोली– तुम क्या चाहते हो? तुम्हारी आत्मा की प्यास क्या है? क्यों व्याकुल है वह? सब कुछ जानती समझती हूँ मैं। कुछ भी छिपा नहीं है मुझसे। त्रैलोक्य मीमांसा की समस्या हल होगी। कवीन्द्राचार्य सरस्वती की आत्मा किसी उच्चलोक में है। वे समयानुसार तुमसे सम्पर्क करेंगे।

यह सुनकर अवाक् रह गया मैं। आश्चर्य हुआ कैसे जान गयी यह महाभैरवी कवीन्द्राचार्य के संबंध में।

भौतिक स्तर पर जो ज्ञान उपलब्ध है, उसमें तुम्हारी कोई रूचि नहीं है रोहिणी मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखती हुई बोली– तुम उन लोगों से साक्षात्कार करना चाहते हो और उन लोगों से सम्पर्क स्थापित करना चाहते हो जो प्रज्ञावान हैं। तुमको ज्ञात होना चाहिए कि कवीन्द्राचार्य जैसी न जाने कितनी विदेही आत्माएँ ऐसे योग्य व्यक्ति की खोज में रहती है जो उनके ज्ञान को आत्मसात कर सके और प्रकट कर सके संसार के समक्ष। यही नहीं ऐसी भी उच्चकोटि की दिव्य आत्माएँ हैं, जो मानवेतर शक्ति सम्पन्न हैं और श्रेष्ठ हैं ज्ञान–विज्ञान में भी। उनकी अपने–अपने विषयानुसार उनकी अपनी–अपनी मण्डली है। कभीकदा आवश्यकता पड़ने पर मानव शरीर भी धारण कर लेती हैं लेकिन उनको साधारण लोग पहचान नहीं पाते। न तो समझ ही पाते हैं।

महाभैरवी कुछ क्षण के लिए मौन रही और फिर अपनी आदत के अनुसार मुस्कुराते हुए बोली– बस, तुम यही चाहते थे न? साक्षात्कार सम्पर्क.....और रहस्यमयी उपलब्धियाँ..... हाँ! हाँ!, यही सब चाहता था मैं। प्रसन्न भाव से उत्तर दिया मैंने।

देखो तुम्हारे बगल में हनुमानघाट है। उसी मुहल्ले में पं. सुब्रमण्यम् शास्त्री रहते हैं। उनकी आत्मा योग मण्डली से संबंधित है। मैं अच्छी तरह जानती हूँ। उच्चकोटि के योग सिद्ध हैं पं. सुब्रमण्यम शास्त्री। प्रकट में विद्यार्थियों को संस्कृत पढ़ा कर जीविका चलाते हैं। गुप्त भाव से रहते हैं। अपनी वास्तविकता प्रकट होने नहीं देते। इस दिशा में वे मार्गदर्शन करेंगे तुम्हारा। जाकर मिलो। यह सब तो ठीक हैं। मैं अवश्य दर्शन करूँगा पं. सुब्रमण्यम शास्त्री का लेकिन एक विकट समस्या और है वह यह कि उनके परम शिष्य शिवेन्द्र सरस्वती नरकगामी हो गये हैं। पिछले

दो सौ वर्षों से नरक की भयंकर यातना झेल रहे हैं महाशय सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्होंने अपने उद्धार की याचना की है। जबकि नर्क से मुक्त होने के लिए कोई मार्ग नहीं है और न तो है कोई उपाय ही। अब आप ही बतलाइये। क्या करूँ मैं। मुझे उनका कष्ट देखा नहीं गया। कातर स्वर में अपने उद्धार की जो याचना मुझसे की थी उसे तो भूल ही नहीं सकता मैं। आप ही इस विकट समस्या का हल कर सकती हैं। मेरी बात सुनकर वह महाकापालिक की महाभैरवी रोहिणी कुछ क्षण तक न जाने क्या सोचती रही और फिर बोली– सूक्ष्म जगत में तो भ्रमण करते हो और न जाने कितनी विदेही आत्माओं से मिल भी चुके हो अबतक।

यह सुनकर अवाक् रह गया मैं। आश्चर्य से रोहिणी की ओर देखकर बोला– यह सब भी तुम जान गयी हो?

मैं नहीं जानूँगी तो भला और कौन जानेगा? तुमको मालूम भी है कुछ। कापालिक युग से तेरे पीछे–पीछे घूम रही हूँ। इतने जन्मों से जो इतना आगे बढ़ता जा रहा है और करता जा रहा है उन्नति। उसके पीछे कौन है? कभी सोचा है तूने। हर मोड़ पर और हर विकट स्थितियों में सहायता की मैंने तेरी। इसे भी जानने समझने का प्रयास किया है कभी।

मैं मुंह बाये अवाक् सुनता रहा। कुछ बोला न गया और कुछ कहा भी न गया मुझसे। पिछले जन्मों की बात तो नहीं जानता लेकिन इस जन्म में रोहिणी का पग–पग पर सहयोग न मिला होता तो जटिल से जटिल और कठिन से कठिन समस्यायें हल न कर पाता मैं आध्यात्मिक जगत की सन्देह नहीं इसमें। सूक्ष्म जगत में एक उच्चकोटि के दिव्य पुरुष रहते हैं। योग्य गर्भ न मिलने के कारण वे पिछले चार सौ वर्षों से वहां निवास कर रहे हैं। उनका नाम है नारायण भट्ट। नारायण भट्ट सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान योगी और साधक थे। भगवान रामचन्द्र उनके इष्ट थे और अपने इष्ट के आग्रह पर बारह वर्ष की दीर्घकालीन अनावृष्टि दूर की थी उन्होंने। जिससे प्रभावित होकर मुगल सम्राट काशी विश्वनाथ मंदिर के तोड़े गये भाग के पुनर्निर्माण की अनुमति दी थी उन्हें। मंदिर का वह भाग यवनों के अत्याचार के कारण भग्न हुआ था। मरणोपरान्त जीवात्मा की क्या गति होती है उनका उद्धार कैसे हो सकता है और उसको सद्गति कैसे प्राप्त हो सकती है? इन सबके प्रकाण्ड

ज्ञाता थे नारायण भट्ट। इन विषयों पर अपने अनुभवों का आश्रय लेकर नारायण भट्ट ने धर्मशास्त्र के आधार पर प्रयोग रत्न, धर्म प्रवृत्ति, जीव श्राद्ध प्रयोग, अन्त्येष्टि पद्धति, उत्सर्ग पद्धति, श्राद्ध पद्धति आदि कई ग्रन्थों की रचना की थी। तुम जब भी सूक्ष्म जगत की यात्रा पर निकलो तो उस महान विद्वान और अनुभवी लेखक से अवश्य मिलो। मुझे विश्वास है कि उनके दर्शन से तुमको बौद्धिक और आध्यात्मिक लाभ तो होगा ही इसके अतिरिक्त शिवेन्द्र सरस्वती की समस्या भी हल हो जायेगी, मुझे पूर्ण विश्वास है। इतना सब कुछ बतला कर वह महान योगिनी विलीन हो गयी वायु–मण्डल में।

***

उसी रात सूक्ष्म जगत की यात्रा पर निकल पड़ा मैं। सर्वप्रथम मैं अग्निवेश से मिला और उनको सारी कथा सुनाकर अन्त में नारायण भट्ट की चर्चा की मैंने। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि नारायण भट्ट से परिचित थे महाशय।

जब मैं अग्निवेश के साथ सोलहवीं शताब्दी के महान और मूर्धन्य विद्वान नारायण भट्ट के आश्रम में पहुँचा तो एकबारगी मुग्ध हो उठा मैं। वैदिककालीन ऋषियों जैसा वह आश्रम आत्मा का स्पर्श कर गया जैसे। आश्रम तो छोटा ही था, लेकिन भव्य और आकर्षक था। चारों ओर ऊँचे–ऊँचे विभिन्न प्रकार के वृक्ष थे जिनकी डालों पर पक्षी कलरव कर रहे थे। आश्रम के सामने लम्बा–चौड़ा बाग था जिसमें सुगन्धित फूलों की क्यारियाँ थीं। जिनकी भीनी–भीनी सुगन्ध वायुमण्डल में फैली हुई थी। आश्रम के भीतर प्रवेश करते ही एक दिव्य महापुरुष पर दृष्टि पड़ी। एक तख्त पर मखमल का आसन बिछा हुआ था और उसी आसन पर ध्यानस्थ बैठे हुए थे पद्मासन की मुद्रा में दिव्य महापुरुष। समझते देर न लगी वही थे मुगल सल्तनत के कृपा पात्र राजा बीरबल के मित्र। यवनों द्वारा काशी विश्वनाथ मंदिर के खण्डित हुये भाग का निर्माण कराने वाले महा प्रकाण्ड विद्वान सर्वशास्त्र मर्मज्ञ और सर्व प्रतिष्ठित महापंडित नारायण भट्ट। उनकी सोलहवीं शताब्दी की विशाल काया देखकर भला कौन यह सकता था कि पृथ्वी पर ऐसे प्राणी का कभी था अस्तित्व। उस महामानव को देखकर स्तम्भित हो जाना पड़ा मुझे एकबारगी।

चौड़ा कन्धा, चौड़ी छाती, चौड़ा ललाट और उस चौड़े ललाट पर भस्म का त्रिपुण्ड, साधना और विद्वता के तेज से दप्–दप् करता हुआ मुखमण्डल, बड़ी–बड़ी गहरी झील जैसी आँखे जिसमें लहरा रहा था अनुभवों का सागर। आजानबाहु चौड़े कन्धे पर झूलते हुए यज्ञोपवीत के षट्सूत्र और पैरों में खड़ाऊँ। विनम्र भाव से श्रद्धावनत होकर चरणस्पर्श किया मैंने उस दिव्य महापुरुष के चरणों का। रोमाञ्चित हो उठा सारा शरीर एकबारगी सिर उठाकर स्थिर नेत्रों से मेरी ओर देखा उस महापण्डित ने। फिर आँखों की भाषा में हम दोनों को बैठने का किया संकेत उन्होंने। तुरन्त आज्ञा का पालन किया हम दोनों ने। महापुरुष को कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ी मैंने ही सारी कथा सुना दी क्रम से। अन्त में केवल इतना ही कहा– आप श्राद्ध और श्राद्ध से संबंधित कर्मकाण्ड के मर्मज्ञ हैं। शिवेन्द्र सरस्वती की नरकगामी आत्मा का किसी भी प्रकार उद्धार होना चाहिए। बस इस दिशा में आपके मार्गदर्शन की अपेक्षा है।

मेरी बात सुनकर अपने समय का वह उद्भट विद्वान कुछ क्षण तक न जाने क्या सोचता रहा और फिर गम्भीर स्वर में बोला वह महा दिव्य पुरुष–देवगण भाव की और पितृगण शुद्ध रूप से उच्चारित मंत्र की अपेक्षा करते हैं। श्राद्ध का अर्थ है मृतक के प्रति श्राद्धपूर्वक किया गया पितृ कर्म। यदि मंत्रोच्चारण अपने स्थान पर दोषपूर्ण है तो उससे मृतक की अधोगति होती है इसमें सन्देह नहीं। प्रेतोद्धार अथवा नरकोद्धार के लिए नारायण बलि तदुपरान्त नाग बलि आवश्यक है। जिस परम तीर्थ में नदी के तट पर पीपल का वृक्ष हो और शिवलिंग स्थापित हो, वहाँ इस कर्म को करने से तत्काल मुक्ति सम्भव है। तत्पश्चात् पाँच ब्रह्मचारी ब्राह्मण भोजन और पाँच संन्यासी भोजन भी अवश्यक है।

यह सुनकर मेरी आँखों में आँसू छलछला आये। एक नरकगामी मृतात्मा के उद्धार की कामना पूर्ण होते देख कर रहा न गया मुझसे लेट गया मैं और उस प्रकाण्ड विद्वान के चरणों पर अपना सिर रखते हुए दोनों हाथों से उन्हें गहकर विगलित कण्ठ से याचना भरे स्वर में कहा मैंने– हे प्रभु! मुझे भी आपका आशीर्वाद चाहिए महात्मन्।

कंकाली माँ जैसी सिद्ध साधिका द्वारा प्रदत्त नरमेध समाधि को उपलब्ध हो तुम। क्या यह सभी के लिए सम्भव है? जीवित अवस्था में शरीर त्याग कर इस प्रकार सूक्ष्म जगत में विचरण करना क्या सम्भव है

सभी के लिए इतनी अल्प अवस्था में योग की इस दुर्लभ सीमा का स्पर्श करना सभी के वश की बात नहीं है। कई जन्म–जन्मान्तरों का संस्कार ही समझना चाहिए इसे। मेरे सिर पर अपना दाहिना हाथ फेरते हुए अन्त में कहा उस दिव्यात्मा ने कल्याणं भव.....।

शिवेन्द्र सरस्वती का नरकोद्धार–सभी प्रकार के प्राणियों का कल्याण हो, यह मेरा जन्म सिद्ध उद्देश्य है। अगले पितृपक्ष में योग्य ब्राह्मण द्वारा काशी के दण्डीघाट पर शिवेन्द्र सरस्वती की आत्मा के निर्मित्त पण्डित नारायण भट्ट के आदेशानुसार सारी क्रिया सम्पन्न करा दी मैंने और उसके बाद दूसरे ही दिन ब्राह्मण और संन्यासी भोजन भी करा दिया गया विधिवत्। जिसका परिणाम मिला मुझे महालया की रात्रि में। संयोग देखिए, पुस्तक का यह पृष्ठ पितृपक्ष में ही लिख रहा हूँ मैं। है न! संयोग की बात। उस दिन रात अधिक बीत चुकी थी। मैं टेबल पर बैठा अपनी पुस्तक 'मरणोत्तर जीवन का रहस्य' को अन्तिम रूप देने में लीन था और तभी मेरा कमरा सुगन्धित हो उठा। अचानक किसी आत्मा के आगमन का आभास लगा मुझे। अनुभव सत्य था। सिर उठा कर देखा तो आश्चर्य से देखता ही रह गया मै। लम्बी चौड़ी कद काठी, गौर वर्ण, सुन्दर आकर्षक व्यक्तित्व, चमकता हुआ चेहरा बड़ी–बड़ी अनुभवी आँखें।

कहिए महाशय! मुक्त हो गये न आप। अब तो मिलेगा न आपके आशीर्वाद का फल मेरी लेखनी को?

यह सुनकर गद्गद् कण्ठ से बोले अपने समय के महापण्डित शिवेन्द्र सरस्वती– आप मेरे लिए पुत्रवत् हैं। आप मेरा उद्धार नहीं करेंगे तो कौन करेगा भला लेकिन आप यह बतलाइये कैसे सम्भव हुआ यह?

मैंने सारी कथा सुना दी शिवेन्द्र सरस्वती को और अन्त में कहा– सोलहवीं शताब्दी के महान विद्वान नारायण भट्ट के आदेशानुसार मैंने अपनी ओर से आपके लिए श्राद्धादि कर्म योग्य ब्राह्मण से करवा दिया मैंने काशी में। जिसके परिणामस्वरूप आप इस समय सूक्ष्म शरीर में हैं उपलब्ध। अब आप कब जन्म लेंगे? योग्य गर्भ आपको कब और कहाँ प्राप्त होगा? यह तो आपके प्रारब्ध पर है निर्भर?

मेरी बात सुनकर महापण्डित के नेत्रों में आँसू छलछला आये। किसी प्रकार आँसू पोंछते हुए भरे गले से बोले– इसके लिए तो भटकना

पड़ेगा मुझे। यह तो किसी के अधिकार में नहीं है। संस्कार के वश में है ये सब। फिर भी मुझे इस बात का विश्वास है कि मेरे जन्म का पता अवश्य लग जायेगा। जहाँ कहीं भी मैं लूंगा जन्म, वहाँ स्वयं अपने आप पहुँच जायेंगे। यह मेरा विश्वास है। इतना ही नहीं, पहचान भी लेंगे मुझे आप इसमें सन्देह नहीं। इतना कहकर विलीन हो गयी वायुमण्डल में वह दिव्यात्मा। इस घटना से संबंधित अब आगे की जो कथा है वह अपने आपमें विलक्षण तो है ही इसके अतिरिक्त अविश्वसनीय भी है। लगभग चार वर्ष बाद मेरे एक परिचित सज्जन मुझसे मिलने के लिए आये। नाम था रविशंकर उपाध्याय। संस्कृत के विद्वान थे उपाध्याय जी। उनके साथ उनकी पत्नी और दो साल का उनका पुत्र भी था। पुत्र का नाम था शशिशंकर। अत्यधिक शान्त स्वभाव का था शशिशंकर। सुन्दर और आकर्षक तो था ही अनायास मेरी दृष्टि उसके नेत्रों पर स्थिर हो गयी। अचानक कुछ कौंध सा गया मेरे भीतर और फिर समझते देर न लगी। मेरे सामने रविशंकर उपाध्याय के पुत्र के रूप में बैठे थे शिवेन्द्र सरस्वती। वे मुझे देखकर मुस्कुराये और मैंने भी आँखों की भाषा में मुस्कुरा कर कहा– पहचान गया मैं आपको पण्डितजी अब आपको अनुकूल शरीर प्राप्त हो गया। पिछले जन्म की तरह इस जन्म में भी आप एक प्रसिद्ध विद्वान होंगे। कहने की आवश्यकता नहीं इस समय शशिशंकर उपाध्याय है। चालीसा की आयु पार कर गये हैं। पत्नी हैं, बच्चे हैं और स्वयं एक कॉलेज में अध्यापन कार्य करते हैं।

और जब महात्मा अग्निवेश से भेट हुई संन्यासी के रूप में । इसी प्रकार एक और रोमाञ्चकारी और अविश्वसनीय कथा सुनाने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ मैं। उन दिनों वाराणसी में करपात्री जी द्वारा काशी विश्वनाथ में हरिजन प्रवेश की समस्या को लेकर धार्मिक आन्दोलन चल रहा था। दूर–दूर से साधु–संन्यासी आये हुए थे काशी में। सायंकाल का समय था। दशाश्वमेध घाट पर एक परिचित जिससे बात कर रहा था मैं और उसी समय सामने से सीढ़ियाँ उतर कर नीचे आते हुए एक युवा संन्यासी पर मेरी दृष्टि पड़ी। सत्रह अट्टारह वर्ष और इतनी कम आयु में संन्यासः आश्चर्य होना स्वाभाविक था। गौर वर्ण, ऊँचा कद, इकहरा शरीर, मुण्डित सिर, गले में रूद्राक्ष, शरीर पर कषाय वस्त्र और हाथ में

दण्ड, नंगा पैर, व्यक्तित्व से प्रभावित होना स्वाभाविक था। उत्सुक हो उठा मैं। थोड़ा आगे बढ़कर प्रणाम किया मैंने। अपना दाहिना हाथ आशीर्वाद की मुद्रा में उठा कर संन्यासी ने मौन आशीर्वाद दिया और फिर स्थिर दृष्टि से मुस्कुराते हुए कुछ क्षण तक देखता रहा मेरी ओर। मुस्कुरा क्यों रहा था संन्यासी? उसकी मुस्कुराहट से ऐसा लगा मानो वह मुझसे परिचित हो। कौतूहल होना स्वाभाविक था। अब मेरे और समीप आ गया था वह और फिर उसी तरह मुस्कुराते हुए गम्भीर स्वर में बोला संन्यासी–'मैं' अग्निवेश हूँ।

यह सुनकर कुछ कौंध–सा गया मेरे मस्तिष्क में। एकाएक चौंकना पड़ा मुझे। अरे! आप सूक्ष्म से स्थूल में कब और कैसे? कैसे हुआ यह परिवर्तन? कहाँ उपलब्ध हुआ आपको गर्भ? एक साथ कई प्रश्न कर कौतूहल और जिज्ञासा से भर उठा था मेरा मन।

बतलाता हूँ, बतलाता हूँ बन्धु! सब कुछ स्पष्ट करूँगा मैं। थोड़ा रूककर महात्मा अग्निवेश आगे बोले– काशी में विश्वनाथ मंदिर में हरिजन प्रवेश की समस्या को लेकर करपात्री जी द्वारा जो धार्मिक आन्दोलन हो रहा है उसी में भाग लेने के लिए ऋषिकेश से यहाँ आया हूँ मैं। इसलिए कि धर्म–प्राण करपात्री जी के आदेश पर काशी में ही संन्यास ग्रहण किया है मैंने। मेरे संन्यास दीक्षा गुरु हैं सर्व सर्वेश्वरानन्द। उनका अपना आश्रम है कनखल में।

ठीक है, ठीक है, आगे बतलाइये। थोड़ा व्यग्र हो उठा था मैं। जो स्वाभाविक भी था।

वैसे तो माता–पिता का दिया नाम जगन्नाथ मिश्रा है लेकिन इस शरीर का गुरु प्रदत्त नाम है सर्वदानन्द। आप भी मुझे सर्वदानन्द ही कहेंगे।

घाट पर भीड़भाड़ बढ़ गयी थी अबतक इसलिए मैं संन्यासी को साथ लेकर अहिल्याबाई घाट की ओर बढ़ गया और वहीं बैठ गये दोनों एक बुर्जी पर। सर्वदानन्द ने अपनी कथा आगे बढ़ाई और बोले– उस समय ध्यानस्थ बैठा हुआ था। उसी समय सद्गुरु आ गये। मेरी मनःस्थिति को समझते देर न लगी उनको। वैसे तो तुम्हारे लिये पूर्णरूप से अनुकूल गर्भ का मिलना बहुत ही कठिन है लेकिन उज्जैन के निकट एक गांव में

युवा दम्पत्ति रहते हैं। उनको सन्तान नहीं है। दुखी हैं वह पुत्र के लिए। तुम उन्हीं के माध्यम से संसार में चले जाओ और यथासमय संन्यास ग्रहण कर आगे की साधना प्रारम्भ कर दो।

सद्गुरु की आज्ञा का पालन करना ही पड़ा मुझे। समयानुकूल जन्म ले लिया मैंने नव दम्पत्ति द्वारा। मेरे माता–पिता गरीब ब्राह्मण थे। कुछ खेतीबाड़ी थी। उसी से होता था निर्वाह। मैंने यह अनुभव किया कि मानव जीवन में जो कुछ भी घटित होता है, वह पूर्ण नियोजित होता है, इसमें सन्देह नहीं। शिवरात्रि पर्व पर उज्जैन स्थित महाकाल के दर्शन के लिए लोग जाते हैं। मेरे माता–पिता भी मुझे साथ लेकर दर्शनार्थ गये उज्जैन। क्या आपको अपनी पूर्व स्मृतियां जागृत हैं– पुनः व्यग्र भाव से पूछा मैंने?

हाँ! तभी तो आपको बतला रहा हूँ अपने पूर्व जन्म की घटना। हँस कर उत्तर दिया संन्यासी ने।

फिर क्या हुआ?

हुआ क्या? माता–पिता भजन पूजन में मग्न थे लेकिन मैं क्षिप्रा के तट पर पानी में पैर लटकाए मौन साधे बैठा था। दोपहर का समय था। अचानक मुझे पैर में चुभन का अनुभव हुआ उसी के साथ पूरा शरीर सनसनाने लगा और सिर भी भारी होने लगा। बाद में पता चला कि मुझे किसी भयानक सर्प ने डस लिया है। माता–पिता विलाप करने लगे। इकलौता पुत्र था मैं। भीड़ जुटने लगी। काफी उपचार हुआ लेकिन लाभ नहीं। शरीर अबतक काफी नीला हो चुका था। सर्प विष का प्रभाव अपनी चरमसीमा पर था। अन्त में जो होना था वही हुआ। प्राणान्त हो गया मेरा और तभी भीड़ को ढकेलते हुए वहां एक महात्मा प्रकट हुए। सिर पर जटाजूट और विशाल काया। हाथ में त्रिशूल और गले में रूद्राक्ष। कषाय वस्त्र, पैरों में खड़ाऊँ, तेजोमय मुखमण्डल। महात्मा का भव्य व्यक्तित्व देखकर सभी लोग एकबारगी स्तब्ध रह गये।

महात्मा ने झुककर मेरे मृत शरीर को देखा, फिर मेरे माता–पिता से बोले– यह बालक तो पूर्णरूप से मृत हो चुका है। अब क्या करोगे। अंत्येष्टि ही करोंगे न।

हाँ महाशय इसके अलावा और क्या हो सकता है प्रभु! मेरे माता–पिता ने विगलित स्वर में उत्तर दिया। यदि बालक जीवित हो जाय तो क्या आप शिष्य रूप में स्वीकार करने की आज्ञा दोगे मुझे? यह कैसे सम्भव है महाराज! मृतक कभी जीवित भी हो सकता है।

सम्भव है! सब कुछ सम्भव है मेरे लिए। पहले तू वचन दे। अपना पुत्र देगा मुझे? महात्मा गरजे। ठीक है महाराज! एक ही पुत्र है। जीवित तो हो जायेगा फिर वह आपके पास रहे या मेरे पास मुझे स्वीकार है अवरूद्ध कण्ठ से बोले मेरे माता–पिता।

फिर क्या हुआ जरा और समीप खिसककर पूछा मैंने। महात्मा का नाम था सिद्धेश्वरानन्द परमहंस। उन्होंने अपनी यौगिक क्रिया से जीवित कर दिया मुझे और उसी समय अपने साथ ले गये हिमालय। मान्धाता में उनकी गुफा थी। उसी गुफा में महात्मा ने मुझे योग की उच्चतम् दीक्षा दी। अब वे मेरे सद्गुरु थे। असीम मानवेतर शक्ति सम्पन्न अनेक प्रकार की दुर्लभ योग सिद्धियाँ उपलब्ध थी उन्हें। कई वर्ष तक उनके सान्निध्य में रह कर कठोर साधना की मैंने। पहले तो स्थूल शरीर से की साधना उसके बाद की मैंने साधना सूक्ष्म शरीर से। इसलिए मेरी आयु बढ़ती गयी। आपको ज्ञात होना चाहिए कि योग और तंत्र की साधना के तीन क्रम हैं– पहला क्रम स्थूल शरीर साध्य है, दूसरा क्रम सूक्ष्म शरीर साध्य है और तीसरा क्रम है कारण शरीर साध्य।

योग तंत्र साधना के तीन क्रम- पचास वर्ष की आयु तक तो प्रथम क्रम में था मैं। उसके पश्चात् पचास वर्ष पर्यन्त रहा मैं दूसरे क्रम में और जब मेरे दूसरे क्रम की साधना पूर्ण हो गयी तो सद्गुरु ने कहा– अब स्थूल शरीर की मर्यादा समाप्त हो गयी है। इसीलिए कि मानव शरीर की पूर्ण आयु सौ वर्ष है। अब तुम्हे कारण शरीर साध्य तीसरे क्रम की साधना मनोमय जगत में करनी होगी। उसी समय शरीर त्याग कर अपने कारण शरीर द्वारा मनोमय जगत में प्रवेश कर गया। वहाँ मुझे सद्गुरु ने तीसरे क्रम की साधना की दीक्षा दी और मेरा नाम रखा अग्निवेश।

योग के तीनों साधना क्रम पूर्ण हो जाने पर यहीं योगी के लिए आत्म साधना का मार्ग खुलता है और आत्म साधना के लिए मानव शरीर आवश्यक है क्योंकि स्थूल शरीर द्वारा ही सम्पन्न होती है आत्म साधना। इसलिए

स्थूल शरीर को महत्वपूर्ण बतलाया गया है। आत्म साधना पूर्ण होते ही योगी सीधे आत्मलोक को ही जाता है उपलब्ध। फिर उसे नीचे के किसी भी शरीर की आवश्यकता नहीं पड़ती। आवश्यकता तो तभी पड़ती है जब संसार में जन्म लेना होता है। आत्म लोक के ऊपर कई दिव्यलोक हैं। आत्म शरीर परमात्मा के सान्निकट है। योगी आत्म शरीर द्वारा अपनी इच्छा से किसी भी दिव्यलोक में जा सकता है। यदि उसकी इच्छा हुई मानव कल्याण की तो वह आत्म शरीर द्वारा ही स्थूल शरीर ग्रहण कर लेता है। वह गर्भ में प्रविष्ट नहीं होता और न तो योनि द्वारा संसार में आता ही है। माता को गर्भ का केवल भ्रम रहता है। गर्भ धारण करने से लेकर जन्म लेने तक की सारी प्रक्रिया का बोध तो माता को तो होता ही है, लेकिन वह होता है मात्र भ्रम। इसे माया भी कह सकते हैं आप। आत्म लोक से सीधे अवतरित होने वाली आत्मा को शास्त्र अवतारी पुरुष कहता है। अवतार इसी को कहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने अवतार लिया था, जन्म नहीं। वे अवतारी पुरुष थे इसमें सन्देह नहीं। इतना सब कुछ बतला कर मौन साध गये सर्वदानन्द। उस समय तक लेखक के पिताश्री ने भी संन्यास ग्रहण कर लिया था। उनसे भी मिले सर्वदानन्द और मिल कर अति प्रसन्न हुए महाशय। दो दिन बाद कनखल चले गये। सन् 1960 के लगभग एक बार और आये सर्वदानन्द। देखकर आश्चर्य हुआ। उस समय भी युवक ही थे वह। हँस कर बोले– काल का प्रभाव मुझ पर पड़ने वाला नहीं। तीस वर्ष और रहना है इस शरीर में। उसके पश्चात् पुनः आत्म लोक में ही जाना होगा। फिर सदैव–सदैव के लिये नाता–रिश्ता टूट जायेगा तीनों जगत में। आगे सद्गुरु की इच्छा! उसके पश्चात् सन् 1990 में स्वप्न में दर्शन दिया मुझे सर्वदानन्दजी ने मुस्कुरा रहे थे महाशय। उनको आत्म शरीर में देखकर विह्वल हो उठा में एकबारगी। हल्का गुलाबी पारदर्शक शरीर और उसके चारों ओर हल्के नीले–रंग का प्रकाश वलय।

क्या आप अवतार लेंगे? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उस महायोगी ने सिर हिलाते हुए कहा– 'नहीं। इसलिए कि इस कलुषित संसार में दीर्घकाल तक मुझे छोड़िए किसी भी दिव्यात्मा का अवतार लेना सम्भव नहीं। अब मैं चल रहा हूँ। जब कभी मेरी आवश्यकता पड़ेगी साधना

मार्ग में अवश्य स्मरण कर लेंगे आप मुझे। जब कभी मुझे आध्यात्मिक संबंल की आवश्यकता पड़ी स्मरण किया और तत्काल उस दिव्य महात्मा से सम्पर्क हो जाता था मुझसे। आज भी यही स्थिति है। स्मरण करते ही मेरा पूरा कमरा चन्दन की भीनी–भीनी सुगन्ध से भर उठता है एकबारगी और उसी के साथ होने लगता है मुझे विलक्षण अनुभव। उस विलक्षण अवस्था में अध्यात्म से संबंधित मेरी जो जिज्ञासाएं होती हैं अथवा कोई प्रश्न होता है। उनका समाधान कर देते हैं और उत्तर भी दे देते हैं महात्मा अग्निवेश। आज तक उनकी यह अहैतुकी कृपा बनी है मुझ पर इसमें सन्देह नहीं।

शिवेन्द्र ने सरस्वती ने नर्क से मुक्त होकर जन्म भी ले लिया था। शिशु रूप में उनका दर्शन भी उपलब्ध हो गया था मुझे। अब मेरे सामने दो विकट समस्याएं थी पहली थी कवीन्द्राचार्य से सम्पर्क और दूसरी थी त्रैलोक्य मीमांसा के रहस्य को अनावृत्त करना। दोनों समस्याएँ महत्वपूर्ण थी मेरे लिए उस समय। त्रैलोक्य मीमांसा की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसकी भाषा संस्कृत होते हुए भी उर्दू से प्रभावित थी। इतना ही नहीं तत्कालीन मुस्लिम प्रभाव के कारण उर्दू की तरह दाहिने ओर से लिखी गयी थी। जैसाकि मैं पहले भी बतला चुका हूँ कवीन्द्राचार्य की आत्मा मुझसे स्वयं सम्पर्क स्थापित करेगी। यह बात कविराज जी ने भी कही थी और रोहिणी ने भी। इनके अलावा बंगाल के सुप्रसिद्ध योग तंत्र साधक राखालचन्द्र भट्टाचार्य जी ने इस बात का समर्थन किया था। लेकिन मेरे सामने प्रश्न था– कब और कैसे–कैसे होगा यह सम्भव? उसी समय एकाएक रोहिणी का स्मरण हो आया मुझे। सोचने लगा– जब पं. नारायण भट्ट जैसे महान दिव्य पुरुष के संबंध में बतला सकती है वह महाभैरवी तो कवीन्द्राचार्य के विषय में क्यों मूक है वह? क्या कारण है इसका?

रात आंधी से अधिक गुजर चुकी थी शायद। चारो ओर गहरा सन्नाटा पसरा हुआ था। कभी–कभी कुत्तों के रोने और सियारों के समवेत् स्वर में विलाप करने से छन्न् से टूट जाता था वह सन्नाटा। गंगा की ओर वाली खिड़की खुली हुई थी– अष्टमी का पीला उदास चांद नीले आकाश में थोड़ा ऊपर आ गया था उस समय। एक ओर टेबल पर

त्रैलोक्य मीमांसा की जीर्णशीर्ण हस्तलिखित पुस्तक पड़ी थी। जिसने मेरी दिनचर्या अस्त व्यस्त कर रखी थी और जिसके कारण उड़ गयी थी मेरी रात की नींद भी। कहाँ से पड़ गया मैं इस श्रापित पुस्तक के चक्कर में। एकबारगी खीज उठा मैं अपने आप पर। कुर्सी खिसका कर सामने बैठे गया मैं खिड़की के और सुदूर मणिकर्णिका घाट के श्मशान में जलती हुई चिताओं को देखने लगा कुछ सोचते हुए। क्या सोच रहा था, यह बतला नहीं सकता। अचानक एकाग्रता भंग हो गयी। पलट कर देखा– सामने रोहिणी खड़ी मुस्कुरा रही थी। तत्काल सूक्ष्म शरीर से स्थूल शरीर में अपने आपको परिवर्तित करने की कला की मर्मज्ञ यह भैरवी कैसे आ गयी इस समय? आवाहन तो किया नहीं था मैंने?

आदत के अनुसार मुस्कुराते हुए बोली–यक्ष लोक में गुरु के निकट थी। उसी समय तुमने मेरे विषय में सोचा, बस मैं चली आयी यहाँ। तुम यही जानना चाहते हो न। कवीन्द्राचार्य के संबंध में क्यों न बतला सकी मैं। क्यों मूंक बनी रही? इसका कारण है और वह कारण यह है कि मेरी एक निश्चित सीमा है। यक्ष लोक, गन्धर्व लोक, किन्नर लोक और गुह्य लोक मेरी सीमा में है। कवीन्द्राचार्य दिव्यलोक में हैं, जो मेरी सीमा के बाहर है। जिसमें मेरा प्रवेश सम्भव नहीं। हाँ! मैं तुमको यह अवश्य बतला सकती हूँ कि मरणोपरान्त कवीन्द्राचार्य पहले तो अन्य किसी लोक में थे, लेकिन बाद में आध्यात्मिक उन्नति करते हुए दिव्य लोक को हो गये उपलब्ध। वास्तव में वह लोक–प्रज्ञावान आत्माओं का लोक है। वे स्वयं आतुर रहती है प्रज्ञावान व्यक्ति से सम्पर्क साध कर पराज्ञान का उपदेश देने के लिए। इसी प्रकार जो व्यक्ति प्रज्ञावान होगा वही दिव्यलोक के प्रज्ञावान आत्माओं से सम्पर्क साधने में होता है समर्थ और होता है पराज्ञान के लिए योग्य पात्र भी। समझ गये न। कहा भी तो गया है– **प्रज्ञावान् लभतेज्ञानम्** शायद तुम भूल गये। भूलना तो मनुष्य की आदत है। तुम्हारा भूलना स्वाभाविक है। एक बार मैंने चर्चा की थी ज्ञान और प्रज्ञा के विषय में कवीन्द्राचार्य के प्रसंग में।

हाँ! हाँ! याद आया मुझे। आपने की थी चर्चा लेकिन अब क्या होगा? कैसे होगा मेरी समस्या का हल। अब तो फँस ही चुका हूँ मैं इस अदृश्य मायाजाल में। थोड़ा सहिष्णु हो उठा मैं।

चिन्तित और परेशान होने की आवश्यकता नहीं। मैंने तुमसे पं. सुब्रमण्यम् शास्त्री से मिलने के लिए कहा था और यह भी कहा था कि शास्त्री जी प्रच्छन्न योगी हैं। सिद्धावस्था को उपलब्ध हैं वह। कई सिद्ध मण्डलियों से उनका अगोचर संबंध भी है.....। क्या मिले तुम उनसे! मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखती हुई बोली महाभैरवी।

नहीं! अभी तक तो नहीं मिला– मैंने कहा। उनसे तुम मिलो! वे अन्तर्यामी महापुरुष हैं। तुम्हारी यह समस्या भी हल कर देंगे। पूर्ण विश्वास है मुझे। वैसे मैं उनको इसके लिए आन्तरिक रूप से प्रेरित करूँगी।

प्रच्छन्न योगी पं. सुब्रमण्यम् शास्त्री– हरिश्चन्द्रघाट का महाश्मशान। उसी के बगल में है हनुमानघाट। घाट के ऊपर हनुमानजी था अति प्राचीन मन्दिर भी है। एक प्रकार से हनुमानघाट दक्षिण भारतीयों का गढ़ ही है। यदि कभी आप भूले भटके चले गये हनुमानघाट मुहल्ले में तो पहले आपको कई दुकानें मिलेगी दक्षिण भारतीय व्यञ्जनों की। इडली डोसा, सांबर बड़ा, उपमा के अलावा और न जाने क्या–क्या मिलेगा उन दुकानों पर। कॉफी तो हर समय मिलेगी पीने के लिए आपको, दिन हो या रात। फिर दिखलायी देगी दक्षिण भारतीय लोगों की भीड़। काला रंग, कमर में आधी उठी हुई लुंगी, अर्धचन्द्राकार मुड़ा हुआ सिर और उस मुण्डित सिर के ऊपर शिखा गुच्छ, मस्तक पर भस्म का त्रिपुण्ड दोनों बाहुओं में पस्मी, कई जगह त्रिपुण्ड, कन्धे पर झूलता हुआ शुभ्र यज्ञोपवीत और फिर कानों को कष्ट देने वाली कड़–कड़, तड़–तड़ की आवाज जो आपकी समझ के परे होगी। बस, आपको यही लगेगा कि मैं मद्रास के किसी कोने में आ गया हूँ अनजाने में।

शास्त्री जी का मकान खोजने में थोड़ी परेशानी अवश्य हुई मुझे। हनुमान मन्दिर की गली से आगे एक पतली सी गली शिवालाघाट की ओर गयी हुई है। उसी गली में थोड़ा आगे बढ़ने पर एक मन्दिर है और अंधेरे में डूबे हुए उसी पुराने मन्दिर में रहते थे पं. सुब्रमण्यम् शास्त्री। मन्दिर के बगल से एक गली मुड़ गयी थी शिवालाघाट की ओर। गली के नुक्कड़ पर एक लम्बा–चौड़ा चबुतरा था। थोड़ा ऊँचा भी था। जिस पर तीन चार अवारा मरियल कुत्ते बैठे ऊंघ रहे थे। एक ने सिर उठा कर

अधमुंदी आँखों से मेरी ओर देखा और फिर मुंह फेर लिया दूसरी ओर। मन्दिर के सामने एक मोटा ताजा साड़ खड़ा था, समाधिस्थ। अब क्या करूँ? समझ में नहीं आया। खड़ा रहा चुपचाप। मन्दिर का पट बन्द था। थोड़ी देर बाद पट खुला और एक अति वृद्ध व्यक्ति ने सिर बाहर निकाल कर चारो ओर देखा। मुझ पर नजर पड़ी। आँखे जैसे अंगारे की तरह जल रही थी और उसी जलती हुई आँखों से एक बार सिर से पैर तक देखा उस वृद्ध ने। फिर बाहर निकल आये महाशय। लगभग अस्सी की आयु रही होगी लेकिन शरीर गठीला और कसा हुआ। सिर के बाल और दाढ़ी मूंछ सबके सब सफेद। अर्ध नग्न शरीर। कमर में एक सफेद लुंगी। कन्धे पर गमछा। चेहरे पर विचित्र चमक थी। ठहर न पायी मेरी आँखे चेहरे पर। समझते देर न लगी, वे और कोई नहीं पं. सुब्रमण्यम शास्त्री थे। झुक कर चरण स्पर्श किया। आशीर्वाद मिला–सर्वे भवन्तु सुखिनः..।, अपना परिचय दिया और अन्त में बतलाया अपने आने का उद्देश्य– योग तंत्र पर शोध कार्य कर रहा हूँ। थोड़ा बहुत साधना भी करता हूँ। इन्हीं सबसे संबंधित अपनी कुछ जिज्ञासाएँ हैं, समाधान के लिए आपकी सेवा में आया हूँ मैं। मन ही मन सोचा– अरे! जो कहना चाहिए था और जिसके लिए आया था वह तो भूल ही गया। हे भगवान! अब क्या करूँ? तभी मेरे सिर पर अपना दाहिना हाथ फेरते हुए शास्त्रीजी गम्भीर स्वर में बोले– आ जाओ! फिर वे भीतर चले गये मन्दिर के। मैंने भी उनका अनुशरण किया। मंदिर के बगल में एक सीलन भरी छोटी सी कोठरी थी और उसी कोठरी में रहते थे शास्त्रीजी। केवल एक तख्त था। एकमात्र वही पुराना तख्त ही सब कुछ था उस महान योगी का। एक परम सिद्ध साधक और योगी का वास्तविक स्वरूप क्या होता है। यह पहली बार जानने और समझने का अवसर मिला था मुझे। उसी तख्त पर महाशय लेटते थे, सोते थे, बैठते थे और अपनी साधना भी करते थे। न चादर, न दरी और न तो बिस्तर ही। सामने दीवार पर खूटी के सहारे लटकती हुई एक मटमैली पुरानी धोती और एक लाल गमछा। एक ओर कोने में पानी से भरा मिट्टी का घड़ा, जो काफी पुराना लग रहा था और एक लोटा और एक थाली और वह भी पुरानी। मेरे पितामह पं. बेचनजी शर्मा अपने समय के महान विद्वान और योगी पुरुष थे और जब यह शास्त्री

जी को ज्ञात हुआ कि मैं उनका पौत्र हूँ तो अति प्रसन्न हुए महाशय। गद्–गद् स्वर में बोले– मैं तुम्हारे पितामहजी से भलीभांति परिचित हूँ। वे प्रायः नित्य हनुमानजी का दर्शन करने आते थे। शक्ति के उपासक थे वह। निश्चय ही वे एक दिव्य महापुरुष थे, इसमें सन्देह नहीं। यह सन् 1956 की बात है। तब मेरे पितामहश्री ब्रह्मलोक वासी हो चुके थे।

फिर क्या? स्नेह सिञ्चित कृपा उपलब्ध हो गयी मुझे एक परम सिद्ध योगी की। सांझ घिर आयी थी। उस कोठरी में भी अब अन्धेरा फैलने लगा था। शास्त्री जी ने बटन दबाया पच्चीस पावर के बल्व का हल्का पीला प्रकाश फैल गया कोठरी में और उसी हल्के पीले प्रकाश में सिर घुसा कर चारों ओर देखा, छत पर झूलते हुए मकड़ी के जाले, बदरंग दीवारें और उन दीवारों में कहीं–कहीं झांकते हुए ईटों के टुकड़े। हे भगवान! कैसे रहता है यह योगी इस कोठरी में।

तख्त पर बैठते हुए शास्त्री जी बोले– तुम एक संस्कारी व्यक्ति हो। पिछले कई जन्मों का संस्कार भरा हुआ है तुम्हारी आत्मा में। मैं तो पहली दृष्टि में ही समझ गया था। वास्तव में तुम एक अति विलक्षण मनुष्य हो इसमें सन्देह नहीं। सीलन भरी जमीन पर बिछी चटाई पर मुझे बैठने का संकेत करते हुए शास्त्री जी आगे बोले– यदि ऐसा न होता तो किशोरावस्था में वैराग्य कैसे उत्पन्न होता? वक्रेश्वर कैसे जाते? वहां [redacted] से कैसे भेंट होती? उनका और महातंत्र साधक [redacted] का ज्ञानोपदेश कैसे होता उपलब्ध?

लगा जैसे समाधि की अवस्था में बोल रहा हो वह योगी। आश्चर्य–चकित था मैं। मुँह बाये अवाक सुनता रहा योगी की ओर देखते हुए..। तुम्हारे लिए ही तो आयी थी देवयानी माँ। उस [redacted] और योगिनी की ही कृपा थी जिसमें तुमको इष्ट दर्शन हुआ और साक्षात्कार हुआ सद्गुरु का और उपलब्ध हुई [redacted] सम्पन्न स्फटिक [redacted]। इतना ही नही [redacted] माँ द्वारा तुमको जो [redacted] में प्रवेश करने की कला उपलब्ध हुई और जिससे तुम सूक्ष्म जगत में भ्रमण करने में सिद्धहस्त हो गये। यह क्या कम है? बड़े–बड़े सिद्ध योगियों को भी शीघ्र उपलब्ध नहीं होती [redacted]। मुझसे कुछ भी छिपा नहीं है। मैं सब कुछ जान समझ गया हूँ। यदि तुम अपनी [redacted]

के प्रति वासनात्मक भाव रखने के कारण योग भ्रष्ट न हुए होते तो मेरे पास तुम्हे आने की आवश्यकता ही क्या थी? यह सुनकर एकबारगी चौक पड़ा मैं। हे भगवान! मेरे पिछले जन्म की भी बात जान गया ये प्रच्छन्न योगी। तब तो इसको यह भी ज्ञात हो गया होगा कि विमल कीर्ति किस अवस्था में है? समाधि भंग नहीं हुई थी योगी की। थोड़ा रूक कर आगे फूट पड़ी वाणी– विमल कीर्ति इस समय मनोराज्य में है।

क्या विमल कीर्ति का कभी जन्म होगा– साहस कर पूछा मैंने?

क्यों नहीं होगा? होगा और अवश्य होगा। योगी की वाणी में ओज था और थी अधिक गम्भीरता भी। लगा जैसे मीलों दूर से आवाज आ रही हो उसकी। वह कह रहा था– हावड़ा (कलकत्ता) स्थित सहस्रभुजा काली के परम भक्त और साधक ठाकुर दा की पुत्री के रूप में जन्म लेगी विमल कीर्ति। उसका नाम होगा श्यामला।

सहमते हुए मैंने पूछा– क्या श्यामला से भेंट होगी मेरी?

हाँ! अवश्य होगी। गुरु भाव से फिर तुम्हारी सेवा करेगी लेकिन पूर्वकृत कर्मो के कारण अधिक समय तक जीवित न रह सकेगी वह। लेकिन मृत्यु के पश्चात् भी तुम्हारे प्रति गुरु भाव लेकर पुनः जन्म लेगी और वह भी काशी में। तुम तो उसे पहचान लोगे लेकिन वह तुम्हे पहचान न सकेगी। अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जायेगी माया मोह के कारण, ऐसा सम्भव भी है।

अब सहज अवस्था में आ गये थे शास्त्रीजी। घड़े से निकाल कर एक लोटा पानी पीया उन्होंने। कुछ बोले नहीं। मौन निर्विकार बैठे रहे तख्त पर। सांझ की स्याही रात के अन्धेरे में बदल चुकी थी अबतक। दस बज रहे थे शायद। शास्त्री जी की समाधि का समय भी हो गया था। अब बैठना उचित नहीं समझा मैंने।

***

उस रात नींद नहीं आयी। जागता ही रह गया और सोचता रहा कभी शास्त्रीजी के संबंध में तो कभी विमल कीर्ति के विषय में। निश्चय ही विलक्षण योगी थे शास्त्रीजी। मेरा सारा का सारा आध्यात्मिक रहस्य अनावृत्त हो चुका था उनके सामने। पिछले जन्म की कथा कैसे जान

गये महाशय। विमल कीर्ति श्यामला के रूप में जब जन्म लेगी तो कैसे पहचान सकूँगा मैं उसे। निश्चय ही वह मुझे नहीं पहचानेगी इसमें सन्देह नहीं। यही सब सोचते विचारते पूरी रात कट गयी मेरी। (श्यामला के संबंध में पढ़े–'रहस्य' पृ. सं. 220) लेकिन एक बात मेरी समझ में नहीं आयी कि मेरे उद्देश्य को कैसे नहीं समझ सके शास्त्री जी? कवीन्द्राचार्य के विषय से क्या अनभिज्ञ हैं महाशय! समझ में नहीं आ रहा था कुछ।

***

दूसरे दिन गया अपने समय पर। बाहर बैठे थे शास्त्रीजी चबुतरे पर। लगा जैसे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उस दिन गुरु भाव पर चर्चा की उन्होंने।

गुरु का अर्थ- लौकिक और पारलौकिक जितने भी भाव हैं– उनमें सर्वश्रेष्ठ भाव गुरु भाव है। आत्मा में गुरु भाव का उदय होना सहज नहीं है। जन्म–जन्मान्तर तक क्रमशः उन्नति करती हुई जब आत्मा एक विशेष अवस्था को होती है उपलब्ध, उस समय उसमें उन्मेष होता है गुरु भाव का और जब उस भाव का उदय होता है तो शिष्य को खोजते हुए स्वयं गुरु उसके समीप पहुँचते हैं और दीक्षा प्रदान करते हैं। ऐसा भी होता है कि गुरु भाव उत्पन्न होने पर आत्म प्रेरणा से गुरु के समीप स्वयं पहुँच जाता है शिष्य।

जैसे माता–पिता एक ही होते हैं। उसी प्रकार गुरु और इष्ट भी एक ही होते हैं, दो नहीं। वैसे तो विश्व ब्रह्माण्ड के गुरु तो केवल भगवान श्रीकृष्ण ही हैं– **'कृष्णं वन्दे जगद् गुरुम्'** गुरु का वाक्य ही महामंत्र है– **'मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यम्'**। गुरु का वाक्य और उनका उपदेश बुद्धि का प्रेरक बनता है। बुद्धि को शुद्ध करने में, उसे प्रस्फुटित करने में शक्तिधर और कोई नहीं है। शक्तिधर यानी हृदय। गुरु का वाक्य हृदय में धारण करने से बुद्धि कभी भी भ्रष्ट नहीं होती। कुपथ पर भी नहीं जा सकती। गुरु वाक्य से आचार शुद्धि भी होती है। **'यो बुद्धे पर तस्तु सः' (गीता)** बुद्धि के पार जो 'परतत्व' है, उसकी उपलब्धि वाक्य से ही सम्भव है। परतत्व का अर्थ है आकाश तत्व। शरीर में जहाँ–जहाँ खाली स्थान है और जहाँ–जहाँ कुछ भी नहीं हैं वहाँ–वहाँ आकाश तत्व हैं। उसकी शुद्धि यानी उस स्थान की शुद्धि, समझ में आया।

हाँ बाबा! मैंने सिर हिलाया।

तुमने कल पहले दिन मेरे चरणों का स्पर्श किया क्या अनुभव हुआ।

पूरे शरीर में एक विचित्र प्रकार के आनन्द की लहरें दौड़ गयी बाबा।

बिल्कुल ठीक अनुभव हुआ– शास्त्रीजी आगे बोले– गुरु के चरण स्पर्श मात्र से ही शिष्य एक दिव्य आनन्द, एक मधुर सिहरन और एक दिव्य पुलक का करता है अनुभव।

गुरु की जो आध्यात्मिक शक्ति है उससे शिष्य की आत्मा का संबंध मात्र केवल चरणस्पर्श से हो जाता है। इस संबंध से शिष्य के वायुतत्व की शुद्धि हो जाती है। जिसके परिणामस्वरूप शिष्य योग्यता लाभ करता है।

'गुरु' इस पद में पाँच वर्ण हैं जो पंचतत्व का प्रतिनिधित्व करते हैं। श्री, ग, उ, र, उ एवं विसर्ग। दोनों 'उ' को एक ही वर्ण मानना होगा। 'ग' का उच्चारण स्थान है जिह्वा मूल। जिह्वा मूल का अर्थ है– जो जीव अपने मूल से भ्रष्ट होकर दीन भाव को प्राप्त हो गया है। उस जीव की वाक् बुद्धि और प्राण के मूल में जो आत्म तत्व है उसकी उपलब्धि होती है 'ग' वर्ण से। 'ग' के बाद 'र' है। रकार का उच्चारण स्थान मूर्धा है। 'रकार' शिष्य की तृष्णा का क्षय करता है और क्षय होने के पश्चात् तेज व प्रकाश प्रदान करता है। दो 'उ' कार में एक 'उकार' शिष्य के मोद को नष्ट करता है यानी अज्ञान अथवा अविद्या। दूसरा 'उकार' शिष्य के हृदय में ज्ञान का उदय कराता है।

'उकार' की वृत्ति द्विविध है। उकार का उच्चारण स्थान ओष्ठ है। ओष्ठ के द्वारा सभी वर्ण नियन्त्रित होते हैं। यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि ओष्ठ के द्वारा कहीं–कहीं यानी कभी–कभी वर्ण छिन्न भी हो जाते हैं। वर्ण छिन्न का मतलब है– पूरे एक अक्षर में किसी आधे अक्षर का प्रयोग। जैसे 'क', इसमें दो वर्ण हैं लेकिन एक वर्ण आधा है– 'क'। इस अर्ध संयुक्त वर्ण का यानी 'कब' का कोई अर्थ नहीं है इसीलिए 'कब' में किसी भी प्रकार की शक्ति भी नहीं है। वहाँ वह निरर्थक है। ओष्ठ के संयुक्त आघात से वर्ण का बहिर्प्रकाश होता है लेकिन जो निरर्थक है, उसमें प्रकाश नहीं होता। गुरु द्वारा कोई भी शब्दोच्चारण निरर्थक नहीं

होता। उच्चारित सभी शब्द प्रकाशवान होते हैं और वह प्रकाश शिष्य के हृदय को प्रकाशित करता है।

तुम्हारे सद्गुरु ने जो भी उपदेश तुमको दिया है। उससे तुम्हारा हृदय प्रकाशित है, इसमें सन्देह नहीं। उनका दर्शन प्राप्त कर तुम्हारी आत्मा कृतार्थ हो चुकी है। अब वे तुम्हारे अन्तकाल में प्रकट होकर तुमको दर्शन प्रदान करेंगे और तुम्हारे अगले जन्म की व्यवस्था करेंगे। सद्गुरु का यह कर्तव्य है।

आचार शुद्धि- बाबा थोड़ा रूक कर आगे बोले– इस प्रसंग में यह भी समझ लेना चाहिए कि शिष्य का हृदय तभी प्रकाशित होगा जब वह आचार शुद्ध होगा।

आचार शुद्धि क्या है– मेरे इस प्रश्न के उत्तर में बाबा ने कहा– अध्यात्म मार्गीय कोई साधना या उपासना हो, यदि आचार शुद्धि नहीं है, तो सब व्यर्थ है। जैसाकि कहा गया है–

पुनाति ह्यन्नमाहारोऽसूनाचार स्ततः क्रमात्।
अन्ज सौपयिका श्चान्ये पुनन्ति कोष पंचकम्।।

मानव शरीर में पाँच कोष है। अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष। वास्तव में पाँचों कोष आत्मा के पाँचों शरीर के बीज रूप हैं। जैसे बराबर बहते हुए पानी के कारण पत्थर पर काई यानी मैल जम जाती है। उसी प्रकार जन्म–जन्मान्तरों के संस्कारों के मैल काल के प्रवाह के कारण पंचकोषों में जम जाती है। इसी मैल को योग में आणवमल कहते हैं। जिसके कारण आध्यात्म मार्ग में ठीक ढंग से उचित प्रगति नहीं हो पाती है इसीलिए आचार को शुद्ध करना आवश्यक है। आचार के शुद्ध होने से आणवमल नष्ट हो जाते हैं मार्ग प्रशस्त हो जाता है। पंचकोषों के आवणमल कैसे नष्ट होते हैं। इसका समाधान करते हुए बाबा ने कहा– शुद्ध अन्न का प्रयोग और सात्विक भोजन (भीख में प्राप्त अन्न, दान में लिया गया अन्न, झूठ, कपट से प्राप्त किया अन्न, श्राद्ध का अन्न अथवा भोजन निकृष्ट माना गया है। देवता और इष्ट के निमित्त प्राप्त किया अन्न शुद्ध माना गया है) से **अन्नमय कोष** शुद्ध होता है और उसका आणवमल नष्ट होता है। शुद्ध जल पीने से, स्वच्छ वायु के सेवन से **प्राणमय कोष** का आणवमल नष्ट होता है।

मन के शुद्ध पवित्र और निर्मल रखने से मनोमय कोष का आणवमल नष्ट होता है। विचार और बुद्धि को शुद्ध रखने से विज्ञानमय कोष का आणवमल नष्ट होता है। इसी प्रकार संस्कार शुद्ध निर्मल और पवित्र रखने से आनन्दमय कोष का आणवमल नष्ट होता है।

तुम्हे यह ज्ञात होना चाहिए कि योग साधना पन्द्रह जन्मों में, तंत्र साधना अट्ठारह जन्मों में और योग तंत्रपरक साधना बीस जन्म में पूर्ण होती है।

योग साधक को दसवें जन्म में सिद्धि लाभ होता है। चौदहवें जन्म में ऐश्वर्य लाभ होता है और अन्तिम जन्म में परम मुक्ति लाभ होता है। तंत्र साधक को पांचवें जन्म में तन्त्र सिद्धि लाभ होता है। सोलहवें जन्म में मंत्र सिद्धि लाभ होता है। सत्रहवें जन्म में भाव सिद्धि होती है और इसी के साथ इष्ट सिद्धि भी होती है। अन्तिम जन्म में संकल्प सिद्धि होती है और यक्ष लोक होता है उपलब्ध। योग तंत्रपरक साधक को पांचवें जन्म में मंत्र सिद्धि, सातवें जन्म में यंत्र सिद्धि, दसवें जन्म से बारहवें जन्म के अन्दर अष्टांग योग सिद्धि, तेरहवें जन्म में स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और मनोमय शरीर पर अधिकार प्राप्ति, चौदहवें जन्म में परकाया प्रवेश सिद्धि, पन्द्रह से अट्ठारहवें जन्म में कई प्रकार की दुर्लभ योगतांत्रिक सिद्धियों की होती है उपलब्धि। जिसके परिणामस्वरूप साधक मानवेतर शक्तियों से सम्पन्न होता है। यदि उन शक्तियों को प्राप्त कर भ्रमित हो जाय तो आगे की उन्नति का मार्ग अवरूद्ध तो होता ही है, इसके अतिरिक्त अधोगति को भी प्राप्त हो जाता है साधक। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो उन्नीसवें जन्म में साधक को इष्ट दर्शन, सद्गुरु दर्शन के अतिरिक्त अत्यन्त दुर्लभ नरमेध समाधि की होती है उपलब्धि। अन्तिम बीसवां जन्म अत्यन्त महत्वपूर्ण और मूल्यवान होता है इसलिए कि उसी अन्तिम जन्म में मृत्यु पर अधिकार प्राप्त होने के कारण साधक स्वेच्छा से अपने शरीर का त्याग करता है और होता है **परमगति** को उपलब्ध।

तुम्हारा यह साधना की दृष्टि से उन्नीसवाँ जन्म है। अगला जन्म तुम्हारे लिए अन्तिम जन्म होगा। फिर सब समाप्त इसलिए अपने इस जन्म के समय को व्यर्थ कार्यो में नष्ट नहीं करना चाहिए तुम्हे। अति महत्वपूर्ण है इस जीवन का एक–एक क्षण तुम्हारे लिए। जानते हो अभी

तो तुम चार–पाँच योगी और सिद्ध साधकों के सम्पर्क में आये हो। भविष्य में तो न जाने कितने प्रच्छन्न–अप्रच्छन्न, सिद्ध योगियों, सन्त– महात्माओं और उच्चकोटि के साधकों से तुम्हारा संबंध स्थापित होगा, बतलाया नहीं जा सकता। इतना ही नहीं उन दिव्य महापुरुषों द्वारा रहस्यमय आध्यात्मिक ज्ञान, विज्ञान की भी होगी तुम्हे उपलब्धि। उस दिन भी रात अधिक हो गयी थी। लौट आया घर। फिर आवश्यक कार्यवश तीन चार दिन जाना न हो सका। न जाने क्यों चाह करके भी अपना उद्देश्य स्पष्ट नहीं कर पाता था मैं बाबा के सामने। जैसे कोई रोक देता था मुझे और जब एक दिन सायंकाल के समय गया तो बाबा ने मुझे देखते ही आध्यात्मिक प्रसंग छेड़ दिया। विवश होकर सुनना पड़ा। क्या करता।

स्वधर्म और अधर्म–उपासना सैकड़ों प्रकार की है। जहां तक प्रश्न साधना का है वह केवल दो है– पहली है योग साधना और दूसरी है तंत्र साधना और दोनों की मूलभित्ति है वेदपरक अध्यात्म। आत्मा से संबंधित जो विषय है वह है अध्यात्म। इन दोनों साधनाओं के मार्ग पर चलने के लिए सर्वप्रथम शरीर का पूर्णरूप से स्वस्थ रहना अति आवश्यक है। 'स्वास्थ्य' शरीर का स्वधर्म है और शरीर को सदैव स्वस्थ रखना साधक का उद्देश्य होना चाहिए। साधक का कर्तव्य है कि वह शारीरिक और मानसिक स्तर का सन्तुलन बनाए रखने के लिए स्वधर्म का पालन करे अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना जीवन की पहली प्राथमिकता होनी चाहिए।

मैंने प्रश्न किया– क्या आप इस पर थोड़ा और प्रकाश डालेंगे?

जैसे पहली प्राथमिकता अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना है। उसी प्रकार दूसरी प्राथमिकता है– जीवन के लिए ध्यान उपलब्ध करना। तीसरी प्राथमिकता है– आध्यात्मिक मार्ग का अनुशरण करना। प्रत्येक शास्त्र का अपना एक स्वतंत्र विज्ञान है। आयुर्वेद का भी अपना विज्ञान है। जिसे आयुर्विज्ञान कहते हैं। उन्हीं में एक औषधि तंत्र भी है। इस तंत्र का उद्देश्य लोगों को बीमारी से मुक्त रखना ही नहीं है बल्कि उन्हें यह भी बतलाना है कि आदर्श जीवन कैसे जीयें। अत्यधिक ऊर्जावान कैसे बने? आयु और रोगों से कैसे लड़े? औषधि तंत्र जीवन को व्यवस्थित और किसी के अस्तित्व के विभिन्न स्तरों पर समय स्थान यानी देश व काल

के अनुसार जीने का मार्ग बतलाना है। वह सात्विक साधनों द्वारा जीवन में संकट की स्थिति में उसे दूर करने की कला भी सिखाता हैं और मृत्यु के लिए तैयार भी करता है। ये सभी स्वधर्म के अंग है और हर व्यक्ति को अपने–अपने स्वास्थ्य को बराबर बनाये रखने के लिए स्वयं की अपनी जिम्मेदारी लेनी पड़ती है। यह स्वास्थ्य साम्य की अवस्था है और प्रारम्भिक अवस्था में असन्तुलन यानि विकृति, अस्वस्थ होने की अवस्था है और आगे चलकर वह जब गम्भीर रूप धारण कर लेता है तो किसी न किसी क्षेत्र के रूप में हो जाता है परिवर्तित। यह स्थिति वैसम्या कहलाती है। औषधि तंत्र के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति वह होता है, जो दोष अग्नि, धातु और मल का साम्य रखता है यानि शारीरिक स्तर पर साम्य और जिसके पास मस्तिष्क, इन्द्रियों और अचेतनता का व्यवस्थित मिश्रण हो यानी मानसिक साम्य हो। विकृत, नकारात्मक विचार, समय और बुद्धि के आधिक्य का उपयोग, मानसिक और शारीरिक समस्याओं के बन जाते हैं कारण।

मानसिक और शारीरिक रोगों के साथ–साथ प्रसन्न के स्थान होते हैं मात्र 'स्व' जिसे आत्मा कहते हैं। वह कभी भी अस्वस्थ नहीं होता। उसे किसी भी प्रकार की बीमारी नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति 'स्व' के लिए स्वयं जिम्मेदार होता है।

सभी को अपने मस्तिष्क और शरीर के स्वधर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

समस्त बीमारियों का कारण अधर्म- औषधि तंत्र के अनुसार सभी मानसिक और शारीरिक अव्यवस्थाओं का मूल कारण अधर्म है और यह प्रजनापर्धा या अविवेकपूर्ण दोष के कारण उत्पन्न होता है। कोई भी अस्वस्थकारी क्रिया उस व्यक्ति के द्वारा सम्पन्न होती है, जिसका ज्ञान **'धी'** है यानि संयम **'धृति'** अर्थात् स्मृति अव्यवस्थित होती है। जिसे अविवेकपूर्ण दोष प्रजनापर्धा कहा जाता है। यह दोनों को दूषित करती है। इच्छाओं का प्रवर्तन और उनका दमन, कामों में असन्तुष्टि और अत्यधिक कामुकता, अव्यवस्थित और विलम्बित काम, कामों का त्रुटिपूर्ण प्रारम्भ, विनम्रता और अच्छे आचरण का अभाव, सम्मान के स्थान पर तिरस्कार का उपयोग, जानबूझ कर अव्यवस्थित वस्तुओं का प्रयोग उन कारणों का उपयोग जो मस्तिष्क की अव्यवस्था का कारण होते हैं–गलत

समय, स्थान, गति, दुष्ट के साथ मित्रता, ईर्ष्या अहंकार, भय क्रोध, लोभ उपेक्षा, आघात और शंका इन्द्रियों के प्रारम्भिक विवरण वाले अध्याय में वर्णित नियमों के अनुसार आचरण की उपेक्षा, पीड़ादायक काम जो इनके अन्तर्गत किए गये हों, पीड़ादायक शारीरिक कष्ट और इसी प्रकार कि अन्य क्रियायें जो रज और तम से उत्पन्न हुई हो। अविवेक पूर्ण दोष मानी जाती है जो कि समस्त रोगों का कारण होती है। इस प्रकार स्वास्थ्य बराबर बनाए रखने के लिए स्वास्थ्य के विषय में आचरण यानि स्वधर्म का ज्ञान **'धी'** अति महत्वपूर्ण है और आचरण के अनुशरण के लिए संयम **'धृति'** का उपयोग आवश्यक है और इस साम्य को प्राप्त करने व उसे बराबर बनाए रखने के लिए स्वास्थ्य के इन सिद्धान्तों के अनुशरण के लिए स्मृति रखना अति आवश्यक है। इनमें से किसी–किसी एक में दोष प्रजनापर्धा का कारण होता है और इस प्रकार मानसिक और शारीरिक बीमारियों व पीड़ा का कारण बनता है। आयुर्वेद और धर्म दोनों में एक ही ब्रह्माण्डीय सिद्धान्त लागू होता है। ब्रह्माण्ड को संचालित करने वाले समान सिद्धान्त जीव विज्ञान और चिकित्सा सिद्धान्त में समान रूप से लागू होता है।

निश्चय ही पं. सुब्रमण्यम् शास्त्री मेरे अध्यात्म मार्ग के प्रकाश स्तम्भ सिद्ध हो रहे थे, इसमें सन्देह नहीं।

***

उस दिन शरद पूर्णिमा की सांझ थी। लालीघाट की धूल भरी सीढ़ियों पर बैठा न जाने क्या–क्या सोच रहा था मैं। मन उद्विग्न था। शरद पूर्णिमा की स्याह रात न जाने क्यों मेरे लिए पीड़ादायक सिद्ध होती है। आज तक समझ में नहीं आया यह रहस्य। लगता है कोई बहुत दूर से पुकार रहा हो मुझे। उस अज्ञात पुकार में दर्द होता था। पीड़ा होती थी। मार्मिक वेदना होती थी और होती थी चोट खायी हुई नागिन की तड़प और छटपटाहट। कौन थी वह? हर साल यह प्रश्न ही बन कर रहा जाता था मेरे लिए। शरद पूर्णिमा का चांद अबतक ऊपर आ गया था और उसकी रूपहली चांदनी थिरक रही थी गंगा के शान्त लहरों पर। मन नहीं कर रहा था उठने के लिए? न जाने कब तक शान्त निर्विकार चांद की ओर निहारता रहा मैं। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर उठकर

चल पड़ा हनुमानघाट की ओर। सामने चबूतरे पर बैठे थे बाबा बिल्कुल निर्विकार और निर्लिप्त से। मैं सामने जाकर खड़ा हो गया और फिर झुक कर किया चरण स्पर्श। उन्होंने स्थिर दृष्टि से एक बार मेरी ओर देखा। लगा जैसे पहली बार देख रहे हों मुझे और फिर उठ कर अपनी कोठरी में चले गये। मैंने भी उनका अनुशरण किया। तख्त पर बैठते हुए गम्भीर स्वर में प्रश्न किया। उस [redacted] विदेही आत्मा से कैसे संबंध स्थापित हुआ तुम्हारा? यह सुनकर स्तब्ध रह गया मैं एकबारगी। पहले तो बोला ही न गया मुझसे कुछ। फिर साहस कर सारी कथा सुना दी मैंने बाबा को। सब कुछ सुनने के बाद गम्भीर स्वर में बोले– कल रात समाधि की अवस्था में आयी थी [redacted] से। तुम्हारे विषय में बहुत कुछ बतला गयी मुझे। उसका तुमसे क्या संबंध है। यह तो स्पष्ट न हो सका, लेकिन यह सत्य है कि उसका मार्गदर्शन निश्चित रूप से तुम्हारे लिए सहायक सिद्ध हो रहा है। मार्गदर्शन का अवश्य ही कोई रहस्यमय कारण होगा, इसमें सन्देह नहीं। उस तिमिराछन्न कारण का रहस्य अभी तक समझ न सका मैं बाबा।

लम्बी सांस लेकर बाबा मन्द स्वर में बोले–जिस युग की यह भैरवी है। वह युग निश्चय ही कापालिकों का युग रहा होगा। किसी उच्चकोटि कापालिक तंत्र साधक की दीक्षा प्राप्त शिष्या रही होगी और बाद में गुरु के सान्निध्य में रहकर महाभैरवी का उच्च पद प्राप्त कर लिया होगा इसने। जिसके फलस्वरूप कभी भी वह मानव शरीर धारण नहीं कर सकेगी रोहिणी। बाबा के मुख से भैरवी का नाम सुन कर थोड़ा आश्चर्य हुआ मुझे लेकिन बोला नहीं कुछ।

फिर उसने यक्ष लोक में नित्य स्थान बना लिया यानि सदैव–सदैव के लिए। यक्ष लोक की इस प्रकार की स्थायी निवासिनी भैरवियाँ तंत्र साधकों को समय–समय पर मार्गदर्शन करना अपना कर्तव्य समझती हैं। सम्भव है रोहिणी भी इसी कोटि की हो।

तंत्र साधना मार्ग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच का जो समय है वह समय यक्ष लोक में व्यतीत होता है। वह समय भी साधक की साधना का ही समय होता है इसीलिए बीस जन्मों तक साधना का क्रम भंग नहीं हो पाता। तुमने भी अपने पिछले

उन्नीस जन्मों के अन्तर्गत मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच का समय कई बार यक्ष लोक में व्यतीत किया होगा। तभी तो इस जन्म में वक्रेश्वर के महाश्मशान में भिखारिन कन्या के रूप में माँ महामाया ने तुमको दर्शन दिया और बातें भी की तुमसे, एक बार नहीं, ...तीन चार बार! यह बात भी तुमको समझ लेनी चाहिए कि मरणोपरान्त और पुनर्जन्म के बीच का जो समय है। वह समय तंत्र साधक यक्ष लोक में रहकर अपनी साधना में ही व्यतीत करता है। उसकी आत्मा निरर्थक इधर–उधर नहीं भटकती। शरीर छोड़ने के कुछ समय पूर्व ही यक्ष लोक की दिव्यात्माएँ उपस्थित हो जाती है साधक को सादर ले जाने के लिए।

जो पथभ्रष्ट साधक है उनकी क्या गति होती है–मैंने प्रश्न किया। मेरे प्रश्न का समाधान करते हुए बाबा ने कहा– यक्ष लोक के अन्तर्गत प्रेत लोक की तरह यातना लोक भी है। पथभ्रष्ट साधकों को वहीं ले जाया जाता है और उनको नाना प्रकार की यातनाएँ दी जाती हैं। तांत्रिक साधना भूमि में नारी का शोषण कामना, वासना की पूर्ति, मंत्र शक्ति का दुरुपयोग, अविवेकपूर्ण कार्य, मंत्रों का त्रुटि पूर्ण उच्चारण, अयोग्य व्यक्ति से साधना संबंधी चर्चा और उसको जपार्थ मंत्र प्रदान करना और इसी प्रकार षट्कर्मों का स्वार्थपूर्ति के लिए दुरुपयोग अक्षम्य अपराध माना गया है। ऐसे पथभ्रष्ट साधक की आत्मा, यातना भोगने के पश्चात् हजारों लाखों टुकड़ों में विभक्त होकर कीट पतंग और कीड़े मकोड़े के रूप में जन्म लेती है। आगे उनकी क्या गति होती है वह केवल परमेश्वरी ही जान सकती है।

योगी का चमत्कार- जब से मैं बाबा के सम्पर्क में आया था उनको कुछ खाते हुए नहीं देखा था। कई बार इधर–उधर देखा भी था। उस छोटी सी कोठरी में खाने–पीने का न तो कोई सामान था और न तो आवश्यक बर्तन ही। क्या बाबा केवल कुछ पानी ही पीकर रहते हैं या कुछ और लेते हैं। शायद उस रात बाबा मेरे भाव को समझ गये थे। रात के दस बजने वाला था। मैं चरण स्पर्श कर उठने ही वाला था कि बाबा के संकेत से रूक गया। बाबा ने कहा– रात अधिक हो गयी है। ठण्ड का समय है। भूख लगी होगी तुमको? भूख तो लगी अवश्य थी, लेकिन बोला नहीं। अचानक देखता क्या हूँ कि बाबा के सामने तख्त पर तीन

थालियाँ कचौड़ी, पूड़ी, खीर, मिठाई, अचार पापड़ से भरी हुई। बाबा जरा हँस कर बोले– तुमको भूख लगी थी और मुझे भी! लो आ गया भोजन, प्रारम्भ करो लेकिन बाबा यह तीसरी थाली.....किसकी है बाबा? प्रतीक्षा करो। इसका अधिकारी आता ही होगा। कुछ ही क्षणों के बाद देखा– एक अर्धवृद्ध संन्यासी कोठरी के भीतर प्रवेश कर रहा था। संन्यासी को देखकर बाबा हँसते हुए बोले लो आ गये तीसरी थाली के अधिकारी। बाद में पता चला कि वे संन्यासी महाशय उज्जैन से सीधे बाबा का दर्शन प्राप्त करने के लिए आये थे। तीनों लोगों ने एक साथ किया भोजन। अत्यन्त स्वादिष्ट था सब कुछ। आश्चर्य तो इस बात का था। वह भोज्य सामग्री आयी कहाँ से थी। क्या वह योग सृष्टि थी या और कुछ.....। नहीं और कुछ नहीं, उस योगी की संकल्प शक्ति थी। जिसके बल पर तत्काल भोजन की सृष्टि हो गयी थी लेकिन बाबा को कैसे मालूम था संन्यासी के आगमन का। सम्भव है वह भी उनकी कोई योग माया ही हो। कहने की आवश्यकता नहीं इस प्रकार कई अद्भुत और अविश्वसनीय चमत्कार देखा मैंने बाबा का। जिनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझता मैं। बस समझ लीजिए बाबा एक सिद्ध योगी पुरुष थे।

बाबा को कवीन्द्राचार्य और त्रैलोक्य मीमांसा के संबंध में सब कुछ ज्ञात हो चुका था। दूसरे दिन जब गया तो मौन साधे बैठे हुए थे नित्य की भांति चबूतरे पर। दोपहर का समय था। धूप थी वहां। मुझे भी वहीं बैठना पड़ा। बाबा का मौन भंग हुआ थोड़ी देर बाद। कहने लगे– जैसे एक [redacted] है और उसकी सीमा के अन्तर्गत कई लोक– लोकान्तर हैं, जिनसे तुम आगे चलकर परिचित होओगे। उसी प्रकार ए[redacted] [redacted] उसकी भी सीमा के अन्तर्गत कई लोक–लोकान्तर हैं। मनोमय जगत को मानसिक जगत भी कहते हैं। मानसिक जगत का अत्यन्त शक्तिशाली भाग परामानसिक जगत है। इस जगत के भी अपने अलग लोक–लोकान्तर हैं। मानसिक जगत और परामानसिक जगत– इन दोनों जगत का सीधा संबंध मनुष्य के मस्तिष्क में स्थित मानसिक चेतना और परामानसिक चेतना से समझना चाहिए। परामानसिक जगत यदि विचार–पूर्वक देखा जाय तो समस्त ज्ञान–विज्ञान का महासमुद्र है। परामानसिक

जगत और उससे संबंधित सभी लोक–लोकान्तरों को तंत्र में विज्ञानमय जगत कहते हैं। जिसका सम्पर्क केन्द्र मानव शरीर में स्थित विज्ञानमय कोष है। यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि विज्ञानमय जगत के निवासी ज्ञानवान नहीं, प्रज्ञावान होते हैं। जो प्रज्ञावान होता है वह ज्ञान–विज्ञान का अनुभवी ज्ञाता होता है। जहाँ तक कवीन्द्राचार्य का प्रश्न है वे महाशय इस समय विज्ञानमय जगत में विद्यमान हैं।

फिर कैसे क्या होगा? कवीन्द्राचार्य तो स्वयं मुझसे सम्पर्क करना चाहते हैं, जैसाकि रोहिणी ने कहा और कविराज जी ने भी। मेरी वाणी में संशय था और थी आतुरता भी। कवीन्द्राचार्य से सम्पर्क हो– यह मैं शीघ्र से शीघ्र चाहता था। बाबा मेरे मनोभाव को समझ गये। बोले– पहले तुमको मैं यह बतला देना चाहता हूँ।

स्थूल, तुरीया अवस्था और विज्ञानमय जगत- शरीर में आत्मा की तीन अवस्थाएँ है– जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति और इन तीनों अवस्थाओं का संबंध शरीर में स्थित तीन चक्रों से है–मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपूरक। जाग्रत अवस्था में मूलाधार, स्वप्नावस्था में स्वाधिष्ठान और सुषुप्ति अवस्था में, मणिपूरक चक्र सक्रिय रहता है चैतन्य और क्रियाशील नहीं। इन तीनों अवस्थाओं के अतिरिक्त आत्मा की दो और महत्वपूर्ण अवस्थाएँ हैं– तुरीयावस्था और तुरीयातीत अवस्था। तुरीयावस्था का संबंध विज्ञानमय जगत से है और इसी प्रकार तुरीयातीत अवस्था का संबंध है आनन्दमय कोष अथवा जगत से। आनन्दमय जगत आत्मा का जगत है जिसे योगीगण आत्मजगत कहते हैं। जिस प्रकार विज्ञानमय जगत के लोग मनोमय शरीरधारी होते हैं। उसी प्रकार आत्म जगत के लोग होते हैं आत्म शरीरधारी। आत्मा का वह अपना स्वयं का शरीर होता है। इस शरीर के पश्चात् आत्मा के लिए कोई भी शरीर नहीं होता धारण करने के लिए। आत्म शरीर के पश्चात् आत्मा स्वतंत्र और सदैव के लिए मुक्त हो जाती है शरीर के बन्धनों से लेकिन उसका स्वयं का अस्तित्व बना रहे एवं ब्रह्माण्ड में रहे, इसके लिए आधार चाहिए और उस अवस्था में उसका आधार होता है ब्रह्माण्ड। जिसे आत्मा की काया यानी आधार ब्रह्माण्डीय काया यानि कास्मिक बॉडी से है। आत्मा तभी

मुक्त होगी जब उसका अस्तित्व सदैव के लिए ब्रह्माण्ड में लीन हो जायेगा। इसी अवस्था को परमगति कैवल्य अथवा मोक्ष कहते हैं।

सब कुछ सुन लेने के बाद व्याकुल होकर पूछा– मुझे अब क्या करना चाहिए अपने उद्देश्य को साकार करने की दिशा में। कुछ सोचते हुए बाबा ने कहा– तुरीयावस्था को प्राप्त करने के लिए और विज्ञानमय कोष को उपलब्ध होने के लिए मूलाधार चक्र को चैतन्य और सक्रिय करना आवश्यक है विशेष रूप से। वैसे तो तीनों अवस्थाओं में चैतन्य तो हो जाते हैं और क्रियाशील भी लेकिन भौतिक दिशा में होते हैं उससे हटकर नहीं।

वैसे शरीर में कई सम्पर्क केन्द्र हैं लेकिन मूलाधार चक्र सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड का सम्पर्क केन्द्र है। इतना ही नहीं, एक अणु में जितनी शक्ति होती है। उससे हजार गुनी शक्ति मूलाधार चक्र में स्थित एक बाल से भी पतली अपने स्थान पर नागिन की कुण्डलिनी की तरह घूमी हुई नाड़ी तन्तु में विद्यमान है। जिसे योग–तंत्र में कुण्डलिनी कहते हैं लेकिन यह अनुकूल शब्द नहीं है, लाक्षणिक है।

कुण्डलिनी साधना योग–तंत्र का मुख्य विषय है लेकिन मेरा संबंध केवल मूलाधार चक्र को आध्यात्म की दिशा में चैतन्य और क्रियाशील करना है।

इसके लिए क्या करना होगा? मैंने प्रश्न किया। बाबा ने उत्तर दिया– सर्वप्रथम एकाग्रता की साधना आवश्यक है।

एकाग्र-साधना- तुमको सर्वप्रथम यह ज्ञात होना चाहिए कि आन्तर दृष्टि से योग तंत्रपरक जितनी भी साधनाएँ हैं और जितनी भी संबंधित गुह्य क्रियाएँ हैं। वे सबकी सब कल्पना के धरातल से शुरू होती है और उनका अन्त होता है यथार्थ में। [redacted] होता है। एकाग्रता जिसने साध ली है। सच तो यह है कि एकाग्रता एक ऐसी साधना है। जिसके द्वारा कल्पना धारण कर लेती है साकार रूप। सर्वप्रथम एकाग्रता को साधो और उसी के साथ कोई शुभ कल्पना भी करो। क्या परिणाम निकलता है वह मुझे आकर बतलाओ। तभी तुम्हारे लिए आगे का मार्ग प्रशस्त होगा। पूरे दो सप्ताह नहीं गया मैं। रात्रि में

लालीघाट की टूटी फूटी सीढ़ियों पर बैठकर नित्य अभ्यास करता रहा मैं। यहाँ बतला दूँ मैं लालीघाट में क्या और कौन सा आकर्षण था, जो मुझे खींच ले जाता था वहाँ। न जाने कैसी शान्ति मिलती थी, धूल से अटी टूटी फूटी सीढ़ियों पर बैठने पर समझ में नहीं आता था। यह कहना भी असंगत न होगा कि कई प्रकार की अशरीरी विदेही आत्माओं से साक्षात्कार और सम्पर्क भी लीलीघाट पर ही हुआ मुझसे। यह अलग बात है। बगल में राजा हरिश्चन्द्रघाट का महाश्मशान। जब मैं चित्त को एकाग्र करने का प्रयास करता तो कभी श्मशान के मरियल कुत्तों के रोने की उदासी भरी आवाज से तो कभी राम राम सत्य की वैराग्यमयी आवाज से चित्त की भंग हो जाती एकाग्रता। पूरे एक सप्ताह तक बराबर इसी प्रकार की बाधाएँ होती रही उत्पन्न। चित्त विचलित हो उठता और फिर स्थिर करने के लिए श्मशान में जलती हुई चिता को लगता देखने। फिर तो अपने आप सधने लगी एकाग्रता धीरे–धीरे। मन भी स्थिर रहने लगा। जिसके परिणामस्वरूप बाह्य जगत से टूटने लगा नाता रिश्ता मेरा। पूरी की पूरी रात गुजर जाती लीलीघाट की सीढ़ियों पर। सन्नाटे में बैठे–बैठे। अबतक पूरा जीवन ही हो गया था अन्तर्मुखी। निश्चय ही मेरे अन्तराल में कोई ऐसा परिवर्तन होने लगा था जो मेरी समझ के बाहर था लेकिन हो अवश्य रहा था। हाँ!, कल्पना भी करनी शुरू कर दी थी मैंने आश्चर्य, घोर आश्चर्य। तीसरे सप्ताह के अन्त में ही मेरी कल्पना हो गयी साकार। जिसके संबंध में कभी सोचा भी न था मैंने। असम्भव समझ रहा था मैं उसे।

दोपहर का समय। नित्य की भांति बाबा बैठे थे सामने वाले चबूतरे पर सिर झुकाये मौन साधे। मुझे देखकर मुस्कुराये और बोले– देख लिया न, एकाग्रता में कितनी शक्ति है, जिसकी एकाग्रता सधे, वही सफल वैद्य, वही सफल व्यापारी, वही सफल विद्वान और सफल साधक भी, जीवन को सुगन्धित और स्वर्णमय बनाना है तो एकाग्रता साधो। हाँ! बाबा, मैंने चरण थामते हुए कहा– पूर्ण विश्वास हो गया मुझे एकाग्रता पर। असम्भव को सम्भव कर दिया मेरे लिए एकाग्रता ने।

मूलाधार चक्र की साधना– सर्वप्रथम [redacted] के संबंध में कुछ आवश्यक बातें बतलाना आवश्यक है। मूलाधार का स्थान गुदा और लिंग

के मध्य उस स्थान पर है जहाँ एक मोटी सी नाड़ी है, जो स्पष्ट दिखलायी देती है। इस स्थान पर लगभग पाँच नाड़ी तन्तुओं का समूह गुच्छ के रूप में विद्यमान है और जिसक[redacted]। कहने की आवश्यकता नहीं उसी गुच्छ को मूलाधार चक्र कहते हैं और उसकी जो शक्ति है उसे कहते हैं डाकिनी। डाकिनी की जो शक्ति है, वह इन चार वर्णाक्षरों में प्रकट होती है[redacted]। इन शक्ति सम्पन्न वर्णाक्षरों के इस प्रकार मंत्र रूप में संयोजित क[redacted] उसका जप नित्य रात्रि के समय पाँच हजार की संख्या में करना चाहिए और जप के समय पद्मासन की मुद्रा में इस प्रकार बैठना चाहिए जिससे बायें पैर की 'एड़ी' नाड़ी गुच्छ के स्थान पर हो। जप के समय एकाग्रता आवश्यक है। चेहरा सामने हो। शरीर तना हुआ हो। आँखे थोड़ी मुंदी हुई हो। शरीर पर लाल वस्त्र हो। लाल रंग का आसन भी हो। जप बिल्कुल एकान्त में होना चाहिए। [redacted] जब संख्या पूर्ण होती है– उस समय डाकिनी की श[redacted]रती है और अपना एक आकार बनाने लगती है। यह वही अवस्था है जब पूरा शरीर सनसनाने लगता है। बार–बार रोमाञ्चित होने लगता है। मन स्थिर होने लगता है चित्त भी होने लगता है एकाग्र। शरीर की आवश्यकता कम होने लगती है। एकान्त में रहने और कम से कम बोलने की इच्छा होती है। नींद तो बहुत ही कम हो जाती है भोजन की मात्रा भी साधारण रह जाती है। स्वाद किसी भी पदार्थ में नहीं, लगता। एक प्रकार से जीवन में आमूल चूल हो जाता है परिवर्तन।

इस साधना का दूसरा पक्ष है श्वास प्रश्वास की आन्तरिक क्रिया। **(आन्तरिक क्रिया गोपनीय है। योग्य और संस्कारी व्यक्ति को ही बतलायी जाती है)**। श्वास और प्रश्वास के बीच चार अंगुल का हर क्षण होता है अन्तर और इसी अन्तर के कारण हर क्षण आयु क्षीण होती रहती है। इस प्रथम श्वास प्रश्वास के बीच का जो अन्तर है उसे दूर करना आवश्यक है। श्वास प्रश्वास का अन्तर दूर हो जाने पर दोनों समान हो जाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप शरीर पर आयु का प्रकृति का शनैः शनैः पड़ता है। शरीर की सभी नस नाड़ियाँ सजीव और पूर्णरूप से सक्रिय हो उठती है। उत्साह और स्फूर्ति की वृद्धि होती है। संयम सधता है।

मन अथवा चित्त भी सहज ही एकाग्र होने लगता है। यह तो तुमको ज्ञात ही है कि श्वास की क्रिया साधारणतः हृदय तक ही है और यही जीवन भी है। पातञ्जलि के प्राणायाम द्वारा वह सीमा आगे बढ़कर नाभि तक चली जाती है। जो मणिपूरक चक्र का स्थान है लेकिन एक सीमा और है। वह है मूलाधार की सीमा। मणिपूरक से मूलाधार तक की यात्रा आन्तरिक प्राणायाम द्वारा सूक्ष्मतम् प्राण की यात्रा है। एक बात स्मरण रखना चाहिए कि नासिका द्वारा अपान भीतर जाता है, प्राण नहीं। प्राण कभी भी भीतर नहीं जाता अपान ही प्राण में परिवर्तित होकर प्राण के रूप में निकलता है बाहर। अपान का भीतर जाना जीवन और प्राण का बाहर निकलना मृत्यु है। जीवन और मृत्यु का यह प्राकृतिक खेल श्मशान तक चलता रहता है बराबर।

सूक्ष्मतम् प्राण- बाबा ने कहा-- तुम तो अपने सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म जगत से भलीभांति परिचित हो। फिर भी मैं यहाँ यह बतला देना चाहता हूँ कि सूक्ष्मतम् प्राण को ही वैज्ञानिक 'ईथर' कहते हैं। यह सर्वव्यापक परमतत्व है। जो काल निरपेक्ष है। शरीर में इसका केन्द्र प्राणामय कोष है। सूक्ष्म शरीर की रचना इसी सूक्ष्मतम् प्राण के कणों से होती है। इसका रूप रंग और आकार प्रकार स्थूल शरीर जैसा ही होता है। जैसे स्थूल शरीर मानसिक तत्व का वाहक है। उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर परामानसिक तत्व का है वाहक। स्थूल शरीर तो एक यंत्र है जो प्राण द्वारा संचालित होता है लेकिन सूक्ष्म शरीर स्वयं संचालित है। स्थूल शरीर की तरह सूक्ष्म शरीर किसी भी प्रकार की सीमा में बंधा नहीं होता। वह एक प्रकार से स्वतंत्र है किन्तु फिर भी संस्कारजन्य तो होता ही है। उसकी गति विलक्षण होती है। वह निर्वाध गति से कहीं भी आ जा सकता है। लोक-लोकान्तरों में भ्रमण भी कर सकता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि सूक्ष्म शरीर के बिना आत्मा पुनर्जन्म ग्रहण नहीं कर सकती तुम तो सब कुछ जानते समझते हो। इस सबध में अधिक बतलाने से कोई लाभ नहीं।

साधना और अनुभव- बाबा ने जैसे सब कुछ बतलाया था उसी के अनुसार शुरू कर दिया मैंने मूलाधार की साधना। दो मास का समय निकल गया। प्रारम्भ में सब कुछ नगण्य! अध्यात्म साधना में पूर्ण विश्वास और पूर्ण श्रद्धा अति आवश्यक है। धीरे-धीरे समय व्यतीत होता रहा।

एक दिन एकाएक साधना के समय सारा शरीर विचित्र रूप से झन्झन् करने लगा और साथ ही गर्म भी होने लगा। सिर भी भारी होने लगा उसी के साथ ही साथ। अपने आप आँखे भी बन्द होने लग गयी। ऐसा एक ही दिन नहीं रोज होने लगा साधना के समय। नींद बिलकुल ही नहीं आती। भूख तो कभी का लगना बन्द हो गयी थी।

कमरे के बाहर कम ही निकलता। काम ही क्या था। एक नौकरानी थी। नाम था चमेली? सवेरे आती चाय, नाश्ता और साधारण खाना बनाती और अन्य आवश्यक काम करती और चली जाती सिर झुकाये। बाजार से जो आवश्यक सामान लाना होता, वह भी चमेली ही लाती। बड़ी ही विनम्र, सरल और सीधी थी चमेली। मुझे भाईजी कहती। सुन्दर तो उसे कहा नहीं जा सकता था लेकिन व्यक्तित्व उसका अवश्य ही आकर्षक था। पच्चीस से अधिक की नहीं थी वह बेचारी। बाल बच्चे भी नहीं थे। एक बड़ा भाई और उसकी पत्नी और वह भी कर्कश। उन्हीं का आश्रय था उस विधवा को। दो तीन घर काम धन्धा कर अपना खर्च निकाल लेती थी। भाई रिक्शा चलाता था। शाम को ठर्रा पीकर घर वापस लौटता, गाली–गलौज करता और मारपीट भी करता और फिर चादर से मुँह ढाँक कर सो जाता। नित्य का काम था यह।

चमेली के शरीर में कौन थी? एक दिन न जाने कैसे और क्यों मैंने कहा– 'चमेली तू दूसरी शादी क्यों नहीं कर लेती? अभी तो तुम्हारी उम्र भी है। बाल बच्चे हैं नहीं। कोई अच्छा सा लड़का देखकर हाथ थाम ले उसका। चमेली ने सुना और सुनकर मेरी ओर देखा। उसकी आँखों में बहुत कुछ दिखलायी दिया उस क्षण– विवशता, पीड़ा, वेदना, दुःख और शोषण सब कुछ की झलक एक साथ। जिसे देखकर करूणा से भर उठी मेरी आत्मा सिर झुका कर बोली वह पीड़ामयी– भाईजी कौन भला थामेगा मेरा हाथ। झोपड़ी में रहकर रिक्शा चलाने वाले शराबी भाई की बहन को कौन अपनाएगा? कौन हाथ थामेगा और वह भी एक विधवा का?

यह सुनकर चुप रह जाना पड़ा मुझे। भला क्या जवाब देता मैं। उस रात साधना काल में मूलाधार में तीव्र जलन का अनुभव हुआ मुझे। वह जलन विचित्र थी। उससे कष्ट भी हो रहा था और साथ ही सुख भी मिल रहा था। कैसी थी वह जलन और कैसा था उसका उत्ताप?

मेरी समझ में नहीं आ रहा था कुछ। थोड़ी देर बाद जलन तो कम होने लगी लेकिन उसके बाद पूरा शरीर लगा कांपने। बार–बार रोमाञ्च होने लगा। लगभग दो घंटे तक रही यही स्थिति। अन्त में हल्कापन का होने लगा अनुभव। ऐसा प्रतीत होने लगा [redacted]हीं है, लेकिन अभी तो और भी अनुभव प्राप्त करना शेष था मेरे लिए। उस समय की स्थिति का वर्णन नहीं कर सकता क्योंकि अब मेरा सिर फिर भारी होने लगा था और उसी भारीपन में लग रहा था कि सिर के एक भाग में बहुत [redacted] फिर अचानक शून्य हो गया मेरा मस्तिष्क। भीतर ही भीतर बड़ी ही विचित्र स्थिति का अनुभव कर रहा था मैं उस समय। आप विश्वास करें या न करें। लेकिन जो सत्य है वह तो लिखना ही पड़ेगा मुझे। इसीलिए तो कलम उठाई है मैंने... हाँ! तो उसी स्थिति में मेरे सामने एक[redacted]भरने लगा धीरे–धीरे। लगा जैसे उस **रहस्यमय प्रकाश बिन्दु** के अस्तित्व में मैं तीव्र गति से समाता जा रहा हूँ किसी अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत होकर। फिर बाह्य चेतना मेरी लुप्त हो गयी। बस, मैं इतना ही जान सका चेतना शून्य होने के पहले फिर कहीं टन्–टन् कर बारह का घंटा बजा रात का। फिर क्या हुआ मैं नहीं जानता और उसी स्थिति में देखा वह प्रकाश बिन्दु चारो ओर फैलता गया, फैलता गया और फैलता ही गया। अब मैं अपने अस्तित्व का बोध उस प्रकाश के विस्तार में कर रहा एक विचित्र एकाकीपन के साथ। उस प्रकाश में मेरी आँखे चौंधियाँ रही थी। समझ में नहीं आ रहा था– क्या करूँ! कहाँ जाऊँ! यह सोचकर चौंधियाती आँखों से देखने लगा मैं चारो ओर। मगर कुछ और दिखलायी दे तब न! और तभी एक प्रबल झटका लगा और उसी समय कमरे का बन्द दरवाजा धड़ाम से खुला और गिरती पड़ती और लड़खड़ाती हुई कमरे के भीतर आयी चमेली। चेहरा तमतमाया हुआ था और आँखे भी खून की तरह लाल हो रही थी उसकी। बड़ा ही डरावना रूप था, उस समय चमेली का। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो गया उस सरल चित्त युवती को। अपनी लाल हो रही आँखों से मेरी ओर घूरती हुई अपना दोनों हाथ फैलाकर बढ़ने लगी मेरी ओर। भयभीत हो उठा मैं एकबारगी। कुछ सोचने समझने की क्षमता थी ही नहीं उस समय मेरे

मस्तिष्क में। रात का तीसरा प्रहर था शायद। पूरा कमरा वैसे तो अंधेरे में डूबा हुआ था, लेकिन पूरब की ओर खुली हुई खिड़की से थोड़ा प्रकाश भीतर आ रहा था और तभी उस स्याह अंधेरे में एक भयंकर चीखें गूंजकर चिथड़े हो गयी।.... जानते नहीं मैं डाकिनी हूँ..... डाकिनी..... वर्णाक्षर रूप बीज की शक्ति। तू मुझे क्यों उद्‌मासित कर रहा है।..... बस त्रैलोक्य का ज्ञान..... क्या करेगा त्रैलोक्य का ज्ञान प्राप्त कर। [illegible] की उपलब्धि क्या कम है तेरे लिए? सूक्ष्म जगत में स्वतंत्र विचरण कर रहा है। वहाँ के लोगों से मिलजुल भी रहा है।.....अब क्या चाहिए तुझे? छोड़ दे आसन और भाग जा यहाँ से.....। यह सुनकर अवाक् और स्तब्ध रह गया मैं। मेरी समझ में नहीं आ रही थी वह रहस्यमयी लीला। मुँह बाये स्तब्ध सा देखने लगा था चमेली का तमतमाया हुआ चेहरा। आगे बढ़कर चमेली को पकड़ना चाहां लेकिन ऐसा कर न सका। क्यों वह उस समय पूरी तरह निर्वस्त्र थी। पूरी तरह निर्वस्त्र स्त्री को कभी देखने का अवसर ही नहीं मिला था मुझे। ग्लानि, अवसाद, लज्जा और उपेक्षा के भाव से भर गया मेरा मन।

एकाएक कमरे का वातावरण बदल गया। फिर पहले जैसा ही हो गया सब कुछ। आश्चर्य की बात तो यह थी कि न वहाँ चमेली थी और न तो था उसका रौद्र रूप ही। सिर घुमाकर मैंने कमरे के दरवाजे की ओर देखा.....अरे!' वह तो भीतर से बन्द था। मैंने ही रोज की तरह बन्द कर साकल लगायी थी।..... तब कैसे आयी चमेली कमरे में। हे भगवान! सिर थामकर बैठ गया मैं एक तरफ। सवेरा हुआ। चमेली आयी पहले जैसी ही सीधी, सादी सरल, कोई परिवर्तन ही नहीं। रहा न गया मुझसे। पूछ ही बैठा चमेली, कल तुम रात में आयी थी यहाँ? मेरी बात सुनकर एकबारगी सकपका गयी चमेली। उदास चेहरे पर आश्चर्य का भाव उभर आया। सहम कर बोली– नहीं बाबूजी! मैं कैसे और क्यों आती और वह भी रात में! मेरा काम तो सवेरे का है। कल तो दोपहर से ही बुखार में पड़ी रही मैं। दवाई ली तो थोड़ा आराम हुआ। सोचने लगा– फिर कौन थी वह? दौड़ा–दौड़ा बाबा के यहां गया मैं और एक ही सांस में सुना दी मैंने उनको सारी कथा।

सब कुछ सुन लेने के बाद बाबा निर्विकार भाव से बोले– ऐसा होना स्वाभाविक है। [redacted] हो गया है। कोई भी मानवेतर शक्ति भौतिक सीमा में बंधना नहीं चाहती। चमेली के शरीर में प्रवेश कर तुमको मार्ग भ्रष्ट करना चाहती थी वह। सतर्क और सावधान रहो। योग–तंत्र का साधना मार्ग अत्यधिक कंटकाकीर्ण है। समझकर चलना आवश्यक है। रही प्रकाश की बात वह वास्तव में तुरीयावस्था का प्रकाश है। शीघ्र ही तुम्हारा अस्तित्व बोध करेगा उस स्थान का जहां महापण्डित कवीन्द्राचार्य विद्यमान हैं। यह सुनकर मन थोड़ा आश्वस्त हुआ। लेकिन फिर भी चमेली का रूप देखकर मन खिन्न सा हो गया था। कुछ विचित्र सा लगने लगा था। न जाने किस संस्कार के कारण और न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर चल पड़ा था मैं। योग–तंत्र के रहस्यमय तिमिराच्छन्न कंटकाकीर्ण मार्ग पर। रात थोड़ी अधिक हो गयी थी। घर नहीं गया। लालीघाट पर न जाने कबतक बैठा रहा गालों पर हाथ धरे। चारों ओर सन्नाटा पसरा था। थोड़ी शान्ति मिली उद्विग्न मन को। सोचते–सोचते सोचने लगा– छोड़ दूँ ये सब। बेकार के चक्कर में पड़ गया लेकिन विचार आया कि इतनी लम्बी यात्रा का परिणाम व्यर्थ चला जायेगा। किसी प्रकार घर आया भाव में डूबा हुआ बिस्तर पर लेट गया लेकिन ऐसी विचलित अवस्था में नींद कहाँ से आती। रात भर उधेड़बुन में ही पड़ा रहा और बिस्तर पर बदलता रहा करवटें। भोर का समय। एक चिर परिचित सुगन्ध से भर उठा कमरा। समझते देर न लगी। पलट कर देखा– रोहिणी खड़ी मुस्कुरा रही थी। बोली हो गयी साधना। उसके स्वर में व्यंग था। थोड़ा और निकट आ गयी और कहने लगी– तुमसे मेरा सैकड़ों वर्ष का संबंध है और वह कैसा है? वह मैं ही जानती हूँ और दूसरा कोई नहीं जान सकता। तुम भी नहीं जानते। मानव शरीर में हो न भला तब कैसे जानोगे। क्या करूँ। मन नहीं मानता तुमको थोड़ा–सा भी परेशान देखती हूँ तो मन न जाने कैसा होने लगता है। विह्वल हो उठती हूँ मैं। यक्ष लोक में रहा नहीं जाता तब मुझसे। आना ही पड़ता है तुम्हारे पास। क्यों आ जाती हूँ बन्धु!..... मैं तो यही कहूँगी कि रूको मत। पूर्ण श्रद्धा और पूर्ण विश्वास के साथ आगे बढ़ते चलो। सफलता जो मिलनी होगी, वह तो मिलेगी ही अवश्य और निश्चित रूप से। नारायण

भट्ट जैसे प्रकाण्ड और यशस्वी विद्वान तुम्हारे सम्पर्क में आ गये तो कवीन्द्राचार्य को भी सम्पर्क में आना ही आना है, कभी न कभी। यह तो अपने स्थान पर पूर्ण सत्य है इसमें सन्देह नहीं। सबसे बड़ी बात तो यह है बन्धु और वह यह कि तुरीयावस्था को उपलब्ध होने पर उन सूक्ष्म शरीरधारिणी आत्माओं, उन विदेही आत्माओं से और उन दिव्य ज्योतिर्मयी आत्माओं से भी सम्पर्क स्वयंमेव स्थापित हो जायेगा और उनके द्वारा आध्यात्मिक क्षेत्र का जो तिमिराच्छन्न गूढ़ गोपनीय और रहस्यमय विषय है, उन पर प्रकाश भी पड़ेगा। तुमको बतला दूँ कि ऐसी आत्माएँ अपना माध्यम बनाने के लिए तुम जैसे लोगों की खोज में बराबर रहती हैं इसलिए कि माध्यम द्वारा अपना सन्देश अथवा विचार संसार के कल्याणार्थ प्रेषित कर सके।

मगर रोहिणी मुझे क्या लाभ होगा?

'लाभ! लाभ की बात करते हो। कुआँ, तालाब, पोखरा आदि को देखते हो न, पानी से ही उनका अस्तित्व है, लेकिन वे स्वयं पानी नहीं पीते। पीते हैं तो दूसरे लोग। ऐसा ही होना चाहिए तुम्हारा जीवन। पूजा पाठ साधना उपासना आदि का कभी–कदा संयोगवश ही सकारात्मक परिणाम सामने आता है। तुम राजयोग मार्ग पर चलो। भौतिक और अभौतिक दोनों लाभ होगा।

राजयोग एक ऐसा योग है जो मन में सकारात्मक विचार उत्पन्न करता है। राजयोग की सहायता से तुम मन में छिपे भय को हटाकर महाशक्ति महामाया से अपनी दूरी कम कर सकते हो। अपने में सभी प्रकार का परिवर्तन ला सकते हो। लौकिकता से अलौकिकता की ओर बढ़ सकते हो। सबसे बड़ा मोह इन्द्रियों का मोह है। मन को उस मोह से मुक्त करना है तुमको। लोगों का कहना है कि विचार से मन जुड़ा हुआ है लेकिन राजयोग कहता है कि मन को ऐसे विचारों से अनाशक्त कर दिया जाय जो मन की शान्ति भंग करते हैं और मन को सही स्थान पर केन्द्रित नहीं होने देते।

विचारों का कुचक्र– विचारों का कुचक्र तुमको तोड़ना ही होगा। कई बार ऐसा भी हुआ है कि विषय के बीत जाने पर भी तुम उसी के

बारे में बराबर सोचते रहते हो। ऐसी स्थिति में तुम अपने और किसी काम पर ध्यान नहीं दे पाते। पूरा समय यह सोचने में बीत जाता है कि ऐसा हुआ होता तो क्या होता? या फिर ऐसा न हुआ होता तो ठीक होता। कई बार ऐसा भी होता है कि तुम किसी की गलतियों को काफी देर तक उसी के बारे में सोचते रहते हो। इस प्रकार की स्थितियों से तुमको बाहर निकलना होगा और तभी तुम अपने आपको समझ सकोगे और अपने मूल्य और महत्व को भी। तुम्हारा विचार सदैव सकारात्मक होना चाहिए और साथ ही मस्तिष्क को भी शान्त और निर्विकार रखना चाहिए तुमको। यदि तुम्हारा विचार सकारात्मक होगा और मन भी होगा शान्त तो तुम्हारी आत्मा एक ऐसे आनन्द की अनुभूति करने लग जायेगी जिसे योग कहता है आत्मानन्द। तुम एक अध्यात्म प्राण हो। अपने आपको समझो, मूल्य को समझो और समझो अपने महत्व को भी। इस समय तुम्हारी आत्मा अव्यवस्थित–सी हो गयी है। उसे ठीक करना होगा। तुमको मालूम होना चाहिए कि जब कोई भावना, विचार या कोई कार्य बार–बार दुहराया जाता है तो मन के ऊपर उसकी गहरी छाप पड़ जाती है। जिससे आने वाले समय के भाव, विचार और कार्य प्रभावित होते हैं। मनुष्य के सारे भाव इन्हीं स्थितियों पर निर्भर हैं और हैं आधारित। तुम्हारी चेतना का सही विकास होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि राजयोग को व्यवहारिक जीवन में उतारना? किसी वस्तु को पकड़ने के दो तरीके हैं एक है उंगलियों से पकड़ना और दूसरा है हथेली पर लेना। पहली स्थिति में लम्बे समय तक पकड़ पाना कठिन होता है। दूसरी स्थिति में यह सम्भव है– यही राजयोग है। यदि तुम राजयोग के मार्ग पर चलोगे तो माँ महामाया से शुद्ध निर्मल और अटूट शक्तिशाली संबंध स्थापित हो जायेगा। ये सारे संबंध केन्द्र बिन्दु बनकर सत्य शक्ति, शान्ति, प्रेम, आनन्द और प्रसन्नता का स्रोत बन जाते हैं। अन्त में इस संबंध के साथ–साथ राजयोग समाज में अन्य संबंधों के साथ भी निभाना सिखाता है। वास्तव में राजयोग, जीवन शैली है। जिसके अन्तर्गत व्यक्ति स्वस्थ आदतें, अच्छे ढंग से संबंध निभाने और दूसरों की सेवा करने की आदतों को अपनाता है। जिसका प्रभाव उसके भौतिक मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक रूप से पड़ता है। समझ में आया कुछ? यदि समझ में नहीं

आया है तो जा यह पाखण्ड करने की आवश्यकता ही क्या? बाबू बन कर घूम। शादी कर, बाल–बच्चा पैदा कर, हाय–हाय कर और फिर... और अन्तिम शब्द सुन न सका मैं रोहिणी का। सो गया गहरी नींद में। कोई आवाज कानों में पड़ी और नींद उचट गयी। आँखे खोलकर देखा सामने चमेली खड़ी थी। उसके चेहरे पर न जाने कैसी चमक थी उस समय। समझ न सका। वैसी चमक उसके पहले, उसके चेहरे पर कभी नहीं देखी थी मैंने। आप काफी देर तक सोते रहे बाबूजी। मैं तो कभी की आ गयी थी काम पर मगर कमरे के बाहर एक सुन्दर सी औरत को निकलते देख कर थमक गयी थी मैं– एक ही सांस में बोल गयी चमेली। ऐं! क्या कहा?..... फिर इसके आगे बोला न गया मुझसे। समझते देर नहीं लगी थी मुझे। वह रोहिणी थी। उसकी अपार्थिव काया को इस साधारण लड़की ने कैसे देख लिया? आश्चर्य हुआ मुझे। शायद इसी कारण चमेली के चेहरे पर चमक थी। वह सीधी सादी लड़की भला क्या जाने वह कौन थी? वह तो कुछ और ही सोच रही होगी।

मेरी मानसिक स्थिति न जाने कैसी हो गयी थी कुछ समझ में नहीं आ रहा था लेकिन मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया और संकल्प भी– जो भी होगा, वह देखा जायेगा। अब पीछे नहीं हटूँगा। बाबा से मिला। न जाने कैसे मेरी मानसिक स्थिति को समझ गये थे वह। हँसकर बोले– ऐसा ही होता है साधना मार्ग में। ये जो मन है न वह मन भटकने लगता है सफलता मिलने के समय। संभालना पड़ता है मन को। सचेष्ट रहने की आवश्यकता है। फिर न जाने क्या सोचते हुए कहने लगे– अच्छी पथ प्रदर्शिका है रोहिणी। एक महाकापालिक की महाभैरवी होने के कारण साधना का गहरा अनुभव रखती है वह। रहस्य की बात तो यह है कि तुम्हारे प्रति उस विदेही का इतना स्नेह, इतना प्रेम, इतना अपनत्व क्यों और किसलिए है? क्यों करती है प्रदर्शन ? क्यों करती है इतनी प्रेरणात्मक बातें? इतना कहकर न जाने किस गहन चिन्तन में डूब गये बाबा। सोचने लगा मैं– सचमुच बाबा का कहना बिल्कुल ठीक है। इतना स्नेह, इतना महत्व और इतना अगाध प्रेम आखिर क्यों और किसलिए? क्या कारण है इसका? मेरे लिए पहले से ही रहस्यमयी थी रोहिणी अब और रहस्य का बादल गहरा गया था। यक्ष लोक मे भटकने वाली वह भैरवी क्या

चाहती है मुझसे? कौन सी दक्षिणा चाहिए उसे? बाबा जैसे परमयोगी भी समझ नहीं पा रहे थे इस रहस्य को।

चमेली के शरीर में डाकिनी का प्रवेश–जब से मूलाधार की साधना मैंने शुरू की थी उसके कुछ ही दिनों बाद से मुझे जो कुछ आन्तरिक रूप से अनुभव प्राप्त हुआ था और अनुभूतियाँ हुई थी। उन सबसे कभी–कभी ऐसा लगता था कि कई [redacted]। उनके अस्तित्व का तो स्पष्ट अनुभव होता था, लेकिन वे क्या चाहते हैं? यह समझ में नही आ रहा था कि और यह भी समझ में नहीं आ रहा था कि वे अदृश्य प्राणी हैं कौन और क्या चाहते हैं मुझसे। दोपहर का समय था। अपने कमरे में लेटा था मैं तख्त पर। पश्चिम की खिड़की खुली थी और उस खिड़की से अस्ताचल सूरज की हल्की पीली धूप भीतर आ रही थी कमरे में। सन्नाटा पसरा था चारो तरफ और तभी चमेली आ गयी उसका काम करने का समय तो सवेरे था। इस समय कैसे? आश्चर्य हुआ। फिर सोचा कुछ माँगने वाँगने आयी होगी, उसकी सांस तेज चल रही थी उस समय। लगा, कहीं से दौड़ती हुई आयी है वह और आते ही धम्म से बैठ गयी मेरे तख्त पर। उसका चेहरा लाल हो रहा था। होंठ कांप रहे थे। फटी–फटी आँखों से देख रही थी वह मेरी ओर। उन विस्फारित आँखों से देख रही थी वह मेरी ओर। उन विस्फारित आँखों में क्या था और कौन सा दावानल धधक रहा था समझ न सका मैं। उसकी गतिविधि और उसके व्यवहार में सहजता नहीं थी। लम्बे–लम्बे बाल खुलकर पीठ पर बिखरे हुए थे सावन भादों की घटा की तरह। कौतूहल आश्चर्य और भय के मिलेजुले भाव से जड़वत् देख रहा था मैं चमेली के असमान्य रूप को। क्या देख रहा तू? बोल, पहचाना नहीं? कैसे पहचानेगा। तू तो मुझे अपनी नौकरानी चमेली समझ रहा है। मै..... चमेली..... नहीं हूँ। मैं डाकिनी हूँ डाकिनी। [redacted] की [redacted]। समझ में आया कुछ....? यह सुनकर एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। समझते देर न लगी। चमेली के शरीर में प्रवेश कर आयी थी डाकिनी मेरे पास। आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक था। खुले हुए बालों को कस कर बाधंती हुई कहने लगी डाकिनी– तुम जैसे लोग सोचते हैं कि मुफ्त में सब कुछ मिल जाय लेकिन मुफ्त में कुछ नहीं

मिलता। कभी–कदा मुफ्त में मिलने वाली वस्तु बहुत महंगी पड़ती है। मुफ्त की वस्तु से हमेशा बचना चाहिए। हमेशा मुल्य चुकाने का ही प्रयत्न और प्रयास करना चाहिए। जितना तुम मूल्य देने के लिए तैयार होगे, उतना ही तुम पात्र भी बनते जाओगे। बिना मूल्य चुकाए जो खोज चलती है। वह खोज आगे चलकर भयंकर रूप से खतरनाक सिद्ध होती है। उससे प्राप्त तो कुछ होता नहीं, बल्कि कुछ टूट अवश्य जाता है भीतर ही भीतर। ऐसी आकांक्षा साधक में नहीं होनी चाहिए। जितनी तुम्हारी तैयारी है उतना तो तुम्हे अवश्य ही मिल जायेगा इसमें सन्देह नहीं। विश्वास रखना चाहिए। मिल ही जाता है। वास्तव में जो व्यक्ति जितनी वस्तु का पात्र है उससे कम या उससे अधिक कभी भी नहीं मिलता। यह संसार का न्याय है और है नियम। संसार का अपना धर्म भी है। तुम जितनी दूर तक तैयार होते हो, उतनी दूर तक तुम्हे मिल जाता है। यदि न मिलता हो तो यह मत समझ लेना कि अन्याय हो रहा है तुम्हारे साथ। सोचो, तुमसे कहीं भूल–चूक हो रही है। तुम्हारी तैयारी ठीक ढंग से नहीं हो रही है। कहीं अवश्य त्रुटि है। तुम्हारा यह भ्रम है कि मैं योग्य तो इतना हूँ लेकिन मेरी योग्यता के अनुसार मिल नहीं रहा है। ऐसा होता ही नहीं। तुम जितने योग्य होते हो, उतना तुमको सदैव ही मिलता है। **'योग्यता'** और **'प्राप्त होना'** एक ही वस्तु के दो नाम हैं, लेकिन मानव मन अत्यधिक आकांक्षी होता है। आकांक्षा अधिक और श्रम बहुत ही कम। हमारी आकांक्षा और हमारे श्रम में काफी लम्बा अन्तराल होता है। बहुत बड़ी दूरी होती है। यह अन्तर बहुत ही आत्मघाती सिद्ध होता है कभी–कभी। वह किसी भी समय और कभी भी भयंकर हानि पहुँचा सकता है और यही एकमात्र कारण है कि हम आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिए इधर–उधर भटकते फिरते हैं पागलों की तरह। कहीं कुछ मिल जाय। कहीं कोई सिद्धि उपलब्ध हो जाय। कहीं मन करे शान्ति मिल जाय। किसी प्रकार किसी सन्त महात्मा की कृपा प्राप्त हो जाय। शोषण करने वालों की कमी नहीं है ऐसे ही मुफ्त में पाने की खोज में घूमने वाले और भटकने वाले लोगों को अपना शिष्य बना लेते हैं वे और फिर शुरू हो जाता है उनका अध्यात्म के नाम पर शोषण। शोषण करने वाले का तो कोई नुकसान नहीं होता वह बराबर फायदे भी

रहता है लेकिन जिसका शोषण होता है, वह भारी खतरे में पड़ जाता है मानसिक रूप से, आर्थिक रूप से और आध्यात्मिक रूप से भी। इतना कह कर एक लम्बी सांस ली डाकिनी ने और सांस लेकर आगे बोली– तुम जिस मार्ग पर चल रहे हो वह कभी समाप्त होने वाला नहीं है। तुम जितनी योग्यता प्राप्त करोगे, उतनी ही होगी उपलब्धि।

थोड़ा रूककर डाकिनी आगे बोली– मैं तुमको सिद्ध हो चुकी हूँ। जो भी साधक मूलाधार पर अधिकार प्राप्त कर लेता है, कहने की जरूरत नहीं। उसी को सिद्ध हो जाती हूँ मैं। मेरी सिद्धि जीवन के हर मोड़ पर तुम्हारे लिए सहायक सिद्ध होगी। वह मोड़ कैसा भी हो। बार–बार इस तरह मेरा आना सम्भव नहीं है लेकिन आये बिना काम भी तो नहीं चलता। क्या करूँ विवश जो हूँ तुमसे बात करने के लिए इतनी व्याकुल थी कि चमेली के शरीर को माध्यम बनाना पड़ा मुझे। अब तो मेरा आना असम्भव सा प्रतीत है, लेकिन मेरी अगोचर उपस्थिति का आभास तुमको समय–समय पर मिलता ही रहेगा। डाकिनी की इस प्रकार की रहस्यमयी बातें सुनकर अवाक् और स्तब्ध रह गया मैं एकबारगी। मैं कुछ सोचूँ समझूँ कि उसके पहले ही कमरे में एक चींख गूंज कर चिथड़े–चिथड़े होकर बिखर गयी और उसी के साथ चमेली की थरथराती देह लुढ़ककर गिर पड़ी जमीन पर। चमेली के मुंह से ही निकली थी वह चीखं। अभी वह बेहोशी की ही स्थिति में थी। हतप्रभ सा देखता रहा मैं चमेली को। दूसरे दिन सुनने में आया कि उसी रात बिना किसी से कुछ कहे सुने और बिना किसी को कुछ बतलाए चली गयी है चमेली। यह सुनकर सन्न रह गया मैं। कहाँ गयी होगी वह भोली–भाली विधवा? क्या हो गया था उसे? चरित्र की, स्वस्थ्य चित्त की सरल युवती थी। उसी समय बाबा के यहां गया और सारी कथा सुनायी मैंने बाबा को। ध्यान से सुना सब कुछ बाबा ने लेकिन बोले कुछ नहीं, आँखे बन्द किए न जाने क्या सोचते रहे। बाद में बाबा ने जो कुछ मुझे बतलाया, उसे सुन कर मैं दंग रह गया एकबारगी।

साधना मार्ग में भैरवी– परामानसिक जगत की दिशा में चक्र का उन्मेष तो पहले ही हो चुका था। अब वह क्रियाशील की अवस्था में है। शक्ति तो निराकार है वह अनुभूति पथ का विषय है लेकिन कभी–कदा

आवश्यकता पड़ने पर साकार रूप भी धारण कर लेती है या फिर चमेली जैसी किसी माध्यम द्वारा भी प्रकट होकर साधक के सान्निध्य में आती है और उपदेश देती है और मार्गदर्शन भी कराती है। तुमको ज्ञात होना चाहिए कि तांत्रिक साधना भूमि में भैरवी का महत्वपूर्ण स्थान है। बिना भैरवी के साधक अपने साधना मार्ग में निर्विघ्न सफल हो ही नहीं सकता। इसके अनेक कारण हैं। सच बात तो यह है कि पूरा तंत्र शास्त्र, काम शास्त्र पर है आधारित इसलिए कि तीनों पुरुषार्थ में तीसरा पुरुषार्थ 'काम' है। 'काम' सिद्ध होने पर चौथा पुरुषार्थ मोक्ष का होता है उपलब्ध। काम की मूल शक्ति स्त्री है और वह स्त्री, पुरुष में कुण्डलिनी शक्ति के रूप में विद्यमान है। वह नैसर्गिक है। वह स्वयंम्भू है इसीलिए तांत्रिक साधना में स्त्री का महत्व और महिमा है। उसके दो रूप हैं भोग्या रूप और पूज्या रूप। भोग्या रूप इस अर्थ में है कि स्त्री में जो नैसर्गिक शक्ति है, जिसे हम काम की मूल शक्ति भी कह सकते हैं वह साधना भूमि में साधक के लिए आन्तरिक रूप से उपयोगी सिद्ध होती है। उसी के आधार पर साधना में वह सफलता प्राप्त करता है और अन्त में प्राप्त करता है उच्चावस्था।

'स्त्री' में उसकी नैसर्गिक शक्ति को जागृत करना और उसे नियोजित करना, अत्यन्त कठिन कार्य है। यह गुह्य कार्य सम्पन्न होने पर स्त्री को विशेष तांत्रिक क्रियाओं का आश्रय लेकर भैरवी की दीक्षा प्रदान की जाती है। जिसके परिणामस्वरूप भैरवी में मातृत्व का भाव उदय होता है।

तंत्र भूमि में मातृत्व भाव बहुत ही महत्वपूर्ण है। तंत्र की गुह्य साधना भूमि में मातृत्व भाव का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। तंत्र साधना के जितने भी गहन और गम्भीर अनुभव है उनमें एक यह भी अनुभव है कि विशेष तांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा पूज्य भाव से साधक अपने सामने पूर्ण नग्न स्त्री को यदि देख लेता है तो वह सदैव–सदैव के लिए स्त्री और स्त्री के आकर्षण से मुक्त हो जाता है। वह उसके लिए 'माँ' के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रहती। यहाँ यह भी बतला देना आवश्यक है कि इसी तांत्रिक प्रक्रिया द्वारा स्त्री, पुरुष को पूर्ण नग्न देख ले तो वह भी सदैव के लिए पुरुष और उसके आकर्षण से मुक्त हो जाती है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। जैसे तंत्र शास्त्र, काम शास्त्र पर है आधारित उसी प्रकार काम शास्त्र भी मनोविज्ञान के आश्रित है।

स्त्री और पुरुष भाव का विसर्जन एक नैसर्गिक उपलब्धि–यदि गम्भीर भाव से विचारपूर्वक देखा जाय तो तंत्र शास्त्र पूर्णरूप से क्रिया परक और अनुभव परक शास्त्र है। जिसमें गति विरले ही किसी की होती है इसीलिए तांत्रिक साधना कठिन, जटिल और अति दुरूह है। स्त्री और पुरुष के भीतर एक विशेष प्रकार का चुम्बकीय तत्व होता है। जो स्त्री पुरुष में एक दूसरे के विपरीत विशेष आकर्षण उत्पन्न करता है। उसी को सदैव के लिए नष्ट करने की उपर्युक्त सारी व्यवस्थाएँ हैं। यदि एक नग्न स्त्री को सामने बैठा कर पूज्य भाव से कोई पुरुष देखने में समर्थ हो जाय तो इसे साधारण घटना नहीं समझा जायेगा। यह अत्यन्त असाधारण घटना है। स्त्री को भोगने के भाव से होना हमें प्रकृति ने बनाया है। यह भोग भाव प्रकृति प्रदत्त है लेकिन स्त्री को पूज्या भाव से देखने में यदि कोई पुरुष समर्थ हो जाय तो उसकी जो विद्युत चुम्बकीय आकर्षण की धारा अबतक स्त्री की ओर होती थी प्रवाहित वह उसके भीतर की स्त्री की ओर होने लगेगी प्रवाहित। ऐसी स्थिति में अबतक जो आकर्षण स्त्री के प्रति था वह आकर्षण सदैव के लिए हो जाता है विलीन। उसका अस्तित्व ही हो जाता है सदैव के लिए समाप्त। अब वह स्त्री माता बन जाती है। देवी बन जाती है। पूज्य हो जाती है और न जाने क्या–क्या हो जाती है। भाव प्रधान है। भाव के कारण विद्युत चुम्बकीय तत्व की ऊर्जा से उत्पन्न प्रबल आकर्षण का वेग बस, अपना मार्ग बदल देता है। समझ लेना चाहिए ऊर्जा कभी भी नष्ट नहीं होती। शक्ति कभी भी नष्ट नहीं होती। बस उसकी धारा में और उसके स्वरूप में मात्र परिवर्तन हो जाता है। जरा सोचने की बात है। युवा पुरुष का, युवती स्त्री के प्रति कामजन्य आकर्षण समाप्त हो जाय पूर्णरूप से। जरा कल्पना करिए, ऐसी स्थिति में क्या सम्भव हो सकता है? तंत्र ऐसे पुरुष को भैरव और ऐसी स्त्री को भैरवी की संज्ञा देता है। दोनों में एक ऐसी नैसर्गिक शक्ति उत्पन्न होती है। जो दोनों के संयुक्त अस्तित्व को तंत्र साधना के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा देती है। जहाँ दोनों हैं और नहीं भी हैं। एक होते हुए भी दो हैं। एक शिवत्व का बोध करता है शक्ति का आश्रय लेकर तो दूसरा शक्तित्व का करता है बोध, शिव का आश्रय लेकर।

तंत्र के इस गम्भीर प्रकरण को आगे बढ़ाने की आवश्यकता नहीं। सांझ का समय है। बाबा उठ कर लालटेन जलाने का उपक्रम कर रहे हैं। उस छोटी सी कोठरी में बैठा न जाने क्या–क्या सोचने लग गया हूँ मैं। लालटेन के पीले प्रकाश में बाबा का चेहरा गम्भीर लगा मुझे। एक लोटा पानी पीकर उन्होंने विषय बदला और कहना शुरू किया....यदि भैरवी सभी लक्षणों से युक्त योग्य है, दीक्षित है और साधना के मर्म को समझने वाली है तो 'शक्ति' उसी का आश्रय लेकर प्रकट होती है। उसे किसी अन्य माध्यम की आवश्यकता नहीं पड़ती। कई कारणों से माध्यम का महत्व शक्ति के प्राकट्य की दिशा में कोई विशेष स्थान नहीं रखता। क्योंकि वह अनुभूति का विषय है। अनुभूति के रूप में शक्ति का प्रकटीकरण अपने आपमें महत्वपूर्ण है।

क्या मुझे भैरवी की आवश्यकता है? मैंने प्रश्न किया। 'है' और नहीं भी है बाबा बोले– [redacted] स्वाधिष्ठान और मणिपूरक चक्र भी स्वयं अपने आप जागृत और क्रियाशील हो जाते हैं। [redacted] हैं। जिसके परिणामस्वरूप तुम्हारी कई [redacted] गयी है। वे लाखों कोशिकाएँ मस्तिष्क के उस भाग की है। जिसका संबंध विज्ञानमय के अन्तर्गत आने वाले परामानसिक जगत से है। परामानसिक जगत के विस्तार के विषय में बतलाया नहीं जा सकता। लेकिन हाँ, उसकी सीमा में अनेक उच्चकोटि के लोक हैं। सम्भव है उन्हीं में से किसी लोक में निवास कर रहे हों कवीन्द्राचार्य महोदय। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि मस्तिष्क कोशिकाओं से निकलने वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगे अब वहां पहुँचने ही वाली है। सावधान और सतर्क रहने की आवश्यकता है। कभी भी अचेतन अवस्था में तुम प्रवेश कर सकते हो। यह सुनकर एकबारगी दंग रह गया मैं। सचमुच अन्तर्मायी थे बाबा इसमें सन्देह नहीं। बाबा ने फिर से आगे कहना शुरू किया– जैसाकि स्पष्ट है मानव शरीर में स्थित पंचकोषों में विज्ञानमय कोष का एक अलग महत्व है इसलिए कि इसी कोष के द्वारा प्राचीन काल से लेकर अबतक मानव मस्तिष्क को श्रेष्ठ ज्ञान–विज्ञान की हुई है उपलब्धि। विज्ञानमय कोष का संबंध तो परामानसिक जगत से है ही इसके अतिरिक्त उसी प्रकार के

अनेक और उन्नत परामानसिक जगत से भी है उसका संबंध। योग के अनुसार परामानसिक जगत कई भागों में विभक्त है। जिसमें उच्चकोटि के योगीगण सिद्ध साधकगण तो दीर्घकाल से निवास करते ही हैं उनके अतिरिक्त पराज्ञान विज्ञान के सर्वोच्च अधिष्ठाता, मर्मज्ञ, विज्ञान और भौतिक एवं अभौतिक शास्त्रों के निष्णात् वैज्ञानिक भी निवास करते हैं।

थोड़ा रूककर बाबा आगे बोले– [redacted] से सम्पर्क स्थापित तो होगा ही उसके अतिरिक्त यदि तुम्हारी आध्यात्मिक योग्यता से प्रभावित होकर उनमें से किसी एक ने भी अपने सन्देश का माध्यम तुमको बना लिया तो आध्यात्मिक ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति मच सकती है। आध्यात्म भूमि में यह अगोचर सम्पर्क अपने आपमें अत्यन्त शुभ और विलक्षण तो होगा ही किन्तु तुम्हारे भौतिक जीवन में कभी आत्म घातक भी सिद्ध हो सकता है।

यह सुनकर एकबारगी चौक पड़ा मैं। कुछ पूछना चाहा, किन्तु उसका अवसर ही नहीं मिला मुझे। बाबा बोलते गये– शुभ इसलिए कि परामानसिक जगत से विशेष मस्तिष्कीय कोशिकाओं से संबंध स्थापित हो जाने से तुम उन गूढ़, गोपनीय और रहस्यमय विषयों को एक सीमा तक उपलब्ध कर सकोगे और कर सकोगे आत्मसात जो तिमिराच्छन्न है और है अतीत के गहन अन्धकार में विलीन। शुभ इसलिए भी है कि असली नकली साधु–सन्त महात्माओं और सिद्ध साधकों को पहचानने और उनके आन्तरिक स्वरूप को समझने में देर न लगेगी तुम्हे। समय–समय पर [redacted] के माध्यम से 'शक्ति' तुम्हारा पथ प्रदर्शन करेगी और अध्यात्म के उन तिमिराच्छन्न विषयों से भी अवगत करायेगी जो काल के गर्भ में समा गया है। 'घातक' इसलिए कि आज के युग में सत्य का अनुभव करना और सत्य का साक्षात्कार करना भौतिक दृष्टि से कभी–कभी मनुष्य के लिए अत्यन्त पीड़ादायक भी सिद्ध हो जाता है। उसकी मानसिक स्थिति संभाली नहीं जाती। भले ही वह सिद्ध योगी हो या हो साधक। किस व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप कैसा है? किसका अन्तःकरण कैसा है? किसका संस्कार कैसा है? किसके मन और विचार में क्या है और कौन क्या चाहता है? यदि ये सब तुम्हारे सामने करतलवत् प्रकट हो जायेगा और मान लो उनमें कहीं प्रतिकूलता रही तो, क्या होगी

तुम्हारी मानसिक स्थिति? क्या संभाल पाओगे अपने आपको तुम? हाँ! एक उपाय है और वह यह कि प्रतिकूलता से अपनी रक्षा के लिए दो चीजे हैं पहली यह कि अनाशक्त भाव और दूसरी है निरपेक्षता। यदि तुमने अपने जीवन में इन दोनों को अपना लिया तो निश्चय ही तुम अपने उद्देश्य को साकार करने में सफल होओगे। क्योंकि यही सन्तों का लक्षण है।

साधिका दिव्यागिरि- चमेली को गायब हुए एक सप्ताह के ऊपर हो चुका था। उसका भाई बिहारी अपनी युवा विधवा बहन की खोज में एक प्रकार से पागल हो गया था। कभी–कभी मैं भी सोचता कि आखिर गयी कहाँ चमेली। बाबा पिछले कई दिनों से अस्वस्थ चल रहे थे। इस अवस्था में उनसे चमेली के संबंध में पूछना व्यर्थ ही था और उचित भी नहीं। कार्य व्यस्तता के कारण मेरा जाना थोड़ा कम हो गया था। एक दिन गया तो देखा– बाबा के निकट एक प्रौढ़वय की महिला पद्मासन की मुद्रा में बैठी हुई थी। ज्ञात हुआ कि त्रयम्बकेश्वर से आयी की बाबा की सेवा के लिए। नाम था दिव्यागिरि। सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व। गौरांग शरीर पर गैरिक वस्त्र, मुण्डित सिर, गले में रूद्राक्ष की माला, बड़े–बड़े तेजस्वी नेत्र, साधना के तेज से दप्–दप् करता मुखमण्डल। इन सबसे अधिक महत्व रखने वाली जो वस्तु थी, वह थी उस महान साधिका की कोमल, सरस और मधुर वाणी। विनम्रता की चर्चा करना ही उसका अपमान करना है। हे भगवान! कैसे वर्णन करूँ मैं उस संन्यासिनी की विनम्रता का।

बाबा की पट्ट शिष्या थी दिव्यागिरि। अनेक दुर्लभ सिद्धियों की स्वामिनी। [redacted]र उनका अधिकार था। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण कर गोमुख चली थी और वहाँ पूरे पन्द्रह वर्ष रहकर साधना की थी उन्होंने और फिर बना लिया था अपनी साधना स्थली त्रयम्बकेश्वर में। काफी देर तक अपलक मेरी ओर निहारती रही वह अद्भुत संन्यासिनी बड़ी ही गहरी दृष्टि थी उनकी। सिर भारी होने लगा लेकिन स्थिर भाव से बैठा रहा उनके सामने पूर्ववत्।

थोड़ी देर बाद बोली दिव्यागिरि– अभीतक आध्यात्मिक की भूमि जो उपलब्धि तुमको हुई है वह साधारण नहीं है। असाधारण है असाधारण।

लेकिन वह अभी और ऊपर उठने का आधार है और उस आधार को अधिक से अधिक दृढ़ और मजबूत बनाए रखना आवश्यक है। आधार में सबसे मूल्यवान वस्तु [redacted]

[redacted]– तीनों शरीर के विद्युत एक दूसरे से भिन्न हैं। वे न्यून न हों उनकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो। वृद्धि के लिए आवश्यक है– कम से कम बोलना, अधिक से अधिक एकान्त में रहना। प्रकृति के समीप रहना और स्त्री के स्पर्श से अलग रहना, किसी के भी सिर पर हाथ नहीं रखना। मस्तक का स्पर्श न करना। आवश्यक समझ कर ही किसी को आशीर्वाद देना। मूर्खों और दूषित संस्कार वालों से दूर रहना। अपने चरण का स्पर्श न करने देना, विधवा स्त्री, रोगी, अपाहिज और कपटी व्यक्ति से तो कभी भी चरण का स्पर्श न कराना चाहिए। ये तत्काल आन्तरिक विद्युत शक्ति का क्षय कर देते हैं। सबसे अधिक [redacted] सूक्ष्म शरीर में होती है। इन सबसे वह तत्काल प्रभावित होती है। जिसका कुप्रभाव चिन्तन–मनन, ध्यान, जप, पूजन आदि पर पड़ता है। [redacted] इसलिए साधकगण लकड़ी के खड़ाऊ का प्रयोग करते हैं। काठ के तख्त पर सोते बैठते हैं। अब थोड़ा आसन के विषय में भी तुमको बतला दूँ। मृगचर्म के आसन पर बैठकर ध्यान आदि करने से भाव शरीर की विद्युत नियन्त्रित रहती है। जिससे बुद्धि का विकास होता है। [redacted] का विकास भी प्रकार का [redacted] नियन्त्रित रहती है। ज्ञान, वैराग्य और सत्व गुण का विकास भी होता है। व्याघ्रचर्म के आसन पर बैठकर ध्यानादि से सूक्ष्म शरीर की विद्युत शक्ति की वृद्धि और विकास होता है। समाधि में प्रवेश भी सहज होता है। एकाएक गम्भीर हो गयी दिव्यागिरि। शून्य में देखते हुए बोली– चमेली को लेकर चिन्तित हो न! यह सुनकर एकबारगी चौक पड़ा मैं। इस महायोगिनी को कैसे ज्ञात हो गया मेरे मन की बात। अपने को संभाला और उत्तर में बोला– हाँ! आपका कहना सत्य है। चमेली मेरी नौकरानी थी। दो बार डाकिनी ने उसकी काया में प्रवेश किया था और उसके बाद अचानक न जाने कहाँ चली गयी। आज पूरे बीस दिन हो गये। काफी खोजा गया लेकिन अभीतक नहीं मिली।

साधिका हँस पड़ी मेरी बात सुनकर। बोली चमेली है और वह भी अमरकंटक में। अरे! यह क्या कह रही हैं आप? जाकर देख लो। संन्यासिनी के रूप में चमेली वहाँ है और उसके शरीर में डाकिनी भी है।

और जब चमेली मिली– चमेली की आत्मा है कहाँ? बस उसका मृत शरीर है जिसे लेकर डाकिनी अमरकंटक चली गयी थी उसी रात। षट्चक्र भेदन से संबंधित एक अति गूढ़ बात तुमको बतलाती हूँ और वह यह कि जैसे मूलाधार के सक्रिय होने पर उसकी शक्ति डाकिनी, चमेली के माध्यम से भौतिक रूप से संबंध स्थापित किया। उसी प्रकार साधक का जो–जो चक्र सक्रिय होता है। उस चक्र की शक्ति भी किसी न किसी माध्यम से साधक से भौतिक रूप से संबंध स्थापित करती रहती है। उपदेश देती है। मार्गदर्शन भी करती है यहां तक तो सब ठीक है, लेकिन जब साधक के शरीर को ही अपना माध्यम बनाकर स्वयं का कोई विशेष भौतिक कार्य सिद्ध करने लग जाती है तो उसका परिणाम अति भयंकर होता है। सर्वस्व नाश होते देर नहीं लगती फिर।

कबतक चमेली के शरीर में डाकिनी का निवास बना रहेगा? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में दिव्यागिरि ने बतलाया– कि कोई निश्चित नहीं है। कोई भी शक्ति हो, उसे मानव शरीर का काफी आकर्षण और मोह होता है और जब उसका मोह चमेली के शरीर के प्रति समाप्त हो जायेगा, तभी अलग होगी वह।

दूसरे ही दिन में अमरकंटक के लिए रवाना हो गया। अमरकंटक का बीहड़ वन्य प्रदेश और पहाड़ी इलाका। फिर भी संन्यासिनी को खोजने में अधिक समय नहीं लगा। एक सिद्ध संन्यासिनी के रूप में प्रसिद्ध हो गयी थी अमरकंटक में चमेली। कौन भला यह जानता और समझता था कि एक साधारण युवती के शरीर में एक दुर्धर्ष अभौतिक शक्ति आसन जमा कर बैठी हुई है। मैं स्वयं स्तब्ध रह गया चमेली की काया को देखकर। गोरा रंग और निखर आया था, शरीर भी पहले से हो गया था सुगठित, किसी अज्ञात विलक्षण तेज से दप्–दप् करता चेहरा, भरी–भरी आँखों में अजीब सा सम्मोहन, मुण्डित सिर और शरीर पर कषाय वस्त्र। समझते देर न लगी मुझे। डाकिनी की माया थी सब।

मुझे देखते ही प्रसन्न हो उठी एकबारगी डाकिनी। लगता था जैसे मेरी ही प्रतीक्षा कर रही थी वह महाशक्ति। पहले काफी देर तक मुस्कुराती रही मेरी ओर देखकर। फिर बोली, चमेली की खोज में आये हो न घबड़ाओ मत। अभी मुझे रहने दो उसकी काया में। फिर देखा जायेगा।

डाकिनी की माया समझ में नहीं आयी मुझे। बोला नहीं। चुप रहा। उसकी बातों से लगा कि चमेली को अब वह छोड़ने वाली नहीं है। एक सरल चित्त आत्मा बलि चढ़ गयी मेरे कारण एक तमोगुणी शक्ति के हाथों। विषण्ण हो उठा मेरा मन एकबारगी।

आत्म चर्चा- अधिक समय तक नहीं रहा डाकिनी के समीप्य में। साधना संबंधी कुछ चर्चाएं हुई और फिर मैं वापस लौट आया वाराणसी। बाम्बे मेल के प्रथम श्रेणी के कम्पार्टमेन्ट में बैठा सोच रहा था उन चर्चाओं के संबंध में। दर्शन और अध्यात्म का मिश्रण था उन चर्चाओं में... तुम केवल मात्र शरीर को ही जानते हो। कोई भी साधना हो। कोई भी आध्यात्मिक मार्ग हो। वह शरीर को ही सर्वप्रथम देता है महत्व। अभी मात्र तुम एक शरीर हो, केवल शरीर। शरीर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो। आत्मा को नहीं जानते। "केवल आत्मा" शब्द से परिचित हो। आत्मा एक धारणा बनी हुई है। मैं एक आत्मा हूँ। आत्मा अमर है। आत्मा की मृत्यु कभी नहीं होती। इस आत्म वचना में कभी नहीं पड़ना चाहिए ये सब एक धारणा है, एक विचार है और एक है भाव। इससे अधिक और कुछ नहीं। जो अपने आपमें भयानक है। भयजनित भी है।

आत्मा का अस्तित्व है या नहीं? इस संबंध में तुमको न कोई अनुभव है और न तो है किसी प्रकार का ज्ञान। तुमने आत्मा के संबंध में सुना है और पढ़ा भी है। आत्मा की अमरता की बात भी करते हो। इसलिए करते हो कि तुम मृत्यु से भयभीत हो। तुम इस बात से भलीभांति परिचित हो कि मृत्यु एक परम सत्य है और यही आन्तरिक भय तुमको आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करने के लिए विवश करता है। आत्मा का अस्तित्व नहीं है यह कहने का मेरा अभिप्राय नहीं है। आत्मा का अस्तित्व है यह परम सत्य है। आत्मा जैसा कोई सत्य है ही नहीं। मनुष्य में आत्मा से संबंधित जो धारणा है, वह मानसिक है। जो मृत्यु के भय के कारण उत्पन्न हुआ है। तुम जैसे–जैसे शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर

और शिथिल होगे। वृद्ध होगे। वैसे ही वैसे आत्मा और परमात्मा के प्रति बढ़ता जायेगा तुम्हारा विश्वास और उसी विश्वास के कारण तुम मन्दिर में जाने लगोगे। देवी–देवताओं का दर्शन करने लगोगे। पूजा–पाठ भजन पूजन जप आदि भी अधिक से अधिक करने लगोगे। साधु, संन्यासियों का संगत करने लगोगे। सभी भौतिक विषयों के प्रति धीरे–धीरे आकर्षण कम होता जायेगा। अपने आपमें एकाकीपन का करने लगोगे अनुभव। कोई अपना नहीं लगेगा। सब कुछ धुंआ–धुंआ सा लगेगा उस समय। तुम युवक हो। स्वयं समझ सकते हो। युवा व्यक्ति प्रायः नास्तिक होता है। निराधार तर्क करता है। अपने आपको ज्ञानी समझता है। व्यक्ति जितना युवा होता है, उतना ही होता है अविश्वासी। क्यों? इसलिए कि उसके भीतर अभी शक्ति हैं, स्फूर्ति हैं, जोश है। अभी वह बलवान है, पौरुष है, उसके भीतर अभी भय नहीं है। मृत्यु क्या है? वह अभी नहीं जानता। मृत्यु के अर्थ को नहीं समझता। मृत्यु उसके लिए सुदूर भविष्य में है। वह किसी दूसरे को मरते हुए देखता है किसी दूसरे के शव को श्मशान में जलते हुए देखता है। उसके लिए मृत्यु नहीं है। वह नहीं मरेगा और उसकी लाश चिता में नहीं जलेगी। लेकिन वही व्यक्ति जैसे–जैसे बड़ा होता जायेगा और आयु बढ़ती जायेगी। वैसे ही वैसे उसको इस बात का एहसास होने लगेगा कि वह भी मर सकता है। उसकी भी मृत्यु हो सकती है। उसका भी शव कभी जल सकता है श्मशान में। उसकी मृत्यु पर भी उसके सगे संबंधी विलाप करेंगे और रोयेंगे और तब वह होने लगेगा आस्तिक। परमात्मा के किसी रूप का चिन्तन करने लगेगा और करने लगेगा भजन। तुमको समझ लेना चाहिए कि सभी प्रकार के विश्वास 'भय' पर खड़े हैं। भय पर टिके हुए हैं। भय पर जीवित हैं। सभी विश्वास चाहे वह भौतिक हो या हो आध्यात्मिक और जो व्यक्ति भय के कारण विश्वास करता है वह व्यक्ति स्वयं को धोखा देता है। अपने आपको देता है धोखा और उसी धोखे के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होता जाता है असफल।

अचानक हल्का सा धक्का लगा। तन्द्रा भंग हुई। चिन्तन की धारा टूट गयी उसी के साथ। बन्द आँखे खुली। देखा मुगलसराय के प्लेटफार्म पर ट्रेन प्रवेश रही थी धीरे–धीरे।

***

लगभग दो वर्ष बाद एक दिन सांझ के समय–दुर्गाजी का दर्शन करते हुए [redacted] गये। मुझे देखकर मुस्कुराये और उसी मुद्रा में बोले– आपने सुना शर्माजी बड़े आश्चर्य की बात है।

कहिए पाण्डेयजी। क्या बात है। उत्सुक हो उठा था मैं।

मन्दिर की प्रदिक्षणा करते हुए बोले पाण्डेयजी 'अरे बन्धु! जो रिक्शावाला बिहारी खोजवाँ में रहता था और जिसकी बहन चमेली, जो आपके यहाँ काम करती थी और अचानक एक दिन भाग गयी थी। जानते हैं आज वापस लौट आयी है वह।

यह सुनकर दंग रह गया मैं एकबारगी। क्या कहा आपने? चमेली लौट आयी है? हाँ बन्धु! लेकिन, चमेली, वह चमेली नहीं है। संन्यासिनी बन गयी है। ढेर सारा रूपया है उसके पास। न जाने कहाँ से लेकर आयी है। बिहारी का तो शनि उच्च का है शायद इस समय बन्धु! अब तो उसका ठाट–बाट देखते ही बनता है दस बारह रिक्शा रख लिया है उसने। आलीशान चार मंजिला मकान और कई दुकानों का मालिक बन गया है वह शर्मा जी।

आश्चर्य और कौतूहल के भाव से भर गया मेरा मन। समझते देर न लगी मुझे। चमेली के शरीर का मूल्य चुका दिया था डाकिनी ने इस रूप में। रहा न गया मुझसे। उसी समय चल पड़ा मैं बिहारी से मिलने। चमेली को भी देखने की प्रबल इच्छा थी मन में। सचमुच बिहारी का मकान बहुत ही सुन्दर और आलीशान था। बिहारी मिला और संन्यासिनी भी मिली, लेकिन चमेली नहीं मिली। भारी भीड़ थी मकान के सामने और उस भीड़ के बीच में मकान के सामने दरवाजे के पास रखा हुआ था, गेरूआ वस्त्र में लिपटा हुआ चमेली का शव। डाकिनी छोड़कर चली गयी थी चमेली के शरीर को। भला कौन जानता था वहाँ इस रहस्य को। विषण्ण मन से लौट आया मैं।

रात में काफी देर तक नींद नहीं आयी। कभी चमेली के संबंध में तो कभी डाकिनी के विषय में सोचता रहा मैं। भोर के समय थोड़ी झपकी सी लगी और उसी अवस्था में देखा–एक सुन्दर युवती मेरे सामने खड़ी मुस्कुरा रही थी। आयु अधिक नहीं, बस अट्ठारह के लगभग। गोरा रंग,

छरहरी काया, घने बाल, कजरारी आँखे, गालों पर लावण्य के कण, पतले गुलाबी ओंठ, गले में रत्नजड़ित स्वर्णहार और हाथों में कंगन एवं शरीर पर गुलाबी रेशमी साड़ी।

कौन है यह? मेरे पास क्यों आयी है? क्या काम है मुझसे? अभी यही सब सोच रहा था कि युवती का कोमल और स्निग्ध स्वर कानों में पड़ा– वह कह रही थी, क्या तुमने पहचाना नहीं? कैसे पहचानोगे भला। चमेली की काया के भीतर जो हूँ।

यह सुनकर रोमांचित हो उठा मैं एकबारगी। तुम.....तुम.....तुम डाकिनी हो– किसी प्रकार हलकाते हुए पूछा मैंने।

हाँ रे! मैं डाकिनी ही हूँ। ठीक पहचाना। जिस काया को तुम देख रहे हो, वह चमेली की तरह किसी और की नहीं है। स्वयं इस शरीर की रचना अपने आपको प्रकट करने के लिए मैंने की है। जब कभी तुम्हारे पास आना होगा तो इसी रूप में आऊँगी मैं। समझे न?

लेकिन क्यों आओगी? क्या आवश्यक है आना? झल्ला उठा मैं। ऐसा मत बोलो। ऐसा मत कहो। तुमने तो मुझे सिद्ध कर लिया है न! यानी अपने बस में। अब कैसे अलग हो सकती हूँ मैं तुमसे भला। हम दोनों अलग–अलग होते हुए भी एक हैं। मुँह बाये देखता रह गया मैं उस युवती के रूप में डाकिनी को। आगे कुछ बोलना चाहा, लेकिन गले से आवाज ही नहीं निकली। थोड़ा मन में भय समा गया था न। इसीलिए तर्जनी उंगली को अपने बायें गाल पर रखकर युवती निहार कर बोली– तू मुझसे डरता क्यों है। मैं तो तुम्हारी सहयोगिनी हूँ। जब मेरी इच्छा होगी तब मैं चली आऊँगी तेरे पास और जब तुमको बुलाना होगा तो तुम मेरा करना आवाहन। बस, कहीं भी रहूँगी, झटपट चली आऊँगी मैं तेरे पास। इतना कहकर गायब हो गयी वह। जैसे हवा लील गयी हो उसे और उसी के साथ मेरी अर्धनिद्रित अवस्था भी भंग हो गयी। सवेरा हो चुका। उठ कर बैठा और सिर पर हाथ रख कर सोचने लगा– कैसी बला लग गयी मेरे पीछे। कैसे मुक्ति मिलेगी मुझे डाकिनी से। कभी भी किसी रूप में आ सकती है वह? हे भगवान! क्या हो गया यह। कैसे मायाजाल में फंस गया मैं। क्या करूँ अब।

❐

और अब अन्त में

शरद पूर्णिमा।

मेरे आध्यात्मिक जीवन कथा का एक अतिशय महत्वपूर्ण साक्षी। कभी शरद पूर्णिमा का धवल शुभ्र रूपहला और स्निग्ध चांद कैलाश के किसी हिमखण्ड पर मौन साधे ध्यानस्थ बैठा हुआ देखा था मुझे। कभी मानसरोवर के हिमाच्छादित तट पर आकाशचारी दिव्यमहापुरुष चैतन्य देव से सत्संग करते हुए देखा था मुझे। कभी मान्धाता की एक गुफा में ध्यानस्थ बैठा हुआ देखा था मुझे। कभी हिमालय के दुर्गम हिमपठारों में भूखा प्यासा अपने गन्तव्य की ओर जाते हुए देखा था मुझे। कभी गिरि गुफाओं में प्रच्छन्न रूप से निवास करने वाले साधु, संत और सिद्ध महात्माओं से साधना के गूढ़ रहस्यमय और साथ ही अति गोपनीय प्रसंगों पर वार्तालाप करते हुए देखा था मुझे। कभी बीहड़ जंगलों और दुर्गम स्थानों में गुप्त रूप से साधना के गूढ़ रहस्यमय और साथ ही अति गोपनीय प्रसंगों पर वार्तालाप करते हुए देखा था मुझे। कभी बीहड़ जंगलों और दुर्गम स्थानों में गुप्त रूप से साधनारत साधकों की खोज में भटकते हुए भी देखा था मुझे। कभी सोलह हजार फीट ऊपर रहस्यमय देश तिब्बत के हिमाच्छादित दुर्गम स्थानों, मठों और आश्रमों में भी देखा था मुझे। कभी ब्रह्मपुत्र और पद्मा के संगम पर स्थित विस्तृत महाश्मशान में मानवेतर शक्ति प्राप्त करने की लालसा के वशीभूत होकर अतिशय कठोर और अतिशय भयानक साधना करते हुए भी देखा था मुझे। कभी वक्रेश्वर के महाश्मशान में जलती हुई चिताओं के बीच गालों पर हाथ धरे चुपचाप मौन लाल पीली लपटों को निहारते हुए भी देखा था मुझे। कभी उसी महाश्मशान में एक कन्या के रूप में माँ महामाया भगवती काली को अपनी कोमल उंगलियों से मेरे गालों पर ढुलक आये आसुओं को पोंछते हुए भी देखा था मुझे। क्या–क्या गिनाऊँ आपको। ऐसी–ऐसी बहुत सारी अविश्वसनीय घटनायें हैं, जिनका साक्षी बना है शरद पूर्णिमा का रूपहला चांद। उस दिन भी

शरद पूर्णिमा की रात थी। खिड़की के पास बैठा निरभ्र नीलाभ आकाशपटल पर कमल की तरह खिले हुए रूपहले चांद को अपलक निहार रहा था मैं मौन साधे। बगल की मेज पर अन्य पुस्तकों के बीच त्रैलोक्य मीमांसा की जीर्ण शीर्ण पुस्तक रखी हुई थी। कभी–कभी उस पर भी दृष्टि पड़ जाती मेरी। नीले निरभ्र आकाश का विस्तार। घोर निस्तब्धता चारो ओर सायं–सायं करता वातावरण। भला मैं क्या जानता था कि आज की शरद पूर्णिमा का भी चांद मेरे जीवन में घटने वाली किसी अकल्पनीय घटना का साक्षी बनेगा। न जाने कब मेरी आँखें बन्द हो गयी और कब मैं जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की सीमाओं को पार कर तुरीयावस्था में पहुँच गया, पता ही न चला। तुरीयावस्था ही एक ऐसी योगावस्था है। जहाँ से सूक्ष्म शरीर द्वारा सूक्ष्म जगत की यात्रा होती है और उसकी सीमा में आने वाले अन्य लोक–लोकान्तरों की भी होती है यात्रा। इतना ही नहीं उसी परम अवस्था में परामानसिक जगत में भी प्रवेश सम्भव है। बड़ा ही विलक्षण अनुभव हो रहा था मुझे उस समय। अपने पार्थिव शरीर को छोड़कर सूक्ष्म शरीर द्वारा इधर–उधर विचरण करता हुआ पृथ्वी के चुम्बकीय वातावरण में बाहर निकलने का प्रयास कर रहा था। चारो ओर घोर अन्धकार का साम्राज्य था। थोड़ी ही देर बाद पार्थिव जगत का अस्तित्व लुप्त हो गया मेरे सामने से। अब मैं सूक्ष्म जगत के विस्तार में प्रवेश कर चुका था। बहुत दूर निकल जाने पर एकाएक मेरे अस्तित्व को एक झटका सा लगा। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। बाद में समझ में आ गया कारण। सूक्ष्म जगत की सीमा पार कर मनोमय जगत में प्रवेश कर चुका था मैं अनजाने में। मनोमय जगत को ही परामानसिक जगत कहते हैं– यह पहली बार जाना मैंने। मनोमय जगत में प्रवेश कारण शरीर द्वारा ही सम्भव है और यह मेरे लिए सम्भव नहीं था। मैं अपने आपको जड़वत् कर रहा था अनुभव उस समय। एक प्रकार की विवशता ही समझी जायेगी उसे और तभी मेरे सामने एक उज्जवल प्रकाश प्रकट हुआ। वह धवल और उज्ज्वल प्रकाश मनोहारी तो था ही इसके अतिरिक्त उसमें सम्मोहन भरा आकर्षण भी था। धीरे–धीरे अब वह गोलाकार प्रकाश ज्योतिपुञ्ज में परिवर्तित होने लगा था। उस ज्योतिपुञ्ज के रूप में कोई दिव्य आत्मा थी अब वह ज्योतिपुञ्ज मानवाकार में होने लगा परिवर्तित।

कहने की आवश्यकता नहीं। वह मानवाकार रूप एक दिव्य महापुरुष का था और वह दिव्य पुरुष और कोई नहीं अपने युग के महान विद्वान कवीन्द्राचार्य सरस्वती थे। समझने में और पहचानने में किसी भी प्रकार की भूल–चूक नहीं हुई थी मुझसे।

कवीन्द्राचार्य सरस्वती– लम्बी चौड़ी कदकाठी का शरीर, चौड़ा सीना, विशाल मस्तक, गोरे वर्ण, मुण्डित सिर पर गुलाबी रेशमी पगड़ी, सिल्क की बगरबन्दी और सिल्क की ही धोती। मस्तक पर त्रिपुण्ड की रेखाएं और उन रेखाओं के मध्य शक्ति का प्रतीक लाल सिन्दूर का गोल भव्य टीका; गले में झूलती हुई स्फटिक मोती और स्वर्णजड़ित रूद्राक्ष की मालाएं। दोनों हाथों की उंगलियों में माणिक, पुखराज, पन्ना और नीलम की चमकती अंगूठियां, दोनो कानों में हीरे का कुण्डल, लम्बी नासिका, गुलाब की पंखुड़ियों जैसे लाल और कोमल होंठ। बड़ी–बड़ी आँखों में प्रगाढ़ विद्वता की झलक और गम्भीर मुद्रा। उस प्रकाण्ड विद्वान और अपने समय के यशस्वी महापुरुष के भव्य और आकर्षक व्यक्तित्व को देख कर एकबारगी अवाक् और स्तब्ध रह जाना पड़ा मुझे। उस महान पुरुष [illegible] कर दिया था मुझे इसमें सन्देह नहीं। नत मस्तक होकर चरण स्पर्श किया मैंने। सनसना उठा मेरा सम्पूर्ण व्यक्तित्व। झकझोर दिया मेरी आत्मा को उस स्पर्श ने।

कल्याणं भव.....। गम्भीर स्वर गूंज उठा मेरे कानों में गद्‌गद् हो उठी मेरी अन्तरात्मा। युग द्रष्टा के रूप में विख्यात अपने–अपने समय के दो महान और प्रकाण्ड विद्वानों का आशीर्वाद उपलब्ध हुआ था मुझे 'कल्याणं भव' के रूप में। उन दोनों दिव्य विदेही आत्माओं द्वारा दिया गया आशीर्वाद मेरे जीवन के कंटकाकीर्ण मार्ग के प्रकाश स्तम्भ बने, इसमें सन्देह नहीं।

मेरे आध्यात्मिक जीवन की जो असफलताएं एवं विफलताएं और सफलताएं थीं– उन सबकी कथा ज्ञात थी उस उद्‌भट और प्रकाण्ड विद्वान को। हल्के से मुस्कुराकर बोले कवीन्द्राचार्य महोदय यह स्थान मनोमय राज्य के अन्तर्गत है। इसका क्षेत्र अति व्यापक है। परामानसिक [illegible]

[illegible] यहां। इस सत्य की कल्पना भी मनुष्य नहीं कर सकता। वास्तव में मनुष्य, शरीर और इन्द्रियों की सीमा में बंधा हुआ एक असहाय प्राणी है। वह अपनी सीमा के बाहर न कुछ सोच सकता है और न तो कुछ कर ही सकता है। एक साधारण सी अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए उसे न जाने कितनी मानसिक ऊर्जा और कर्म शक्ति का व्यय करना पड़ता है। उसे यह ज्ञात नहीं है कि वह मानसिक ऊर्जा–कितनी महत्वपूर्ण और मूल्यवान है। सच बात तो यह है कि उस ऊर्जा का कैसे और कब उपयोग किया जाय? इसका उसे ज्ञान ही नहीं है। मनुष्य कितना अज्ञानी है, इसका पता स्वयं ही उसको नहीं और जब सीमा टूटती है उस समय उसे पहली बार ज्ञात होता है कि शरीर और संसार के परे भी बहुत कुछ है और वह बहुत कुछ असीम है। संसार में किसी भी वस्तु के निर्माण की पृष्ठभूमि में चार शक्तियाँ कार्य करती हैं समान रूप से सम्मिलित होकर इच्छा शक्ति, विचार शक्ति, संकल्प शक्ति और कर्म शक्ति। जिनको साकार करता है धन लेकिन इस मनोमय राज्य में जो सूक्ष्म जगत से अत्यधिक उन्नत और विकसित है। केवल परामानसिक शक्ति ही सृष्टि का कार्य करती है। परामानसिक शक्ति के द्वारा असम्भव से असम्भव कार्य सम्पन्न किए जा सकते हैं। इसी को मनोमय सृष्टि कहते हैं। समस्त योग तांत्रिक सिद्धियों के मूल में परामानसिक तत्व ही काम करता है।

तुम मेधावी और उच्चतम् संस्कारों से युक्त युवक हो। उसी के फलस्वरूप तुमने अल्पकाल में ही मानव सीमा के परे का असम्भव कर्म सम्पन्न किया है इसलिए तुम पर मैं अत्यधिक प्रसन्न हूँ। तुम जैसे युवक की ही आवश्यकता थी मुझे– मेरे सिर पर अपना दाहिना हाथ रखते हुए उस महापण्डित ने कहा– अभी तुम्हारी अवस्था ही क्या है? पिछले सोलह जन्मों के ज्ञान का भण्डार भरा है तुम्हारी आत्मा में। उन अपौरुषेय और तिमिराच्छन्न ज्ञान को अभिव्यक्त करना है तुम्हे। इस कार्य में मेरा अव्यक्त सहयोग बराबर उपलब्ध रहेगा। तुमको इस जन्म में भी सांसारिक प्रपञ्च में नहीं पड़ना चाहिए। तटस्थ भाव से पृथक जीवन व्यतीत करते हुए अपने उद्देश्य को साकार करते रहना होगा। संसार दुःख है और उस दुःख में रहकर सुख का अनुभव करना ही तप है। तप को ही योग कहते हैं

और भोग की सारी प्रक्रिया एक ही है और वह है मन को किस प्रकार क्षीण किया जाय? किस प्रकार दुर्बल किया जाय? वस्तुतः मन के अस्तित्व की समाप्ति ही योग है लेकिन उसकी वृत्तियाँ कैसे होगी समाप्त ? वह समाप्त होगी– अभ्यास से और वैराग्य से। इन दोनों को स्वीकार करना होगा तुम्हे लेकिन सद्विचार को बराबर बनाए रखना होगा क्योंकि विचारवान बने रहना मानवीयता है। विचार के नीचे रहना पशु होना है। विचार के परे चले जाना दिव्य भाव को उपलब्ध होना है। विचार के परे होने का अर्थ है विचार शून्य हो जाना। विचार शून्य मन, अहंकार शून्य हो जाता है। सीमा रहित हो जाता है असीमित हो जाता है। जिस समय तुम समग्र रूप से विचार शून्य हो जाओगे उसी क्षण तुम्हारे भीतर भगवती का प्रवेश हो जायेगा। तत्काल भगवत्ता को हो जाओगे उपलब्ध।

एक प्रकाण्ड और अनुभवी विद्वान द्वारा यह सब सुनकर न जाने क्यों मेरी अन्तरात्मा विचलित हो उठी एकबारगी। न जाने कैसा होने लगा अनुभव मुझे। काशी के नगवा वाले कमरे में मेरा शरीर है–अवधि ा समाप्त होने पर लौट कर उसमें करना होगा प्रवेश। यह पूर्णरूप से विस्मृत हो चुका था उस समय मुझे। एकाएक क्षण मात्र में पूरा वातावरण बदल गया। मेरे सामने राजमहल जैसा अब भव्य भवन था, सुन्दर अति आकर्षक। भवन के चारो ओर हरे भरे घास के मैदान थे। जिनमें विभिन्न रंगों के सुगन्धित पुष्पों की क्यारियाँ थी। मैदान को घेरे हुए थे लम्बे घने हरे भरे वृक्ष। महल के भीतर का तो दृश्य अत्यन्त अद्भुत था। प्रवेश करने पर लगा जैसे इन्द्र की अमरावती में आ गया हूँ। काफी लम्बा–चौड़ा हॉल था भवन के बीच में। हॉल के तीन ओर ऊँचे–ऊँचे दरवाजे और खिड़कियाँ थीं जो चमकते हुए सोने की थी और उन पर विभिन्न रंगों के रेशमी पर्दे झूल रहे थे। छत से लटकते हुए कई मूल्यवान शीशे के झाड़–फानूस थे जिनमें से प्रकाश निकल रहा था। जमीन पर नीले और लाल रंग की मूल्यवान कालीन बिछी हुई थी। सामने दीवार से लगा हुआ काफी लम्बा–चौड़ा दीवान था। जिस पर पीले मखमल का गद्दा बिछा हुआ था और ठीक उसके ऊपर सोने के फ्रेम में जड़ा हुआ लगभग छः फीट लम्बा–चौड़ा शीशा था। मैं मुँह बाये भौचक्का सा चारो ओर सिर घुमा–घुमा कर देख रहा था और तभी मेरी दृष्टि पड़ी उस विशाल चमकते

हुए शीशे पर। हे भगवान! क्या देख रहा था वहाँ मैं। उस विशाल चमकते हुए शीशे पर पूरी पृथ्वी घूमती हुई अपने स्थान पर नजर आ रही थी। वह दृश्य अति मोहक और आकर्षक था और तभी महापण्डित का कोमल स्वर सुनाई दिया, वे कह रहे थे– यह महाकाल दर्पण है। इस दर्पण में तुम किसी भी लोक–लोकान्तर को देख सकते हो। विश्व ब्रह्माण्ड में जितने भी जगत हैं, उनका भी कर सकते हो दर्शन। अब तक तुम यह समझ ही गये होगे कि ये सब मनोजव सृष्टि है। मन को थोड़ा एकाग्र कर जिस लोक और जिस जगत को देखना चाहो उसे देख सकते हो इस पटल पर। इतना ही नहीं वहाँ के निवासियों से सम्पर्क भी कर सकते हो स्थापित लेकिन यह तुम्हारे लिए सम्भव नहीं है। तुरीयावस्था में प्रवेश करने पर भी तुम मनोमय शरीर को उपलब्ध नहीं हो। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर से मुक्त हो जाने पर ही मनोमय शरीर की होती है उपलब्धि और परामानसिक जगत अथवा मनोमय जगत में होता है प्रवेश। जैसा कि कैवल्योपनिषद कहता है–

पुनश्च जन्मान्तर कर्म योगात् स एवजीव स्वीजति प्रबुद्धः।
पुरत्रये क्रीडति यश्चजीवस्त मस्तु जांत सकलं विचित्रम।।

भारत के प्राचीन सिद्ध साधकों और योगियों ने जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं पर अत्यन्त गहन चिन्तन मनन किया है। ये तीनों चेतन मन की दशायें हैं जो मानव जीवन के आधार स्तम्भ भी है। इन तीनों के अतिरिक्त एक और अवस्था है और वह अवस्था है– तुरीय। यह चौथी अवस्था है, लेकिन तीन अवस्थाओं के पार करने पर ही वह चौथी अवस्था होती है उपलब्ध। मनुष्य पूरा जीवन उन्हीं तीनों अवस्थाओं में ही रहकर व्यतीत कर देता है। कभी जाग्रत में जीता है, कभी स्वप्न में तो कभी सुषुप्ति में। जहां तक मृत्यु का प्रश्न है वह सुषुप्ति में ही घटित होती है। सुषुप्ति के बिना मृत्यु घट नहीं सकती इसलिए कि सुषुप्ति अवस्था में समस्त प्रकार का बाह्यबोध समाप्त हो जाता है और यही कारण है कि मृत्यु की असहनीय पीड़ा का अनुभव नहीं होता। सुषुप्ति के अतिरिक्त स्वप्नावस्था और जागृतावस्था में भी होती है मृत्यु। लेकिन उनका परिणाम अलग–अलग होता है। स्वप्न देखते समय मरने वाले व्यक्ति

का अगला जन्म पिछले जन्म की पूरी स्मृतियों के साथ होगा। वह अपने पिछले जन्म की बहुत सारी घटनाएं बतलाएगा।

तुमको ज्ञात होना चाहिए कि तिब्बत ने मनुष्य के स्वप्न पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। तिब्बत एक ऐसे रहस्य से परिचित है। जिसके द्वारा ऐसी व्यवस्था की जातीं है कि मनुष्य की मृत्यु स्वप्नावस्था में हो ताकि इस जन्म की सारी स्मृतियों को लेकर पुनर्जन्म ग्रहण कर सके। इसका परिणाम यह होता है कि उस मनुष्य का अगला जन्म पूर्णरूप से रूपान्तरित हो जाता है। वह कभी वह काम नहीं करेगा जिससे पिछले जन्म में अकल्याण हुआ था हानि पहुँची है। क्लेश, दुःख और कष्ट प्राप्त हुआ है। पिछले जन्म की अच्छाई बुराई का स्वयं होने लगेगा बोध उसे। पुनः वर्तमान जीवन में उसे दुहराना नहीं चाहेगा वह। फिर वही वासनाएं, फिर वही कामनाएँ, फिर वही इच्छाएँ और फिर वही चिन्ताएँ फिर वही सफलता–असफलता और अन्त में प्राप्त हुई मृत्यु। पूरा जीवन निकल गया मिला कुछ नहीं। मिली भी तो मृत्यु मिली। पिछले जन्म की इन सारी स्मृतियों के कारण उसका पुनर्जन्म स्वच्छ निर्मल होगा। गुण धर्म ही बदल जायेगा। जिसके फलस्वरूप वह कुछ और ही करेगा। इस संबंध में तिब्बत जिस रहस्य से परिचित है वह है वारदो प्रयोग। उस प्रयोग के सहयोग से मरणासन्न व्यक्ति की मृत्यु स्वप्नावस्था में होती है ताकि वर्तमान जन्म की सारी स्मृतियों को लेकर अगला जन्म ग्रहण करे वह। सुषुप्ति अवस्था में मरने वाला मनुष्य जैसे पूरे जीवन में रहा है। वैसे ही अगले जन्म में भी जीवन व्यतीत करेगा। थोड़ा बहुत संस्कार के अनुसार अन्तर अवश्य हो सकता है। सबसे महत्वपूर्ण है जाग्रत अवस्था में होने वाली मृत्यु। लाखों करोड़ों में किसी को उपलब्ध होती है वह मृत्यु। समझने की बात तो यह है कि जाग्रत अवस्था में मरने वाला मनुष्य जाग्रत अवस्था में जन्म लेता है। स्वप्न में मरने वाला व्यक्ति स्वप्न में ही जन्म लेता है। इसी प्रकार सुषुप्ति में मरने वाला व्यक्ति भी सुषुप्ति में ही लेता है जन्म। स्वप्न में मरने और जन्म लेने वाले मनुष्य में माता के सारे गुण धर्म, विचार, इच्छा, वासना कामना आदि सब कुछ आता है। लेकिन जो मनुष्य जाग्रत में मरता है और जाग्रत में ही जन्म लेता है तो उसमें मातृत्व पूर्णरूप से रूपान्तरित हो जाती है। पुत्र के प्रति माता का स्नेह और पुत्र का माता

के प्रति प्रेम अति विलक्षण होता है। ऐसा मनुष्य सम्पूर्ण नारी जाति को मातृ रूप में देखता है। सर्वत्र उसे जगन्माता के ही दर्शन होते हैं। जाग्रत अवस्था में मृत्यु होने पर उस मनुष्य की आत्मा परमात्म तत्व के समीप पहुँच जाती है। भगवद्सत्ता का प्रगाढ़ अनुभव भी होता है उसे। पुनः जन्म लेने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। जन्म लेने का कोई कारण भी नहीं होता लेकिन फिर भी जगत कल्याण की भावना के वशीभूत होकर संसार में आ ही जाती वह। ऐसी आत्मा के जन्म को जन्म नहीं कहते हैं अवतार कहते हैं। जन्म नहीं होता हैं अवतरण होता है संसार में उसका।

सबसे बड़ी रहस्य की बात तो यह है कि इस प्रकार का अवतारी पुरुष जिसने जाग्रत में शरीर त्याग किया है और दूसरा शरीर ग्रहण किया है। सम्भोग से उत्पन्न नहीं होता। सम्भोग से तो वह मनुष्य जन्म लेता है जो सोया हुआ, मरा हुआ होता है पिछले जन्म में। सम्भोग से जन्म लेने वाला मनुष्य सुप्तावस्था में ही रहता है और वह कब तक बनी रहेगी यह बतलाया नहीं जा सकता। वह एक प्रकार से मूढ़ावस्था में ही रहता है लगातार कई वर्षों तक अपने जीवन में।

स्वप्न में मरने वाला और स्वप्न में ही जन्म लेने वाला मनुष्य भी साधारण सम्भोग से जन्म नहीं लेता। योग–तंत्र परक सम्भोग से लेता है जन्म। वह संसार में तभी जन्म लेता है जब योग्य माता–पिता द्वारा एक विशिष्ट सम्भोग घटित होता है। योग तंत्र परक विशिष्ट सम्भोग का ज्ञान और अनुभव उच्चकोटि के योगी और साधक को ही होता है यह साधारण बात नहीं। इस प्रकार जन्म लेने वाला मनुष्य स्वयं असाधारण तो होता ही है। उसका सम्पूर्ण जीवन भी होता है असाधारण। वह उच्चकोटि का कलाकार, संगीतकार, गायक, वादक, साहित्यकार, विद्वान, लेखक, व्यापारी, अरबपति और विपुल ऐश्वर्यवान, सुन्दर और आकर्षक होता है।

जाग्रत मनुष्य का सम्भोग से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही होता। वह कुंवारी कन्या से लेता है जन्म। कर्ण और ईसा कुँवारी कन्या से उत्पन्न हुए थे। उस समय इससे संबंधित विज्ञान से अपरिचित थे लोग। इसी लिए ईसाईयत कठिनाई में पड़ गयी थी। कुन्ती को भी कर्ण को छिपाना पड़ा। प्रत्यक्ष रूप से कर्ण को अपना पुत्र मानने में संकोच करती

थी कुन्ती। बाद में सारा रहस्य खुला। थोड़ा रूककर उस परम ज्ञानी पुरुष ने आगे कहना शुरू किया– जाग्रत अवस्था में जन्म लेने वाले मनुष्य को अलग से मुक्ति के लिए कोई उपाय नहीं करना पड़ता। वह मुक्त ही जन्म लेता है। इस प्रसंग में तुमको यह भी जान लेना चाहिए कि जाग्रत में शरीर त्यागने वाला मनुष्य अपने आपमें स्वतंत्र होता है। अगला जन्म लेना उसकी इच्छा पर होता है निर्भर। वह यदि चाहे तो ले सकता है जन्म वरना नहीं। निर्णय करना उसके हाथ में है। प्रकृति और संस्कार के वशीभूत नहीं होता वह और न तो होता है जन्म के निमित्त कर्म के आधीन। ऐसा मनुष्य जाग्रत अवस्था में ही गर्भ में प्रवेश करेगा। गर्भ में भी जागा रहेगा और जागते हुए ही जन्म भी लेगा।

मेरा एक प्रश्न है और वह यह कि जाग्रत मनुष्य की मृतात्मा बिना सम्भोग के गर्भ में कैसे करती है प्रवेश क्योंकि बिना सम्भोग के गर्भ का होना कैसे सम्भव है। गर्भ का निर्माण हो ही नहीं सकता।

तुम्हारी सोच अपने स्थान पर उचित है। यहाँ यह भी जान लेना आवश्यक है कि भौतिक जगत में सम्पूर्ण सृष्टि मैथुनी सृष्टि है। जिसे कामज सृष्टि भी कहते हैं और जिसके मूल में प्रबल वासना का वेग होता है। दो के संयोग से तीसरे की उत्पत्ति। इस प्रकार की उत्पत्ति को जन्म कहते हैं। अवतार आयोजित होता है और कई प्रकार का होता है। इस विषय पर हम फिर कभी विचार करेंगे। जहाँ तक जाग्रत मृत्यु का प्रश्न है। वह जन्म और अवतार की परिभाषा से अलग है। योग्य कुल में जन्म, संस्कार सम्पन्न यशस्वी, तपस्वी, ज्ञानी, योगशक्ति से सम्पन्न स्वच्छ चरित्र निर्मल हृदय, सदैव प्रसन्न चित्त, मृदुभाषी धर्म के अनुकूल आचरण करने वाला, स्वाध्यायी और समस्त प्राणी का कल्याण चाहने वाला मनुष्य पूर्ण जाग्रत और पूर्ण चैतन्य अवस्था में मृत्यु को स्वीकार करता है। शरीर त्याग के पश्चात् भी उसकी जागरूकता और चैतन्यता बराबर बनी रहती है और उसी अवस्था में अपने लिए योग्य गर्भ की खोज में संलग्न हो जाता है लेकिन शीघ्र योग्य गर्भ होता कहां है उपलब्ध? कुछ ऐसे भी मनस्वी हैं जो संसार में जाना ही नहीं चाहते। उनका कहना है– कौन जाय प्रपञ्च में फिर फँसने। अभाव, कष्ट मानसिक यातना और नाना

प्रकार की समस्याएं इन सबके अतिरिक्त है क्या संसार में। ऐसे लोग संसार से मुँह मोड़कर चले आते हैं मेरी तरह इस जगत में। किसी कारण न आ सके तो अपने मनोनुकूल किसी अन्य लोक में चले जाते हैं। ऐसे लोग संसार में रहने वाले अपने श्रेणी के मनुष्यों से प्रायः मानसिक संबंध बनाए रखते हैं और समय–समय अगोचर रूप से योग्य निर्देश भी देते रहते हैं।

क्या आप भी.....।

मेरा प्रश्न पूर्ण होने के पूर्व ही बोल पड़े तुमको यह सुनकर निश्चय ही घोर आश्चर्य होगा कि मैंने पिछले एक सौ अस्सी वर्ष से बराबर तुमसे परामानसिक संबंध बनाए रखा है।

ऐ! क्या कहा आपने? एक सौ अस्सी वर्ष से? समझ में नहीं आया..।

मेरी बात सुनकर एकबारगी हँस पड़े महापण्डित और उसी मुद्रा में बोले– हम जैसे लोग एक ही सत्य को स्वीकार करते हैं और वह है जीवन। मृत्यु सत्य नहीं है। वह एक प्राकृतिक घटना है। जो परिस्थिति और वातावरण बदल देती है समूल। अपने सांसारिक जीवन में मैंने इस विषय पर अत्यन्त गहरायी से विचार किया था। जीवन के प्रति दो अवधारणाएं हैं– भौतिकवाद अवधारणा और आध्यात्मिक अवधारणा। इन दोनों के बीच एकमात्र अन्तर होता है–विश्व दृष्टियों का अन्तर। भगवान बुद्ध का अवतरण आध्यात्मिक विश्व दृष्टि के बीच हुआ था। हम जो कुछ भी करते हैं जीवन में उसकी अर्थहीनता उन्होंने जान समझ ली थी अच्छी तरह से। क्योंकि मृत्यु आती है और हर चीज को कर देती है समाप्त।..... तो सार क्या हैं? कुछ करने में या कुछ न करने में। मृत्यु सब कुछ को नष्ट कर देती है। तुम प्रेम करो या न करो। तुम घृणा करो या न करो। तुम संन्यास लो या न लो। गरीब रहो या अमीर। विद्वान हो या मूर्ख। सुन्दर हो या कुरूप। वृद्धावस्था आती है तुम कमजोर और जर–जर हो जाते हो। निर्धनता का जीवन व्यतीत करो या समृद्धि का। मृत्यु दोनों को मिटा देती। वह इसकी चिन्ता नहीं करती कि तुम हो कौन? तुम एक सिद्ध महात्मा और संत हो सकते हो। तुम एक महान पापी भी हो सकते हो। मृत्यु को इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह हर किसी से बराबर का न्याय एवं मुक्त व्यवहार करती है। बुद्ध इस बात

को जान गये थे लेकिन उनके पास आध्यात्मिक विश्व दृष्टि थी। उनका वातावरण भिन्न था। एक बार मैं किसी नदी के तट पर बैठा था। अध्ययन काल था। सदैव चिन्तन मनन और अध्ययन में डूबा रहता था। मुझसे थोड़ी

मन की तीन अवस्थाएँ और शरीर की तीन अवस्थाएँ-वृद्ध व्यक्ति तीनों शरीरों को पुनः उपलब्ध होता है। मरने के पहले वृद्ध का स्थूल शरीर सबसे पहले नष्ट होने लगता है। युवावस्था समाप्त होती है, उसी दिन जिस दिन हमें ज्ञात होता कि वृद्ध स्थूल शरीर अब क्षीण होने लगा है लेकिन स्थूल शरीर भले ही क्षीण हो जाय, वासना क्षीण नहीं होती क्योंकि वासना क्षीण नहीं होती इसलिए कि वासना सूक्ष्म शरीर की वस्तु है। स्वप्न शरीर का अंग है इसीलिए वृद्ध को एक ही कष्ट है और वह कष्ट यही है कि उसके पास वासना तो होती है जो युवक के पास होती है बस, शरीर नहीं होता उसके पास युवक का। उसकी पीड़ा भारी होती है और इसीलिए वृद्ध व्यक्ति युवकों के प्रति इतनी ईर्ष्या से, इतनी निंदा से और इतनी आलोचना से भरे रहते हैं और इतने तर्क सिद्धान्त की बाते युवकों से करते हैं अपने अनुभवों को सुनाते हैं और उनको इतनी शिक्षाएं भी देते हैं। उन सबका गहरा कारण मात्र केवल उनकी ईर्ष्या है उनकी बुद्धिमता नहीं। वासना उनके मन में भी रहती है लेकिन शरीर कमजोर और क्षीण हो गया होता है। वासना पूर्ति में शरीर साथ नहीं देता फिर इसके बाद स्वप्न शरीर क्षीण होना शुरू होता है और वृद्ध व्यक्ति का स्वप्न शरीर जब क्षीण होने लगता है तब उसकी स्मृति प्रभावित होने लगती है। जिसके कारण चीजें याद नहीं आती। समय पर विस्मृत होने लगता है वह। काफी सोचने के बाद कुछ याद आता है उसे। बातचीत में असंगत उत्पन्न होने लगती है। तर्क खो जाता है। अभी कुछ कहता है। घड़ी भर बाद कुछ और कहने लग जाता है संगति नहीं होती। क्योंकि स्वप्न शरीर क्षीण होने लगा है और जब स्वप्न शरीर क्षीण हो जाता है तब फिर सुषुप्ति में मृत्यु घटित होती है। मृत्यु सुषुप्ति में होती है क्षीण लेकिन समाप्त नहीं होती है और इन तीनों शरीरों की वासना लेकर सुषुप्त शरीर यानी कारण शरीर अपनी नयी यात्रा पर निकल पड़ता है। फिर नया जन्म, नयी यात्रा, फिर वही खेल और फिर वही जन्म मरण का चक्कर और जब कोई नया व्यक्ति जन्म लेता है तो सुषुप्ति में जन्म लेता है। फिर स्वप्न में आता है और फिर जाग्रत में आ जाता है और नया जीवन शुरू हो जाता है। तात्पर्य यह कि जीवन का सारा प्रपञ्च स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर का मायिक प्रपञ्च है। इसके अलावा और कुछ नहीं।

दूर पर एक युवा संन्यासी भी बैठा करता था नित्य। परिचय होना स्वाभाविक था। मैंने एक दिन पूछा आपने युवावस्था में संन्यास क्यों लिया। वह बोला– इसलिए कि मैं जीवन की खोज में हूँ जो मृत्यु विहीन है। जीवन,

मृत्यु के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता। एक स्थिति होती है समाप्त लेकिन जीवन समाप्त नहीं होता। मृत्यु तो केवल तुम्हारे शरीर को समाप्त करती है। तुम्हारे अन्तस्तल की सत्ता को नहीं इसलिए तुमको आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए। यदि जीवन की सत्यता को स्वीकार करो तो मेरे संज्ञात में तुम्हारी आयु इस समय एक सौ अस्सी है। इस जन्म में भी तुम पूर्ण जाग्रत व पूर्ण चैतन्य अवस्था में अपने शरीर का त्याग करोगे और फिर तुम्हारा अगला जन्म अन्तिम जन्म होगा। एक सौ अस्सी वर्ष पूर्व तुम क्या थे? यह तो मैं नहीं जानता लेकिन उसके बाद से तुम मेरे दृष्टि पथ पर हो इसलिए कि तुम्हारे भीतर विपुल आध्यात्मिक शक्ति देख ली थी मैंने पहली दृष्टि में ही। तुम अपनी आध्यात्मिक सम्पत्ति से भलीभांति परिचित थे। अपने पिछले कई जन्मों के साधना संस्कार से भी परिचित हो लेकिन तुमको सही मार्ग और सही दिशा उपलब्ध नहीं हो रही थी। इसी कारण मुझे तुमसे परामानसिक सम्पर्क स्थापित करना पड़ा। ताकि तुमको सही मार्ग उपलब्ध हो और सही दिशा भी। तुम्हारे जीवन से काफी प्रभावित था मैं। इसलिए कि तुम्हारी हर मृत्यु और हर जन्म जाग्रत अवस्था में हुई है और यही कारण है कि तुमको अपने पिछले कई जन्मों की आध्यात्मिक उपलब्धियाँ ज्ञात हैं। इतना ही नहीं प्रत्येक जन्म की महत्वपूर्ण घटनाएँ भी तुम्हारी स्मृतिपटल पर सुरक्षित है। कहने की आवश्यकता नहीं, इन्हीं सबके फलस्वरूप तुमको त्रैलोक्य मीमांसा के लिए चयनित किया मैंने। वास्तव में त्रैलोक्य मीमांसा अभौतिक सत्ता की एक विलक्षण उपलब्धि है। सच पूछा जाय तो संसार को अभौतिक सत्ता और पराभौतिक सत्ता के विषय में अत्यन्त अल्प ज्ञान है वर्तमान समय में। जो कुछ ज्ञान है वह सब शास्त्रीय अनुमान ज्ञान है जो एक सीमा तक अप्रमाणित और असंगत है। श्रृंखलाबद्ध नहीं और यही सब एकमात्र कारण है कि मेरी प्रेरणा से मेरे शिष्य ने लिपिबद्ध किया त्रैलोक्य मीमांसा को लेकिन उसके शब्द, उसकी व्याख्या और उसकी भावाभिव्यक्ति इतनी जटिल थी कि साधारण लोग क्या परम बुद्धिजीवि प्रकाण्ड विद्वान और रहस्य विद्या के ज्ञाता भी समझ न पाते और न तो कर पाते हृदयंगम। मुझे विश्वास है कि त्रैलोक्य मीमांसा के संकलीकारण की दिशा में तुम अवश्य सफल होओगे इसमें सन्देह नहीं। इस कार्य के लिए तुम्हारा चयन मैंने बहुत कुछ सोच

समझकर किया है। इस कार्य के संबंध में जब कोई कठिनाई उपस्थित हो, मुझे स्मरण करना। तत्काल तुमको सहयोग प्राप्त होगा मेरे अस्तित्व से। वैसे भी अगोचर रूप से हम दोनों के मध्य बराबर बना ही रहेगा सम्पर्क।

यह सुनकर न जाने क्यों विह्वल हो उठी मेरी आत्मा। आँखों में आँसू छलछला आये अपने आप। अपने समय का ख्याति प्राप्त प्रकाण्ड विद्वान मनीषी और परम शास्त्र मर्मज्ञ अपने एक अति महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन के लिए मुझे जैसे क्षुद्र साधक को उच्च स्थान प्रदान कर रहा था। इस जीवन में इससे अधिक मूल्यवान कौन सी हो सकती थी उपलब्धि मेरे लिए। कृतज्ञ हो उठा मैं एकबारगी। रहा न गया मुझसे। आँसू पोंछते हुए अवरूद्ध कण्ठ से इतना ही बोल सका– इतना ही कह सका, इस संसार में मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। चाहिए तो आप जैसे दिव्य पुरुषों की कृपा, अनुकम्पा और स्नेह और आप ही जैसी दिव्यात्माओं का सान्निध्य और आशीर्वाद। मैंने देखा– उस महान आत्मा के नेत्रों में असीम करुणा, कृपा, अनुकम्पा और स्नेह के मिलेजुले भाव का लहरा रहा था सागर। निश्चय ही द्रवित हो उठी थी उस महापुरुष की आत्मा मेरे प्रति।

वह विलक्षण काल पटल– त्रैलोक्य मीमांसा की पृष्ठभूमि भी कम रहस्यमयी नहीं थी। महापुरुष बतलाने लगे– मेरी भी मृत्यु जाग्रत अवस्था में ही हुई थी। पूर्ण चैतन्य था मैं शरीर त्याग के समय। अब मेरा अस्तित्व सूक्ष्म शरीर में था। मृत्यु हो जाने पर भी जीवन और शरीर त्याग होने पर भी एक विलक्षण और उससे भी उत्तम शरीर की उपलब्धि हुई। संसार अर्थहीन लगने लगा था मुझे। जैसा पार्थिव शरीर था वैसा ही था मेरा सूक्ष्म शरीर भी। पूर्ण साम्य। स्थूल शरीर की जो आवश्यकता होती है उससे पूर्ण वंचित। इन्द्रियों का अस्तित्व नहीं। केवल मन और वह भी पहले से अधिक शक्तिशाली, विचार भाव और इच्छा भी अधिक प्रबल। थोड़ी ही देर बाद भौतिक जगत का अस्तित्व तिरोहित हो गया अपने आप मेरे सामने से। अब मैं सूक्ष्म शरीर द्वारा सूक्ष्म जगत में विचरण कर रहा था। उस अवस्था में एक विशेष आनन्द की अनुभूति हो रही थी मुझे। गुरुत्वाकर्षण के अभाव के कारण मेरे शरीर की गति तीव्र थी। स्थूल शरीर की जो भौतिक आवश्यकता होती है। वे आवश्यकताएं सूक्ष्म शरीर की नहीं होती। न भूख, न प्यास, न थकावट, न निद्रा और न तो नित्य क्रिया। यदि कुछ

रहती भी है तो भौतिक जीवन काल की मुख्य–मुख्य स्मृतियाँ। जो बाद में नष्ट भी हो जाती है।

महापण्डित आगे बोले– मैं सूक्ष्म जगत के अनुभवों को हृदयंगम करता हुआ आगे बढ़ता जा रहा था। लगता था कोई अदृश्य शक्ति मेरे अस्तित्व को नियन्त्रित किए हुए है। वही मुझे संचालित भी कर रही है। एकाएक मैं मनोमय जगत में प्रवेश कर गया। जहां मुझको ज्ञान विज्ञान के आचार्यों की मण्डली मिली। जिसके प्रमुख थे आचार्य पद्मदेव। आचार्य पद्मदेव भौतिक विज्ञान, रस रसायन और भैखज्य विद्या के निष्णात अनुभवी विद्वान थे। मुझसे मिलकर प्रसन्न हुए आचार्य पद्मदेव। महर्षि पतजंलि के समय पार्थिव शरीर में थे। उसके बाद से पुनर्जन्म स्वीकार नहीं किया था उन्होंने। उनके द्वारा भैखज्य विद्या से संबंधित दुर्लभ जड़ी बूटियों का ज्ञान प्राप्त हुआ मुझे। जिनका उल्लेख त्रैलोक्य मीमांसा में मैंने किया है। कुछ दिन मण्डली में रहकर आचार्य पद्मदेव के साथ पृथ्वी के समय के अनुसार पूरे दो सौ वर्ष तक कई लोक–लोकान्तरों का भ्रमण किया। वहाँ के लोगों का मूल्यवान सान्निध्य प्राप्त किया। बहुत–सी ऐसी दुर्लभ और अप्राप्य रहस्य विद्याओं से परिचित हुआ जो महाभारत की युद्धाग्नि में जलकर भस्म हो चुका था। वर्तमान समय में ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में जो उन्नति हो रही है। वह सब नगण्य है उन रहस्य विद्याओं के सामने। योग विद्या, तंत्र विद्या और ज्योतिष विद्या को ही ले लो। उनका भी भौतिक स्वरूप नष्ट हो चुका है। उनके साधक और ज्ञाता हैं जो प्रच्छन्न हैं। आध्यात्मिक साधना का भी स्वरूप पूर्णरूप से विकृत हो चुका है। देव यज्ञों का भी कम ह्रास नहीं हुआ है। देवगण अप्रसन्न हैं। प्रकृति कुपित होती जा रही है। बुद्धिहीन वैज्ञानिक प्रकृति में बराबर विकृति उत्पन्न करते जा रहे हैं। परिणाम अति भयंकर होगा। महाप्रलय भले ही न हो। खण्डप्रलय तो निश्चित रूप से बराबर होता रहेगा। जल और अग्नि ये दो तत्व अति भयंकर हैं। इनके द्वारा ही संसार में विनाश लीला होगी। इसमें सन्देह नहीं और यही सब कारण है कि हम जैसे लोग संसार में आना नहीं चाहते। जन्म मरण तो हम लोगों के हाथ में है।

आपने तो उन समस्त रहस्य विद्याओं का वर्णन अवश्य किया होगा त्रैलोक्य मीमांसा में।

हाँ! मैंने किया है दिव्य पुरुष आगे बोले– इतना ही नहीं, महात्मा पद्मदेव के साथ मैं जहां जिस स्थान पर गया और जिन–जिन लोक–लोकान्तरों का भ्रमण किया और वहां जो–जो दुर्लभ उपलब्धियाँ हुई, उन सबका वर्णन और उल्लेख किया है मैंने त्रैलोक्य मीमांसा में। तुमको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि सब कुछ मेरी स्मृतियों में विधमान है। जब कभी इच्छा होती है अथवा कभी किसी लोक के किसी महात्मा से सत्संग करना होता है तो उनसे संबंधित स्मृतियों के माध्यम से कालपटल पर उस लोक को देख लेता हूँ और महात्मा से सत्संग भी कर लेता हूँ।

यह सुनकर आश्चर्य हुआ मुझे। थोड़ा अविश्वास भी हुआ। सम्भवतः महात्मा समझ गये मेरे मनोभावों को हँस कर बोले–क्या देखना चाहते हो? स्वयं तुम जो अपनी स्मृति बल पर देखना चाहते हो, उसे ही पहले देख लो अपने सामने कालपटल पर। उस समय मेरी स्मृति में था मेरा नगवां वाला कमरा और अपना शरीर। जैसे ही सिर उठाकर कालपटल की ओर देखा, आश्चर्यचकित रह जाना पड़ा मुझे। उस रहस्यमय कालपटल पर सबसे पहले मुझे पूरी पृथ्वी द्रुत गति से अपनी स्थान पर घूमती हुई दिखी। बड़ी ही मनमोहक छटा थी। कभी पृथ्वी का एक भाग प्रकाशित हो उठा तो कभी दूसरा भाग डूब जाता था घोर अन्धकार में। पृथ्वी का वह रहस्यमय भाग भी देखा जो चतुर्थ आयाम के अन्तर्गत है। उस भाग में मुझे कई आश्रम और मठ भी दिखलायी दिए। घोर आश्चर्य हुआ मुझे उन आश्रमों और मठों को देखकर। क्या ज्ञानगंज मठ भी उन्हीं मठों में से कोई एक था? जिसका उल्लेख डॉ. गोपीनाथजी कविराजजी ने किया है अपनी पुस्तक में। एकाएक मेरे सामने काशी की छवि उभर आयी। पूरी काशी को एक ही दृष्टि में देखा मैंने और फिर अपना नगवां वाला कमरा। कमरे में मेरा पार्थिव शरीर तटस्थ भाव से बैठा हुआ था जड़वत्। अपने शरीर को देखकर उसके प्रति तीव्र आकर्षण हुआ और दूसरे ही क्षण अपने शरीर में चैतन्य हो उठा मेरा व्यक्तित्व। आँख खोल कर चारो ओर देखा। दरवाजा तो बन्द ही था। खिड़की खुली थी। गंगा पार पूरब की क्षितिज पर सिन्दूरी रंग बिखर चुका था। पूरा नौ घंटा और उस नौ घंटे में क्या से क्या गुजर गया मेरे आन्तरिक जीवन में और क्या–क्या हो गया मेरे अपने आपमें परिवर्तन। सामने टेबल पर खुली रखी थी

त्रैलोक्य मीमांसा। हवा के झोंके से कभी–कदा उसके जीर्ण शीर्ण पन्ने फडफड़ा उठते थे। उसी की ओर अपलक निहारने लगा था मैं। अब मेरे सामने गूढ़ गोपनीय और रहस्यमयी नहीं रह गयी त्रैलोक्य मीमांसा। अनावृत्त हो चुका था सब कुछ मेरे सामने और उसी का आश्रय लेकर लिखना शुरू किया मैंने **'परलोक के खुलते रहस्य'**। पुस्तक लेखन काल में प्रच्छन्न रूप से पं0 कवीन्द्राचार्य सरस्वती का बराबर अहैतुकी मार्गदर्शन और सहयोग प्राप्त होता रहा है मुझे इसमें सन्देह नहीं। वैसे भी आवश्यकता पड़ने पर जब कभी मैं नेत्र बन्द कर उस महान दिव्यात्मा का आवाहन करता हूँ तो उनकी उपस्थिति की होती है प्रत्यक्ष अनुभूति इसमें सन्देह नहीं। उस समय सारा वातावरण चन्दन की सुगन्ध से भर उठता है एकबारगी।

एक बात और वह यह कि उस महापण्डित के आदेशानुसार मैंने त्रैलोक्य मीमांसा के उन्हीं महत्वपूर्ण विषयों और आवश्यक प्रसंगों अपने भावों और शब्दों में परिवर्तित किया है। जिनको उचित और आवश्यक समझा गया है।

आवाहन के अनेक प्रसंग और अनेक विषय निश्चय ही पाठकों को कौतूहलपूर्ण, आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय प्रतीत हुए होंगे। स्वाभाविक भी है क्योंकि मनुष्य का शरीर मन, प्राण और समस्त इन्द्रियाँ सीमा में आबद्ध है। इस सीमा के आगे भी बहुत कुछ है और वह बहुत कुछ रहस्यमय है। सीमा के पार जाने पर ही, 'उस बहुत कुछ' को जाना और समझा जा सकता है। सीमा के पार जाने के दो मार्ग हैं–योग और तंत्र। जाइये! कौन मना करता है। दोनों मार्ग शुरू से खुला हुआ है और सदैव खुला ही रहेगा। बस, उस पर चलने के लिए आध्यात्मिक संस्कार चाहिए। यदि संस्कार है तो निर्भयता चाहिए, साहस चाहिए और चाहिए दृढ़ संकल्प। फिर देखिए, सफलता मिलती है या नहीं। सच पूछिए तो मेरी सफलता का एकमात्र यही राज है।

❐

मेरे अद्भुत विचित्र, कौतूहलपूर्ण और आश्चर्यजनक जीवन का आध्यात्मिक संस्करण है 'आवाहन'

प्रकीर्ण

लेख अथवा निबन्ध के रूप में पं. अरुण कुमार शर्मा के ज्योतिष, तंत्र और योग से संबंधित ऐसे कुछ विषय हैं जिनको उनके पुस्तक में समाविष्ट नहीं किया जा सकता। पाठकों के ज्ञानार्थ तथा साथ ही उनके कल्याणार्थ उन लघु विषयों को पुस्तक के अन्त में प्रकीर्ण रूप में प्रस्तुत करने का आयोजन मैंने किया है। आशा है पाठकगण मेरे आयोजन को सहर्ष स्वीकार करेंगे। —व्यवस्थापक

अन्तःप्रज्ञा

परायुग में मनुष्य के मस्तिष्क में काफी पीढ़ियों पूर्व एक ऐसी ग्रन्थी भी सक्रिय थी। जिसके माध्यम से आने वाले खतरों का उसे ज्ञान हो जाता था तथा भविष्य में होने वाली घटनाओं का आभास कर लेता था लेकिन वर्तमान में मानव ने भौतिक कार्यों में इतना अधिक अपने आपको व्यस्त कर लिया है कि उसने उस अमूल्य ग्रन्थी का चिन्तन ही करना छोड़ दिया है या कहें उसका उपयोग ही करना भूल गया है। जिसकी वजह से ग्रन्थी धीरे–धीरे निष्क्रिय हो गयी। आज भी वह ग्रन्थी हमारे मस्तिष्क में सूप्ता अवस्था में पड़ी हुई है। वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि अन्तःप्रज्ञा (छठीय इन्द्रिय) का अस्तित्व है। देखा जाय तो आज भी पशु–पक्षियों में वह ग्रन्थी पूर्णरूप से सक्रिय है। जिसकी वजह से पशु–पक्षियों को समय से पहले ही पूर्वाभास हो जाता है। वे आकस्मिक खतरों से अपने को पूर्ण सुरक्षित कर लेते हैं। जिस तरह हम उस अनमोल और अद्भुत ग्रन्थी को भूल गये हैं या उससे कार्य लेना ही बन्द कर दिया है उसी तरह आज जो शक्ति हमें जीवन दे रही है और हमारे शरीर के सभी अंगों को सक्रिय किये हुए है। उन पर भी हम ध्यान नहीं दे पा रहे हैं। जिसके फलस्वरूप आज विश्व में शारीरिक व मानसिक रोगियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

मनोवैज्ञानिकों और मनोचिकित्सकों की राय है कि घटनाओं का पूर्वाभ्यास करने की चेतना शक्ति (अन्तःप्रज्ञा) हम सभी में होती है, कुछ

व्यक्तियों में यह शक्ति सुप्त रहती है और कुछ में यह काफी सक्रिय रहती है। परामनोवैज्ञानिकों व जीव वैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य की मूल प्रवृत्तियाँ शरीर, बुद्धि व तर्कक्षमता, मस्तिष्क से संबंधित होती है। इसके विपरीत अन्तःप्रज्ञा (छटी इन्द्रिया) हमारी चेतना के उच्चतम् स्तर से संबंधित है। अन्तःप्रज्ञा का संबंध हमारे अचेतन मस्तिष्क (अनकांशस माइण्ड) से होता है। सूचना मिलने के बगैर किसी घटना का पूर्वाभास कर लेता है। अन्तःप्रज्ञा हमें यह संदेश देती है कि हम उसकी आवाज को सुनने की कोशिश कर समय रहते सजग हो जायें। इस संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि अन्तःप्रज्ञा हमारे मन को यह संदेश देती है कि हम उस सन्देश पर विश्वास करें और उसके अनुसार कोई कदम उठाएँ।

यद्यपि अन्तःप्रज्ञा की यह शक्ति पुरुषों और नारियों में ही नहीं बल्कि अनेक जन्तुओं में भी पायी जाती है। फिर भी पुरुषों के मुकाबले नारियों पर यह शक्ति कहीं ज्यादा होती है। ऐसा क्यों? इस सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि पुरुषों की तुलना में विभिन्न अनुभूतियों का अहसास करने के मामले में नारी कहीं ज्यादा संवेदनशील होती है। यही नहीं नारियों का अचेतन मस्तिष्क पुरुषों की तुलना में छोटे से छोटे परिवर्तनों को महसूस कर लेता है।

जीव वैज्ञानिक भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि नारी मनुष्यों के मुकाबले कहीं ज्यादा संवेदनशील व मिलनसार होती है। इसका कारण उनके 'जीन्स' में निहित है। चिकित्सकों के अनुसार सभी नारियों में दो एक्स क्रोमोसोम्स होते हैं, एक पिता से और एक मां से मिला होता है। इसके विपरीत पुरुष को एक एक्स क्रोमोसोम्स अपनी मां से और एक वाई क्रोमोसोम्स पिता से मिला होता है। जीव वैज्ञानिकों के अनुसार दो एक्स क्रोमोसोम्स होने के कारण नारी कहीं ज्यादा संवेदनशील होती है। इस कारण वे दूसरों की अनुभूतियों को जल्द ही महसूस कर लेती है।

संदेश कई तरह के- अन्तःप्रज्ञा कई तरह से संदेश देता है यह बात आप पर निर्भर करता है कि आप उस संदेश को किस तरह से समझते और ग्रहण करते हैं। कभी–कभी कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं, जो आपके अवचेतन मन में दर्ज हो जाती हैं, परन्तु जाग्रत या चेतन में वह बात नहीं रहती। अन्तःप्रज्ञा को जागृत करने के पहले हमें कुछ महत्वपूर्ण शक्तियों के बारे में जानना आवश्यक है।

अन्तःप्रज्ञा को विकसित करने के पहले हमें अपने मन को समझना आवश्यक है। विज्ञान की प्रगति के कारण मानव कम से कम श्रम करने लगा है, जिसकी वजह से उसके मस्तिष्क में ज्यादा दबाव बढ़ने लगा है, मन की सारी वृत्तियों से ही विश्व के सारे क्रियाकलाप संचालित हैं। घृणा, क्रोध, द्वेष, छल, कपट आदि मन की ही वृत्तियाँ हैं और इन वृत्तियों के अभ्युदय से सामने वाले पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। मानव के पारस्परिक संबंधों में भी इन वृत्तियों का हाथ है, अतः यदि हम इन वृत्तियों के मूल केन्द्र 'मन' को ही नियंत्रित कर लें तो हम सारी समस्याओं से छुटकारा पा सकते हैं। यह केवल मात्र योग विज्ञान से ही संभव है।

योग तन्त्र की जितनी भी गुप्त विद्यायें हैं वह अति प्राचीन हैं। जिसकी गहराई को जानना अति दुर्लभ है प्राग्काल से ही भारतीय जनमानस अध्यात्म प्रधान रहा और अपने जीवन में दर्शन और अध्यात्म को काफी दिया और समझा उसका महत्व। जिस तरह आज के विज्ञान युग में वैज्ञानिक व अन्य अध्ययनवेत्ताओं द्वारा इस विद्या पर प्रकाश डाला जा रहा है। यह एक योग और तन्त्र विद्या में क्रान्ति है लेकिन मध्यकाल में कुछ अन्य विद्वानों को छोड़कर इस पर काफी समय तक पर्दा पड़ा रहा जिसकी वजह से जनसाधारण में इसे भूत, प्रेत, आत्मा सम्बन्धित तथा जादू–टोने या कहें काली विद्या के नाम से जाना जाता था जो कुछ विशेष लोगों के पास यह विद्या सीमित रह गई थी। हमारा देश शुरू से ही पश्चिमी देशों के लिए रहस्य बना रहा और आज भी है लेकिन वहां के मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक जब यहाँ के योग विद्या के चमत्कार सुनते थे या उन्हें देखने का अवसर मिला तो वे आश्चर्यचकित रह गये। जब उन्होंने देखा– भारतीय योगी साधक असम्भव कार्य को क्षण भर में चमत्कारिक ढंग से सम्भव कर देते हैं जैसे किसी असाध्य रोगी के बीमारी को अपने हाथों के स्पर्श से ठीक कर देते थे तथा भूत, भविष्य या वर्तमान को चलचित्र की तरह देख लेते थे और अक्षरसः वर्णन कर देते थे साथ ही उसका निदान भी बतला देते थे यह सब देख कर वैज्ञानिकों को यह मानने को बाध्य होना पड़ा कि भौतिक विज्ञान के अलावा और भी कोई ऐसी शक्ति है, जिसको हम अपने नेत्रों से न देख पाते हों लेकिन उसका प्रभाव आश्चर्यजनक होता है।

***

ईश्वर ने हमारे शरीर की रचना इस प्रकार से की है कि आज आधुनिक विज्ञान पूरे शरीर की रचना को नहीं समझ सका। वे आजतक यह नहीं समझ पाये कि शरीर के अन्दर ऐसी कौन–सी शक्ति है या कौन सी ऐसी ऊर्जा है जो पूरे शरीर को संचालन कर रही है? उसके निकलते ही शरीर निष्क्रिय हो जाता है उस ऊर्जा को भारतीय अध्यात्म आत्मा कहता है। आत्मा की ऊर्जा को हम 'मन' कहते हैं। अगर हमें शरीर तथा आन्तरिक शक्ति तथा आत्म ऊर्जा को समझना होगा तो पहले मन को समझना होगा।

मनः शक्ति– पूरे शरीर में 'मन' नामक एक ऐसा तत्व है जिसकी गति की कोई सीमा नहीं है, जो एक क्षण में हजारों लाखों मील की यात्रा कर सकता है, जो भूतकाल में उतने ही वेग से जा सकता है जितना भविष्य की गहरायी में। वह अपने आप ही में शक्ति सम्पन्न है क्योंकि पूरे शरीर का संचरण यह 'मन' नामक तत्व ही करता है इसी की वजह से मानव हँसता है, रोता है, वियोग का अनुभव करता है और प्रसन्नता व्यक्त करता है, इसी के माध्यम से वह उन कल्पनाओं को भी जन्म देता है। जिसका अस्तित्व वर्तमान में नहीं होता।

जब साधकों और महर्षियों ने मन नामक तत्व को जानने का प्रयास किया तो उन्हें यह जानकर और अधिक आश्चर्य हुआ कि मानव के शरीर में एक नहीं दो मन हैं, इनमें से एक बाह्यमन तथा दूसरा आन्तरमन। मन हमारे भौतिक दृश्य को क्षण–प्रतिक्षण देखता और अंकित करता है परन्तु जब यह मन निष्क्रिय हो जाता है अर्थात् जब मानव सो जाता है तो इसके लिए कोई विशेष काम नहीं रह पाता क्योंकि उस समय मानव को बाहरी दृश्य देखने को नहीं मिलते क्योंकि नींद में उसकी आँखे बन्द रहती हैं। ऐसे समय में बाहरी मन लगभग निष्क्रिय हो जाता है, तब उसका आन्तरमन विशेष रूप से चैतन्य और सक्रिय हो जाता है और वह उन दृश्यों को देखने का प्रयत्न करता है, जो उसने पहले कभी नहीं देखें हों या वह उन दृश्यों को भी देख लेता है अथवा उन घटनाओं को भी जो कि कभी घटित नहीं हुई, मानव इसी को 'स्वप्न' कहता है। स्वप्न में मानव कई बार परिचित स्थलों तथा दृश्यों को देखता है पर कई बार वह ऐसे दृश्य भी देखता है जो कि इससे पूर्व उसने नहीं देखे हों और जब उसकी आँख

खुलती है तो उसे यह समझ में नहीं आता कि ये दृश्य कहाँ के थे और क्यों दिखालायी दिए। इसी प्रकार आन्तरमन के द्वारा मानव भावी घटनाओं को भी देख लेता है, क्योंकि आन्तरमन की गति अत्यन्त वेगमय होती है, उसके लिए भूतकाल में देखना या भविष्य काल में झाँकना नहीं होता, फलस्वरूप वे घटनाएँ भी मानव इस आन्तरमन के द्वारा देख लेता है जो घटनाएँ अभी घटित नहीं हुई है और जब कुछ दिनों बाद वही घटना उसके जीवन में घटित हो जाती है तो वह आश्चर्यकित रह जाता है।

इसका तात्पर्य यह है कि आन्तरिक मन भूत, भविष्य की घटनाओं को देखने में सक्षम है लेकिन उस पर हमारा पूरा नियंत्रण नहीं है परन्तु यदि हम अपने बाह्य और आन्तरिक मन पर नियंत्रण करना सीख जायें तो भविष्य में होने वाली घटनाओं पर नियंत्रण पाया जाता सकता है। सबसे पहले हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि हमारे अन्दर हर पल सैकड़ों इच्छाओं का जन्म होता रहता है वे कुछ इच्छाएँ तो पूरी होती हैं कुछ नहीं। इन इच्छाओं के भीड़ को कैसे नियंत्रण किया जाय यह जानना आवश्यक है जैसे हमारे मन में एक के बाद एक इच्छाएँ पैदा होती रहती है तब मन उन्हें पूरा करने के लिए सक्रिय हो जाता है और उसके इस प्रयास से वह कई भागों में अपनी शक्ति का अपव्यय करता है और उसका वेग कम हो जाता है या उसकी शक्ति बँट जाती है जिसकी वजह से उस पर इतना नियंत्रण नहीं रह पाता जितना की होना चाहिए।

आन्तरमन कि शक्ति को विकसित करने पर ही मानव वे सफलताएँ प्राप्त कर सकता है जो कि वह चाहता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि आन्तरमन को ज्यादा से ज्यादा और प्रबल बनाया जाय, जिससे वह ज्यादा वेग से काम कर सके। साथ ही साथ ऐसा होने पर ही मानव का उस पर नियंत्रण हो सकता है और उसके द्वारा मन चाहा कार्य कर सकता है।

इसके लिए भारतीय योगियों में सर्वप्रथम विचार शून्य का प्रयोग करना बतलाया। जब आप विचार शून्य का अभ्यास करेंगे तभी उस पर नियंत्रण कर सकते हैं।

विचार शून्य मन कैसे बनेगा! सबसे पहले हम यह प्रयास करें। हमारे मन में जितनी भी इच्छाएँ या विचार जन्म लेते हैं उन पर नियंत्रण किया जाये। उन्हें रोक तो नहीं सकते पर नियंत्रण का अभ्यास तो कर सकते हैं।

अगर नियंत्रण सध जाये तो हम एक अद्भुत शक्ति प्राप्त कर सकते हैं–जैसे आप किसी महात्मा के पास जाते हैं वह आपके अतीत और भविष्य की घटनाओं को बतला देता है तब आप आश्चर्यचकित हो जाते हैं और आपका सिर श्रद्धा से झुक जाता है। यह सब आन्तरमन की क्रिया है। लेकिन विचार शून्य या निर्विकार मन बनाना इतना आसान नहीं है, जितना कि हम सोच रहे हैं। इसके लिए कुछ विशेष अभ्यास और विधियाँ हैं जिसके माध्यम से हम अपने आन्तरमन अथवा मन को सुदृढ़ और निर्विकार मन बना सकते हैं।

इसके लिए मनुष्य को पूर्णरूप से संयम और स्वस्थ होना आवश्यक है तथा जीवन में कम से कम इच्छाएँ हों। जितना भी ज्यादा हम भौतिक जीवन में जाने का प्रयास करेंगे उतनी ही ज्यादा इच्छाएं जन्म लेगीं और तब असफलता का मुख देखना पड़ेगा। आन्तरिक शक्ति को जागृत करने के लिए भारतीय योग ने अष्टांग योग का रास्ता बतलाया।

अष्टांग योग- पुराणों के अनुसार योग विज्ञान के प्रवर्तक भगवान शंकर हैं। योग विद्या का प्रचलन विभिन्न ऋषि–मुनियों द्वारा हुआ। वर्तमान में योग के विषय में विभिन्न ग्रंथ उपलब्ध हैं। उनमें मुख्य हैं हठयोग प्रदिपिका, योगदर्शन, योगसार, कुण्डक योग, गोरख संहिता आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

वर्तमान में पतञ्जलि योग दर्शन काफी प्रचलित है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार योग के आठ अंग हैं। (1) यम (2) नियम (3) आसन (4) प्राणायाम (5) प्रत्याहार (6) धारणा (7) ध्यान (8) समाधि।

ऊपर जो आठ अंग बताएँ हैं उनमें से प्रथम पांच अंग बाह्य तथा अन्तिम तीन अंग आन्तरिक हैं।

1. यम– अंहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के व्रत पालन को ही 'यम' कहा जाता है।

2. नियम– सन्तोष, तप, स्वास्थ्य और ईश्वर के प्रति चिन्तन को नियम कहते हैं।

3. आसन–सुविधापूर्वक एकाग्रचित्त और स्थिर होकर बैठने को आसन कहा गया है।

4. प्राणायाम– श्वास और प्रश्वास की गति को नियंत्रण कर रोकने व निकालने की क्रिया को प्राणायाम कहा जाता है।

5. प्रत्याहार– इन्द्रियों को अपने भौतिक विषयों से हटाकर चित्त में रम जाने की क्रिया को प्रत्याहार कहते हैं।

जब ये पाँच कर्तव्य सिद्ध हो जाते हैं या इनमें जब कोई साधक पूर्णता प्राप्त कर लेता है तभी उसको आगे की क्रियाओं में प्रवेश की अनुमति दी जाती है। प्रत्येक साधक को चाहिए कि वह बाह्य अभ्यासों को सिद्ध करने के बाद ही आगे के तीन अभ्यासों में प्रवेश करे तभी उसे आगे के जीवन में पूर्णता प्राप्त हो सकती है।

6. धारणा– चित्त को किसी एक विचार में साध लेने की क्रिया को धारणा कहते हैं।

7. ध्यान– जिस वस्तु में चित्त को साधा जाता है उसमें इस प्रकार से लगा दें कि बाह्य प्रभाव होने पर भी वह वहां से अन्यत्र न हट सके, उसे ध्यान कहते हैं।

8. समाधि– ध्येय वस्तु के ध्यान में जब साधक पूरी तरह सें डूब जाता है और उसे अपने अस्तित्व का भी ज्ञान नहीं रहता है तो उसे समाधि कहा गया है।

वैसे मानव के अन्दर नैसर्गिक पांच मुख्य शक्ति होती है। जो प्राणशक्ति, मनःशक्ति, क्रियाशक्ति, आत्मशक्ति, संकल्पशक्ति है। इन्हीं के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेना ही योग सिद्धि है। सबसे पहले हमें मन को निर्विकार बनाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि हम पूर्णरूप से स्वस्थ और सयंम रहें तथा जीवन में कम से कम इच्छा का उदय हो, साथ ही हमारा जीवन सादगी और आण्डम्बरहीन हो तथा खान–पान, रहन–सहन सादगी पूर्ण हो–सबसे पहले शान्त स्थान पर बैठकर अपने आपको बाहरी वातावरण से अलग कर आन्तरमन में प्रवेश करने का अभ्यास करें, धीरे–धीरे अभ्यास सधने लग जायेगा। स्थान एकान्त हो, हल्का उजाला हो, सुगन्धित अगरबत्ती जला लें, एक मुद्रा में बैठने का अभ्यास करें, बार–बार आसन न बदलें किसी भी प्रकार की आवाज अथवा कोलाहल न हो, एक निश्चित समय पर और निश्चित स्थान पर अभ्यास करें। आसन बार–बार बदलने से मन एकाग्र नहीं होगा स्थान सिद्धि आवश्यक है समय धीरे–धीरे बढ़ाइये व आन्तरमन की शक्ति को बढ़ाने का अभ्यास करें।

कुण्डलिनी शक्ति का अध्यात्मिक रूप– अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में अनन्त देवी आसुरी शक्तियाँ चैतन्य और क्रियाशील हैं। इन्हीं का दूसरा

नाम ब्रह्माण्ड ऊर्जाएँ भी है। वैज्ञानिकों की दृष्टि में इन ब्रह्माण्ड ऊर्जाओं तथा सूर्य की रश्मि तरंगों के संघर्ष से एक प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तरंगों का जन्म होता है–इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान जिनके द्वारा अणु, परमाणु की सृष्टि होती है।

इन तीनों प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तरंगों के आधार पर ब्रह्माण्ड ऊर्जाओं को भी तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है जिसे मनःशक्ति, प्राणशक्ति और वाक्शक्ति कहा जाता है वह वास्तव में ब्रह्माण्ड ऊर्जाओं के भी तीन भाग हैं अतः उन तीनों भागों की सम्मिलित शक्ति का नाम ही जीवनी शक्ति या चेतना शक्ति है। सृष्टि रूप में चेतना शक्ति जहाँ एक ओर समस्त ब्रह्माण्ड में चैतन्य है वहीं दूसरी ओर व्यक्ति रूप में मानव देह में भी चैतन्य व क्रियाशील है। किन्तु चेतना शक्ति जहाँ ब्रह्माण्ड में असीम है वहीं देह में सीमित है, मर्यादित है। तंत्र शास्त्र में उसके इसी असीम और सीमित रूप को महामाया, माया, महाविद्या तथा परमा, परा की संज्ञा दी गयी है। वास्तव में तंत्र साधना इन्हीं दोनों रूपों की क्रमिक साधना है। विश्व ब्रह्माण्ड में समष्टि रूप चेतना शक्ति के सात केन्द्र हैं जिनको हम सात लोक के नाम से सम्बोधित करते हैं। व्यष्टि रूप चेतना शक्ति के भी देह में सात केन्द्र हैं जिनका सूक्ष्म अगोचर संबंध उन सातों लोकों से बतलाया गया है। योग शास्त्र शरीरस्य इन सातों केन्द्रों को चक्र के नाम से सम्बोधित करता है। इसी तथ्य के आधार पर पिण्ड (मानव देह) और ब्रह्माण्ड की एकता स्थापित की गई है। इस प्रसंग में **"ब्रह्माण्डे प्यस्ति यत्किचित् तत् पिण्डे प्यस्ति सर्वथ"** बहुत बड़ा प्रमाणित सिद्धान्त है। इसी दृष्टि से चौरासी लाख योनियों में मानव शरीर को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। मानव देह दुर्लभ है। शुभ संस्कारों और पुण्यों का एक विशेष सीमा में एकत्रित होने पर चौरासी अंगुल का यह मानव देह प्राप्त होता है। इसे महिमा मिलने का दो प्रमुख कारण है। प्रथम यह कि पूर्ण विकसित होकर व्यष्टि रूप चेतना शक्ति, मन, प्राण, वाक्, इस विद्या रूप में विभक्त होकर शरीर में क्रियाशील है। वही उसका प्रसीयित, परमा और महाविद्या रूप कुण्डलिनी शक्ति के नाम से भी शरीर के प्रथम मूलाधार केन्द्र अथवा चक्र में प्रसुप्त अवस्था में विद्यमान है। यह परमाशक्ति अपनी सर्वश्रेष्ठ लीलायें मनुष्य शरीर का आश्रय

लेकर ही करती है। यद्यपि विष्णु के अनेक अवतार हुए तथापि जो अवतार सर्वाधिक माननीय हैं– राम, कृष्ण और बुद्ध उन्हीं को आश्रय करके इस काल की सारी धर्म साधना और काव्य साधना विकसित हुई है।

दूसरा यह कि परमब्रह्म परमेश्वर का यह आवास स्थल है। कुण्डलिनी रूप में यदि महाशक्ति परमेश्वरी मूलाधार केन्द्र में विराजमान हैं तो परमब्रह्म परमेश्वर शिव रूप में अन्तिम सातवें केन्द्र सहस्रार में समाधिस्थ हैं। शिव और शक्ति की नित्य लीला शरीर में हो रही है और यही लीला मानव जीवन है। यह लीला तभी समाप्त होगी जबकि शिव शक्ति एकाकार होकर सामरस्य भाव प्राप्त करेंगे। सामरस्य भाव प्राप्त होते ही जीवन लीला भी हमेशा के लिए समाप्त हो जायेगी। भव चक्र से मुक्ति हो जायेगी। जीवन–मरण के चक्र से मुक्ति मिल जायेगी। इसी को कहते हैं निर्वाण अथवा मोक्ष। शरीरस्थ शक्ति के सातों केन्द्र अथवा चक्र परमशून्य स्थान है अतः वह शक्तिपीठ है। जहाँ शून्य है वही शक्ति अपने पीठ का निर्माण करती है। शून्य में असीम शक्ति है। तांत्रिक भाषा में परमशून्य स्थान शक्तिपीठ को 'महायंत्र' कहते हैं। इस प्रकार मानव शरीर में सात महायंत्र हैं। मूलाधार शक्तिपीठ केन्द्र परमा शक्ति, आदि शक्ति, कुण्डलिनी का केन्द्र है। इस केन्द्र के मंत्र यंत्र का तांत्रिक नाम 'श्री विद्या' है। इसी को महाविद्या भी कहते हैं।

सातों केन्द्रों में तीन प्रमुख केन्द्र हैं– मूलाधार केन्द्र, अनाहद चक्र और आज्ञाचक्र। प्रथम केन्द्र वाक् शक्ति का पीठ है। दूसरा केन्द्र प्राण शक्ति का पीठ है। तीसरा केन्द्र मनःशक्ति का पीठ है। दूसरे और तीसरे महायंत्र का नाम हादि विद्या और कादि विद्या है।

वाक् का दूसरा नाम आकाश तत्व भी है। एवमेव मूलाधार वाक् का केन्द्र है। 'वाक्' के चार रूप हैं– परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी। इस दृष्टि से वाक्शक्ति भी चार भागों या रूपों में विभक्त की जा सकती है। प्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि शब्द दो प्रकार के हैं एक तो वह जो बिना किसी आघात के उत्पन्न होते हैं। प्रथम को अनाहद शब्द कहते हैं किन्तु इन दोनों प्रकार के शब्दों की उत्पत्ति महा बिन्दु के विस्फोट से होती है। प्रथम प्रकार का शब्द स्वयंवेद्य ज्ञान है जिसका अनुभव योगीगण सुषुम्ना में करते हैं। इसी स्वयंवेद्य ज्ञान का पर्याप्त स्वयंभू है। यह 'स्वयम्भू' परम शिव के रूप में मूलाधार में विद्यमान है।

महाबिन्दु के विस्फोट के समय जो आघात से शब्द उत्पन्न होता है उसका प्रथम सूक्ष्मतम् रूप 'परा' है। इसी परावाक् का नाम कुण्डलिनी है। परावाक् तो है महाचेतना शक्ति, महाविद्या शक्ति, परमा शक्ति किन्तु कुण्डलिनी उसका लाक्षणिक नाम है। मूलाधार चक्र त्रिकोणात्मक है इसलिये उसे महायोनि पीठ की संज्ञा दी गई है। इस त्रिकोणात्मक योनिपीठ के मध्य में अंगुष्ठ प्रमाण ऊँचा श्वेत वर्ण मांस पिण्ड है। परम शिव अर्थात् स्वयंवेद्य ज्ञान ही परम तत्व है। परम तत्व का ही दूसरा नाम परम शिव है। मेरुदण्ड के भीतर के ऊपर की ओर वाली शून्य नाड़ी उस मांस पिण्ड के चारों ओर साढ़े तीन बार वेष्टित कर ऊपर की ओर गई है। उसी साढ़े तीन वलय में परावाक् शक्ति विद्यमान है। सर्पिणी भांति उस कुण्डली अथवा वलय के आधार पर परावाक् शक्ति को कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। परम ज्ञान रूप परम शिव अथवा 'परम तत्व' स्वयंभू लिंग है और लिंग को सर्पिणी की भांति वेष्टित करने वाली परमा शक्ति अथवा परावाक् शक्ति कुण्डलिनी है।

सक्रिय चक्र हमारे आन्तरिक स्वरूप और व्यक्तित्व के परिचायक– हमारे शरीर में जो सबसे अधिक रहस्यमय और महत्वपूर्ण है– वे सात चक्र हैं। हम अपने स्थूल शरीर में उन्हें नाड़ी–गुच्छों के रूप में देख सकते हैं। तन्तु–समूहों के रूप में उनका परिचय प्राप्त कर सकते हैं। मगर उनकी आन्तरिक प्रक्रियाओं और आन्तरिक सूक्ष्म प्रभावों को नहीं देख सकते हैं। हाँ! उनका अनुभव अवश्य कर सकते हैं।

पहला चक्र मेरुदण्ड यानि रीढ़ की हड्डी के निचले हिस्से के अन्तिम सिरे पर स्थित है। यह काफी महत्वपूर्ण और अतिशय रहस्यमय है। अन्तिम यानि सातवाँ चक्र हमारे सिर के ऊपर है। उन दोनों के बीच में पाँच चक्र और हैं। दूसरा चक्र जननेन्द्रिय के पास है। वह काम को, वासना को प्रभावित और आन्दोलित करता है। मानव–सभ्यता और संस्कृति के प्राक्काल में जैसे ही मनुष्य को जननेन्द्रिय का महत्व मालूम हुआ, उसने उसे ढँकने, छिपाने का प्रयास किया।

अगर हम अपने आन्तरिक व्यक्तित्व के विषय में छानबीन करना चाहते हैं तो हमें सर्वप्रथम यह छानबीन करनी चाहिए कि हमारे आन्तरिक व्यक्तित्व का केन्द्र क्या है? हम कहाँ जीते हैं और हमारे व्यक्तित्व का

जो केन्द्र है– वह इस बात की सूचना देता है कि हमारे शरीर में कौन सा चक्र सर्वाधिक सक्रिय और महत्वपूर्ण है। यह ध्यान रहे कि जो चक्र महत्वपूर्ण होगा, हमें उसी के माध्यम से अपने सम्पूर्ण जीवन को देखना और पहचानना होगा।

मानवेतर प्राणियों यानि समग्र जीव–जन्तुओं व पशुओं में भी वही एक केन्द्र सक्रिय है और कोई केन्द्र सक्रिय नहीं है। मनुष्यों में भी सर्वाधिक कामकेन्द्र सक्रिय मिलेगा। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं है। पशु और मनुष्य दोनों में केवल कामकेन्द्र ही सक्रिय है। उसे निष्क्रिय करने का एकमात्र उपाय है– ब्रह्मचर्य। पशु और मनुष्य में यहीं से भेद शुरू होता है। पशु ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता। इसलिए वह पशुता से ऊपर भी नहीं उठ सकता। मगर मनुष्य चाहे तो ब्रह्मचर्य का पालन कर पशु की श्रेणी से ऊपर अवश्य उठ सकता है। ब्रह्मचर्य का केवल इतना ही उद्देश्य है कि कामकेन्द्र निष्क्रिय हो जाय और कामकेन्द्र के ब्रह्मचर्य के द्वारा निष्क्रिय होते ही अन्य चक्रों के सक्रिय होने की सम्भावना तत्काल उत्पन्न हो जाती है।

कामकेन्द्र के बाद जो दूसरा केन्द्र है, वह है– नाभि का केन्द्र। वह भय का केन्द्र है। जब हम किसी प्रकार भयभीत होते हैं तो हमारी नाभि डावाँडोल हो जाती है। भय के कारण नाभि इतनी सक्रिय हो जाती है कि पेट का खाली होना आवश्यक हो जाता है।

नाभिकेन्द्र के बाद जो केन्द्र है– वह है हृदय केन्द्र। यह चौथा केन्द्र राग, मोह, आकर्षण का केन्द्र है। इस केन्द्र से प्रभावित व्यक्ति को राग, मोह, आसक्ति अधिक होगी। वह किसी ऐसे मार्ग को अपनायेगा, जिसमें राग, मोह और आशक्ति की अधिकता होगी। इस केन्द्र को निष्क्रिय करने के लिए अनासक्त भाव हैं।

हृदय केन्द्र के बाद जो केन्द्र है– वह है कण्ठ का केन्द्र। यह वाणी और विचार का केन्द्र है। इस केन्द्र से प्रभावित व्यक्ति प्रायः विचारों में ही डूबा रहता है और अधिक बोलता भी है। उसका सारा जीवन विचार करने और बातें करने में ही समाप्त हो जाता है। इस केन्द्र को निष्क्रिय करने का एकमात्र उपाय है– 'मौन'!

छठा केन्द्र हमारे दोनों भौहों के बीच में है। योगशास्त्र में इसे आज्ञाचक्र कहा गया है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण चक्र है लेकिन वह अतिक्षीण होता है। चक्र के द्वारा व्यक्ति अपने आन्तरिक व्यक्तित्व को रूपान्तरित कर उसका विकास कर सकता है। आज्ञाचक्र संकल्प का केन्द्र है। चक्र की क्षीणता अथवा शिथिलता के कारण हमारा संकल्प भी शक्तिहीन और क्षीण होता है। हम संकल्प करते अवश्य हैं लेकिन शक्ति के अभाव में उसे साकार नहीं कर पाते। हमारी संकल्प शक्ति तभी सक्रिय हो सकती है, जब हम आज्ञाचक्र पर चित्त को एकाग्र करेंगे और उस पर ध्यान करेंगे। ध्यान के द्वारा आज्ञाचक्र की क्षीणता और शिथिलता समाप्त होती है और संकल्प में शक्ति का संचार होता है। तब हम जो निर्णय करेंगे, वह निश्चित रूप से पूर्ण होगा। आज्ञाचक्र की सक्रियता का मतलब विचारों में सजीवता और संकल्पशक्ति का उदय। ऐसी अवस्था में संकल्प के साथ व्यक्त किये गये विचारों में सजीवता आ जाती है। उसमें ऊर्जा और शक्ति आ जाती है।

जैसा कि संकेत किया जा चुका है– चक्रों को सक्रिय करने का एकमात्र उपाय है– ध्यान। जिस चक्र पर हम ध्यान केन्द्रित करेंगे, वही चक्र सक्रिय हो जायेगा। ध्यान चक्रों का भोजन है, एकमात्र शक्ति है। जो चक्र ध्यान के फलस्वरूप सक्रिय होगा वह गर्म हो जायेगा। उसका स्थान गर्म हो जायेगा। यही सक्रियता की पहचान है।

आज्ञाचक्र के बाद जो चक्र है, उसका नाम है– सहस्रारचक्र। इसे ब्रह्मचक्र भी कहते हैं। यह भी निष्क्रिय है। अगर यह सक्रिय हो जाय तो हम स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर या मनोमय शरीर को अलग कर सकते हैं। किसी दूसरे के स्थूल शरीर में प्रवेश भी कर सकते हैं। इसी को परकाया प्रवेश कहते हैं। योगतंत्र की अति दुर्लभ सिद्धि है यह। ब्रह्मचक्र के सक्रिय होने पर हमें ज्ञात होता है कि हमारा यह शरीर नहीं है हम कुछ और ही हैं। हमारा अस्तित्व कुछ और ही है। हम अपने आप का बोध शरीर से अलग होकर करने लग जायेंगे।

यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि सातों चक्र एक दूसरे के ऊपर अवस्थित हैं। जो चक्र जितना ऊपर है, वह उतना ही ऊपरी विकास का प्रमाण है। ब्रह्मचक्र को सक्रिय करने का उपाय भी ध्यान है लेकिन ध्यान

के समय "मैं कौन हूँ" का भी मन–ही–मन उच्चारण होना चाहिए। 'मैं कौन हूँ' के साथ किये गये ध्यान से ब्रह्मचक्र सक्रिय होता है। इसकी सक्रियता का प्रमाण यह है कि 'मैं कौन हूँ' का उत्तर मिल जाता है और अपने वास्तविक स्वरूप का बोध भी हो जाता है।

कामकेन्द्र के ठीक नीचे एक गुप्त और अत्यन्त रहस्यमय केन्द्र है जिसे योग की भाषा में मूलाधारचक्र कहते हैं। मूलाधारचक्र शक्ति का केन्द्र है। उस शक्ति का जिसे हम कुण्डलिनी–शक्ति कहते हैं। ब्रह्मशक्ति कहते हैं और कहते हैं आदिशक्ति महामाया। इसी प्रकार सातवाँ केन्द्र ब्रह्मचक्र यानि सहस्रारचक्र भी शक्ति का केन्द्र है किन्तु मूलाधार की शक्ति और सहस्रार की शक्ति में अन्तर है। मूल में दोनों एक ही हैं, लेकिन उनके अभिव्यक्ति की दिशा भिन्न है। मूलाधार की शक्ति ऋणात्मक और सहस्रार की शक्ति धनात्मक है। तंत्र में इन दोनों को शिव–शक्ति कहते हैं। ये ही दोनों शक्तियाँ अपने समिष्टि रूप में सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में भी व्याप्त हैं और ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का रूप क्रियाशील है और आज्ञाचक्र के मार्ग से प्रवेश कर सहस्रार केन्द्र और मूलाधार केन्द्र में व्यष्टि रूप में अवस्थित है किन्तु प्रसुप्त अवस्था में है। अगर विचारपूर्वक देखा जाय तो दोनों शक्तियाँ पूर्णरूप से प्रसुप्त नहीं हैं। दोनों का कुछ अंश जाग्रत और सक्रिय भी है। मूलाधार की शक्ति का जाग्रत अंश कामवासना के रूप में सक्रिय है। शुक्र–बिन्दु उसका स्थूल रूप है। इसी प्रकार सहस्रार की शक्ति का जाग्रत अंश दोनों बिन्दु रक्तबिन्दु और श्वेतबिन्दु के नाम से प्रसिद्ध है।

योग साधना में इन चक्रों का भेदन करने के बाद ही साधक परम साधक बन सकता है उस अदृश्य सत्ता की अनुभूति कर सकता है।

प्राणशक्ति– इस विश्व ब्रह्माण्ड में एक ऐसी शक्ति है जो सर्वत्र विद्यमान है जिसका प्रभाव प्रत्येक प्राणियों पर निश्चित रूप से पड़ता है, आवश्यकता इस बात की है उसे कैसे पहचाना जाये और उसका उपयोग हम अपने जीवन में कैसे करें। लेकिन भारतीय योगियों ने सदियों पहले उसे पहचान लिया था, उसे प्राण शक्ति कहते थे। प्राण ऊर्जा का प्रभाव प्रत्येक क्षण, प्रत्येक मनुष्य एवं पशु–पक्षियों पर पड़ता है इस चुम्बकीय

शक्ति को वैज्ञानिक भाषा में इलेक्ट्रोमैग्नेट कहते हैं। इसका प्रभाव उस समय दिखायी देता है जब दो प्राणी परस्पर एक दूसरे से मिलते हैं। स्त्रियों में ऋणात्मक और पुरुषों में धनात्मक शक्ति होती है। जब वे मिलते हैं तो एक अदृश्य चुम्बकीय ऊर्जा का वृत्त बनने लग जाता है जब कभी पुरुष किसी स्त्री को देखता है या कभी कोई स्त्री किसी पुरुष को देखती है तो उसकी आँखों में एक विशेष चुम्बकीय ऊर्जा प्रवाहित होने लगती है जिससे रक्त का प्रभाव बढ़ जाता है चेहरे में विशेष चमक आ जाती है, वे एक दूसरे के समीप आने के लिए व्याकुल हो जाते हैं, यह क्रिया पशु पक्षियों में भी देखने को मिलती है। इसी प्रकार दो पुरुष या दो स्त्री जब भी मिलते हैं तब भी ऊर्जा का प्रभाव वृत्त बनाने लगता है जब कभी हम अपने से ज्यादा धनी विद्वान या स्त्री–पुरुष को देखते हैं तो हम तुरन्त प्रभावित हो जाते हैं इसका कारण यह है कि उसकी ऊर्जा हमसे ज्यादा सक्रिय है।

अगर हम अपने अन्दर उस चुम्बकीय ऊर्जा को बढ़ा लें तो आश्चर्यजनक ढंग से किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

ऊर्जा का सबसे ज्यादा प्रभाव दोनों आँखों और दसों अंगुलियों से होता है इसलिए प्राचीन काल में सिद्ध साधक, योगी बहुत ही कम अपने पैरों का या हाथों से स्पर्श करते थे दूर से आशीर्वाद देते थे और खुले नेत्रों से किसी की ओर देखते नहीं थे इसलिए कि सामने वाले की ऊर्जा कमजोर है उसे स्पर्श कर आशीर्वाद देने से उनकी ऊर्जा क्षीण हो जायेगी।

***

इस संसार में जितने भी पदार्थ हैं या चेतन हैं सभी किसी न किसी चुम्बकीय शक्ति से बंधे हैं, ग्रह, पिण्ड या नक्षत्र एक अदृश्य चुम्बकीय शक्ति अथवा आकर्षण शक्ति से बधें हैं।

जैसाकि ऊपर बतलाया गया है। प्रत्येक मनुष्य कि अपनी विशेष आकर्षण शक्ति होती है जो एक दूसरे को प्रभावित करती रहती है। अगर साधक इस चुम्बकीय शक्ति को ध्यान, प्राणायाम द्वारा बढ़ाये तो एक असीम ऊर्जा प्राप्त कर सकता है चूंकि चुम्बकीय शक्ति प्राणशक्ति ही है जिन्हें आज से हजारों वर्ष पूर्व भारतीय योगियों द्वारा सिद्ध भी किया जा चुका है और अपनी प्राण ऊर्जा को घनीभूत कर वे मृत व्यक्ति को भी

जीवित कर देने की शक्ति रखते थे तथा रोगी, असहाय आदि लोगों को क्षण भर में ठीक कर देने की शक्ति उन्हें प्राप्त थी।

***

इस विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी गतिशील है वह आकाश के कारण सम्भव हुआ और प्रलय होने पर जो कुछ भी दिखलायी दे रहा है वह आकाश में विलीन हो जायेगा। आकाश तत्व के कारण ही मनुष्य आदि ने एक विशेष आकार ग्रहण किया। उसमें प्राणों का संचार भी आकाश के द्वारा सम्भव हुआ। जिस तरह आकाश सर्वव्यापक है उसी तरह प्राण तत्व भी सर्वव्यापी है अतः जब प्राणशक्ति का संचार होता है उसमें मनःशक्ति, विचारशक्ति, इच्छाशक्ति का प्रादुर्भाव होता है– अतः यह स्पष्ट होता है कि मानव की प्रत्येक क्रिया बाह्य हो, चाहे आन्तरिक सभी प्राणशक्ति द्वारा ही नियन्त्रित होती है।

तन्त्र में एक ऐसी सिद्धि है जिसे छाया सिद्धि कहते हैं। छाया सिद्धि जो तन्त्र की एक प्रकृष्ट साधना है। प्राणशक्ति द्वारा अपनी ही छाया को सिद्ध कर लेना छाया सिद्धि कहलाती है, लेकिन इसकी साधना काफी विकट होती है इसे आसानी से सिद्ध नहीं किया जा सकता।

जहां पर शून्यता है वहीं आकाश है। भारतीय दर्शनों में एक दर्शन है– 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन'। इस महत्वपूर्ण दर्शन शास्त्र का जो महत्वपूर्ण विज्ञान है, वह है– स्पन्द विज्ञान। स्पन्द विज्ञान अत्यन्त रहस्यमय विज्ञान है। इसका एक विषय है– 'अन्तरिक्ष'। इसलिए उसके रहस्यमय तथ्यों को अन्तरिक्ष विज्ञान की दृष्टि से ही समझा जा सकता है।

स्पन्द विज्ञान के अनुसार जिसे हम 'आकाश' कहते हैं, यह आकाश का वह रूप है, जिससे बिन्दु तरंगें यानि प्रकाश तरंगें चलती हैं। जिसे हम 'नभ' कहते हैं; यह आकाश का वह स्वरूप है, जिससे नाद तरंगे यानि ध्वनि तरंगें चलती हैं। व्याकरण के अनुसार 'नभ' धातु का अर्थ है–'ध्वनि'।

जिसे अन्तरिक्ष कहा जाता है, वह 'आकाश' का ही एक ऐसा स्वरूप है, जो सूर्य के प्रभाव में रात्रि के गहन अन्धकार में दिखलायी देता है। जिससे हमें झिलमिल चमकते हुए असंख्य ग्रह–पिण्डों और नीहारिकाओं के दर्शन होते हैं। वेद के अनुसार ये सभी ज्योतियाँ किसी दूरंगत एक

ज्योति से आविर्भूत हुई हैं। जैसाकि कहा गया है–**'दूरङ्गतं ज्योतिषा ज्योतिरेकं तन्मे मनःशिवसंकल्पमस्तु।'**

वह दूरंगत ज्योति 'परमज्योति' है। वही परमज्योति परमतत्व है, सृष्टि की प्रक्रिया में वह 'परमज्योति' अथवा 'परमतत्व' शिवसंकल्प है। उसी शिवसंकल्प से सम्पूर्ण सृष्टि हुई।

सृष्टि विज्ञान के अनुसार परमतत्व शिवसंकल्प ही 'महाकाल' है। व्याकरण के अनुसार 'कल' धातु से दो शब्द निष्पन्न हुए हैं– पहला है 'कला' और दूसरा है 'काल'। एक से 'अनेक' होने को शिवसंकल्प की स्वतंत्रता और स्वयं स्फूर्ति से जिन कलाओं का आविर्भाव हुआ, उन्हीं से सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड की रचना हुई है। यहाँ शिवसंकल्प को स्थितिशील ऊर्जा और स्वयं स्फूर्ति को गतिशील ऊर्जा समझना चाहिए।

महाकाल की जो शक्ति है उसे तन्त्र 'महाकाली' कहता है। यहाँ भी महाकाल को स्थितिशील ऊर्जा और महाकाली को गतिशील ऊर्जा समझना चाहिये। संकल्प का 'कल्प' और 'काल' एक ही है। दोनों एक दूसरे में परिवर्तनीय हैं। योगतंत्र का यह परा–विज्ञान है, जिसे आइन्स्टीन के सापेक्षवाद के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। कल्प का मतलब है 'दिक्'। दिक् और काल अद्वैतभावी हैं। दोनों के अद्वैतभाव से एक विलक्षण तत्व जन्म लेता है, जिसे 'चित् तत्व' कहते हैं।

योगियों ने इस शक्ति को कालातीत कहा है जहां पर शून्यता है वहाँ आकाश है इस प्रकार सारा विश्व ब्रह्माण्ड आकाश में समाहित है, प्राणशक्ति और आकाश शक्ति एक दूसरे में समाहित है तात्पर्य यह है कि जहां आकाश है वहीं प्राण शक्ति है।

भारतीय योग के अनुसार प्राण शक्ति सर्व व्यापक है प्रत्येक जीव–जन्तु, पेड़–पौधे, मनुष्य आदि में प्राणशक्ति मौजूद है। अगर प्राण न हो तो कोई जीव–जन्तु एक पल भी जीवित नहीं रह सकता है इसलिए योग में प्राण को साधने के लिए प्राणायाम को आवश्यक बतलाया है।

प्राण शक्ति को साधने के लिए यहाँ कुछ विशेष प्राणायाम का वर्णन किया जा रहा है।

प्राणायाम– प्राण को साधने के लिए प्राणायाम आवश्यक है तभी हम किसी भी प्रकार की साधना में अग्रसर हो सकते हैं और हो सकते हैं सफल कुछ विशेष प्राणायाम का वर्णन किया जा रहा है।

भस्त्रिका : इसमें गहरी सांस लेकर उसे बाहर छोड़ा जाता है। पहले सांसों से फेफड़ों को भरें और फिर तेजी से सांसों को बाहर निकालें। सुखासन कि मुद्रा में अभ्यास करें। यह क्रम पाँच मिनट तक जारी रखें। सांस लेने के दौरान आँखें मूंदकर भावना करें कि तमाम दैवी शक्तियां आपकी अंतरात्मा में प्रवेश कर रही है। कम से कम 10 बार अभ्यास करें।

कपालभाती : सांस को पेट में भरें और फिर झटके से पेट को दबाकर सांसों को बाहर निकालें। ध्यान रखें कि इस क्रिया में केवल पेट ही हिले, शरीर के अन्य हिस्सों में किसी प्रकार की हलचल नहीं होनी चाहिए इसे वज्रासन या सुखासन की मुद्रा में करें, कम से कम 10 मिनट करें।

ब्राह्म कुंभक प्राणायाम : गहरी सांस लें और फिर छोड़ें। सांस बाहर छोड़ते समय पेट को पूरी तरह दबाएँ और कुछ देर तक रोके रखें। सांस लेते समय गर्दन को छाती तक 15 सेकेण्ड तक झुकाएं रखें और सांस छोड़ते समय गर्दन को ऊपर रखें सुखासन कि मुद्रा में करें। इस क्रिया को 11 बार दोहराएँ।

अनुलोम विलोम : यह बहुत महत्वपूर्ण प्राणायाम है। सीधा बैठें और नाक के दाहिने छिद्र को अंगूठे से बंद करें और नाक के बायीं छिद्र से गहरी सांस लें। फिर तीसरी और चौथी अंगुलियों को मिलाकर नाक के बाईं छिद्र को बंद कर दाहिने छिद्र से सांस लें और फिर छोड़ दें। इस तरह एक चक्र पूरा होता है। इस चक्र को पांच मिनट तक दोहराते रहें। इस प्राणायाम का नियमित अभ्यास करने पर शरीर में ऊर्जा का प्रवाह हो जाता है एक बार बायें नाक से फिर दायें नाक से अभ्यास करें।

उद्गीत : यह बहुत आनंद देने वाला प्राणायाम है। गहरी सांस लें और ओम की ध्वनि निकालते हुए सांसें छोड़ें। इसे पांच से लेकर 11 बार दोहराएँ। इससे दैवी शक्तियाँ आपके अन्दर प्रवेश करेंगी।

भ्रामरी : अपने हाथ के अंगूठों से दोनों कानों को बंद करें और मध्यमा तथा अनामिका अंगुली से आँखों को बंद करें। तर्जनी को ललाट पर रखें और गहरी सांसे लें। इसके बाद गले से तेज आवाज निकालते हुए सांसों को बाहर निकालें। ध्यान रहे कि आवाज में कंपन होना चाहिए। इस अभ्यास को कम से कम 11 बार करें। यह प्राणायाम आपको तनाव

से मुक्ति दिलाएगा और आवाज के कंपन से मस्तिष्क की अवरुद्ध ग्रंथियां खुल जाएंगी।

इन प्राणायामों को करने के बाद थोड़ी देर के लिए ही सही, लेकिन सवासन और ध्यान करना न भूलें।

ऊपर दिये गये प्राणायाम से सांस संबंधी बीमारियां दूर होती हैं, मस्तिष्क की कार्यक्षमता और स्मरण शक्ति बढ़ती है, आत्म विश्वास और पवित्रता पैदा होती है। आमाशय, लीवर और आंत स्वस्थ रहते हैं। आँख, कान, जीभ, गला आदि की कार्यक्षमता भी बढ़ती है।

प्राणायाम सिद्ध करने के पश्चात् स्वर सिद्धि साधक के लिए आवश्यक है जिसका वर्णन किया जा रहा है।

स्वर सिद्धि- शरीर की मुख्य जरूरत है–प्राणवायु। इसका आवागमन शरीर की विभिन्न नस नाड़ियों द्वारा संचालित होता है। इनमें प्रमुख तीन नाड़ियाँ हैं– इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना।

इड़ा चन्द्र प्रधान है, जो बाएँ नथुने से चलती है। पिंगला सूर्य प्रधान होती है,जो दाएं नथुने से चलती है। दोनों के मध्य या सम स्थिति सुषुम्ना कहलाती है। यह वायु प्रधान होती है। इन नाड़ियों को नासिका द्वारों द्वारा श्वास लेना स्वर चलना कहलाता है। बाएं नथुने का चलना बायां या चन्द्र स्वर, दाएँ नथुने का चलना दायां या सूर्य स्वर और दोनों के बीच सम स्थिति को संधि स्वर कहा जाता है।

स्वर साधना का महत्व- दैनिक जीवन के विभिन्न कार्यों में स्वरों की स्थिति का बहुत महत्व देखा जाता है। स्वर ज्ञाता ज्योतिषियों की भांति इसका प्रयोग करते हैं। विभिन्न कार्यों की सफलता–असफलता, शुभ–अशुभ कार्यों की सफलता–असफलता, तेजी–मंदी प्रश्नों के जवाब के लिए इस विद्या की सहायता ली जाती है। दैनिक कार्य करते समय निम्नानुसार स्वर ध्यान किया जाना चाहिए।

गंभीर, शुभ, विवेकपूर्ण, स्थाई कार्य, दान, निर्माण, वस्त्र धारण, आभूषण पहनना, दवा लेना, मैत्री, व्यापार, यात्रा, विद्याभ्यास इत्यादि कार्य चन्द्र स्वर में किए जाने चाहिए।

उत्तेजना जोश के कार्य जैसे युद्ध, खेल, व्यायाम इत्यादि सूर्य स्वर में करें।

सुषुम्ना स्वर संधि अवस्था होती है। इसमें उदासीनता बनी रहती है। इस स्वर में चिन्तन, ईश्वर आराधना जैसे कार्य किया जाना चाहिए। अन्य कार्य इस स्वर के दौरान हों तो परिणाम अच्छे नहीं होते।

* सूर्य स्वर में पाचन शक्ति बढ़ती है। भोजन के बाद यह स्वर चलना चाहिए।

* सोते समय चित्त होकर नहीं लेटना चाहिए। इसमें सुषुम्ना स्वर चलता है, जिससे नींद में बांधा पड़ती है। अशुभ डरावने स्वप्न आते हैं।

* कहीं प्रस्थान के समय चलित स्वर वाले कदम को पहले बढ़ाकर जाना चाहिए।

* किसी क्रोधी व्यक्ति से मिलने जाते समय अचलित स्वर वाला कदम पहले बढ़ाकर जाना चाहिए।

* गुरु, मित्र आदि मिलने में वाम स्वर के दौरान कार्य शुरू करें।

कई बार उपर्युक्त कार्य करने के दौरान विपरीत स्वर चलता रहता है। ऐसी स्थिति में निम्न प्रयोगों से कार्य के अनुरूप स्वर को चलाया जा सकता है–

* अचलित स्वर व नथुने को अंगूठे से दबाकर चलित स्वर में श्वास खीचें और अचलित स्वर में छोड़े। कुछ समय और ऐसा करने से स्वर की चाल बदल जाएगी।

* जिस ओर का स्वर चल रहा हो, उस करवट लेट जाएं।

* चलित स्वर वाले बगल में सख्त चीज दबाकर रखें।

* घी खाने से बायां और शहद खाने से दायां स्वर चलता है।

न्यास- साधक को प्राण शक्ति, इच्छा शक्ति को नियंत्रित करने के लिए ऊपर प्राणायाम बतलाया गया है लेकिन आन्तरिक शक्ति को बढ़ाने के लिए न्यास आवश्यक है। शरीर के उन अंगों पर मन एकाग्र कर प्राण शक्ति की ऊर्जा को प्रवाहित किया जाता है। जिससे की हमारी इन्द्रियों के साथ उन मर्म स्थानों में ऊर्जा प्रवाहित कर उन्हें जागृत कर शरीर को प्राण ऊर्जा द्वारा अदृश्य चक्र बनाया जा सके जिसे हम ऊर्जा चक्र कहते हैं। अपने वर्तमान जीवन में हम कभी उन स्थानों पर ध्यान नहीं देते जो हमारे जीवन को तथा शरीर को अनवरत शक्ति प्रदान करते हैं और जीवन के प्रवाह को बढ़ाते रहते हैं विभिन्न प्रकार के रोग–व्याधि का कारण यह

भी है कि उन स्थानों पर प्राण ऊर्जा की कमी से हम रोगी हो जाते हैं दवा आदि पर निर्भर हो जाते हैं।

न्यास का तन्त्र, पूजा–पाठ आदि में काफी महत्व है। दुर्गासप्तसती के कवच पाठ में विभिन्न देवियों को शक्ति रूप में मानव शरीर के हर अंग पर दर्शाया गया है इसका कारण यही है कि आन्तरिक बाह्य अंगों पर ध्यान किया जाये तथा मन्त्रों द्वारा ऊर्जा प्रवाहित की जाये। ताकि उस अंग पर शक्ति ऊर्जा का सतत् प्रवाह हो सके।

प्राणायाम सिद्ध होने के बाद साधक सवासन की मुद्रा में पीठ के बल लेट जायें तथा नाक से प्राण वायु लेकर एक–एक अंगों पर ध्यान करें तथा मन एकाग्र कर उन पर प्राण ऊर्जा को प्रवाहित करें तथा कल्पना करें कि वहां से प्राण ऊर्जा प्रवाहित हो रही है और उस अंग को जागृत कर रही है।

वो शक्ति हमारे शरीर में छब्बीस केन्द्रों में है, जो इस प्रकार हैं– दोनों आँखे, नासिका, दोनों कान, कण्ठ, हृदय, फेफड़ा नाभि, दोनों हाथों की उँगलियाँ तथा सभी जोड़, लिंग, गुदा, दोनों घुटना, पैर पंजा तथा उँगलियाँ तलुआ, एड़ी आदि तात्पर्य यह है कि शरीर के सभी अंगों पर मन एकाग्र कर विचार शून्य कर प्राणायाम द्वारा उन अंगों को जागृत करें। जिन–जिन अंगों पर ध्यान आराम से केन्द्रित हो जाये उतना ही करें। इसी प्रकार धीरे–धीरे सभी अंगों पर केन्द्रित करें– पहले दोनों नेत्रों से पैर तक फिर पैर से नेत्रों तक पुनः लावें। लोम–विलोम से पूरा शक्ति चक्र बनेगा। निरन्तर अभ्यास में एक आलौकिक शक्ति का अनुभव साधक को अपने अन्दर होने लगेगा।

त्राटक- प्राणायाम द्वारा प्राणशक्ति को, ध्यान द्वारा मनःशक्ति को बढ़ाने का उपाय ऊपर बतलाया जा चुका है लेकिन हठ योग में त्राटक का काफी महत्व है चूंकि सबसे ज्यादा चुम्बकीय शक्ति आँखों में होती है जब तक त्राटक सिद्ध नहीं होगा प्राणशक्ति अथवा चुम्बकीय शक्ति का व्यापक विस्तार नहीं होगा। त्राटक सिद्धि आवश्यक है। त्राटक द्वारा किसी को भी वश में किया जा सकता है तथा संकल्प कर दूर की घटनाओं को आभास किया जा सकता है।

त्राटक द्वारा नेत्र रोग पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है तथा इच्छा शक्ति, संकल्प शक्ति को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होता है।

वैसे त्राटक तो कई प्रकार के होते हैं लेकिन यहां पर कुछ विशेष त्राटक के ही अभ्यास का वर्णन किया जा रहा है जो साधक के लिए आसान और असर कारक सिद्ध होगा।

सुखासन की मुद्रा में बैठकर पहले नेत्रों को दायें–बायें तथा नीचे–ऊपर घुमायें, इसके बाद नेत्र की पुतली को गोल–गोल घुमायें कम से कम 10 मिनट तक करें। उसके बाद कुछ देर तक आँखे बन्द रखें हाथों की हथेली से नेत्रों को हल्का सा दबाकर आराम दें।

गोल स्फटिक का पेण्डुलम लेकर तीन हाथ की दूरी से उस पर स्थिर नेत्र कर त्राटक करें जब नेत्र थक जाये तब नेत्र को कुछ देर बन्द रखें, ध्यान रहे जितनी देर आँखे खुली रहने का अभ्यास कर सके करें। जल्दी–जल्दी पलक न झपकायें। जैसे–जैसे त्राटक सिद्ध होगा उस स्फटिक के पेण्डुलम के चारों ओर एक नीली आभा दिखने लगेगी। उस नीली आभा को नेत्र बन्द कर अपने दोनों आँखों के बीच जिसे तीसरा नेत्र कहते हैं वहाँ स्थिर कर उस पर त्राटक अथवा ध्यान का अभ्यास करें। इसके बाद, साधक दूर की वस्तुओं पर त्राटक करे। जैसे– मंदिर के गुम्बद पर, दूर पेड़ के किसी फूल या पत्ती पर, पहाड़ की चोटी पर और प्रातः उगते सूर्य और चन्द्रमा पर केन्द्रित करें।

बिम्ब प्रतिबिम्ब त्राटक– यह त्राटक दर्पण के माध्यम से होता है। कमरे में आठ इंच लम्बा तथा छः इंच चौड़ा एक दर्पण दीवार पर लगा देना चाहिए और उससे तीन फीट की दूरी पर आसन पर बैठ जाना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कमरे में जरूरत से ज्यादा प्रकाश न हो। जब आप दर्पण में देखेंगे तो आपको अपना चेहरा उस दर्पण में दिखाई देगा। आप अपने प्रतिबिम्ब के दोनों आँखों के बीच दृष्टि को स्थिर कीजिए। धीरे–धीरे आपको वह प्रतिबिम्ब दिखाई देना बन्द हो जायेगा और केवल मात्र दर्पण ही दिखाई देगा। इस समय बहुत ही धीमी गति से सांस लीजिए। सांस की गति जितनी ही कम होगी वह प्रतिबिम्ब उतना ही जल्दी अदृश्य हो सकेगा। कुछ समय बाद वह प्रतिबिम्ब पुनः दिखाई देगा और यदि आप इसी प्रकार से दृष्टि स्थिर रखेंगे तो वह प्रतिबिम्ब कुछ समय बाद पुनः लुप्त हो जायेगा।

आपको लगभग एक महीने तक इसी प्रकार से अपना अभ्यास करना चाहिए। इस बात का ध्यान रखें कि त्राटक करते समय किसी भी प्रकार के मंत्र, जपने की आवश्यकता नहीं है। जब कुछ समय इसी प्रकार प्रतिबिम्ब त्राटक करेंगे तब आपको उस दर्पण में कई नवीन दृश्य दिखाई देंगे। यदि इस प्रकार के दृश्य दिखाई दें तो आप समझे कि आपकी साधना ठीक मार्ग पर चल रही है। इसका कारण यह है कि हमारे मन में जो भी इच्छाएँ या दृश्य दबे हुए हैं वे दृश्य या इच्छाएँ इस समय त्राटक के माध्यम से दिखाई देती हैं। कई बार ऐसे दृश्य भी दिखाई दे जाते हैं जिन दृश्यों को अपने जीवन में नहीं देखा हो, परन्तु हमने आन्तरमन में वे दृश्य अवश्य ही देखे होंगे, इसलिए उस प्रकार के अपरिचित दृश्य दिखाई दे जाते हैं।

जिस दर्पण को आप इस साधना के लिए प्रयोग में लें, उस दर्पण को अन्य कार्यों के लिए प्रयोग न करें। जब साधना समाप्त हो जाए, तो उस दर्पण को सुरक्षित रख देना चाहिए।

उपरोक्त सभी क्रिया को सफलतापूर्वक सिद्ध करने के पश्चात् साधक अपने आन्तरमन में प्रवेश करने लग जाता है और स्वतः आत्म नियंत्रण स्थापित होने लग जाता है बाह्यमन को आन्तरमन में समन्वय करना ही सिद्धि है जिस प्रकार बाह्यमन विचार शून्य होता है अभ्यास के बाद उसी प्रकार आन्तरमन को भी विचारशून्य बनाया जा सकता है। जब आन्तरमन शून्य होगा तब उसमें आलौकिक शक्ति का स्वतः होने लग जाता है संचार।

साधक का शरीर हल्का हो जाता है एक प्रकार की ऊर्जा का अनुभव करने लग जाता है और मन पर नियंत्रण स्वतः होने लग जाता है और तब साधक अपने को पहले से ज्यादा स्वस्थ और सन्तुलित तथा प्रसन्नता का अनुभव करने लगता है।

साधक जैसे–जैसे आन्तरमन में प्रवेश करेगा उसे स्वतः एक अद्भुत प्रकाश का अनुभव होगा। उसका रंग आदि विचित्र होगा। उसका वर्णन वह नहीं कर पायेगा। जैसे–जैसे वह प्रकाश घनीभूत होगा, जैसे–जैसे साधक अभ्यास करता जायेगा, वह प्रकाश का घेरा बढ़ता जायेगा, उस अवस्था में भी साधक चैतन्य रहेगा, उसे ज्ञान रहेगा अपनी उपस्थिति का। वह जब दिव्य ज्योति का अनवरत अनुभव करेगा, वह दिव्य ज्योति और कोई नहीं अपनी ही आत्म ज्योति है जो आन्तरमन की गहराई में दिखती है।

***

जब वह अन्तहीन प्रकाश घेरा बड़ने लगता है, तो उस समय साधक जो भी संकल्प करेगा या जो दृश्य देखना चाहेगा तब भूत और भविष्य उसके लिए अपरिचित नहीं रहता। उसे अपना भूतकाल स्पष्ट दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार भविष्यकाल भी उसे दिखाई देने लगता है, जिस प्रकार हम अपने सामने बनें चित्रों की श्रृंखला देखते हैं।

ये घटनाएँ हम देखते रहते हैं और साथ ही साथ इन घटनाओं का काल ज्ञान भी हमारे सामने बना रहता है, हमें यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है किस–किस विशेष समय में हमारे जीवन में कौन–सी विशेष घटना घटित होने वाली है और इस प्रकार आने वाले जीवन में कौन–कौन सी घटनाएँ हमारे जीवन में घटित होगीं, इसमें मानव की प्रत्येक छोटी और बड़ी घटना दिखाई दे देती है। यही नहीं अपितु इस साधना में प्रवृत्त होने से पूर्व यदि वह किसी अन्य व्यक्ति के बारे में चिन्तन करता है, तो उस व्यक्ति का भी भूत–भविष्य उसके सामने साकार हो जाता है। यदि थोड़ा–सा और प्रयोग किया जाए या एक विशेष प्रकार से इस प्रयोग को किया जाए तो इस प्रकाश की सीमा अनन्त तक बढ़ जाती है, अतः ऐसी स्थिति आने पर व्यक्ति अपने इस जीवन को ही नहीं इससे पूर्व भी उसने जो जीवन भोगे हैं उस जीवन को भी वह देखने में समर्थ हो जाता है। उस जीवन में उसने जो–जो कार्य किये थे, जिस प्रकार से उसने जीवन को व्यतीत किया था, वह सारा जीवन उसके सामने साकार हो उठता है और इसके साथ ही साथ समय का भी बोध रहता है कि किस समय उसने इससे पूर्व का जीवन जीया था? कहां पर उसने जन्म लिया था ? बड़ा हुआ था और मृत्यु को प्राप्त हुआ था ? उसे यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता है कि उस जीवन में हमने जो भी कार्य किया है, उनका प्रभाव हमारे वर्तमान जीवन पर विशेष रूप से पड़ता है तथा उन कार्यों के प्रभाव के फलस्वरूप ही हमारा चिन्तन, हमारी विचारधारा और हमारी मानसिक स्थिति बनती है।

जिस प्रकार इस साधना के द्वारा इस जीवन से पहले का जीवन देख पाना संभव होता है, उसी प्रकार यदि हम आगे की ओर दृष्टि डालें तो उस जीवन के बाद का जीवन भी हमारे सामने साकार हो जाता है। हम यह भी देखते हैं कि इसके बाद हम कहां जन्म लेते हैं, वे सब हमें पहले से ही स्पष्ट हो जाता है।

सारा कार्य कुछ ही क्षणों में सम्पन्न हो जाता है। सबसे बड़ी बात यह है कि जब हम आन्तरमन से निकल कर पुनः चैतन्य रूप में आते हैं तो ये सारी घटनाएँ और दृश्य हमें भलीभांति स्मरण रहते हैं और काल सहित उन घटनाओं का विवरण रहता है और ऐसा अनुभव होता है कि यह कुछ पल में घटित हो गया समय का भान नहीं रहता।

❐

आन्तरिक शक्ति को विकसित करने के उपाय

पवित्रता : अपनी विचार–शैली में पवित्रता लायें। किसी के प्रति बुरा भाव न रखें। मन में स्वस्थ विचार रखें और नकारात्मक भावों जैसे क्रोध ा, घृणा से दूर रहें। याद रखें, आन्तरिक शक्ति को विकसित करने की दिशा में मन व चेतना की पवित्रता पहला कदम है।

आसन : एक मुद्रा में बैठने का अभ्यास करें प्रारम्भ में कम से कम 30 मिनट का फिर इच्छानुसार समय बढ़ायें।

अपने उम्र और शारीरिक बनावट के अनुसार किसी योग्य प्रशिक्षक से कम से कम पांच आसन सिद्ध करें जो आपके शरीर को लचीला व रक्त संचार को व्यवस्थित करे।

योग्य गुरु में अपनी राशि के अनुसार मन्त्र दीक्षा लेकर कम से कम एक माला (108) जप करें। साधना के लिए पीला आसन का प्रयोग करें।

प्राणायाम : आसन के बाद प्राणायाम का अभ्यास करें ऊपर विशेष प्राणायाम बतलाये गये हैं किसी प्रकार की दुविधा होने पर योग्य प्रशिक्षक से प्राणायाम की विधि का ज्ञान करें सभी क्रियायें करने के बाद शवासन ध्यान करें ज्यादा अच्छा रहेगा।

ध्यान योग : छन्दोग्य उपनिषद के एक श्लोक के अनुसार ध्यान से मन को विशिष्टता प्राप्त होती है.....पृथ्वी, स्वर्ग, समस्त ब्रह्माण्ड, जल, तत्व, पर्वत, मनुष्य और देवगण, सभी ध्यान करते हैं। केवल ध्यान से ही ये सभी अपनी महानता और दिव्यता प्राप्त करते हैं लेकिन दुर्जन (जो ध्यान नहीं करते) विवाद, कलह और चुगली करने के प्रेमी होते हैं। शक्ति, साहस और क्षमता केवल ध्यान से ही प्राप्त होती है अतः ध्यान को ब्रह्म मान कर आराधना करें, जो भी इस तरह से ध्यान करता है वह ध्यानस्थ विस्तृत क्षितिज में स्वेच्छा से विचरण करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है।

'ध्यान' सभी गुह्य और रहस्यमयी प्रक्रियाओं का केन्द्रीय सार है जिसके द्वारा शक्ति आध्यात्मिक चेतना के उच्चतम् स्तर–आध्यात्मिक विस्तार की गहन गहराई और आत्म साक्षात्कार के परम लक्ष्य तक पहुँच जाता है। चाहे पूरब हो या पश्चिम, हिन्दू या ईसाई, जैन हो या इस्लाम ये सभी व्यक्ति से ध्यान करने की अपेक्षा करते हैं और ईश्वर के साथ एकात्मता बनाने का निर्देश देते हैं। परमात्मा से एकाग्र प्रेम, परमेश्वर की महिमा का निरन्तर चिन्तन, ईश्वर स्मरण, ईश्वरीय योजना के प्रति पूर्ण समर्पण आत्मा को अनावृत्त करना ये सभी उसी 'ध्यान' के विभिन्न नाम हैं।

ध्यान के विभिन्न पहलुओं को विशिष्ट अर्थ प्रदान करने के उद्देश्य से 'योग–दर्शन' में भी इसके लिए भिन्न–भिन्न पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त किए गए हैं पतंजलि महर्षि के राजयोग में 'ध्यान' शब्द प्रयुक्त होता है। भक्तों द्वारा इसी को उपासना कहा गया है। वेदान्त या ज्ञानयोग में इसे ही मनन और निदिध्यासन कहा जाता है। ध्यान की रहस्यमय प्रक्रिया को व्यक्त करने के लिए विभिन्न सन्दर्भों में स्मरण, चिन्तन, प्रार्थना स्वाध्याय, जप, इत्यादि शब्दों को प्रयुक्त किया जाता है। गहरे स्तर पर ये सभी शब्द समानार्थक हैं।

ध्यान : राजयोग में अष्टांग साधना का वर्णन है जिसमें मन, अपनी निर्भरता और परिशुद्धता प्राप्त कर आत्मा के स्वरूप पर गहन चिन्तन करने में समर्थ होता है।

ध्यान को विकसित करने का एक सर्वोत्तम माध्यम है। एकांत में बैठकर कुछ समय के लिए विचारों से मुक्त हों। किसी भी विषय पर विचार न करें। अपने मस्तिष्क को खाली रखें। इस बीच आत्म–चेतना के साथ सामंजस्य बैठाने का प्रयास करें।

इच्छा शक्ति– एकांत में बैठकर मन में आने वाले विचारों को द्रष्टा बनकर देखें। दिमाग में आने वाले विचारों को नियंत्रित करने का प्रयास न करें । किस विषय पर सोचें और किस पर नहीं, ये ख्याल अपने मस्तिष्क से हटा दें। मनोभावों का निरीक्षण करें। दिमाग में जो भी दृश्य आए तो उसे द्रष्टा बन कर देखें।

इच्छा शक्ति बढ़ाने के लिए कोशिश करें और कार्य को समय पर करें जैसे आप किसी चीज को याद करना चाहते हैं एक निश्चित समय

रखें मुझे निम्न समय पर इसे याद कर लेना है आप पायेंगे एक दो अभ्यास के बाद कोई भी चीज या पढ़ाई याद होने लगेगी। किसी से मिले तो संकल्प करें मुझे निर्धारित समय देना है और उक्त समय में निर्णय या बात करना हैं देखेंगे उक्त समय पर ही आप जो चाहेंगे पूरा होगा।

बहुत से ऐसे लोग होते हैं उनकी इच्छाशक्ति सुदृढ़ नहीं होती। उन्हें कोई भी निर्णय में काफी वक्त लगता है। पहले ही वो नकारात्मक सोच पैदा कर लेते हैं इसमें उनका समय नष्ट होता है तथा कार्य भी पूरा नहीं होता जबतक आपकी दृढ़ इच्छाशक्ति नहीं होगी जीवन में सफलता नहीं मिल सकती। इस संसार में जितने भी महान पुरुष हुए उनके पीछे उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति का ही योगदान है।

इच्छाशक्ति और समय एक दूसरे के पूरक हैं। इच्छाशक्ति तभी मजबूत होगी जब आप समय को लेकर चलेंगे। बहुत से लोगों की इच्छाशक्ति इतनी कमजोर होती है कि वो हर कार्य कल पर टाल देते हैं और समय का मूल्य भूल जाते हैं और वे समय को कहीं और बैठकर काटते हैं, लेकिन वे समय को नहीं काटते बन्धु समय उनको पल–पल काटता रहता है इसलिए कोई भी कार्य कल पर न छोड़ें, जो करना है आज करना है, समय का मूल्य समझें तभी समय आपका मूल्य समझेगा।

ऊर्जा क्षेत्र : हमारा शरीर ऊर्जा क्षेत्रों से परिपूर्ण है। अन्तःप्रज्ञा के जरिये हम इन ऊर्जा क्षेत्रों का अनुभव करें। ऐसी अनुभूति से आप किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में काफी कुछ जान सकते हैं।

शरीर स्वयं विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा क्षेत्र है इसके बारे में वर्णन किया गया है।

सजग रहें : अन्तःप्रज्ञा जबतक आपको संदेश प्रेरित करती है, तब यह जरूरी नहीं कि हमेशा ऐसे सन्देश स्पष्ट भी हों। इसलिए आपको इन संदेशों को ग्रहण करने के लिए पहले से ही सजगतापूर्वक तैयार रहना चाहिए। अपने परिवेश के प्रति संवेदनशील रहें। अपनी अन्तःप्रज्ञा से यह सवाल करें कि क्या अमुक संदेश के फलित होने का सही समय आ गया है। अंततः आपको अपने सवाल का जवाब मिल जाएगा।

सकारात्मक सोच– हमेशा सकारात्मक सोच रखें। भय आपकी आन्तरिक शक्ति के विकास में बाधक है। कभी–कभी हमारी बुद्धि आन्तरिक शक्ति

पर संदेह करती है। इसके बावजूद आप अपनी इस विलक्षण क्षमता पर विश्वास रखें, तभी आन्तरिक शक्ति का विकास हो सकता है।

* हमेशा कम बोलिए क्योंकि आप जितना ही ज्यादा बोलेंगे उतनी ही ज्यादा आन्तरिक शक्ति नष्ट होगी, फलस्वरूप उस शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए काफी समय लगेगा। अतः आप अपने शरीर में निहित शक्ति को बनाए रखिए।

* मूर्ख, अशिक्षित और दुर्बल चित्त वाले व्यक्तियों से दूरी बनाये रखें। क्योंकि वे हर क्षण आपमें निराशा की भावना ही भरेंगे। उनका जीवन तो असफल हो ही गया है, दूसरे के जीवन को भी वे असफल बना देते हैं, अतः आप उनसे यथासंभव दूर ही रहें।

* दिन का कुछ समय एकान्त में व्यतीत कीजिए। उस समय आपसे कोई नहीं बोले और न आपको कोई व्यवधान डाले।

* आपके मन में जो विचार हैं या किसी का कोई रहस्य आप जानते हैं तो उसे प्रकट मत कीजिए। कोई यदि आपसे क्रोध में वार्ता करे तब भी आप अपने आप पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयत्न कीजिए। कई बार हँसी की बात होने पर भी आप सामान्य रहें और अपने आप पर नियंत्रण रखें और बिल्कुल न हँसें। इससे आप पर नियंत्रण होने लगेगा।

* इस संसार में उसी व्यक्ति का सम्मान होता है जो गोपनीयता बनाए रखता है। एक की बात दूसरे को कह देना हल्कापन कहलाता है। जो व्यक्ति जितना ही ज्यादा शान्त होता है समाज में उसको उतना ही ज्यादा सम्मान प्राप्त होता है।

* अपने चेहरे को निर्विकार बनाए रखिए। यदि कोई व्यक्ति आपको रहस्य की बात बताए तब भी आप अपने चेहरे से यह प्रकट मत होने दीजिए कि आपको पहले से ज्ञात है।

* साधक को अपने खान–पान, वेशभूषा आदि में अलौकिकता नहीं लाना चाहिए।

* साधक को तामसिक खानपान का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

* मन पर बराबर नियंत्रण रखने का प्रयत्न करना चाहिए। क्रोध, घमण्ड, असत्य भाषा आदि का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

* कार्य करने के बाद कभी भी पछताना नहीं चाहिए, अपितु कार्य प्रारम्भ करने से पहले खूब सोच–विचार लेना चाहिए।

* कभी कोई गलत क्रिया या कुचेष्टा नहीं करनी चाहिए।

* कभी निरूद्देश्य कार्य नहीं करना चाहिए।

* व्यर्थ में कभी किसी से क्षमा नहीं मांगनी चाहिए। तुरन्त प्रभावित नहीं होना चाहिए।

* शरीर और मन की सफाई हमेशा करना चाहिए, जिससे आप तरोताजा बने रह सकें।

* न तो बेकार चिन्ता करनी चाहिए और न तो बेकार का समय नष्ट करना चाहिए। हमेशा इस बात को ध्यान रखें कि आपका अपने मन पर पूर्णतः नियंत्रण हो और जिस प्रकार से भी चाहे आप अपने मन को नियन्त्रित कर सको।

* भड़कीले दृश्य नहीं देखने चाहिए।

अपने मस्तिष्क को विचारशून्य बनाने का प्रयत्न कीजिए। इसका ज्यादा से ज्यादा प्रयोग कीजिए। इससे आपके चेहरे पर भव्यता आयेगी और शरीर में एक विशेष प्रकार का संतुलन आ सकेगा, साथ ही साथ आपकी स्मरण शक्ति बढ़ जायेगी, मस्तिष्क बलवान होगा, बुद्धि प्रखर होगी, बुरे विचारों का नाश होगा और मन में अच्छे विचारों का प्रादुर्भाव होगा। साधक को इन गुणों को अपनाना अवश्य चाहिए, तभी वह किसी भी साधना में सफल हो सकता और जो भी आन्तरिक अनुभव हो उसे अपनी व्यक्तिगत डायरी में लिखना चाहिए। जीवन में समय का महत्व समझें, साधना के लिए एक–एक क्षण महत्वपूर्ण है साधक से सिद्ध होने के लिए समय का सम्मान करें।

❐

आध्यात्मिक इच्छाशक्ति और आवाहन

हमारा शरीर पंचतत्वों के सूक्ष्म अणुओं से बना है। सम्पूर्ण विश्व पंचतत्वमय है। चित्त के एकाग्र होने पर हमारी आत्मा शरीर के पंचतत्वों के अनुशासन से मुक्त हो जाती है।

दोनों प्रकार के अनुशासनों से मुक्त होने का मतलब है, मानवीय आत्मा से विदेही आत्मा का सम्बन्ध स्थापित होना। यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो आत्मा का आवाहन एक प्रकार से 'टेलीपैथी' के सिद्धान्त पर आधारित है। हम चित्त अथवा मन को एकाग्र कर जिस आत्मा के स्वरूप

का ध्यान करते हैं, उसके पास कुछ खास प्रकार की तरंगे धीरे–धीरे पहुँच जाती हैं और उसी के साथ पहुँच जाती है आवाहन के मूल में काम करने वाली इच्छाशक्ति भी। उस इच्छाशक्ति के गर्भ में तीन वस्तुएँ भी रहती हैं– आत्मा का रूप, आकार और नाम। दोनों तरंगों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर वापस लौट आती हैं और जब वे वापस लौटती हैं तो उनके साथ आत्मा भी खिंची चली आती है, क्योंकि वे तरंगे उसी आत्मा से टकराती है, जिनके नाम रूप और आकार का चिन्तन किया गया होता है। भले ही वह आत्मा समीप हो या हजारों मील पर हो, कोई अन्तर नहीं पड़ता। तरंग का स्पर्श होते ही आत्मा तुरन्त समझ जाती है कि कौन उसे याद कर रहा है या कौन किसलिए उसे बुला रहा है। तरंगे वापसी के समय अत्यन्त तीव्रगामी होती हैं इसलिए आत्मा को आने में देर नहीं लगती। हमारे शरीर में विशेष प्रकार की विद्युत ऊर्जाएँ हैं जिनका मूल उद्‌गम हमारे शरीर में क्रियाशील पंचप्राण हैं। उन्हीं पंचप्राणों के सम्मिश्रण से विशेष प्रकार की वह शारीरिक विद्युत ऊर्जा उत्पन्न होती है जिसका निस्तरण विशेष कर आँखों और हाथ की उँगलियों की शिराओं से होता है। आनेवाली आत्मा की भी अपनी एक विशेष ऊर्जा होती है– जो शारीरिक विद्युत ऊर्जा में मिल जाती है, जिसके फलस्वरूप आवाहन करने वाले की आत्मा से उस अशरीरी आत्मा का अपने आप तादात्म्य स्थापित हो जाता है और वह उँगलियों की शिराओं से प्रवाहित होने वाली विद्युत ऊर्जा के माध्यम से अपना मन्तव्य प्रकट करने लग जाती है अथवा 'माध्यम' के मुँह से बोलने लग जाती है और उसके आदेशों का पालन करने लग जाती है।

यह है यौगिक पद्धति, जिसके अन्तर्गत प्लेनचिट भी आ जाता है। दूसरी पद्धति है तांत्रिक पद्धति। यह पद्धति यावत् तान्त्रिक साधना की मूलभित्ति है। इसमें चित्तशक्ति और मनःशक्ति के अतिरिक्त मन्त्रशक्ति का भी प्रयोग होता है। मन्त्र ध्वनि की अपनी विशेष तरंगें हैं। 'मन्त्रशक्ति' के साथ संकल्पशक्ति और विचारशक्ति का भी संयोजन रहता है इसलिए यौगिक पद्धति में तांत्रिक पद्धति का महत्व अधिक है। इसकी महत्ता इस बात में निहित है कि इसके द्वारा लोक–लोकान्तर के किसी भी स्तर अथवा किसी भी श्रेणी की आत्मा का आवाहन किया जा सकता है। उनसे सभी प्रकार की सहायता ली जा सकती है। आदेश देकर कोई भी कार्य

कराया जा सकता है। यह पद्धति की अपनी विशेष साधना है। सभी के लिए वह साधना सम्भव नहीं है। इसमें पग–पग पर खतरा बना रहता है। तन्त्र शास्त्र में इस पद्धति की साधना को 'पीठ साधना' अथवा 'पीठ सिद्धि' कहते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि आध्यात्मिक इच्छाशक्ति बहुत प्रबल होती है। आध्यात्मिक इच्छा का मतलब है इच्छाशक्ति, संकल्पशक्ति, विचार शक्ति, चित्तशक्ति और मनःशक्ति का समन्वय। इन सभी शक्तियों का जो समन्वय रूप है, उसका नाम है– "आध्यात्मिक शक्ति"। इस शक्ति की तरंगें अत्यन्त शक्तिशाली होती हैं और तीव्र गति से ब्रह्माण्ड के कोने– कोने में पहुँच जाती हैं।

ज्ञानेन्द्रियों से परे एक आयाम– पाठकों को ज्ञात होना चाहिये कि विज्ञान ने एक ऐसे आयाम की कल्पना की है जिसका अस्तित्व हमारी ज्ञानेन्द्रियों से परे है। विज्ञान ने यह भी कल्पना की है हम जिस संसार में रहते हैं उसका आविर्भाव इसके अतिरिक्त आयाम वाले जगत से हुआ था। इस अतिरिक्त आयाम का स्वरूप भले ही भौतिक या अभौतिक रहा हो लेकिन उसी से उन शक्तियों के क्षेत्रों का भी जन्म हुआ जो प्रत्येक जीवित प्राणी–मानव, पशु, वनस्पति आदि के प्रतिरूपों के साँचों की रचना का काम करता है। इन्हीं साँचों में हमारे जगत का सारा पदार्थ संग्रहीत है। ये साँचे ही धरती पर विद्यमान सारे जीवन की व्यवस्था के सिद्धान्तों का निर्माण करते हैं विज्ञान ने प्रत्येक प्राणी में जिस विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र का अनावरण किया है वह इन कल्पित प्रतिरूपों के साँचों की रचना का एक अंग है।

वैज्ञानिक सिद्धान्त को और अधिक स्पष्टता से समझाने के लिये हमें यह मानना होगा कि ब्रह्माण्ड विशुद्ध शक्ति है और पदार्थ, शक्ति है और पदार्थ, शक्ति का घनीभूत रूप है। ऊपर जिन साँचों का उल्लेख किया गया है उनकी सत्ता, पदार्थ की सत्ता से स्वतंत्र है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक प्राणी की प्राकृतिक विशेषताएँ उसके जन्म के समय ही निश्चित हो जाती है। शक्ति क्षेत्रों के प्रतिकार्यों के साँचों की रचना के परिणामस्वरूप जो अतिरिक्त आयामें में हुई, वो दूसरे शब्दों में–हमारा जीवन तथा पृथ्वी पर पाया जाने वाला सारा जीवन इस अदृश्य आयाम में ही रचा गया था। हमारा शरीर अणुओं, परमाणुओं से निर्मित घनीभूत

शक्ति के पिण्डों के अस्थाई निवास के अलावा कुछ और नहीं है। क्या विज्ञान इस प्रकार नियति का समर्थन करता है?

डॉ. स्ट्रोमवर्ग ने इन साँचों की उद्‌गामी शक्ति को 'स्वायत्त क्षेत्रों' की संज्ञा प्रदान की है। उनके इस सिद्धान्त पर आधारित प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि स्वायत्त क्षेत्र कोशिकाओं के विभाग और विकास की चमत्कारी निदेशात्मक प्रक्रियाओं के लिये भी जिम्मेदार है। जिस अभौतिक आयाम से उनका आविर्भाव होता है वह हमारे वर्तमान वैज्ञानिक यंत्रों की पहुँच से बाहर है। उसकी स्थिति अथवा सत्ता विज्ञान की सीमा से परे है और उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। इतना अवश्य सत्य है कि हमारे ज्ञानेन्द्रिय जगत में उसकी अन्तर्व्यष्टि इसी बाहरी आयाम से ही होती है।

विज्ञान के अनुसार जिस जगत में हमारी चेतना की जड़ें काफी गहराई से बैठी हुई है उसे हमारे मस्तिष्क से जोड़ने का काम करती है हमारी स्नायु कोशिकाएँ। मृत्यु के समय हमारे मस्तिष्क क्षेत्र का नाश नहीं होता। वह अपने स्रोत पर पहुँच कर यानी दूसरे आयाम में पहुँच कर अदृश्य हो जाता है चूंकि हमारी स्मृतियाँ इसी शक्ति क्षेत्र में अंकित होती हैं इसलिए हमारा विश्वास है। डा. स्ट्रोमवर्ग कहते हैं कि मृत्यु के बाद भी उन्हें बुलाया जा सकता है। कारण मृत्यु के बाद मन जड़ पदार्थ से अवरूद्ध नहीं रहता। यहाँ यह कहना अनावश्यक न होगा कि जिसे आत्मा का आवाहन कहते हैं वास्तव में वह यही है। ज्ञानेन्द्रियों से परे जिस आयाम की चर्चा की गयी है सच पूछा जाय तो वह आत्मा का लोक अथवा जगत है।

मस्तिष्कीय विद्युत और तांत्रिक मंत्रों का प्रभाव–वशीकरण, सम्मोहन और आकर्षण क्रियाओं से संबंधित यंत्रों का प्रभाव मस्तिष्क की विद्युत शक्ति पर ही पड़ता है। तंत्र विज्ञान के अनुसार सोलह विद्युत केन्द्र हैं। प्रत्येक केन्द्र से स्वतंत्र रूप से विद्युत प्रवाहित होती है। सभी केन्द्रों का विद्युत प्रवाह एक दूसरे से भिन्न है। प्रथम आठ विद्युत केन्द्रों से ऋणात्मक विद्युत और द्वितीय आठ विद्युत केन्द्रों से धनात्मक विद्युत प्रवाहित होती है। दोनों विद्युत प्रवाह एक दूसरे से विपरीत अवश्य हैं, लेकिन जब दोनों आपस में टकराते हैं जिसके फलस्वरूप मस्तिष्क में इच्छा, कामना, भावना और विचार, विवेक, बुद्धि, क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या आदि का आविर्भाव होता है।

तांत्रिक बीजाक्षरों, मंत्रों के अपने विद्युत प्रवाह हैं। जो मंत्र के जप से उत्पन्न होते हैं। मंत्र के जप काल में वे विद्युत प्रवाह संकल्प के अनुसार, मस्तिष्क की विद्युत को प्रवाहित करते हैं। जिसके फलस्वरूप मस्तिष्कीय विद्युत प्रवाह में विश्रृंखलता उत्पन्न होने लग जाती है। जिसके कारण आकर्षण, सम्मोहन, वशीकरण आदि परिणाम सामने आते हैं। संकल्प जितना दृढ़ होगा उतना ही परिणाम भी सामने आएगा। मंत्रशक्ति के साथ संकल्प शक्ति भी अति आवश्यक है। तभी सफलता मिल सकती है अन्यथा नहीं।

क्या मानव अनंत शक्तियों का स्वामी है? हमारे इस देह का स्वामी 'मैं' इस देह के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता बल्कि मरण के बाद, इस देह के विसर्जित हो जाने पर भी, यह अपने सम्पूर्ण पूर्वार्जित ज्ञान और स्मृतियों के साथ जीवित रहता है। आज के वैज्ञानिकों के सम्मुख यह चुनौती है कि वह उस अमर आत्म तत्व का अन्वेषण कर मानव को उसकी अनन्त शक्तियों का स्वामी बनाए। पुराकाल के आध्यात्म योगियों ने जिन सत्यों को अपनी आंतर–समाधि में साक्षात् किया था, आज का वैज्ञानिक उन्हीं को भौतिक विज्ञान से तथ्यों और सिद्धान्तों के रूप में प्रमाणित करने की चेष्टा कर रहा है। योगियों ने शक्ति के परम सूक्ष्म स्वरूप और गतिविधि को जिस प्रकार प्रत्याशित किया था, वैज्ञानिकों द्वारा किया गया शक्ति का आकंलन उससे अधिक भिन्न नहीं है।

योग की उच्चतम् उपलब्धियों की ओर अग्रसर होते–होते हमें पता चलता है कि जीवन का यज्ञ–ऋत, सत्य और यम इन तीन तत्वों पर चलता है। तब हम जीवन को 'जड़' और 'चेतन', इन दोनों क्षेत्रों में फैला देखते हैं। इन दोनों क्षेत्रों की सीमा पर राजस तत्व का अधिकार है। सत् (चेतन) और तम (जड़) क्षेत्रों की सीमाओं पर रजोगुण का साम्राज्य है, जिसके शिथिल होने पर प्रकृति क्रमशः जीवन, शक्ति और विचार में स्खलन को प्राप्त होती है, क्रमशः स्वप्न की शक्लों के जागृत होने पर विलीन होने के समान है।

सारा दृश्य और अदृश्य जगत सूक्ष्म रश्मियों से बना है और इस रश्मि जाल में तीन तत्व सिमटा है, जीवन, शक्ति और विचार। इसे बुनने वाली आत्मा अपने स्वभाव और स्वकर्मानुसार अनेक रूप प्रदान करती है

और उसमें लिप्त हो जाती है। पर जागृत आत्मा स्वकीय प्रेरणानुसार किसी भी देह, पदार्थ या स्वरूप का निर्माण या विलय कर सकती है।

गुह्य विद्या की सर्वाधिक आश्चर्यकारी देन है यह सिद्धान्त कि श्रेष्ठतम् मानव शरीर 'थ्री डाइमेन्शन ऑफ स्पेस' और 'वन डाइमेन्शन ऑफ टाइम' के समानुपातिक विप्रत्यय से आकार ग्रहण करता है। इस सिद्धान्त को भलीभांति समझ कर, आचरण में लेने की स्थिति प्राप्त होने पर मानव अपने शरीर को किसी भी स्थान पर किसी भी दूरी और परिमाण में प्रकट व पुनर्लय कर सकता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार अखिल तथा दीर्घकालीन मेडीटेशन (ध्यान) द्वारा स्वदेह की रक्षा हेतु ब्रह्माण्ड रश्मियों का उपयोग किया जा सकता है। तब उस ब्रह्माण्ड क्षेत्र संयुक्त–स्थित में वह जो भी संयत विचार करेगा, वही ब्रह्माण्ड रश्मियों द्वारा 'कण्डेन्स' होकर आकार, (सूक्ष्म अथवा स्थूल) ग्रहण कर सकेगा और उसे मालूम होगा कि उसका सूक्ष्म शरीर ब्रह्म का एक अनन्त शक्तिमय आविष्कार है,

❑

शिव की कालस्वरूपता

भारतीय दर्शन में 'काल' का महत्वपूर्ण स्थान है। काल संहार का प्रतीक है और काल समय का भी। दोनों में बाह्य दृष्टि से थोड़ा भेद है, किन्तु वास्तव में एकार्थकता भी है। काल समय का प्रतीक होते हुए भी संहार का पर्याय है। काल सबको काटता है। यही कारण है कि व्यवहारिक दृष्टि में समय का प्रतीकत्व स्वीकार करते हुए भी भारतीय कला और दर्शन में काल को अधिकतर संहार और विनाश का ही प्रतीक माना गया है। काल के प्रति यह उभय दृष्टि बहुत प्राचीन है। **'कालो रुद्रः'** वैदिक मान्यता है। माण्डूक्योपनिषद में अग्नि को, जो संहार का प्रतीक है, स्रोत स्फुलिंगों में से एक स्फुलिंग काल कहा गया है। कला में काल का प्रतीक सर्प है और जहां भी काल का प्रदर्शन अभीष्ट होता है, वहां काल की जगह सर्प बताते हैं। विष्णु पुराण के काल–सम्बन्धी विवेचन में कहा गया है कि परमपुरुष, जो सृष्टि का आदि तत्व या परम तत्व है, काल रूप में स्थित है। यही काल सृष्टि रचना का आदिकाल है–

तदेव सर्वमेवैतदव्यक्तस्वरूपवत्।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम्।।

इसी परम पुरुष या तत्व को वैदिकों ने रुद्र कहा और पौराणिकों ने शिव। भगवत का वचन है–

मन्युर्मनुर्महेशानो महान् शिव ऋतुध्वजः।
उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः।।

(भागवत 3,12, 12)

ऋषियों ने काल और शिव में भेद समझ कर शिव को काल से भी महान माना है। अतएव नटराज आदि को प्रतिमाओं में काल (सर्प) शिव का वलय है। पौराणिक कथाओं में भी शिव को, भुजंग को भूषण माना गया है किन्तु इस परम्परा के साथ ही साथ शिव को काल का ही स्वरूप भी स्वीकार किया गया। ज्योतिषशास्त्र में शिव को कालपुरुष कहा गया है किन्तु वामन पुराण में जिसके अंगोपांगों का क्रमानुसार

वर्णन नक्षत्रों और राशियों के नामों के आधार पर किया गया है। समय या काल के सूक्ष्म विवेचन में 'दण्ड मुहूर्त, प्रहर, दिन, रात्रि, पक्षअयन, वत्सरादि है किन्तु शिव की कालस्वरूपता का विवेचन केवल नक्षत्र के आधार पर ही शास्त्रों में मिलता है।

कालरूपी शिव का वर्णन वामन पुराण में विस्तार के साथ है तथा शिव में ही नक्षत्र, उसके देवता तथा उसकी राशियों में अन्तर्भूत माना गया है। वामन पुराण के आधार पर शिव की कालस्वरूपता का परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

शिव के मस्तक में आश्विनी, भरणी और अर्द्धकृत्तिका का समावेश है। इन नक्षत्रों के देवता मंगल भी शिव के अंश हैं। मेष राशि का स्थान भी शिव का मस्तक है।

कृतिका का शेष अंश, रोहिणी और मृगशिरा के अंश से शिव का मुख निर्मित है। इन नक्षत्रों के देवता शुक्र और राशि वृष का वास भी शिव के ही मुख में रहता है।

मृगशिरा का शेषांश सम्पूर्ण आर्द्रा और पुनर्वसु के कुछ अंश शिव के वक्ष में समाहित हैं तथा शिव के वक्ष में ही इन नक्षत्रों के देवता बुध और राशि मिथुन की प्रतिष्ठा है।

शिव के हृदय में पुनर्वसु का शेषांश, पुष्य और अश्लेषा का कुछ अंश स्थित है। इन नक्षत्रों के देवता चन्द्र और राशि कर्क का स्थान भी शिव का हृदय ही है।

शिव के उदर का अंश मघा, पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी से बना है और इन नक्षत्रों के स्वामी रवि तथा राशि सिंह का निवास भी शिव का उदर है।

शिव के कटि स्थान में उत्तरा फाल्गुनी, हस्त और चित्रांश का स्थान है उनके देवता बुध और राशि कन्या का भी यही स्थान है।

चित्रा का शेषांश स्वाती और विशाखा के कुछ अंशों से शिव की वस्तिका का निर्माण है और देवता शुक्र तथा राशि तुला का स्थान भी शिव की वस्ति है।

लिंगप्रदेश विशाखा के अंश तथा अनुराधा और ज्येष्ठा के अंश से बना है। दोनों नक्षत्रों के देवता मंगल और राशि वृश्चिक् भी शिव के लिंगवत् हैं।

मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ के कुछ अंश से शिव की जंघा बनी और शिव की जंघा में ही देवता, गुरु तथा राशि धनु का निवास है।

जानुप्रदेश में उत्तराषाढ़ का शेषांश, श्रवण और धनिष्ठा का कुछ अंश है। इसी स्थान पर इन राशियों के देवता शनि और राशि मकर का स्थान है।

धनिष्ठा के कुछ अंश शतभिषा और पूर्वभाद्र के कुछ अंश में शिव की पिंडली बनी है, इसके देवता शनि और राशि कुम्भ भी शिव की पिंडली में ही समाविष्ट है और शेष नक्षत्रों पूर्व भाद्रपद का शेषांश, उत्तर भाद्रपद और रेवती तथा इनके देवता, गुरु और राशि मीन का स्थान शिव का चरण है।

शिव की कालस्वरूपता का यह स्थूल विवरण पुराण और ज्योतिष शास्त्र में बड़ा लोकप्रिय हुआ। मार्कण्डेय पुराण में इसी आधार पर नारायण की भी कालस्वरूपता बताने की चेष्टा की गयी है। ज्योतिष के प्रायः सभी जातक सम्बन्धी ग्रन्थों में इसी आधार पर कालपुरुष की कल्पना और विवेचना की गयी है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह कल्पना कितनी पुरानी है, कहा नहीं जा सकता। किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है जब भारत में नक्षत्रों के आधार पर राशियों का विभाजन कर लिया गया तथा वर्ष गणना अश्वनी भरणी से करना प्रारम्भ कर दिया तभी से अन्दर ही विभिन्न राशियों और नक्षत्रों को समाहित माना जाने लगा होगा। कुछ विद्वानों का मत है कि वैदिक वर्ष गणना वृत्तिका से प्रारम्भ होती थी और बाद में आज की तरह अश्वनी भरणी से वर्ष गणना होने लगी। बहुत सम्भावना इस बात की है कि यह अनार्य तत्व के रूप में वर्तमान रही हो और चूंकि लोकजीवन में और अवैदिक लोकाचार में अश्वनी भरणी के ही आधार पर वर्ष गणना होती रही अतएव बाद में वैदिकों ने भी अश्विनी के ही आधार पर वर्ष गणना उपयोगी समझा हो। यह स्थिति सम्भवतः (ज्योतिषियों के गणनानुसार भी) ई0पू0 500 के

लगभग आयी होगी और तभी नक्षत्रों और राशियों में सामंजस्य बैठाया गया हो। इसके पूर्व नक्षत्र, वैदिक तत्व था और राशि लोक तत्व।

'अग्रौ प्रसष्टे यज्ञोपिभूत्वादिव्यवपुर्मृगः'

शिव का आध्यात्मिक स्वरूप– शिव की महिमा अनंत है। उनके रूप, रंग और गुणं अनन्य हैं। समस्त सृष्टि शिवमय है। सृष्टि से पूर्व शिव हैं और सृष्टि के विनाश के बाद केवल शिव ही शेष रहते हैं। ऐसा माना जाता है कि ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की, परन्तु जब सृष्टि का विस्तार संभव न हुआ तब ब्रह्म ने शिव का ध्यान किया और घोर तपस्या की। शिव अर्द्धनारीश्वर रूप में प्रकट हुए। उन्होंने अपने शरीर के अर्द्धभाग से शिव (शक्ति या देवी) को अलग कर दिया। शिव को प्रकृति, गुणमयी माया तथा निर्विकार बुद्धि के नाम से भी जाना जाता है। इसे अम्बिका सर्वलोकेश्वरी, त्रिदेव जननी नित्य तथा मूल प्रकृति भी कहते हैं। इनकी आठ भुजाएँ तथा विचित्र मुख हैं। अचित्य तेजोयुक्त यह माया संयोग से अनेक रूपों वाली हो जाती है। इस सृष्टि की रचना के लिए शिव दो भागों में विभक्त हो गए, क्योंकि दो के बिना सृष्टि की रचना असंभव है। शिव सिर पर गंगा और ललाट पर चन्द्रमा धारण किए उनके पाँच मुख पूर्वा, पश्चिमा, उत्तरा, दक्षिणा तथा ऊर्ध्वा जो क्रमशः हरित, रक्त, धूम्र, नील और पीत वर्ण के माने जाते हैं। उनकी दस भुजाएँ हैं और दसों हाथों में अभय, शूल, वज्र, टंक, पाश वज्र, टंक, पाश, अंकुश, खड्ग, घंटा नाद और अग्नि आयुध हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वह त्रिशूलधारी, प्रसन्नचित, कर्पूर गौर भस्मसिक्त कालस्वरूप भगवान हैं। उनकी भुजाओं में तमोगुण नाशक सर्प लिपटे हैं। शिव पांच तरह से कार्य करते हैं जो ज्ञानमय हैं। सृष्टि की रचना करना, सृष्टि का भरण–पोषण करना, सृष्टि का विनाश करना, सृष्टि में परिवर्तनशीलता रखना और सृष्टि से, मुक्ति से मुक्त प्रदान करना। कहा जाता है कि सृष्टि संचालन के लिए शिव आठ रूप धारण किए हुए हैं। चराचर विश्व को पृथ्वी रूप धारण करते हुए वह शर्व अथवा सर्व हैं। सृष्टि को संजीवन रूप प्रदान करने वाले जलमय रूप में वह भव हैं। सृष्टि के भीतर और बाहर रहकर सृष्टि स्पंदित करने वाला उनका रूप उग्र है। सबको अवकाश देने वाला, नृपों के समूह का भेदक सर्वव्यापी उनका आकाशात्मक

रूप भीष्म कहलाता है। सम्पूर्ण आत्माओं का अधिष्ठाता संपूर्ण क्षेत्रवासी, पशुओं के पाश को काटने वाला शिव का एक रूप पशुपति है। सूर्य रूप से आकाश में व्याप्त समग्र सृष्टि में प्रकाश करने वाले शिव स्वरूप को ईशान कहते हैं। रात्रि में चन्द्रमा स्वरूप में अपनी किरणों से सृष्टि पर अमृत वर्षा करता हुआ सृष्टि को प्रकाश और तृप्ति प्रदान करने वाला उनका रूप महादेव है। शिव का जीवात्मा रूप रूद्र कहलाता है। सृष्टि के आरम्भ और विनाश के समय रुद्र ही शेष रहते हैं। सृष्टि और प्रलय, प्रलय और सृष्टि के मध्य नृत्य करते हैं। जब सूर्य डूब जाता है, प्रकाश समाप्त हो जाता है, छाया मिट जाती है और जल नीरव हो जाता है उस समय यह नृत्य आरंभ होता है। तब अन्धकार समाप्त हो जाता है और ऐसा माना जाता है कि उस नृत्य से ही आनंद उत्पन्न होता है वही ईश्वरी आनंद है। शिव, महेश्वर, रुद्र, पितामह, विष्णु, संसार वैद्य सर्वज्ञ और परमात्मा उनके मुख्य आठ नाम हैं। तेइस तत्वों से बाहर, प्रकृति से बाहर पुरुष और पुरुष से बाहर होने से वह महेश्वर हैं। प्रकृति और पुरुष शिव के वशीभूत हैं। दुःख तथा दुःख के कारणों को दूर करने के कारण वह रुद्र कहलाते हैं। जगत के मूर्तिमान पितर होने के कारण वह पितामह, सर्वव्यापी होने के कारण विष्णु, मानव के भव रोग दूर करने के कारण संसार वैद्य और संसार के समस्त कार्य जानने के कारण सर्वज्ञ हैं। अपने से अलग किसी अन्य आत्मा के अभाव के कारण वह परमात्मा है। कहा जाता है कि सृष्टि के आदि में महाशिवरात्रि के मध्य रात्रि में शिव का ब्रह्म से रुद्र रूप से अवतरण हुआ, इसी दिन प्रलय के समय प्रदोष स्थिति में शिव ने ताण्डव नृत्य करते हुए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने तीसरे नेत्र की ज्वाला से नष्ट कर दिया। इसीलिए महाशिवरात्रि अथवा कालरात्रि पर्व के रूप में मनाने की प्रथा का प्रचलन है।

रुद्राभिषेक का शास्त्रीय स्वरूप- पंच तत्व से बने इस मानव शरीर में कभी–कभी कुछ विसंगतियों के कारण रोगों का प्रादुर्भाव हो जाता है और ये रोग मानव के इस सुन्दर कार्यों को घुन की तरह अन्दर ही अन्दर निर्बल कर देते हैं। कुछ बीमारियाँ कुछ ही दिनों में ठीक हो जाती हैं लेकिन कुछ रोग शरीर में अपना घर बना लेते हैं। अच्छा इलाज करवाने के बावजूद रोग नहीं जाता है। ऐसे में यह प्रयोग आपके लिए रामबाण सिद्ध हो सकता है।

भगवान रुद्र को मृत्युभय मुक्तिदाता कहा जाता है अर्थात् मृत्यु के भय को दूर करने का सामर्थ्य भगवान रुद्र रखते हैं। वह भौतिक कष्टों का निवारण भी करते हैं। शारीरिक कष्टों और रोगों को दूर करने वाले रूद्र, सुन्दर, स्वरूप और निरोगी शरीर प्रदान करते हैं।

यदि कोई भी व्यक्ति शारीरिक कष्ट से परेशान और रोग युक्त है, दवाओं और औषधियों का असर नहीं हो रहा है, तो भगवान रूद्र की शरण में जाकर देखें। परमात्मा आपको निराश नहीं करेगा। रोगी की स्थिति चिन्ताजनक हो या वह मरणासन्न हो, ऐसी स्थितियों में भी यह प्रयोग सफल हो सकता है। इसका फायदा अवश्य मिलता है। इसे प्रयोग कर देखें। इसके लिए साधना के प्रति आपके मन में विश्वास होना चाहिए। रूद्र प्रयोग बीमारियों को दूर करने में अचूक माना जाता है। इसके लिए निम्न मंत्र उपयोग में लाया जाता है। इसका शुद्धता से उच्चारण करें।

ध्यान– **भगवान देव–देवरा झूल–मद वृषवाहन। इष्टानिष्टे समाचक्ष्य मम सुप्तस्य शाश्वते।। ऊँ नमो जाय त्रिनेत्राय पिंगलाय महात्मने। बामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः।। स्वप्नं कश्य मे तुभ्यं सर्व कार्येष्वशेषतः।। क्रिया सिद्धि विधास्यामित्वत्प्रसादान्महेश्वर।।**

"रुतं हरति पापात् निवारयति स रुद्रः" रोगों का हरण करने वाला, पापों का निवारण करने वाला अर्थात् पापों से हटाने वाला नाम ही रुद्र है। वैसे रुद्राभिषेक एक ऐसा बहुविश्रुत शब्द है जिसका अर्थ प्रायः सभी जानते हैं। रुद्राभिषेक का अर्थ है भगवान रुद्र का अभिषेक करना। रुद्राभिषेक क्यों करना चाहिए। इस बात को स्पष्ट करने हेतु **"कुर्यात् रुद्राभिषेकं च प्रीतये शूलपाणिनः"** के अनुसार शूलपाणि भगवान शंकर की प्रसन्नता हेतु रुद्राभिषेक करना चाहिए। भगवान शंकर का एक नाम आशुतोष है। गोस्वामीजी भी लिखते हैं **आशुतोष तुम अवढर दानी।** आशुतोष शब्द का अर्थ होता है आशु–शीघ्र, तोष–प्रसन्न होने वाला अर्थात् शीघ्र प्रसन्न होने वाले का नाम आशुतोष है। भगवान शंकर की प्रसन्नता हेतु अभिषेक करना चाहिए क्योंकि **"नमस्कार प्रियो भानुः जलधारा प्रियो हरः। प्रणिपातप्रियो विष्णुः ब्राह्मणो मधुरप्रियः"।।** इस श्लोक से यह सिद्ध हो रहा है कि भगवान शंकर को अभिषेक प्रिय हैं।

"रुद्राभिषेकं प्रकुर्वन्ति दुःखनाशो भवेद् ध्रुवम्" के अनुसार रुद्राभिषेक से निश्चित दुःख का नाश होता है। रुद्राभिषेक के रुद्रपाठ पर्यन्त जलधारा शिवलिंग पर गिरती रहती है। रुद्र पाठ पांच प्रकार का होता है। रुपक, खड्ग, रुद्र, महारुद्र और अतिरुद्र। पाठ संख्या के अनुसार रुद्र के पाठ भेदों का निरूपण किया गया है। षडङ्ग को रूपक कहा गया है। इस प्रकार रुद्रभेद के अनन्तर विभिन्न कामनाओं की प्राप्ति हेतु संख्या का निरूपण शास्त्रों में किया गया है। **"बालग्रहाणामुपशान्त्यर्थं पंचावृत्तिं कुर्यात्"** के अनुसार बालकों के ग्रहादि दोषों के निवारणार्थ रुद्री का पांच बार आवर्तन करना चाहिए। उपसर्गादि दोषों की शांति हेतु तीन आवृत्ति करने का विधान है। सभी रोगों के लिए ग्रह संबंधी कष्टों के निवारण हेतु पांच आवृत्ति करनी चाहिए। महाभय की अगर प्राप्ति हो गई है तो उसके निवारणार्थ सात आवृत्ति करने का विधांन, यशादि की प्राप्ति के लिए एकादश आवृत्ति का विधान दिया गया है। राज्यभय के विनाश हेतु, अल्पमृत्यु के योग के विनाश हेतु, आरोग्य प्राप्ति हेतु, श्री एवं धन समृद्धि हेतु महारुद्राभिषेक करना चाहिए। असाध्य साधन हेतु महारुद्र का त्रिरावर्तन कराना चाहिए। इसके अलावा रुद्राभिषेकीय द्रव्य क्या होना चाहिए? इस विषय में भी शास्त्रीय विधान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। व्याधि शांति हेतु कुशोदक से अभिषेक करना चाहिए। भूमि इत्यादि की कामना हेतु दधि से अभिषेक करना चाहिए। 'श्री' प्राप्ति हेतु ईख के रस से रुद्राभिषेक करना चाहिए। धनार्थी को मधु तथा अनाज से अभिषेक करना चाहिए। मोक्ष प्राप्ति की कामना रखने वाले लोगों को तीर्थ जल से अभिषेक करना चाहिए। पुत्र प्राप्ति हेतु दुग्ध से अभिषेक करना चाहिए। स्त्रियों के तीनों दोषों को दूर करने हेतु भी दुग्ध से अभिषेक करने का विधान है। स्त्रियों के तीन दोष बन्ध्या, काकबन्ध्या और मृतवत्सा है। बन्ध्या वह स्त्री है जिसे पुत्रोत्पत्ति की शक्ति नहीं होती। काकबन्ध्या वे स्त्रियां हैं, जिनके पास फूल ही नहीं आते तथा मृतवत्सा वे स्त्रियां हैं, जो पुत्रों को उत्पन्न तो कर देती है परन्तु वे पुत्र जीवित नहीं रह पाते अथवा गर्भ में ही शिशु की मृत्यु हो जाती है।

बन्ध्या वा काक बन्ध्या वा मृतवत्सा च यांङ्गना। सद्यः पुत्रमवाप्नोति पयसां चभिषेचनात्।। के अनुसार दुग्ध से अभिषेक इस प्रकार के दोषों

के निवारण हेतु भी करना चाहिए। ज्वरादि प्रकोप के शांति हेतु जलधारा से अभिषेक करना चाहिए। प्रमेह रोग की शांति तथा मनोभिलाषित की प्राप्ति हेतु घृतधारा से अभिषेक करना चाहिए। वंश विस्तार हेतु भी घृतधारा अथवा दुग्धधारा से अभिषेक करना चाहिए। पाप का क्षय चाहने वाला मधु से अभिषेक करें तथा समस्त प्रकार के व्याधियों से मुक्त होने हेतु पीली सरसों के तेल से अभिषेक करना चाहिए। जीवन चाहने वाले दुग्ध से तथा सन्तान चाहने वाले को शर्करा के रस से अभिषेक करना चाहिए। शंकर भगवान का अभिषेक गवय श्रृंग से कराना चाहिए।

शिवं गवय श्रृंगेण केशवं शंखवारिणा। विघ्नेशं ताम्रपात्रेण स्वर्णेन जगदम्बिकाम्।। औपासनं यदि कृतं हयमेधतुल्यं वासस्त्रिरात्रमिह गाङ्गतटेऽत्रिकल्पः। एकेन श्रृंगसलिलेन कुताभिषेको मध्वाज्य-दुग्धघटकोटिमितेन तुल्यः।।

भगवान विष्णु का शंख के जल से, गणेश भगवान का ताम्र पात्र से तथा जगदम्बिका का स्वर्ण से अभिषेक करना चाहिए। यह शास्त्रोक्ति है परन्तु गवय श्रृंङ्ग की अनुपलब्धता को देखते हुए तदनुरूप श्रृंङ्गी का ताबें के धातु से निर्माण करके रुद्राभिषेक किया जाता है।

अतः रुद्राभिषेक का मानव जीवन की सफलता में बहुत बड़ा अवदान है। व्यक्ति जीवन में आने वाली बाधाओं के कारण संघर्ष करता हुआ जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है। ऐसे में इष्टदेव का सहारा मिल जाता है तब कहना ही क्या? इस प्रकार रुद्राभिषेक से मानव जीवन के रोगों, दोषों एवं पापों का निवारण होता है।

महामृत्युञ्जय रहस्य-शिवरात्रि का अर्थ है वह रात्रि, जिसका शिव तत्व के साथ घनिष्ठ संबंध है। यह रात्रि भगवान शिव को अत्यन्त प्रिय है। इसके अलावा शिवार्चन और जागरण ही इस व्रत की विशेषता है। फाल्गुन के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी शिवरात्रि कहलाती है।

महाशिवरात्रि का पर्व शिव के अवतरण का मंगलसूचक है। उनके निराकार से साकार रूप में अवतरण की रात्रि महाशिवरात्रि कहलाती है। इस अवसर पर मृत संजीवनी साधना की जाती है। मृत संजीवनी साधना यानी जीवन प्रदान करने वाली साधना। मृत्यु तो एक दिन सबंकी होती है। जो इस जगत में आया है, उसे जाना है। यह साधना असयम

मृत्यु से बचाती है। इस साधना को करने से अकाल मृत्यु को रोका जाता है। स्वस्थ मन और स्वस्थ तन ही वास्तविक धन है। इसकी रक्षा के लिए प्राचीन समय में संत ऋषि कई तरह की साधना किया करते थे। अकाल मृत्यु और रोगों से बचाने के लिए मृत संजीवनी साधना अमृत तुल्य है। वेदों में कहा गया है।

उद्यानं ने पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतार्ति कृणोमि।
आ हि रोहेमममृतं सुखं रथमक जीविर्विदथमा वदासि।।

अर्थात् हे मनुष्य उन्नति कर, अवनति मत कर इसके लिए तुझे जीवन और बल प्रदान करता हूँ। तेरा यह उत्तम शरीर रूपी रथ, तेरे लिए अमरत्व प्रदायक है। इस शरीर के रहते ही तुम अमरत्व प्राप्त करो।

मृत्यु संजीवनी साधना नामक यह प्रयोग जीवन में स्वास्थ्य से संबंधित सभी तरह की समस्याओं को दूर करने वाली है। विभिन्न शारीरिक व्याधियों एवं बाधाओं को दूर करने वाला है।

मृत्यु संजीवनी साधना ही महामृत्युजंय साधना है। इसका विविध प्रयोग दिया जा रहा है।

मृत्युंजय मन्त्र के विविध जप- मुख्य मृत्युंजय मन्त्रों में शामिल होने के कारण आजकल इस मूल त्र्याम्यक मंत्र को ही असली महामृत्युंजय समझने की भूल की जा रही है जो भ्रम पैदा हो रहा है महामृत्युंजय मन्त्र के विभिन्न प्रयोग हैं जो क्रमशः दिया जा रहा है। नीचे दिये गये मन्त्र को आप अपनी नित्य पूजा में सम्मिलित कर सकते हैं। स्वास्थ्य रक्षा, श्रीवृद्धि और आयु रक्षा होगी।

ऊँ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।।

मृत्युंजय मन्त्र के मुख्य तीन रूपों में पहला मृत्युंजय नाम से जाना जाता है। यह साधारण रोग, शोक में खासतौर से कारगर है।

ऊँ भूः ऊँ भुवः ऊँ स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।
ऊँ स्वः ऊँ भुव ऊँ भूः ऊँ।।

दूसरा मृतसंजीवनी मन्त्र अपने नाम के अनुरूप ही शरीर को लगातार कमजोर करने वाले रोगों की शान्ति और जटिल रोग की पहचान कराने में मददगार साबित होता है। रोगी या अतिवृद्धजन को असहनीय कष्ट

हो और शरीर छूटने में अनावश्यक देरी हो रही हो तो भी यह मंत्र सहायक होता है। यह बहुप्रचलित रूप है।

वास्तविक महामृत्युंजय मन्त्र यह है–

ऊँ हौं ऊँ जूं ऊँ सः ऊँ भूः ऊँ भुवः ऊँ स्वः ऊँ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।।

ऊँ स्वः ऊँ भुव ऊँ भूः ऊँ सः ऊँ जूं हौं ऊँ।।

मृतसंजीवनी या महामृत्युंजय मन्त्र का विधान रोग या मुसीबत की गंभीरता के अनुसार एक करोड़ से एक लाख तक हो सकता है।

मृत्युंजय के अन्य रूप– जब शरीर में विषैले विजातीय पदार्थ जमा होकर रोग पैदा करें तो इससे अभिमंत्रित जल का सेवन करें–

ऊँ जूं सः पालय पालय।।

अनिष्ट की आशंका (अनिष्ट आने पर नहीं) होने पर इस मंत्र को रोज जपें– **ऊँ जूं सः सः जूं ऊँ।।** शरीर में रक्त प्रवाह धीमी हो या वात रोग हो तो यह मंत्र लाभकारी है–

ऊँ हौं जूं सः।।

जिगर की खराबी से उत्पन्न परेशानी में यह मंत्र नियमित जपें–

ऊँ वं जूं सः।।

अथवा रोजाना इस मंत्र का जप किया करें–

ऊँ मृत्युंजयाय रुद्राय नीलकण्ठाय शम्भवे।
अमृतेशाय सर्वाय महादेवाय ते नमः ऊँ।।

उक्त चारों में से किसी एक मंत्र को रोजाना 108 बार जपने और भगवान शंकर का पूजन करने से समस्त रोग ग्रह आदि दोष नष्ट होते हैं और दिव्यता व शान्ति प्राप्त होती है।

हवन सामग्री लाभ- घी–आयु रक्षा। घी लगी आक की लकड़ी या पत्ते–सब रोग शांति। दूध में डूबे आम के पत्ते–जटिल बुखार की शांति। शहद में घी मिलाकर–मधुमेह शांति। गूलर समिधा, आँवले या काले तिल–शरीर के दर्द। भांग, धतूरा या आक–मनोरोग। ढाक के पत्ते–नेत्र रोग। कन्द या कोई फल–गर्भगत शिशुविकार। साबुत मसूर, शहद घी, शक्कर, मुंह के रोग। बेल पत्ते या फल–पेट के रोग। घी लगी दूब–महारोग। बेलगिरी, आँवला, सरसों, तिल सर्वरोग शान्ति।

***

माँ दुर्गा रहस्य

भारतीय धर्मशास्त्र में कल्पना नारी शक्ति रूप में की गयी है। इसी कारण प्रस्तर–कला में प्रत्येक देवता के साथ नारी मूर्ति भी अंकित की जाने की प्रथा है। इसी देवी–मूर्ति को सुप्रभेदागम में आदि शक्ति कहा है।

भारतीय धर्मशास्त्र में शक्ति की पूजा अनेक प्रकार से प्रचलित है। शक्ति की अवस्था क्रिया कार्य विशेष के ही अनुरूप उनके नाम भेद हैं। महिषासुर को नष्ट करने वाली देवी महिषासुर मर्दिनी हुई। अन्धकार को नष्ट करने वाला सूर्य रश्मि का नाम उषा पड़ा। विशिष्ट कार्यो के सम्पादन से ही महालक्ष्मी, महारसस्वती एवं महाकाली नाम पड़ा।

शक्ति का सबसे अधिक सम्बन्ध शिव से है। शैव शक्तियाँ ही दुर्गा नाम से जानी जाती है। चण्डी अथवा दुर्गा के अनुष्ठान में नव दुर्गा (नवकुमारियों) का पूजन भी प्रचलित है। मन्त्र महोदधि के अनुसार दो से नव वर्ष तक की कुमारी बालिकाओं के पूजन का विधान है। जिन नामों से कुमारी पूजन सम्पन्न करने का विधान है, वह इस प्रकार है कुमारी, विधा, अथवा त्रिमूर्ति कल्याणी, रोहिणी, कालिका, शाम्भवी, दुर्गा, चण्डिका, सुभद्रा (दो से नव वर्ष तक की आयु वाली कुमारियों के क्रमिक नाम)। रुद्रयामल तन्त्र ग्रन्थ में एक वर्ष से सोलह वर्ष तक की कुमारियों का उल्लेख हुआ है जिनके नाम वय इस प्रकार हैं–

1 वर्ष की कन्या – सन्ध्या, 2 वर्ष की कन्या – सरस्वती, 3 वर्ष की कन्या – त्रिधा मूर्ति, 4 वर्ष की कन्या – कालिका, 5 वर्ष की कन्या – सुभगा, 6 वर्ष की कन्या – उमा, 7 वर्ष की कन्या – मालिनी, 8 वर्ष की कन्या – कुलजा, 9 वर्ष की कन्या – काल सन्दभा, 10 वर्ष की कन्या – अपराजिता, 11 वर्ष की कन्या – रुद्राणी, 12 वर्ष की कन्या – भैरवी, 13 वर्ष की कन्या – लक्ष्मी, 14 वर्ष की कन्या – महालक्ष्मी, 15 वर्ष की कन्या – क्षेत्रशा, 16 वर्ष की कन्या – अम्बिका।

अर्थात् संग्रह करके, क्रमशः प्रतिपदा से पूर्णिमा तक वृद्धि भेद पूजन करना। अन्यान्य तन्त्र ग्रन्थों में कुमारी संख्या एवं उनके वय के अनुसार उनके नामकरण पर विशद विवरण प्राप्त होते हैं, यथा–

कुमारी (5 से 12 वर्ष तक), कुलजा (8 से 13 वर्ष तक), युवती (10 से 16 वर्ष तक) – देवता रूप में इनका चिन्तन अभीष्ट है। 6 से 9 वर्ष की कन्या का पूजन अभीष्ट फलदायक कहा है।

कुमारी लक्षण : पूजन हेतु कुमारी को 11 दोषों से विहीन होना चाहिये यथा हीनाङ्गी, अधिकांङ्गी, घृणित, चर्मरोगादि, नेत्र दोष, कुरूपा, कुबड़ी, अधिक रोम से युक्त तथा दासी उत्पन्न।

कुमारी पूजन रहस्य–कुमारी पूजन में किसी भी प्रकार का जाति–भेद वर्जित है। अभीष्ट फल प्राप्ति के लिए बाधक है। सम्भवतः इसी कारण चातुर्वर्ण के आधार पर ही अलग–अलग जाति की कन्याओं के पूजन के भी अलग–अलग फल बताये गये हैं, यथा, सम्पूर्ण मनोरथ सिद्धि के लिए ब्राह्मण कुमारी, यश प्राप्ति के लिए क्षत्रिय कुमारी, धन के लिए वैश्य एवं पुत्र की कामना करने वाले के लिए शूद्र कुमारी के पूजन का विधान बताया गया है। किसी भी प्रकार का संशय, घृणा अथवा भेदाभेद दृष्टि साधन मार्ग से श्रेयस्कर नहीं है।

योगिनी तन्त्र के अनुसार वह कुमारी, सर्व विद्यास्वरूपिणी है। जहाँ कुमारी पूजा होती है वह पृथ्वी पर परम पावन स्थल है और उसके चतुर्दिक पाँच कोस तक का क्षेत्र परम पवित्र है।

तन्त्र ग्रन्थों के ही अनुसार पुण्य मुहूर्त में मुख्य–मुख्य पत्रों पर और विशेष रूप में रामनवमी तिथि को कुमारी पूजन करना चाहिये–विधिवत्। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, भक्ष्य, भोज्य, एवं सुन्दर वस्त्रभरण से पूजन करने वाला मन्द भाग्य व्यक्ति भी सर्वमंगल को प्राप्त करने वाला होता है। नैवेद्य, बाल–प्रिय होना चाहिये। पूजन नाम बीज मन्त्रों के उच्चारण (कुमारी के लिए कुमार्ये नमः त्रिमूर्ति के लिए त्रिमूर्यै नमः आदि) से ही करना विधि सम्मत है। तत्पश्चात् आवाहन मन्त्रों से उनका विधिवत् आवाहन करना चाहिये। कन्याओं को ही सबसे बड़ी समृद्धि एवं सर्वोत्तम तप कहा है। कुमारी पूजन सम्पूर्ण कर्मो का फलदायक है।

तन्त्र ग्रन्थों के अनुसार एक कुलीन पण्डित द्वारा कन्या को श्रद्धा भक्ति से अर्पित पुष्पांजलि के पुष्प कोटि–कोटि सुवर्णप्रिय मेरु–पर्वत के सदृश्य हो जाते हैं। श्रीलक्ष्मी, सम्मान, सरस्वती, पृथ्वी, एवं महान तेज का अधिकारी बनता है। भय, दुर्भिक्ष, दुर्मृत्यु दुःस्वप्न, आदि अनेकानेक बाधाओं का शमन हो जाता है अतः यह पूजा नित्य प्रतिदिन की जाय तो उत्तम है।

पूजित कुमारियाँ भय और विघ्न का नाश करने वाली तथा शत्रुओं

का नाश करने वाली होती है। कन्या पूजन करने वाले पर ग्रहादि, भूत–प्रेतादि, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, डाकिनी, शाकिनी एवं नागादि देवगण प्रसन्न होते हैं। भूः भुवः स्वः एवं पृथ्वी आदि सर्वभूत तथा ब्रह्माण्ड युक्त ब्रह्मा, विष्णु, शिव सदा अनुग्रह करते हैं।

जगन्माता का स्वरूप–सर्व शक्तिमयी माँ विधि रूपों से कृपा करती है–

जननी जन्मकाले च स्नेहका लेच कन्यका।
भार्या भागाय सम्पृक्त्या अन्तकाले च कालिका।।
एकैव कालिका देवी विहरन्ति जगत्राये।

जगन्माता वस्तुत जगद्धात्री है। माता का स्वाभाविक गुण (स्वभाव) ही है शिशु को दुग्ध (स्तन) पान कराना, उसका पालन पोषण करना। वह जगत को जलरूप दुग्ध ही तो पिलाती है। यही उसकी अमृत वर्षा है। पर्वत ही उसका पिता है अतः उसका नाम हुआ पार्वती गिरिजा। ऋग्वेद में भी गौरी रूप में जलदुग्ध का जगत को पान कराने की प्रार्थना की है– **गौरीमिमाय सलिलानि तक्षती।।** –ऋग्वेद 2/3/22

अर्थात गौरी रूप से ही प्राणिमात्र को दुग्ध रूपी जल का पान कराने वाली है वह माँ जगन्माता।

साधकगण उस महाशक्ति की साधना में उसे जगद्धात्री, जगन्माता से माँ अथवा (आदर भाव से) कन्या रूप में ही सम्बन्ध स्थापन करते हैं अतः सर्वोत्तम सत्वगुण शक्ति का पूजन ही कुमारी पूजन है। दोनों नवरात्रों (चैत्र एवं आश्विन) में अष्टमी के दिन कुमारी रूप में देवी या चण्डी पूजन करना युक्ति–युक्त है। देवी ही शक्ति रूपा है। वही शक्ति है जिसके अभाव में शिव भी शव समान है। दुर्गा सप्तशती में भी संकेत हुआ है–"कुमारी परिपूजयेत।"

शक्ति के स्वरूप– शुम्भ निशुम्भ वध प्रकरण में देवी ने कहा है–

एकैवाहं जगत्यत्रा द्वितीया का ममापरा।
पश्चैता दुष्ट मथ्यैव विशन्त्यो युद्विभूतया।।

अर्थात् मेरे सिवा इस जगत में और कौन है? अन्य भासने वाली यह समस्त देवियाँ मेरी ही विभूतियाँ हैं। तो फिर ब्रह्म, विष्णु, महेश का अस्तित्व कहाँ है? समाधान यही है कि उपासक की अपनी चाह है कि वह पिता को प्रधान रखकर उपासना करे अथवा माता को प्रधानता दे। साधक की अन्तःप्रवृत्ति पर यह निर्भर है परन्तु फल हर हालत में एक ही

है। ध्यान में यही रखना है कि उपास्य देवी को वह माँ ही समझे—मात्र जड़ प्रकृति मायारूपिणी ही नहीं। उसे अचिन्त्य शक्ति का अनुभव करते हुए सर्वदा यही विचार सर्वोपरि रखे कि वह सर्वरूप से, सब में और सर्वकाल व्याप्त है—

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता, या देवी सर्वभूतेषु चैतनेत्यभिश्रीयते, या देवी सर्वभूतेषुबुद्धिरूपेण संस्थिता, ज्ञानरूपेण संस्थिता, शक्तिरूपेण संस्थिता, मोहरूपेण संस्थिता, लज्जारूपेण संस्थिता, मातृ रूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।

इंगित किया जा चुका है कि देवी ही शक्ति है। हमारी सांस्कृतिक मान्यता है यह। आधुनिक विज्ञान भी अब किसी सनातन शक्ति को ही समस्त विश्व (बाह्य प्रपंच) का मूल कारण मानता है। शक्ति की नित्यता का सिद्धान्त भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है। इसी सनातन शक्ति को भारतीय धर्मशास्त्र में प्रकृति की संज्ञा दी है। यही प्रकृति जगदम्बा, जगज्जननी है—

त्वं परा प्रकृतिः साक्षाद् ब्रह्मणः परमात्मनः।
त्वत्तो जातं जगत्सर्व त्वं जगज्जननी शिवं।।

यही सर्वव्यापिनी शक्ति ही दो परस्पर विरोधी शक्तियों के रूप में आविर्भूत होती है—ईश्वरोन्मुखो एवं संसार प्रवण। पहली शक्ति का अन्य नाम है विद्या एवं दूसरी शक्ति का नाम है अविद्या। विद्या शक्ति ही दुर्गा, काली, भवानी, अम्बिका, पार्वती, गिरिजा, लक्ष्मी, सीता, आदि नामों से पूजित है। भक्ति, पराभक्ति, ज्ञान, विज्ञान, योग, योगमाया, समृद्धि समष्टि बुद्धि, सदाचार, शुद्ध एवं सूक्ष्म बुद्धि, सद्गुणरूप, दैवी सम्पदा—यह सब विद्या का ही विस्तार है। इसी देवी की असीम कृपा के लिए हम आज प्रार्थना करते हैं—

सर्वमंगल मंगल्ये शिवे सर्वार्थे साधिके।
शरण्ये त्रयम्बके गौरी नारायणि नमोऽस्तुते।।

नवगौरी एवं नवदुर्गा— नवगौरी की यात्रा, शुक्ल पक्ष की द्वितीया के दिन, प्रतिमास करना अत्यन्त फलदायक माना गया है। इसी प्रकार नवदुर्गा की यात्रा, नव दिन क्रम से नवरात्र के अवसर पर करना अभीष्ट फलदायक है।

❐

माँ दुर्गा के आध्यात्मिक स्वरूप

शैलपुत्री–माँ दुर्गा अपने पहले स्वरूप में 'शैलपुत्री' के नाम से जानी जाती हैं। पर्वतराज हिमालय के वहाँ पुत्री के रूप में उत्पन्न होने कारण इनका यह 'शैलपुत्री' नाम पड़ा था। वृषभ–स्थिता इन माताजी दाहिने हाथ में त्रिशूल और बायें हाथ में कमल–पुष्प सुशोभित है। इन्हीं त्रिशूल नव दुर्गाओं में प्रथम दुर्गा हैं। अपने पूर्वजन्म में ये प्रजापति दक्ष की कन्या के रूप में उत्पन्न हुई थीं। तब इनका नाम 'सती' था। इनका विवाह भगवान शिवजी से हुआ था। एक बार प्रजापति दक्ष ने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया। इसमें उन्होंने सारे देवताओं को अपना–अपना यज्ञ भाग प्राप्त करने के लिये निमंत्रित किया। किन्तु शंकरजी को उन्होंने इस यज्ञ में निमंत्रित नहीं किया। सती ने जब सुना कि हमारे पिता एक अत्यन्त विशाल यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे हैं, तब वहाँ जाने के लिये उनका मन विकल हो उठा। अपनी यह इच्छा उन्होंने शिवजी को बतलायी। सारी बातों पर विचार करने के बाद उन्होंने कहा–"प्रजापति दक्ष किसी कारणवश हमसे रूष्ठ हैं। अपने यज्ञ में उन्होंने सारे देवताओं को निमंत्रित किया है। उनके यज्ञ भाग भी उन्हें समर्पित किये हैं, किन्तु हमें जान–बूझकर नहीं बुलाया है। कोई सूचना तक नहीं भेजी है। ऐसी स्थिति में तुम्हारा वहाँ जाना किसी प्रकार भी श्रेयस्कर नहीं होगा।" शंकरजी के इस उपदेश से सती को उनकी बात समझ में नहीं आयी। पिता का यज्ञ देखने, वहाँ जाकर माता और बहनों से मिलने की उनकी व्यग्रता किसी प्रकार भी कम न हो सकी। उनका प्रबल आग्रह देखकर भगवान शंकरजी ने उन्हें वहाँ जाने की अनुमति दे दी।

सती ने पिता के घर पहुँच कर देखा कि कोई भी उनसे आदर और प्रेम के साथ बातचीत नहीं कर रहा है। केवल उनकी माता ने स्नेह से उन्हें गले लगाया। बहनों की बातों में व्यंग्य और उपहास के भाव भरे हुए थे। परिजनों के इस व्यवहार से उनके मन को बहुत क्लेश पहुँचा। उन्होंने यह भी देखा कि वहाँ चतुर्दिक भगवान शंकरजी के प्रति तिरस्कार

का भाव है। दक्ष ने उनके प्रति कुछ अपमानजनक वचन भी कहे। यह सब देखकर सती का हृदय क्षोभ, ग्लानि और क्रोध से सन्तप्त हो उठा। उन्होंने सोचा भगवान की बात न मान यहाँ आकर मैंने बहुत गलती की है।

वह अपने पति भगवान शिव के इस अपमान को न सह सकीं। उन्होंने अपने उस रूप को तत्क्षण यहीं योगाग्नि द्वारा जलाकर भस्म कर दिया। वज्रपात के समान इस दारुण–दुःखद घटना को सुनकर भगवान शिव ने क्रुद्ध हो अपने गणों का भेजकर दक्ष के उस यज्ञ का पूर्णतः विध्वंस करा दिया।

सती ने योगाग्नि द्वारा अपने शरीर को भस्मकर अगले जन्म में शैलराज हिमालय की पुत्री के रूप में जन्म लिया। इस बार 'शैलपुत्री' नाम से विख्यात हुई। पार्वती, हैमवती भी उन्हीं के नाम हैं। उपनिषद् की एक कथा के अनुसार इन्हीं ने हैमवती स्वरूप देवताओं का गर्व भंजन किया था।

'शैलपुत्री' देवी का विवाह भी भगवान शिव से ही हुआ। पूर्वजन्म की भांति इस जन्म में भी वह शिवजी की अर्द्धांगिनी बनीं। नव दुर्गाओं में प्रथम शैलपुत्री दुर्गा का महत्व और शक्तियाँ अनन्त हैं। नवरात्र पूजन में प्रथम दिवस इन्हीं की पूजा और उपासना की जाती है। इस प्रथम दिन की उपासना में योगी अपने मन को 'मूलाधार' चक्र में स्थित करते हैं। यहीं से उनकी योगसाधना का प्रारम्भ होता है।

ध्यान– **वन्दे वाच्छितलाभाय चन्द्रार्धकृतशेखरम्।**
वृषारूढां शूलधरां शैलपुत्रीं यशस्विनीम्।।

ब्रह्मचारिणी–माँ दुर्गा की नव शक्तियों का दूसरा स्वरूप ब्रह्मचारिणी का है। यहाँ 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ तपस्या है। ब्रह्मचारिणी अर्थात् तप की चारिणी। तप का आचरण करने वाली। कहा भी है **वेदस्तत्व तपो ब्रह्म**–वेद, तत्व और तप 'ब्रह्म' शब्द के अर्थ हैं। ब्रह्मचारिणी देवी का स्वरूप पूर्ण ज्योतिर्मय एवं अत्यन्त भव्य है। इनके दाहिने हाथ में जप की माला एवं बायें हाथ में कमण्डल रहता है।

अपने पूर्वजन्म में जब ये हिमालय के घर पुत्री–रूप में उत्पन्न हुई थीं तब नारद के उपदेश से इन्होंने भगवान शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिये अत्यन्त कठिन तपस्या की थी। इसी कठिन तपस्या के कारण इन्हें तपश्चारिणी अर्थात् ब्रह्मचारिणी नाम से अभिहित किया

गया। सौ वर्षों तक केवल शाक पर निर्वाह किया था। कुछ दिनों तक कठिन उपवास रखते हुए खुले आकाश के नीचे वर्षा और धूप के भयानक कष्ट सहे। इस कठिन तपश्चर्या के पश्चात् तीन हजार वर्षों तक केवल जमीन पर टूट कर गिरे हुए बेलपत्रों को खाकर वह अहर्निश भगवान शिव की आराधना करती थीं। इसके बाद उन्होंने सूखे बेलपत्रों को भी खाना छोड़ दिया। कई हजार वर्षों तक वह निर्जल और निराहार तपस्या करती रहीं। पत्तों (पर्ण) को भी खाना छोड़ देने के कारण उनका एक नाम 'अपर्णा' भी पड़ गया।

कई हजार वर्षों की इस कठिन तपस्या के कारण ब्रह्मचारिणी देवी का वह पूर्वजन्म का शरीर एकदम क्षीण हो उठा। वह अत्यन्त ही कृशकाय हो गयी थीं। उनकी यह दशा देखकर उनकी माता मैना देवी अत्यन्त दुःखित हो उठीं। उन्होंने उन्हें उस कठिन तपस्या से विरत करने के लिये आवाज दी 'उ मा', तब से देवी ब्रह्मचारिणी का पूर्वजन्म का एक नाम 'उमा' भी पड़ गया था।

उनकी इस तपस्या से तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। देवता, ऋषि, सिद्धगण, मुनि सभी ब्रह्मचारणी देवी की तपस्या को अभूतपूर्व पुण्यकृत्य बताते हुए उनकी सराहना करने लगे। अन्त में पितामह ब्रह्माजी ने आकाशवाणी के द्वारा उन्हें सम्बोधित करते हुए प्रसन्न स्वरों में कहा– 'हे देवि! आजतक किसी ने इतनी कठोर तपस्या नहीं की थी। ऐसी तपस्या तुम्हीं से सम्भव थी। तुम्हारे इस अलौकिक कृत्य की चतुर्दिक् सराहना हो रही है। तुम्हारी मनोकामना सर्वतोभावेन परिपूर्ण होगी। भगवान चन्द्रमौलि शिवजी तुम्हें पति रूप में प्राप्त होंगे। अब तुम तपस्या से विरत होकर घर लौट जाओ। शीघ्र ही तुम्हारे पिता तुम्हें बुलाने आ रहे हैं।

माँ दुर्गाजी का यह दूसरा स्वरूप भक्तों और सिद्धों को अनन्त फल देने वाला है। इनकी उपासना, मनुष्य में तप, त्याग, वैराग्य, सदाचार, संयम की वृद्धि होती है। जीवन के कठिन संघर्षों में भी उसका मन कर्त्तव्य–पथ से विचलित नहीं होता। माँ ब्रह्मचारिणी की कृपा से उसे सर्वत्र सिद्धि और विजय की प्राप्ति होती है। दुर्गापूजा के दूसरे दिन इन्हीं के स्वरूप की उपासना की जाती है। इस दिन साधक का मन 'स्वाधिष्ठान' चक्र में स्थित होता है। इस चक्र में अवस्थित मनवाला योगी उनकी कृपा और शक्ति प्राप्त करता है।

ध्यान– **दधाना करपद्माभ्यामक्षमालाकमण्डलू।**
देवी प्रसीदतु मयि ब्रह्मचारिण्यनुत्तमा।।

चन्द्रघण्टा– माँ दुर्गाजी की तीसरी शक्ति का नाम 'चन्द्रघण्टा' है। नवरात्रि–उपासना में तीसरे दिन इन्हीं के विग्रह की पूजा–आराधना की जाती है। इनका यह स्वरूप परम शान्तिदायक और कल्याणकारी है। इनके मस्तक में घण्टे के आकार का अर्धचन्द्र है, इसी कारण से इन्हें चन्द्रघण्टा देवी कहा जाता है। इनके शरीर का रंग स्वर्ण के समान है। इनके दस हाथ हैं। इनके हाथों में खड्ग आदि शस्त्र तथा बाण आदि अस्त्र विभूषित हैं। इनका वाहन सिंह है। इनकी मुद्रा युद्ध के लिये उद्यत रहने वाली होती है। इनके घण्टे की सी भयानक चण्डध्वनि से अत्याचारी दानव–दैत्य–राक्षस सदैव प्रकम्पिक रहते हैं।

नवरात्र की दुर्गा–उपासना में तीसरे दिन की पूजा का अत्यधिक महत्व है। इस दिन साधक का मन 'मणिपूरक' चक्र में प्रविष्ट होता है। माँ चन्द्रघण्टा की कृपा उसे अलौकिक वस्तुओं के दर्शन होते हैं। दिव्य सुगन्धियों का अनुभव होता है तथा विविध प्रकार की दिव्य ध्वनियाँ सुनायी देती है। ये क्षण साधक के लिये अत्यन्त सावधान रहने के होते हैं।

माँ चन्द्रघण्टा की कृपा से साधक के समस्त पाप और बाधाएँ नष्ट हो जाती है। इनकी आराधना सद्यः फलदायी है। इनकी मुद्रा सदैव युद्ध के लिये अभिमुख रहने की होती है, अतः भक्तों के कष्ट का निवारण ये अत्यन्त शीघ्र कर देती हैं। इनका वाहन सिंह है अतः इनका उपासक सिंह की तरह पराक्रमी और निर्भय हो जाता है। इनके घण्टे की ध्वनि सदा अपने भक्तों की प्रेत–बाधादि से रक्षा करती रहती है। इनका ध्यान करते ही शरणागत की रक्षा के लिये इस घण्टे की ध्वनि निनादित हो उठती है।

दुष्टों का दमन और विनाश करने में सदैव तत्पर रहने के बाद भी इनका स्वरूप दर्शक और आराधक के लिये अत्यन्त सौम्यता एवं शान्ति से परिपूर्ण रहता है। इनकी आराधना से प्राप्त होने वाला एक बहुत बड़ा सद्गुण यह भी है कि साधक में वीरता–निर्भयता के साथ ही सौम्यता एवं विनम्रता का भी विकास होता है। उसके मुख, नेत्र तथा सम्पूर्ण शरीर में कान्ति–गुण की वृद्धि होती है। स्वर में दिव्य, अलौकिक माधुर्य

का समावेश हो जाता है। माँ चन्द्रघण्टा के भक्त और उपासक जहाँ भी जाते हैं लोग उन्हें देखकर शान्ति और सुख का अनुभव करते हैं। ऐसे साधक के शरीर से दिव्य प्रकाशयुक्त रश्मियों का अदृश्य विकिरण होता रहता है। यह दिव्य क्रिया साधारण चक्षुओं से दिखलायी नहीं देती, किन्तु साधक और उसके सम्पर्क में आने वाले लोग इस बात का अनुभव भलीभांति करते रहते हैं।

हमें चाहिये कि अपने मन, वचन, कर्म एवं काया को विहित विधि–विधान के अनुसार पूर्णतः परिशुद्ध एवं पवित्र करके माँ चन्द्रघण्टा के शरणागत होकर उनकी उपासना–आराधना में तत्पर हों। उनकी उपासना से हम समस्त सांसारिक कष्टों से विमुक्त होकर सहज ही परमपद के अधिकारी बन सकते हैं। हमें निरन्तर उनके पवित्र विग्रह को ध्यान में रखते हुए साधना की ओर अग्रसर होने का प्रयत्न करना चाहिये। उनका ध्यान हमारे इहलोक और परलोक दोनों के लिये परमकल्याणकारी और सद्गति को देने वाला है।

ध्यान– **पिण्डजप्रवरायढा चण्डकोपास्त्रकैर्युता।**
प्रसादं तनुते मह्यं चन्द्रघण्टेति विश्रुता।।

कूष्माण्डा– माँ दुर्गा के चौथे स्वरूप का नाम कूष्माण्डा है। अपनी हल्की हँसी द्वारा ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने के कारण इन्हें कूष्माण्डा देवी के नाम से जाना जाता है।

जब सृष्टि का अस्तित्व नहीं था, चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार व्याप्त था, तब इन्हीं देवी ने अपने 'ईषत्' हास्य से ब्रह्माण्ड की रचना की थी अतः यही सृष्टि की आदि स्वरूप, आदि शक्ति हैं। इनके पूर्व ब्रह्माण्ड का अस्तित्व था ही नहीं।

इनका निवास सूर्यमण्डल लोक है। सूर्यलोक में निवास कर सकने की क्षमता और शक्ति केवल इन्हीं में है। इनके शरीर की कान्ति और प्रभा भी सूर्य के समान ही देदीप्यमान है। इनके तेज की तुलना इन्हीं से की जा सकती है अन्य कोई भी देवी–देवता इनके तेज और प्रभाव की समता नहीं कर सकते। इन्हीं के तेज और प्रकाश से दसों दिशाएँ प्रकाशित हो रही हैं। ब्रह्माण्ड की सभी वस्तुओं और प्राणियों में अवस्थित तेज इन्हीं का है।

इनकी आठ भुजाएँ हैं। अतः ये अष्टभुजा देवी के नाम से भी विख्यात हैं। इनके सात हाथों में क्रमशः कमण्डल, धनुष–बाण, कमल–पुष्प, अमृतपूर्ण कलश, चक्र तथा गदा है। आठवें हाथ में सभी सिद्धियों और निधियों को देने वाली जप माला है। इनका वाहन सिंह है। संस्कृत भाषा में कूष्माण्ड 'कुम्हड़े' को कहते हैं। बलियों में कुम्हड़े की बलि इन्हें सर्वाधिक प्रिय है। इस कारण से भी ये कूष्माण्डा कही जाती हैं।

नवरात्र–पूजन में चौथे दिन कूष्माण्डा देवी के स्वरूप की ही उपासना की जाती है। इस दिन साधक का मन 'अनाहत' चक्र में अवस्थित होता है अतः इस दिन उसे अत्यन्त पवित्र और निश्चल मन से कूष्माण्डा देवी के स्वरूप को ध्यान कर पूजा–उपासना के कार्य में लगाना चाहिये। माँ कूष्माण्डा की उपासना से भक्तों के समस्त रोग–शोक विनष्ट हो जाते हैं। इनकी भक्ति से आयु, यश, बल और आरोग्य की वृद्धि होती है। माँ कूष्माण्डा अत्यल्प सेवा और भक्ति से भी प्रसन्न होने वाली हैं। यदि मनुष्य सच्चें हृदय से इनका शरणागत बन जाय तो फिर उसे अत्यन्त सुगमता से परम पद की प्राप्ति हो सकती है।

हमें चाहिये कि हम शास्त्रों–पुराणों में वर्णित विधि–विधान के अनुसार माँ दुर्गा की उपासना और भक्ति के मार्ग पर अहर्निश अग्रसर हों। माँ के भक्ति–मार्ग पर कुछ ही कदम आगे बढ़ने पर भक्त साधक को उनकी कृपा का सूक्ष्म अनुभव होने लगता है। यह दुःख स्वरूप संसार उसके लिये अत्यन्त सुखद और सुगम बन जाता है। माँ की उपासना मनुष्य को सहज भाव से भवसागर से पार उतरने के लिए सर्वाधिक सुगम और श्रेयस्कर मार्ग है। माँ कूष्माण्डा की उपासना मनुष्य को व्याधियों से सर्वथा विमुक्त करके उसे सुख समृद्धि और उन्नति की ओर ले जाने वाली है अतः अपनी लौकिक–पारलौकिक उन्नति चाहने वालों को इनकी उपासना में सदैव तत्पर रहना चाहिये।

ध्यान– **सुरासम्पर्ककलशं रुधिराप्लुतमेव च ।**
दधाना हस्तपद्माभ्यां कूष्माण्डा शुभदास्तु मे।।

स्कन्दमाता– माँ दुर्गा के पाँचवें स्वरूप को स्कन्दमाता के नाम से जाना जाता है। ये भगवान स्कन्द कार्तिकेय नाम से भी जाने जाते हैं। ये प्रसिद्ध देवासुर–संग्राम में देवताओं के सेनापति बने थे। पुराणों में

इन्हे कुमार और शक्तिधर कह कर इनकी महिमा का वर्णन किया गया है। इनका वाहन मयूर है अतः इन्हें मयूरवाहन के नाम से भी जाना जाता है।

भगवान स्कन्द की माता होने के कारण माँ दुर्गा के इस पाँचवें स्वरूप को स्कन्दमाता के नाम से जाना जाता है। इनकी उपासना नवरात्रि–पूजा के पाँचवें दिन की जाती है। इस दिन साधक का मन 'विशुद्ध' चक्र के अवस्थित होता है। इनके विग्रह में भगवान स्कन्द जी बालरूप में इनकी गोद में बैठे होते हैं। सकन्दमातृस्वरूपिणी देवी की चार भुजाएँ हैं। ये दाहिनी तरफ की ऊपर वाली भुजा से भगवान स्कन्द को गोद में पकड़े हुए हैं और दाहिनी तरफ की नीचे वाली भुजा जो ऊपर की ओर उठी हुई है उसमें कमल पुष्प है। बायीं तरफ की ऊपर वाली भुजा वरमुद्रा में तथा नीचे वाली भुजा जो ऊपर की ओर उठी है उसमें भी कमल पुष्प ली हुई हैं। इनका वर्णन पूर्णतः शुभ्र है। ये कमल के आसन पर विराजमान रहती हैं। इसी कारण से इन्हें पद्मासन देवी भी कहा जाता है। सिंह भी इनका वाहन है।

नवरात्र–पूजन के पाँचवें दिन का शास्त्रों में पुष्कल महत्व बताया गया है। इस चक्र में अवस्थित मन वाले साधक की समस्त बाह्य क्रियाओं एवं चित्तवृत्तियों का लोप हो जाता है। वह विशुद्ध चैतन्य स्वरूप की ओर अग्रसर होता है।

माँ स्कन्दमाता की उपासना से भक्त की समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इस मृत्युलोक में ही उसे परम शान्ति और सुख का अनुभव होने लगता है। उसके लिये मोक्ष का द्वार स्वयंमेव सुलभ हो जाता है। स्कन्दमाता की उपासना के बालरूप स्कन्द भगवान की उपासना भी स्वयंमेव हो जाती है। यह विशेषता केवल इन्हीं को प्राप्त है, अतः साधक को स्कन्दमाता की उपासना की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। सूर्यमण्डल की अधिष्ठात्री देवी होने के कारण इनका उपासक अलौकिक तेज एवं कान्ति से सम्पन्न हो जाता है। एक अलौकिक प्रभामण्डल अदृश्यभाव से सदैव उसके चतुर्दिक् परिव्याप्त रहता है। यह प्रभामण्डल प्रतिक्षण उसके योगक्षेम का निर्वहन करता रहता है।

अतः हमें एकाग्रभाव से मन को पवित्र रखकर माँ की शरण में आने का प्रयत्न करना चाहिये। इस घोर भवसागर के दुःखों से मुक्ति पाकर मोक्ष का मार्ग सुलभ बनाने का इससे उत्तम उपाय दूसरा नहीं।

ध्यान– **सिंहासनगता नित्यं पद्माश्रितकरद्वया।**
शुभदास्तु सदा देवी स्कन्दमाता यशस्विनी।।

कात्यायनी– माँ दुर्गा के छठवें स्वरूप का नाम कात्यायनी है। इनका कात्यायनी नाम पड़ने की कथा इस प्रकार है– कत नामक एक प्रसिद्ध महर्षि थे। उनके पुत्र ऋषि कात्य हुए। इन्हीं कात्य के गोत्र में विश्व प्रसिद्ध महर्षि कात्यायन उत्पन्न हुए थे। इन्होंने भगवती पराम्बा की उपासना करते हुए बहुत वर्षो तक बड़ी कठिन तपस्या की थी। इनकी इच्छा थी कि माँ भगवती उनके घर पुत्री के रूप में जन्म लें। माँ भगवती ने इनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली थी।

कुछ काल पश्चात् जब दानव महिषासुर का अत्याचार पृथ्वी पर बहुत बढ़ गया तब भगवान विष्णु, ब्रह्मा, महेश तीनों ने अपने–अपने तेज का अंश देकर महिषासुर के विनाश के लिये एक देवी को उत्पन्न किया। महर्षि कात्यायन ने सर्वप्रथम इनकी पूजा की। इसी कारण से यह कात्यायनी कहलायीं।

ऐसी भी कथा मिलती है कि ये महर्षि कात्यायन के वहाँ पुत्री रूप में उत्पन्न भी हुई थीं। आश्विन कृष्ण चतुर्दशी को जन्म लेकर शुक्ल सप्तमी, अष्टमी तथा नवमी तक तीन दिन इन्होंने कात्यायन ऋषि की पूजा ग्रहण कर दशमी को महिषासुर का वध किया था।

माँ कात्यायनी अमोघ फलदायिनी हैं। भगवान कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए ब्रज की गोपियों ने इन्हीं की पूजा यमुना के तट पर की थी। ये ब्रजमण्डल की अधिष्ठात्री देवी के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इनका स्वरूप अत्यन्त ही भव्य और दिव्य है। इनका वर्ण स्वर्ण के समान है इनकी चार भुजाएँ हैं। माँ का दाहिनी तरफ का ऊपर वाला हाथ अभय मुद्रा में है तथा नीचे वाला वरमुद्रा में है। बायीं तरफ के ऊपर वाले हाथ में तलवार और नीचे वाले हाथ में कमल पुष्प सुशोभित है। इनका वाहन सिंह है।

दुर्गा पूजा के छठवें दिन इनकी उपासना की जाती है। उस दिन साधक का मन 'आज्ञा' चक्र में स्थित होता है। योग साधना में इस आज्ञा चक्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस चक्र में स्थित मन वाला साधक माँ कात्यायनी के चरणों में अपना सर्वस्व निवेदित कर देता है।

परिपूर्ण आत्मदान करने वाले ऐसे भक्त को सहज भाव से माँ कात्यायनी के दर्शन प्राप्त हो जाते है। माँ कात्यायनी की भक्ति और उपासना द्वारा मनुष्य को बड़ी सरलता से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारो फलों की प्राप्ति हो जाती है। वह इस लोक में स्थित रहकर भी अलौकिक तेज और प्रभाव से युक्त हो जाता है। उसके रोग, शोक, संतान, भय आदि सर्वथा विनष्ट हो जाते हैं। जन्म–जमान्तर के पापों को विनष्ट करने के लिए माँ की उपासना से अधिक सुगम और सरल मार्ग दूसरा नहीं है। इनका उपासक निरन्तर इनके सान्निध्य में रहकर परमपद का अधिकारी बन जाता है।

ध्यान– **चन्द्रहासोज्ज्वलकरा शार्दूलवरवाहना।**
कात्यायनी शुभं दद्याद्देवी दानवघातिनी।।

कालरात्रि- माँ दुर्गा की सातवीं शक्ति कालरात्रि के नाम से जानी जाती है। इनके शरीर का रंग घने अन्धकार की तरह एकदम काला है। सिर के बाल बिखरे हुए हैं। गले में विद्युत की तरह चमकने वाली माला है। इनके तीन नेत्र हैं। ये तीनों नेत्र ब्रह्माण्ड के सदृश गोल हैं। इनसे विद्युत के समान चमकीली किरणें निःसृत होती हैं। इनकी नासिका के श्वास–प्रश्वास से अग्नि की भयंकर ज्वालाएँ निकलती हैं। ऊपर उठे हुए दाहिने हाथ की वरमुद्रा से सभी को वर प्रदान करती हैं। दाहिनी तरफ का नीचे वाला हाथ अभयमुद्रा में है। बायीं तरफ के ऊपर वाले हाथ में खड्ग तथा नीचे वाले हाथ में मुण्ड है।

माँ कालरात्रि का स्वरूप देखने में अत्यन्त भयानक है, लेकिन ये सदैव शुभ फल ही देने वाली हैं। इसी कारण इनका एक नाम 'शुभंकरी' भी है अतः इनसे भक्तों को किसी प्रकार भी भयभीत अथवा आतंकित होने की आवश्यकता नहीं।

दुर्गा पूजा के सातवें दिन माँ कालरात्रि की उपासना का विधान है। इस दिन साधक का मन 'सहस्त्रार' चक्र में स्थित रहता है। उसके लिये ब्रह्माण्ड की समस्त सिद्धियों का द्वार खुलने लगता है। इस चक्र में स्थित साधक का पूर्णतः माँ कालरात्रि के स्वरूप में अवस्थित रहता है। उनके साक्षात्कार से मिलने वाले पुण्य का वह भागी हो जाता है। उसके समस्त पापों–विघ्नों का नाश हो जाता है। उसे अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है।

माँ कालरात्रि दुष्टों का विनाश करने वाली हैं। दानव, दैत्य, राक्षस, भूत, प्रेत आदि इनके स्मरण मात्र से ही भयभीत होकर भाग जाते हैं। ये ग्रह–बाधाओं को भी दूर करने वाली हैं। इनके उपासक को अग्नि भय, जल भय, जन्तु, शत्रु भय, रात्रि भय आदि कभी नहीं होते। इनकी कृपा से वह सर्वथा भय मुक्त हो जाता है।

माँ कालरात्रि के स्वरूप विग्रह को अपने हृदय में अवस्थित करके मनुष्य को एकनिष्ठ भाव से उनकी उपासना करनी चाहिये। यम, नियम संयम का उसे पूर्ण पालन करना चाहिए। मन, वचन काया की पवित्रता रखनी चाहिये। वह शुभंकरी देवी हैं। उनकी उपासना होने वाले शुभों की गणना नहीं की जा सकती। हमें निरन्तर उनका स्मरण, ध्यान और पूजन करना चाहिये।

ध्यान– **एकवेणी जपाकर्णपूरा नग्ना खरास्थिता।**
लम्बोष्ठी कर्णिकाकर्णी तैलाभ्यक्तशरीरिणी।।
वामपादोल्लसल्लोहलताकण्टकभूषणा ।
वर्धनमूर्धध्वजा कृष्णा कालरात्रिर्भयङ्करी।।

महागौरी– माँ दुर्गा की आठवीं शक्ति का नाम महागौरी है। इनका वर्ण पूर्णतः गौर है। इस गौरता की उपमा शंख, चन्द्र और कुन्द के फूल से दी गयी है। इनकी आयु आठ वर्ष की मानी गयी है 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी'। इनके समस्त वस्त्र एवं आभूषण आदि भी श्वेत हैं। इनकी चार भुजाएँ हैं। इनका वाहन वृषभ है। इनके ऊपर के दाहिने हाथ में अभय– मुद्रा और नीचे वाले दाहिने हाथ में त्रिशूल है। ऊपर वाले बायें हाथ में डमरू और नीचे के बायें हाथ में वर मुद्रा है। इनकी मुद्रा अत्यन्त शान्त है।

अपने पार्वती रूप में इन्होंने भगवान शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए बड़ी कठोर तपस्या की थी। इनकी प्रतिज्ञा थी कि **'व्रियेऽहं वरदं शम्भुं नान्यं देवं महेश्वरात्।'** (नारद पाञ्चरात्र)।

इस कठोर तपस्या के कारण इनका शरीर एकदम काला पड़ गया। इनकी तपस्या से प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर जब भगवान शिव ने इनके शरीर को गंगाजी के पवित्र जल से मलकर धोया। तब वह विद्युत प्रभा के समान अत्यन्त कान्तिमान गौर हो उठी। तभी से इनका नाम महागौरी पड़ा।

दुर्गा पूजा के आठवें दिन महागौरी की उपासना का विधान है। इनकी शक्ति अमोघ और सद्यः फलदायिनी है। इनकी उपासना से भक्तों के पूर्व संचित पाप भी विनष्ट हो जाते हैं। भविष्य में पाप–सन्ताप दैन्य–दुःख उसके पास कभी नहीं आते। वह सभी प्रकार से पवित्र और अक्षय पुण्यों का अधिकारी हो जाता है। हमें सदैव इनका ध्यान करना चाहिये। इनकी उपासना से अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त होती है। मन को अनन्य भाव से एकनिष्ठ होकर मनुष्य को सदैव इनका ध्यान करना चाहिये। ये भक्तों का कष्ट अवश्य ही दूर करती हैं। इनकी उपासना से आर्तजनों के असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं। अतः इनके चरणों की शरण पाने के लिए हमें सर्वविध प्रयत्न करना चाहिये। पुराणों में इनकी महिमा का प्रचुर आख्यान किया गया है। ये मनुष्य की वृत्तियों को सत् की ओर प्रेरित करके असत् का विनाश करती हैं। हमें प्रपत्तिभाव से सदैव इनका शरणागत रहना चाहिए।

ध्यान– **श्वेते वृषे समारूढा श्वेताम्बरधारा शुचिः।**
महागौरी शुभं दद्यान्महादेवप्रमोददा।।

सिद्धिदात्री– माँ दुर्गा की नवीं शक्ति का नाम सिद्धिदात्री है। ये सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाली हैं। मार्कण्डेयपुराण के अनुसार अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व– ये आठ सिद्धियाँ होती हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में श्रीकृष्ण जन्मखण्ड में वह संख्या अट्ठारह बतायी गयी है। इनके नाम इस प्रकार हैं–

1. अणिमा, 2. लघिमा, 3. प्राप्ति, 4. प्राकाम्य, 5. महिमा, 6. ईशित्व, वाशित्व 7. सर्वकामावसायिता, 8. सर्वज्ञत्व, 9. दूरश्रवण, 10. परकायप्रवेशन, 11. वाक्सिद्धि, 12. कल्पवृक्षत्व, 13. सृष्टि, 14. संहारकरणसामर्थ्य, 15. अमरत्व, 16. सर्वन्यायकत्व, 17. भावना, 18. सिद्धि।

माँ सिद्धिदात्री भक्तों और साधकों को ये सभी सिद्धियाँ प्रदान करने में समर्थ हैं। देवीपुराण के अनुसार भगवान शिव ने इनकी कृपा से ही इन सिद्धियों को प्राप्त किया था, इनकी अनुकम्पा से ही भगवान शिव का आधा शरीर देवी का हुआ था। इसी कारण वह लोक में 'अर्द्धनारीश्वर' नाम से प्रसिद्ध हुए। माँ सिद्धिदात्री चार भुजाओं वाली हैं। इनका वाहन सिंह है। ये कमल पुष्प पर भी आसीन होती हैं। इनकी दाहिनी तरफ के

नीचे वाले हाथ में चक्र कमलपुष्प है। नवरात्र–पूजन के नवें दिन इनकी उपासना की जाती है। इस दिन शास्त्रीय विधि–विधान और पूर्ण निष्ठा के साथ साधना करने वाले साधक को सभी सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है। सृष्टि में कुछ भी उसके लिये अगम्य नहीं रह जाता। ब्रह्माण्ड पर पूर्ण विजय प्राप्त करने का सामर्थ्य उसमें आ जाता है।

प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह माँ सिद्धिदात्री की कृपा प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न करे। उनकी आराधना की ओर अग्रसर हो। इनकी कृपा से अनन्त दुःख रूपी संसार से निलिप्त रहकर सारे सुखों का भोग करता हुआ वह मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

नव दुर्गाओं में माँ सिद्धिदात्री अन्तिम हैं। अन्य आठ दुर्गाओं की पूजा–उपासना शास्त्रीय विधि–विधान के अनुसार करते हुए भक्त दुर्गा–पूजा के नवें दिन इनकी उपासना में प्रवृत्त होते हैं। इन सिद्धिदात्री माँ की उपासना पूर्ण कर लेने के बाद भक्तों और साधकों की लौकिक पारलौकिक सभी प्रकार की कामनाओं की पूर्ति हो जाती है लेकिन सिद्धिदात्री माँ के कृपा पात्र भक्त के भीतर कोई ऐसी कामना शेष बचती ही नहीं है, जिसे वह पूर्ण करना चाहे। वह सभी सांसारिक इच्छाओं, आवश्यकताओं और स्पृहाओं से ऊपर उठकर मानसिक रूप से माँ भगवती के दिव्य लोकों में विचरण करता हुआ उनके कृपा–रस–पीयूष का निरन्तर पान करता हुआ, विषय–भोग शून्य हो जाता है। माँ भगवती का परम सान्निध्य ही उसका सर्वस्व हो जाता है। इस परम पद को पाने के बाद उसे अन्य किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं रह जाती।

माँ के चरणों का यह सान्निध्य प्राप्त करने के लिये हमें निरन्तर नियम निष्ठ रहकर उनकी उपासना करनी चाहिये। माँ भगवती का स्मरण, ध्यान, पूजन हमें इस संसार की असारता का बोध कराते हुए वास्तविक परमशान्तिदायक अमृत पद की ओर ले जाने वाला है।

ध्यान– **सिद्धगन्धर्वयक्षाद्यैरसुरैरमरैरपि।**
सेव्यमाना सदा भूयात् सिद्धिदा सिद्धिदायिनी।।

❑

शक्ति जागृत करे दुर्गासप्तशती

श्री दुर्गासप्तशती के आराधकों का सर्वाधिक प्रिय महास्तोत्र है। मार्कण्डेयपुराण के तेरह अध्यायों में वर्णित देवी–माहात्म्य' ही 'दुर्गासप्तशती' के नाम से जाना जाता है। इसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रदान करने वाली आद्याशक्ति के स्वरूप, चरित्र, उपासना एवं महिमा का सम्यक निरूपण किया गया है। अपनी इन विशेषताओं के कारण देवी माहात्म्यरूपी इस सप्तशती को मार्कण्डेयपुराण से पृथक् एक स्वतंत्र ग्रन्थ का स्थान मिल गया है। शाक्तजन दुर्गासप्तशती का नित्य पाठ करते हैं, किन्तु नवरात्र में सनातन धर्म के अधिकांश अनुयायी इस ग्रन्थ रत्न के माध्यम से जगदम्बा का स्तवन करते हैं। संस्कृत में पाठ करने में असमर्थ भक्तगण अपने आचार्य द्वारा सप्तशती का अनुष्ठान करवाते हैं। इसके बारहवें अध्याय में स्वयं भगवती का यह कथन है–

शरत्काले महापूजा कियते या चल वार्षिकी।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्ति समन्वितः।।
सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धन–धान्य सुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः।।

"शरद् ऋतु में मेरी जो वार्षिक महापूजा की जाती है, उस अवसर पर मेरे इस माहात्म्य को जो भक्तिपूर्वक सुनेगा, वह मनुष्य मेरे प्रसाद से सब बाधाओं से मुक्त होकर धनधान्य एवं पुत्र–सुख प्राप्त करेगा, इसमें संदेह नहीं है।" इससे यह स्पष्ट है कि शारदीय दुर्गा पूजा में देवी महात्म्यरूपी सप्तशती को सुनने से उनका विशेष फल प्राप्त होता है। महाशक्ति के सान्निध्य को प्राप्त करने का यह सबसे सरल व सुगम मार्ग है। जो भक्त दुर्गासप्तशती का सविधि पाठ करने में समर्थ नहीं है, वे किसी सुयोग्य विद्वान के श्रीमुख से इसे अर्थ सहित सुन सकते हैं। सप्तशती के पाठ के समान इसके श्रवण को भी फलदायक बताया गया है। दुर्गासप्तशती के हिन्दी भावार्थ अथवा पद्यानुवाद को पढ़ने वाले भक्तों को किसी संस्कृतज्ञ से इसके श्लोकों का सही उच्चारण समझ

कर मूल चण्डी पाठ ही करना चाहिए। नवरात्र के अनुष्ठान में मार्कण्डेयपुराण के देवी माहात्म्य को ही पढ़ने–सुनने का विधान है। शक्ति के त्रिगुणात्मक स्वरूप के अनुरूप तेरह अध्यायों वाली दुर्गासप्तशती को तीन चरित्रों में बांटा गया है। प्रथम चरित्र में मात्र प्रथम अध्याय है और महाकाली इसकी अराध्या हैं। मध्यम चरित्र में द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ तीन अध्याय हैं और महालक्ष्मी इसकी आराध्या हैं। उत्तर चरित्र में पंचम से त्रयोदश तक नौ अध्याय हैं तथा इसकी देवी महासरस्वती हैं। सप्तशती के पाठ में सामान्यतया प्रथम मध्यम और उत्तर चरित्र का क्रमशः पाठ किया जाता है। इससे सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं लेकिन विशेष प्रयोजनों में तीनों चरित्रों का क्रम–भेद करने से अभीष्ट पूरा होता है–

शत्रु–नाश हेतु	: उत्तर, मध्यम, प्रथम चरित्र
लक्ष्मी–प्राप्ति हेतु	: उत्तर, प्रथम, मध्यम चरित्र
ज्ञान एवं श्री हेतु	: मध्यम, प्रथम, उत्तर चरित्र
रक्षा एवं विजय हेतु	: मध्यम, प्रथम, उत्तर चरित्र
तेजस्विता हेतु	: प्रथम, उत्तर, मध्यम चरित्र
आरोग्यता हेतु	: मध्यम, उत्तर चरित्र

कलियुग में लगभग सभी तंत्र–मंत्र कीलित हैं, अतः प्रयोग से पूर्व उनका उत्कीलन आवश्यक है। सप्तशती के उत्कीलन का मंत्र है– **ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं सप्तशति चण्डिके उत्कीलनं कुरु कुरु स्वाहा।** इसमें अन्यत्र बीजमंत्रों का क्रम 'श्रीं क्लीं ह्रीं' मिलता है। पाठ से पूर्व उत्कीलन–मंत्र का 21 बार–जप करें। शापोद्धार हेतु निम्न मंत्र का 108 बार जप किया जाए–**ॐ ह्रीं 'श्रीं क्लीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डिकादेव्यै शापनाशाऽनुग्रहं कुरु कुरु स्वाहा।** विभिन्न तंत्र ग्रन्थों में सप्तशती के शापोद्धार एवं उत्कीलन की अन्य अनेक विधियों का भी वर्णन है। जिन भक्तों में तीनों चरित्र (पूरी सप्तशती) के पाठ की शक्ति न हो, वे केवल मध्यम चरित्र को ही पढ़ें।

कात्यायनी तंत्र में सप्तशती का उसके छह अंगों सहित पाठ करने का निर्देश दिया गया है। ये षडांग–कवच, अर्गला, कीलक, प्रधानिक रहस्य, वैकृतिक रहस्य और मूर्ति रहस्य हैं। चिदम्बरसंहिता में पहले अर्गला, फिर कीलक तथा अन्य में कवच पढ़ने का विधान निर्दिष्ट है

किन्तु योगरत्नावली में सर्वप्रथम कवच को पढ़ने के बाद अर्गला और अन्त में कीलक को पढ़ने का नियम बताया गया है। रहस्यत्रय सप्तशती के पाठ के उपरान्त पढ़े जाते हैं। मारीचकल्प में सप्तशती के पूर्व रात्रिसूक्त तथा स्तोत्र के अन्दर देवीसूक्त को पढ़ने की बात कही गई है।

डामरतंत्र के मत से सप्तशती के आदि अन्त में नवार्ण मंत्र **'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'** को सौ बार जपने से चण्डी–पाठ ज्यादा फल देता है इसीलिए शाक्तजन स्तोत्र के पहले और बाद में नवार्ण मंत्र का कम से कम एक माला (108 बार) जप जरूर करते हैं। रुद्रयामल तंत्र में लिखा है कि केवल 'सिद्धकुंजिकास्तोत्र' को पढ़ने से भी सप्तशती का पाठ सफल होता है। चण्डीपाठ की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। साधक को अपनी गुरु परम्परा का ही अनुसरण करना चाहिए।

देवी–माहात्म्य का पाठ प्रेमपूर्वक भगवती का ध्यान करते हुए करें। जबतक अध्याय की पूर्ति न हो, तबतक बीच में पाठ बंद न करें। यदि किसी कारणवश अध्याय का पाठ बीच में ही रुक जाए तो उसको पुनः प्रारम्भ से पढ़ें। पुस्तक को हाथ में लेकर पाठ करने से आधा फल ही मिलता है। स्तोत्र का मानसिक नहीं, वाचिक पाठ करना चाहिए, किन्तु बहुत जोर से बोलना तथा पाठ में उतावली करना वर्जित है। सप्तशती में अध्याय समाप्त होने पर 'इति' 'वध', 'अध्याय' तथा 'समाप्त शब्द का उच्चारण नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिये प्रथम अध्याय पूरा होने पर इस प्रकार कहें–श्री मार्कण्डेयपुराणे सार्वर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्य प्रथमः ॐ तत्सत्। दूसरे अध्याय को उपर्युक्त वाक्य में प्रथमः के स्थान 'द्वितीय', तृतीय अध्याय को 'तृतीयः' कहकर समाप्त करें। इसी तरह अन्य अध्यायों के पूरे होने पर करें। वस्तुतः दुर्गासप्तशती का प्रत्येक श्लोक एक मंत्र है, जिसमें अपार शक्ति निहित है। शारदीय नवरात्र में इसका विधिवत् पाठ हमारी सुप्त शक्ति को जाग्रत करके हमें दिव्यता प्रदान करेगा।

❐

हवन और मुहूर्त

शास्त्रों में बताया गया है कि हम जो हवन या यज्ञ करते हैं, उसमें दी गई हविश्य यानी हवन सामग्री से देवताओं को बल प्राप्त होता है यानी वह उनका आहार है। आपने देव–असुर संग्राम के बारे में जरूर सुना होगा, जिसमें प्रायः असुर देवताओं को पराजित कर देते थे। इसकी एक वजह यह भी थी कि असुर ऋषि–मुनियों के यज्ञ और हवन आदि को भंग कर देते थे। इसकी वजह से देवताओं को आहार नहीं मिल पाता था और उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है।

मान्यताओं के अनुसार, हवन और यज्ञ में दी गई आहुति देवताओं को सम्पूर्ण रूप से प्राप्त होती है। देवता आहुतियों से प्रसन्न होते हैं, जिससे व्यक्ति का मनोरथ यानी उसकी इच्छा पूरी होती है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जिस हविष्य और आहुति को यज्ञ और हवन के माध्यम से देवता स्वयं आकर ग्रहण करते हैं, उसे कभी भी अशुभ मूहुर्त में नहीं करना चाहिए।

हवन और यज्ञ का पूर्ण फल प्राप्त करने के लिए ध्यान रखें कि जब भी इसका संकल्प लें या इसे प्रारंभ करें, उससे पहले मुहूर्त जरूर देख लें। हवन के लिए शुभ मुहूर्त क्या होना चाहिए और मुहूर्त कैसे ज्ञात करें ? आइए जानते हैं.....

अयन : यज्ञ और हवन के लिए नक्षत्र आकलन से पहले अयन का विचार कर लें। उत्तरायण को धर्मशास्त्र में अत्यन्त शुभ माना गया है। अयन सूर्य की गति का नाम है। सूर्य जब उत्तर दिशा में गमन करता है, तो उत्तरायण को देवताओं का दिन माना जाता है और दक्षिणायन को रात। अतः यज्ञ आदि कार्य उत्तरायण में करना श्रेष्ठ कहा गया है।

उत्तरायण में जिस दिन आप यज्ञ या हवन शुरू करें, उस दिन नक्षत्रों की स्थिति का आकलन कर लें। विशाखा, कृतिका, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, रेवती, मृगशिरा, ज्येष्ठ और पुष्प नक्षत्र दिवस जिस दिन हों, आप यज्ञ हवन कर सकते हैं।

तिथि आकलन : तिथि के विषय में ज्योतिषशास्त्र कहता है कि चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी तिथियाँ रिक्ता तिथि होती हैं। अतः इन तिथियों में हवन और यज्ञ नहीं करना चाहिए। इन तिथियों के अलावा किसी भी तिथि में यज्ञ–हवन का आयोजन किया जा सकता है। लेकिन तन्त्र में हवन आदि का विशेष प्रयोगजन में तिथियों का आकंलन अलग है यहाँ केवल सात्विक हवन पर प्रकाश संक्षिप्त में डाला गया है।

ग्रह आकलन : ज्योतिष सिद्धान्त के अनुसार, जिस दिन चन्द्र, मंगल बृहस्पति और शुक्र नीचस्थ हों या अस्त हों, उस दिन यज्ञ और हवन नहीं करना चाहिए।

लग्न आकलन : यज्ञ और हवन के लिए शुभ लग्न मुहूर्त का विचार करना चाहिए। इस संबंध में बताया जाता है कि जब लग्न या नवमांश में कर्क, मकर,कुंभ या मीन राशि हो और प्रथम, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्टम, सप्तम, नवम, दशम, एकादश भावों में सूर्य, चन्द्र मंगल, बृहस्पति हो तथा आठवां भाव खाली हो तो उत्तम होता है।

❐

कहाँ पर हो घर में पूजा स्थल?

कोई भी धर्म क्यों न हो, किसी न किसी रूप में मनुष्य ईश्वर को याद करता है, मनुष्य प्रायः अपने घर में पूजा स्थल की स्थापना करते हैं और अपने शक्ति के अनुसार पूजा करते हैं। यह सत्य है कि ईश्वर सर्वव्यापी है, परन्तु दिशाओं का तो अपना ही महत्व होता है। ईशान कोण यानि उत्तर व पूर्व दिशा के मध्य भाग में पूजा घर का होना, वास्तु शास्त्र के अनुसार उचित माना गया है, घर में पूजा करते समय वास्तु शास्त्र के अनुसार निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

* पूजा स्थल के लिए मकान के ईशान कोण को सर्वोत्तम माना गया है, आग्नेय, दक्षिण तथा नैऋत्य कोण पूजा स्थल के लिए सही नहीं होते हैं। ब्रह्म स्थल में मंदिर, पूजा घर या अन्य कोई निर्माण नहीं करना चाहिए।

* पूजा करने वाले का मुख पूर्व दिशा अथवा उत्तर में होना उत्तम माना जाता है। उत्तर दिशा ईश्वर का वास माना जाता है, पूजा घर में देवताओं का मुख पश्चिम की ओर होना चाहिए।

* घर के शयनकक्ष में पूजा घर नहीं होना चाहिए, अगर जगह की कमी के कारण पूजा स्थल शयन कक्ष में बनाना मजबूरी हो तो पूजा स्थल में पर्दा लगा दें, शयन कक्ष के उत्तर–पूर्व दिशा में पूजा स्थल होना चाहिए। सोते समय व्यक्ति का सिर पूर्व दिशा में होना चाहिए ताकि सोते समय पैर भगवान के सम्मुख न पड़े।

* पूजा घर के आस–पास, ऊपर–नीचे शौचालय नहीं होना चाहिए, रसोई घर, शौचालय, पूजा घर या बाथरूम एक दूसरे के पास न बनायें। घर में सीढ़ियों के नीचे पूजा घर नहीं होना चाहिए।

* घर में एक अंगुल से बारह अंगुल तक की मूर्तियों का पूजन विधान है। इससे बड़ी प्रतिमाओं की पूजा मंदिरों में की जानी चाहिए। घर के अन्दर अचल मूर्ति की स्थापना न करे, किसी भी देवता की प्राण प्रतिष्ठित मूर्ति रखना शुभ नहीं होता इससे बाधा आती है।

* किसी भी देवी–देवता की प्रतिमा दीवार से सटाकर नहीं रखना चाहिए। कम से कम दो इंच का अन्तर जरूर रहे, मूर्तियाँ दरवाजे के ठीक सामने तथा आमने–सामने भी नहीं रखना चाहिए, गणेश जी के दाहिने हाथ की ओर लक्ष्मी जी तथा भगवान विष्णु के बायीं तरफ लक्ष्मी जी रखना चाहिए।

* पूजा घर के दरवाजे पर दहलीज जरूर होनी चाहिए, द्वार का दरवाजा लड़की से बने दो पल्लों वाला होना चाहिए।

* पूजा के समय जलाया जाने वाला दीपक भूमि पर न रखें, यदि रखें तो कुछ चावल रख कर उसके ऊपर रखें। घी का दीपक देवता के दायें भाग में तथा तेल का दीपक बायें भाग में जलाना शुभ होता है।

* पूजा घर की दीवारों का रंग सफेद, हल्का पीला, लाल या हल्का नीला होना शुभ माना जाता है।

* पूजा घर के अग्निकोण के पास दीपक जलाकर अवश्य रखना चाहिए। हवनकुण्ड, धूपबत्ती आदि अग्निकोण में ही जलाकर रखना चाहिए।

* घर के भीतर लगायी गयी तुलसी मनुष्यों के लिए कल्याणकारी, धन, पुत्र प्रदान करने वाली होती है।

* घर में एक पूजा गृह होने के बावजूद प्रायः लोग घर में अलग–अलग जगह छोटे–छोटे पूजा स्थल रखते हैं, इससे घर के सदस्य बेचैन तथा दुःखी रहते हैं तथा घर में अशान्ति का वातावरण बना रहता है।

* पूजा करते समय मूर्ति के सामने न बैठकर, सदैव थोड़ा सा दायें खिसकर बैठना चाहिए।

* देव पूजन पूर्व मुख, उत्तर मुख करना शुभ होता है। दक्षिण व पश्चिम मुख करके पूजन करना तंत्र पूजन में किसी भी विशेष तन्त्र क्रिया अनुष्ठान के लिए विशेष दिशा है।

* नीला, काला व गीला वस्त्र पहन कर तथा बिना धोया हुआ वस्त्र पहन कर सात्विक देवी–देवता का पूजन निषिद्ध है। गीला वस्त्र पहन कर जप, आराधना, हवन, दान आदि का फल नहीं मिलता है। केश खोलकर, गीला केश, बिना सिर ढके देव पूजन, पितृ–पूजन या तर्पण नहीं करना चाहिए।

* तांबा, सोना, पीतल का पात्र मंगल स्वरूप है, ईश्वर को प्रिय है। इन पात्रों में भोग या पूजा अर्चना करने से शुभ फल मिलता है। चाँदी के

पात्र किसी विशेष अवस्था में उपयोग करना चाहिए। चाँदी का पात्र पितरों को प्रिय है, पितृ पूजा के समय चाँदी और मिट्टी के पात्र का उपयोग करना चाहिए।

* जिस भी जातक की कुण्डली में चन्द्रमा कमजोर है या पापग्रह में युक्त है तो उसे चाँदी का पात्र अपने लिए उपयोग करना चाहिए।

* देव पूजन के समय बार–बार दीपक का स्पर्श नहीं करना चाहिए। दीपक दिखाकर हाथ को धोकर और कार्य करना चाहिए।

* शिवलिंग पर चढ़े फल–फूल नैवेध तथा जल को ग्रहण नहीं करना चाहिए। अभिषेक का जल, नदी, तालाब या वृक्ष में डाल देना चाहिए।

* घर में दो शिवलिंग, दो श्रीयंत्र, तीन गणेश प्रतिभा, दो शंख (शंख को पीतल के पात्र में सफेद या पीला वस्त्र पर रखना चाहिए) तीन दैवी प्रतिमा, दो शालिग्राम, टूटी–फुटी या जली प्रतिमा, अंग–भंग देवी–देवता की मूर्ति का पूजन करने से गृह स्वामी तथा परिवार में विभिन्न विपत्तियों का सामना करना पड़ता है तथा अशान्ति का कारण बनता है।

* भगवान शंकर के मन्दिर का आधी बार, देवी के मन्दिर में एक बार, हनुमान और गणेश के मन्दिर में तीन बार परिक्रमा करनी चाहिए। वैसे भगवान शंकर के मन्दिर को छोड़ कर किसी भी देवी–देवता के मन्दिर में एक बार या पाँच बार परिक्रमा शुभ होता है।

श्रीयन्त्र अथवा माँ लक्ष्मी को धतूरा, मदार की माला, मालती का फूल, मंगल, कनेर का फूल नहीं चढ़ाना चाहिए। इसी प्रकार भगवान शंकर को पलाश जूही, मालती तथा केवड़ा के फूल या माला नहीं अर्पण करना चाहिए। भगवान गणेश को तुलसी की माला या तुलसी दल नहीं चढ़ाना चाहिए केवल दूर्बा चढ़ाना चाहिए। माँ दुर्गा को दुर्वा नहीं चढ़ाना चाहिए यह दोष है।

भगवान सूर्य को प्रणाम प्रिय है। भगवान विष्णु स्तुति प्रिय है और गणेश को वन्दना प्रिय है। माँ दुर्गा को अर्चना प्रिय है, भगवान शंकर को अभिषेक और जल प्रिय है और पूजा, हवन, जप और देवता के दर्शन के समय गले में वस्त्र नहीं लपेटना चाहिए।

अन्धेरी रात में बिना दीपक जलाये, भगवान के विग्रह का स्पर्श नहीं करना चाहिए। मांस, मदिरा के सेवन के बाद भगवान की पूजा या मन्दिर

में नहीं जाना चाहिए तथा बिना माला नैवेद्य और तिलक लगाये धूप, दीप देवी या देवता को नहीं दिखलाना चाहिए। बिना फल नैवेद्य फूल, माला से पूजा नहीं करनी चाहिए।

* अग्निशाला, गौशाला, देवता और ब्राह्मण के समीप और जप, स्वाध्याय और भोजन व जल ग्रहण करते समय पैर में कुछ पहने नहीं रहना चाहिए। राजा, देवता और गुरु के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। अशुद्ध अवस्था में दर्शन करना। ईश्वर के सामने ही एक स्थान पर खड़े–खड़े परिक्रमा करना। ईश्वर के आगे पैर फैलाना या एक हाथ से प्रणाम करना। पलंग या खाट पर बैठना और सामने सोना या खाना या झूठ बोलना, जोर–जोर से बोलना या परस्पर बातचीत करना। ईश्वर के सामने किसी को पीड़ा देना या किसी पर अनुग्रह करना। ईश्वर के सामने किसी की निंदा करना या किसी दूसरे की स्तुति करना। ईश्वर के सामने अश्लील शब्द बोलना। ईश्वर के सामने अधोवायु का त्याग करना। ईश्वर को भोग लगाए बिना ही कोई वस्तु खाना–पीना। जिस ऋतु में जो फल हो, उसे पहले ईश्वर को न चढ़ाना आदि दोष है जो जल्दी मुक्त नहीं होता। पति से बिना पूछे जो धर्म कार्य किया जाता है, वह पति की आयु को क्षीण कर देता है। स्त्री को चाहिए कि वह कुलटा, अधम और कलहप्रिय स्त्रियों को कभी भी अपनी संगिनी न बनाए। स्त्रियों को अपने भाई–बन्धुओं के यहां अधिक दिनों तक रहना उनकी कीर्ति, शील और धर्म का नाश करने वाला होता है।

लक्ष्मी की कृपा कैसे हो- जिस घर में अनाज का सम्मान होता है। अतिथि सत्कार होता है और यथासंभव दान और गरीबों की मदद होती है, उस घर में लक्ष्मी निवास करती है।

* जो स्त्रियाँ पति के प्रतिकूल बोलती हैं, दूसरों के घरों में घूमने–फिरने में रूचि रखती हैं और घर के बर्तन इधर–उधर फैला या बिखेर कर रखती हैं, उनके घर लक्ष्मी नहीं आती। * जो व्यक्ति सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोता है, भोजन करता है, दिन में सोता है, दांत साफ नहीं करता है, अधिक भोजन करता है, वह अगर साक्षात् विष्णु भी हो, तो लक्ष्मी उसे छोड़कर चली जाती है। * जो शरीर में तेल लगाकर मल–मूत्र त्यागता है या नमस्कार करता है या पुष्प तोड़ता है या जिसके पैर में मैल

जमी रहती है, उसके घर लक्ष्मी नहीं आती हैं। * अपने अंगों पर बाजा बजाने से भी धनी व्यक्ति का साथ धीरे–धीरे छोड़ देती है लक्ष्मी। * जिसके घर में भगवान की पूजा होती है और देवता, साधु, ब्राह्मण, गुरु का सम्मान होता है। ऐसे घर में लक्ष्मी सदैव निवास करती है। * जिस घर में शुद्धता, पवित्रता रहती है और बिना सूंघे पुष्प देवताओं को चढ़ाए जाते हैं, उस घर में लक्ष्मी नित्य विचरण करती है। * जिस घर में स्त्रियों का सम्मान होता है । स्त्री, पति का सम्मान और पति के अनुकूल व्यवहार करती है एवं पतिव्रता होती है और धीरे चलने वाली स्त्री के घर में लक्ष्मी का निवास रहता है।

वर्जित क्रिया– आसन, चौकी, खड़ाऊँ और दातुन के लिए पलाश की लकड़ी का उपयोग नहीं करना चाहिए। सूप फटकने से निकली हुई वायु, हाथ धोने से निकला हुआ जल, गीले वस्त्र से गिरता हुआ जल, केश से गिरता हुआ जल, झाड़ू का धूल, माता नहाने के बाद बिना कुछ खाये, बालक को गोद में उठाती है तो 12 वर्ष के कम बालक–बालिका को रोगी बनाती है।

❐

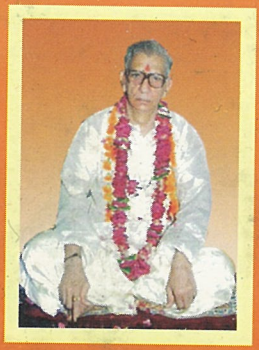

अरुण कुमार शर्मा
की
अन्य कृतियाँ

मारणपात्र
तीसरा नेत्र (प्रथम खण्ड)
तीसरा नेत्र (द्वितीय खण्ड)
मरणोत्तर जीवन का रहस्य
परलोक विज्ञान
कारणपात्र
कुण्डलिनी शक्ति
अभौतिक सत्ता में प्रवेश
वक्रेश्वर की भैरवी
वह रहस्यमय संन्यासी
रहस्य
आवाहन
आकाशचारिणी
वह रहस्यमय कापालिक मठ
तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी
मृतात्माओं से सम्पर्क

आस्था प्रकाशन
बी. 5/23 अवधगर्वी हरिश्चन्द्र रोड
वाराणसी–0221001 (उ0प्र0)
दूरभाष : (0542) 2277228, 2277093

Rs. 300.00
ISBN : 978-81-906796-4-0
9 788190 679640